तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी
के
जैन - संस्कृत - महाकाव्य

डॉ० श्यामशंकर दीक्षित
एम. ए., पी-एच. डी.

हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

मलिक एण्ड कम्पनी
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

मूल्य . तीस रुपये
प्रथम सस्करण, १९६९

० ०

मलिक एण्ड कम्पनी
चौडा रास्ता, जयपुर-३

मुद्रक शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर-३

राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी
विभाग के प्राण, श्रद्धेय गुरुवर
डॉ. सरनामसिह शर्मा डी लिट्
के श्रीचरणो में
सादर

प्राक्कथन

जैन-संस्कृत-साहित्य का अधिकांश भाग अभी तक प्रकाश मे नही आया है और न उसके उचित मूल्याकन का अभी तक प्रयत्न ही हुआ है। जैन-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा के सम्पर्क मे आने पर मुझे वस्तुपाल-कृत 'नरनारायणानन्द' और महाकवि हरिचन्द्र-कृत 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य को पढने का अवसर मिला। तभी से जैन-सस्कृत-महाकाव्यो के अध्ययन की ओर मेरी रुचि बढती गई। प्रो० वेलणकर-कृत 'जिन-रत्नकोश' तथा श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई-कृत 'जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास' के पृष्ठ उलटने पर मुझे शताधिक मुद्रित-अमुद्रित जैन-सस्कृत-महाकाव्यो का परिचय प्राप्त हुआ। जैन विद्वानो द्वारा रचित इस विपुल सस्कृत-महाकाव्य-साहित्य को देख कर मै आश्चर्य-चकित रह गया और उसके अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुआ। 'तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन-सस्कृत-महाकाव्य' नामक प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मेरी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। इसमे सन् १२००–१४०० ई० (सवत् १२५७–१४५७) तक के जैन कवियो द्वारा निर्मित महाकाव्यो की विशद विवेचना करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को आठ अध्यायो मे विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय मे महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया गया है। महाकाव्य-विषयक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानो के विचारो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करके अन्त मे महाकाव्य के सार्वदेशिक और सार्वकालिक लक्षणो को निश्चित करके महाकाव्य की परिभाषा देने का प्रयास किया गया है। इस युग के महाकाव्य अपने युग की चेतना और विविध समस्याओ से अनुप्राणित होते हुए भी प्राचीन भारतीय महाकाव्य-परम्परा से प्रभावित दृष्टिगत होते हैं। अत: इस युग के जैन महाकाव्यो के सम्यक् अध्ययन और उनके उचित मूल्यांकन के लिए पृष्ठभूमि के रूप मे उनके पूर्ववर्ती और समवर्ती सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यो का अध्ययन बहुत आवश्यक है। इसलिए द्वितीय अध्याय मे पूर्ववर्ती और समवर्ती सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-महाकाव्यो पर विहंगम दृष्टि डाल कर उनकी विशेषताओ को प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है। तृतीय अध्याय में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एव साहित्यिक परिस्थितियो का अध्ययन करके जैन महाकाव्यो पर पडे उनके प्रभाव की समीक्षा की गयी है और उसके पश्चात् जैन महाकाव्यो की प्रेरक शक्तियो और प्रमुख प्रवृत्तियो की विवेचना की गयी है।

इस युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो को दो वर्गो मे विभाजित किया गया है—(१) प्रमुख महाकाव्य और (२) सामान्य महाकाव्य। प्रमुख महाकाव्यो मे उन महाकाव्यों की

गणना की गयी है जो महाकाव्य की कसौटी पर खरे उतरते है। प्रमुख महाकाव्यो मे (१) नरनारायणानन्द (वस्तुपाल), (२) श्रेणिकचरित्र (जिनप्रभसूरि), (३) वसन्तविलास (बालचन्द्रसूरि), (४) हम्मीरमहाकाव्य (नयचन्द्रसूरि), (५) धर्मशर्माभ्युदय (हरिचन्द्र), (६) सनत्कुमारचरित्र (जिनपाल उपाध्याय), (७) बालभारत (अमरचन्द्रसूरि), (८) जयन्तविजय (अभयदेवसूरि), (९) पद्मानन्दमहाकाव्य (अमरचन्द्रसूरि), (१०) मुनिसुव्रतकाव्य (अर्हद्दास), (११) नलायनम् (माणिक्यदेवसूरि) तथा (१२) शान्तिनाथचरित्र (मुनिभद्रसूरि) ये बारह महाकाव्य सम्मिलित हैं। प्रमुख महाकाव्यो को तीन वर्गों मे रखा गया है—(१) शास्त्रीय महाकाव्य (२) ऐतिहासिक महाकाव्य तथा (३) पौराणिक महाकाव्य। उक्त बारह महाकाव्यो मे से पहले दो 'नरनारायणानन्द' तथा 'श्रेणिकचरित्र' को शास्त्रीय महाकाव्यो मे, 'वसन्तविलास' तथा 'हम्मीरमहाकाव्य' को ऐतिहासिक महाकाव्यो मे तथा शेष आठ महाकाव्यो को पौराणिक महाकाव्यो मे रखा गया है। शास्त्रीय महाकाव्यो का विवेचन चतुर्थ अध्याय मे, ऐतिहासिक महाकाव्यो का विवेचन पचम अध्याय मे और पौराणिक महाकाव्यो का विवेचन षष्ठ अध्याय मे किया गया है। प्रत्येक महाकाव्य के गुण दोषो की समीक्षा कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, सौदर्य-वर्णन, शब्दक्रीडा और पाण्डित्यप्रदर्शन, धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व, रस-परिपाक, भाषा, अलकार-योजना तथा छन्द की दृष्टि से की गयी है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक महाकाव्य को महाकाव्य की कसौटी पर कस कर उन तत्त्वो को उभार कर दिखाया गया है जिनके आधार पर उस महाकाव्य की गणना शास्त्रीय, ऐतिहासिक अथवा पौराणिक महाकाव्यो के अन्तर्गत की गयी है। इसके बाद महाकाव्य के रचयिता का परिचय, उसके समय एव ग्रन्थ-रचना-काल पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। प्रबन्ध का यह भाग नितान्त मौलिक है।

सातवे और आठवे अध्याय मे सामान्य महाकाव्यो की विवेचना की गयी है। इन महाकाव्यो मे महाकाव्य की दृष्टि से कई त्रुटियाँ हैं, फिर भी उनमे महाकाव्य के अनेक तत्त्वो का समावेश है, अतः उनका समावेश प्रमुख महाकाव्यो मे न करके सामान्य महाकाव्यो मे किया गया है। इन महाकाव्यो मे (१) पार्श्वनाथचरित्र (माणिक्यचन्द्रसूरि), (२) शान्तिनाथचरित्र (माणिक्यचन्द्रसूरि), (३) पाण्डवचरित्र (देवप्रभसूरि), (४) धर्माभ्युदयमहाकाव्य (उदयप्रभसूरि), (५) पार्श्वनाथचरित्र (सर्वानन्दसूरि), (६) वासुपूज्यचरित्र (वर्धमानसूरि), (७) पार्श्वनाथचरित्र (विनयचन्द्रसूरि), (८) मल्लिनाथचरित्र (विनयचन्द्रसूरि), (९) मुनिसुव्रतचरित्र (विनयचन्द्रसूरि), (१०) चन्द्रप्रभचरित्र (सर्वानन्दसूरि), (११) प्रत्येकबुद्धचरित्र (लक्ष्मीतिलक उपाध्याय), (१२) अभयकुमारचरित्र (चन्द्रतिलक उपाध्याय), (१३) पार्श्वनाथचरित्र (भावदेवसूरि), (१४) नरवर्मचरित्र (विवेकसमुद्रगणी), (१५) शान्तिनाथचरित्र (मुनिदेवसूरि), (१६) श्रेयासनाथचरित्र (मानतुगसूरि), (१७) जगडूचरित्र (सर्वानन्दसूरि), (१८) लीलावतीसार (जिनरत्न-लक्ष्मीतिलक उपाध्याय), (१९) यशोधरचरित्र (माणिक्यदेवसूरि), (२०)

पुण्डरीकचरित्र (कमलप्रभसूरि) तथा (२१) कुमारपालचरित्र (जयसिंहसूरि) इन इक्कीस महाकाव्यो को स्थान दिया गया है। इन महाकाव्यो मे कोई भी काव्य शास्त्रीय काव्य नही है, अत: इन सामान्य महाकाव्यो को दो वर्गों मे विभक्त किया गया है:-(१) ऐतिहासिक महाकाव्य तथा (२) पौराणिक महाकाव्य। ऐतिहासिक महाकाव्यो के अन्तर्गत केवल दो महाकाव्य 'जगडूचरित्र' तथा 'कुमारपालचरित्र' को रखा गया है, जिनकी समीक्षा सप्तम अध्याय मे की गई है। शेष १६ महाकाव्यो को पौराणिक महाकाव्यो मे रखा गया है जिनकी समीक्षा अष्टम अध्याय मे की गयी है। उपसहार मे सस्कृत के मूर्धन्य महाकाव्य-कारो मे जैन महाकाव्यकारो का स्थान निर्धारित किया गया है।

आलोच्य युग के महाकाव्यो पर पूर्ववर्ती कृतियो —'वाल्मीकि रामायण', 'रघुवश', 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध', 'नैषधचरित्र', 'भट्टि काव्य' आदि—का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उनमे भावसाम्य ही नही, कही-कही तो शब्दसाम्य भी मिल जाता है। फिर भी प्रस्तुत प्रबन्ध मे तुलनात्मक विवेचन को स्थान नहीं दिया गया है। विषय की यह सीमा जानबूझ कर बाँधी गयी थी, क्योकि विषय की परिधि विस्तृत होने से सभी महाकाव्यो का सर्वांगीण विवेचन सम्भव नही हो सकता था। वस्तुत यह एक स्वतन्त्र शोध का विषय है।

प्रस्तुत कृति प्रात.स्मरणीय गुरुदेव डॉ० सरनामसिह शर्मा डी० लिट्० के चरणो मे एक विनम्र प्रणामाञ्जलि है। गुरुदेव के चरणो के समीप बैठ कर ही मैने शोध-प्रक्रिया का 'क, ख, ग' सीखा है। इन पृष्ठो मे जो भी शक्ति है वह उन्ही की अनवरत कृपाओ का परिणाम है। श्री प्रवीणचन्द्र जैन, प्रिंसिपल, डूँगर कालेज, बीकानेर का मै हृदय से आभारी हूँ जिनके निर्देशन मे प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पूर्ण हुआ है। अनुसधान-मार्तण्ड श्री अगरचन्द नाहटा की कृपा यदि मुझ पर न होती तो यह प्रबन्ध कदाचित् ही पूर्ण हो पाता। मुद्रित और अमुद्रित काव्यो को जुटा कर तथा अपने अमूल्य सुझाव देकर उन्होने जो मेरा मार्ग सरल किया उसके लिए मै उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। पूज्य मुनि पुण्यविजयजी, मुनि जिनविजयजी, प० परमानन्द जैन, दिल्ली, प० अमृतलालशास्त्री वाराणसी, प० चैनसुखदास न्यायतीर्थ, डॉ० भोगीलाल साडेसरा, डायरेक्टर ओरियेन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा, डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वानो का मै ऋणी हूँ जिन्होने कार्यव्यस्त रहते हुए भी समय-समय पर उपयोगी सामग्री के चयन तथा विवादास्पद विषयो को सुलझाने मे मेरी सहायता की है। अन्त मे मै उन सभी विद्वानो का हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ जिनकी कृतियो का उपयोग मैने प्रस्तुत प्रबन्ध मे किया है।

ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध पाठको के हाथो मे है, यदि परिस्थितियाँ अनुकूल रही तो आशा है, ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

विजयादशमी स० २०२६ — श्यामशंकर दीक्षित

बी १६६, जनता कॉलोनी, जयपुर–४

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

महाकाव्य का स्वरूप पृष्ठ १–४८

काव्य क्या है ? काव्य के रूप । काव्य के विविध रूपो मे महाकाव्य की महत्ता । महाकाव्य-विषयक भारतीय मान्यताएँ :—भामह, दण्डी, रुद्रट, भोजदेव, वाग्भट, हेमचन्द्र, अमरचन्द्रसूरि, विश्वनाथ, भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्त्व । महाकाव्य-विषयक पाश्चात्य मान्यताएँ:—अरस्तू, केम्स, लवस्सु, हॉब्स, लैफकैडियो हर्न, विलियम रोज बैनिट, वाल्टेयर, एबरक्रोम्बी, सी. एम बावरा, डब्ल्यू पी केर, एम. डिक्सन, टिलयार्ड, 'दी बुक ऑफ एपिक' की भूमिका, पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्त्व । भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण पर एक तुलनात्मक दृष्टि । निष्कर्ष :— (१) सुसंगठित और व्यापक कथानक, (२) उदात्त और शालीन चरित्र-चित्रण, (३) जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति, (४) तीव्र रस-व्यंजना, (५) वस्तुवर्णन, (६) प्रौढ भाषा-शैली, (७) छन्दोबद्धता और कथानक का खण्डो मे विभक्त होना, (८) महान् उद्देश्य । महाकाव्य की परिभाषा ।

द्वितीय अध्याय

पूर्ववर्ती और समवर्ती महाकाव्य-परम्परा पृ० ४९–७१

सस्कृत के महाकाव्य:—विकसनशील महाकाव्य—रामायण और महाभारत । अलकृत महाकाव्य । अलकृत महाकाव्यो के रूप.—शास्त्रीय महाकाव्य—(१) रीति-मुक्त महाकाव्य, (२) रीतिबद्ध महाकाव्य, (३) शास्त्र काव्य और बहुर्थक काव्य । ऐतिहासिक महाकाव्य । पौराणिक महाकाव्य । प्राकृत के महाकाव्य । प्राकृत के पौराणिक महाकाव्य । प्राकृत के शास्त्रीय महाकाव्य । अपभ्र श के महाकाव्य:—पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, महापुराण, हरिवशपुराण, वैयक्तिक पुरुषो से सम्बन्धित पौराणिक शैली के चरित-काव्य: - जम्बूसामिचरिउ, करकण्डचरिउ, पासचरिउ, पासचरिउ तथा सुकुमालचरिउ, अन्य काव्य । अपभ्र श के प्रेमाख्यानक महाकाव्य । सस्कृत-प्राकृत और अपभ्र श के महाकाव्यो का जैन-सस्कृत-महाकाव्यो पर प्रभाव ।

तृतीय अध्याय

तत्कालीन परिस्थितियाँ और जैन महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ० ७२–९६

राजनीतिक अवस्था —गुजरात, जालौर, आबू और चन्द्रावती, साँचौर, मरु और

जागल देश, जैसलमेरु । राजनीतिक परिस्थिति का जैन-सस्कृत-महाकाव्य साहित्य पर प्रभाव । धार्मिक स्थिति'—हिन्दू-धर्म, जैन-धर्म शासक-वर्ग, श्रेष्ठिवर्ग तथा जनसाधारण पर जैन-धर्म का प्रभाव, इस्लाम । सामाजिक दशा । साहित्यिक अवस्था । जैन महाकाव्यो की मूल प्रेरणाएँ —(१) धर्म-भावना, (२) धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रद्धालु श्रावक की प्रेरणा, (३) जैन-धर्म के समसामयिक प्रभावको का आदर्श-जीवन, (४) सस्कृत के मूर्द्धन्य महाकवियो की पक्ति मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा । पौराणिक महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ । ऐतिहासिक महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ । शास्त्रीय महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ । आलोच्य युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो का वर्गीकरण — प्रमुख महाकाव्य, सामान्य महाकाव्य ।

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख महाकाव्य (शास्त्रीय महाकाव्य) पृ० ९७–१२०

(१) नरनारायणानन्द (वस्तुपाल)

'नरनारायणानन्द' का महाकाव्यत्व । कवि-परिचय और काव्य-रचनाकाल । कथानक । चरित्रचित्रण:—अर्जुन, श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-चित्रण । रस-परिपाक । भाषा, पाण्डित्य-प्रदर्शन और शब्दक्रीडा । अलकार-विधान । छन्द ।

(२) श्रेणिकचरित्र (जिनप्रभसूरि) पृ० १२०–१४३

'श्रेणिकचरित्र' का महाकाव्यत्व । 'श्रेणिकचरित्र' शास्त्रीय महाकाव्य है । कवि-परिचय । रचनाकाल । कथानक । चरित्रचित्रण —श्रेणिक, अभयकुमार, महावीर, कुष्ठी, नन्दा और चेल्लणा, अन्य पात्र । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-वर्णन । धार्मिक तत्त्व और विविध-ज्ञान । व्याकरण-पक्ष । रस-परिपाक । भाषा । अलकार-योजना । छन्द ।

पचम अध्याय

प्रमुख महाकाव्य (ऐतिहासिक महाकाव्य)

(१) वसन्तविलास (बालचन्द्रसूरि) पृ० १४४–१६३

'वसन्तविलास' का महाकाव्यत्व । 'वसन्तविलास' ऐतिहासिक महाकाव्य है । कवि-परिचय । रचनाकाल । कथानक । चरित्रचित्रण —वस्तुपाल, अन्य पात्र । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-वर्णन । समाज-चित्रण । धार्मिक-विचार । रस-परिपाक । भाषा, शब्दक्रीडा और पाण्डित्य-प्रदर्शन । अलकार । छन्द ।

(२) हम्मीरमहाकाव्य (नयचन्द्रसूरि) पृ० १६३–१९२

'हम्मीरमहाकाव्य' का महाकाव्यत्व । 'हम्मीरमहाकाव्य' की ऐतिहासिकता । कवि-परिचय । रचनाकाल । कथानक । चरित्रचित्रण —हम्मीर, अल्लावदीन, मीमसिंह,

धर्मसिह भोजदेव, रतिपाल, रणमल्ल, जाज और महिमासाहि। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्य-वर्णन। समाज-चित्रण। धार्मिक तत्त्व। रस-परिपाक। भाषा। अलकार। छन्द।

षष्ठ अध्याय

प्रमुख महाकाव्य (पौराणिक महाकाव्य)

(१) धर्मशर्माभ्युदय (हरिचन्द्र) पृ० १९३–२२२

'धर्मशर्माभ्युदय' का महाकाव्यत्व। कवि-परिचय। रचनाकाल। कथानक। चरित्र-चित्रण.—धर्मनाथ, महासेन, सुव्रता, अन्य पात्र। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्य-चित्रण। समाज-चित्रण, धर्म और दर्शन। रस-परिपाक। भाषा, पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा शब्दक्रीड़ा। अलकार-योजना। छन्द।

(२) सनत्कुमारचरित्र (जिनपाल उपाध्याय) पृ० २२२–२४९

'सनत्कुमारचरित्र' का महाकाव्यत्व। कवि-परिचय। रचनाकाल। कथानक। चरित्र-चित्रण —सनत्कुमार, अश्वसेन, महेन्द्रसिह, अन्य पात्र। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्य-वर्णन। समाज-चित्रण। धर्म और दर्शन। रस-परिपाक। भाषा, अलकृति और पाण्डित्य-प्रदर्शन। अलकार-योजना। छन्द।

(३) बालभारत (अमरचन्द्रसूरि) पृ २५०–२७७

'बालभारत' का महाकाव्यत्व। कवि-परिचय। रचनाकाल आदि। कथानक। चरित्रचित्रण। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्य-वर्णन। समाज-चित्रण। विविध ज्ञान। रस-परिपाक। भाषा। अलकार-योजना। छन्द।

(४) जयन्तविजय (अभयदेवसूरि पृ० २७७–३००

'जयन्तविजय' का महाकाव्यत्व। कविपरिचय। रचनाकाल आदि। कथानक। चरित्रचित्रण:—विक्रमसिंह, जयन्त, हरिराज, महेन्द्र अन्य पात्र। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्यवर्णन। समाजचित्रण। धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व। रस-परिपाक। भाषा। अलकार-योजना। छन्द।

(५) पद्मानन्द महाकाव्य (अमरचन्द्रसूरि) पृ० ३०१–३२२

'पद्मानन्द का महाकाव्यत्व। कवि-परिचय। रचनाकाल आदि। कथानक। चरित्र-चित्रण —ऋषभदेव, अन्य पात्र। प्रकृतिचित्रण। सौन्दर्य-चित्रण। समाज-चित्रण। धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व। रस-परिपाक। भाषा, शब्दक्रीडा और पाण्डित्य-प्रदर्शन। अलकार-योजना। छन्द।

(६) मुनिसुव्रतचरित्र (अर्हद्दास) पृ० ३२२–३३९

'मुनिसुव्रतकाव्य' का महाकाव्यत्व। कवि-परिचय। रचनाकाल आदि। कथानक।

चरित्रचित्रण —मुनिसुव्रत, सुमित्र, पद्मावती । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-वर्णन । धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व । रस-परिपाक । भाषा । अलकार-योजना । छन्द ।

(७) **नलायनम् (माणिक्यदेवसूरि)** पृ० ३४०—३७४

'नलायनम्' का महाकाव्यत्व । कवि-परिचय । रचनाकाल आदि । कथानक । चरित्र-चित्रण —नल, दमयन्ती । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-चित्रण । समाज-चित्रण । धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व । रस-परिपाक । भाषा, शब्दक्रीडा और पाण्डित्य-प्रदर्शन । अलकार-योजना । छन्द ।

(८) **शान्तिनाथचरित्र (मुनिभद्रसूरि)** पृ० ३७४-४०४

'शान्तिनाथचरित्र' का महाकाव्यत्व । कवि-परिचय । रचनाकाल आदि । कथानक । चरित्रचित्रण —शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिघोष, सुतारा । प्रकृतिचित्रण । सौन्दर्य-वर्णन । समाज-चित्रण । धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व । रस-परिपाक । भाषा । अलकार-योजना । छन्द ।



प्रथम अध्याय

महाकाव्य का स्वरूप

आनन्दोपासना जीवन की सार्वदेशिक और सार्वकालिक प्रवृत्ति है। मानव-जगत् में यह आनन्दोपासना जीवन के अनेक कार्य-कलापों मे प्रतिबिम्बित होती है। मानव अमृत-तत्त्व का पुजारी है, वह अपनी प्रत्येक वस्तु को रसमय, सुन्दर और चिरस्थायी देखने का इच्छुक है। अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्त वस्तुओ मे उपयोगिता के साथ-साथ वह आनन्ददायी सौन्दर्य का दर्शन भी करना चाहता है। वस्तुत आनन्द की तरङ्ग मानव-हृदय से अनायास ही स्वतः प्रवाहित होना चाहती है। कलाएँ उस आनन्द का ही साकार स्वरूप होती हैं। साहित्य भी साहित्यकार की आनन्दमयी तरग का ही दूसरा रूप है, क्योकि सौन्दर्य और आनन्द का उपासक मानव अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम मे भी ऐसा सौन्दर्य देखना चाहता है जिससे दूसरे व्यक्ति और वह स्वय भी आनन्दविभोर हो उठे। वह अपनी दु:खात्मक प्रवृत्तियो मे भी आनन्द-प्राप्ति की प्रच्छन्न एव सहज आकुलता छिपाये रहता है। कारण यह है कि दुःख जीवन का स्वाभाविक रूप नहीं है। प्रत्येक प्राणी उससे पलायन करना चाहता है। इसीलिए तो उपनिषद् का ऋषि बोल उठा था :—

> **असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।**
> **मृत्योर्मा अमृत गमय।**

दु ख मे आत्म-सकोचन होता है और आनन्द मे आत्मविस्तार। दु:ख, वेदना और करुणा से विगलित गीतो के गर्भ मे आनन्दोपलब्धि की उद्दाम आकाक्षा होती है। साहित्य-सर्जन के मूल मे भी यही वृत्ति है।

साहित्य मानव-मस्तिष्क की महत्त्वपूर्ण उपज है। अपने सामाजिक जीवन मे मनुष्य दूसरे व्यक्तियो के सम्पर्क मे आकर सुख-दु:ख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद ईर्ष्या-द्वेष, मान-अपमान, उत्साह-घृणा आदि का अनुभव करता है और दूसरे व्यक्तियो के सुख-दु:ख से प्रभावित भी होता है। उसके मस्तिष्क और मन पर सामाजिक जीवन के इन विभिन्न रूपो का प्रभाव पडता है। मानव-जीवन की इन अनुभूतियो की भाषा के माध्यम से सशक्त, सरस और कलापूर्ण अभिव्यजना ही साहित्य है।

साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति 'सहितयो' भाव साहित्यम्' तथा 'सहितस्य भावः साहित्यम्' इस प्रकार की जाती है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार 'सहितयो. शब्दार्थयो. भावः साहित्यम्' यह व्याख्या की जाती है, जिसका आशय है कि जहाँ शब्द और अर्थ का, कलापक्ष और भावपक्ष का परस्पर सामजस्यपूर्ण सहभाव हो वही साहित्य है। इस व्याख्या से साहित्य का अर्थ अत्यन्त व्यापक हो जाता है और वह सारे वाङ्मय का पर्याय हो जाता है। जितना शब्द-भण्डार और वाणी का विस्तार है वह सब इसके अन्तर्गत आ जाता है।

साहित्य शब्द की इसी व्युत्पत्ति को ध्यान मे रखकर हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को ज्ञानराशि का सचित कोष कहा है।

'हितेन सह सहित, तस्य भाव' साहित्यम्' इस द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार साहित्य वही है जिससे मानव-हित का सम्पादन हो। इसके अनुसार भी साहित्य शब्द से सारे वाङ्मय का ग्रहण हो जाता है, क्योकि सभी शास्त्रो का ध्येय मानव-हित का निरूपण ही है। विद्वानो ने 'शास्त्रत्व हित-शासनात्' इस युक्ति के द्वारा शास्त्रमात्र को हितानुशासन करने वाला बताया है। फिर भी उत्तरकाल मे साहित्य शब्द का अर्थ सकुचित हो गया और अपने सकुचित और रूढ अर्थ मे वह भावना-प्रधान साहित्य अथवा काव्य का पर्याय भी माना जाने लगा। इस प्रकार व्यापक अर्थ मे साहित्य के दो विभाग हो जाते है—(१) काव्य और (२) शास्त्र। काव्य रसात्मक होता है और शास्त्र ज्ञानप्रधान। सस्कृत मे व्याकरण, न्याय, अलंकार-शास्त्र आदि ज्ञानप्रधान साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत आता है और नाटक, चम्पू, कथा, आख्यायिका, कविता आदि रसात्मक साहित्य काव्य के अन्तर्गत आता है।

काव्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, किन्तु अभी तक काव्य की सर्वसम्मत परिभाषा निश्चित नही की जा सकी है। भारतीय समीक्षा-क्षेत्र मे काव्य की परिभाषा का सम्बन्ध काव्य की आत्मा से जुडा हुआ है।

काव्य क्या है ?

भारतीय मनीषियो ने पहले काव्य के बाह्य स्वरूप (शब्द-अर्थ) को समझने का प्रयत्न किया, तत्पश्चात् काव्य की आत्मा (रस) तक पहुँचने की चेष्टा की गई। काव्य की आत्मा के सम्बन्ध मे भारतीय आचार्यों मे मतभेद रहा है, फलस्वरूप सस्कृत के साहित्य-शास्त्र मे काव्य-तत्त्वो पर विचार करने वाले पाँच सम्प्रदाय मिलते हैं जिनके नाम है—(१) रस–सम्प्रदाय (२) अलकार-सम्प्रदाय (३) वक्रोक्ति-सम्प्रदाय (४) रीति–सम्प्रदाय और (५) ध्वनि–सम्प्रदाय। इन सम्प्रदायो मे क्रमश रस, अलकार वक्रोक्ति, रीति और ध्वनि को काव्य की आत्मा माना गया है। भरत और विश्वनाथ रस–सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य हैं। दण्डी और भामह ने अलकारो को, कुन्तक ने वक्रोक्ति को, वामन ने रीति को तथा आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठित किया है। इन पाँचो सम्प्रदायो मे रस और ध्वनि–सम्प्रदायो ने काव्य के अनुभूति (भाव) पक्ष को प्रधानता दी है। अभिव्यक्ति (कला) पक्ष को उन्होने रस के पोषक रूप मे ही स्वीकार किया है। शेष तीनो सम्प्रदाय (अलकार, रीति और वक्रोक्ति-सम्प्रदाय) काव्य मे कला (अभिव्यक्ति) पक्ष को प्रधानता देते हैं

इन सम्प्रदायो से प्रभावित होकर सस्कृत के आचार्यों ने काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ की है। भामह ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'[1] कहकर सम्मिलित शब्द और अर्थ को काव्य कहा है। किन्तु वस्तुत शब्द और अर्थ तो काव्य के शरीर-मात्र है। इसलिए दण्डी ने अपने काव्यादर्श मे काव्य के स्वरूप की विवेचना करते समय काव्य के शब्दार्थ-रूपी शरीर

(१) भामह– काव्यालकार।

को अलंकृत करने वाले अलकारो को सर्वाधिक महत्त्व दिया है[1]। आचार्य कुन्तक ने किसी बात को विदग्धता और सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यजना-शैली के साथ कहने को ही काव्य का प्राण माना है[2]। आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य वही है जिसमे वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ को प्रधानता मिली हो[3]। वामन ने रीति को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया है[4]। काव्यप्रकाश के रचयिता आचार्य मम्मट ने दोषरहित, गुणवाली, अलकारयुक्त तथा कभी-कभी अलकाररहित शब्दार्थमयी रचना को काव्य कहा है[5]। विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है[6]। रसगगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ के मत मे रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है[7]। इसी प्रकार अनेक विद्वानों ने काव्य की और भी परिभाषाएँ की है[8]।

जैन कवियो एव आचार्यों ने भी काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है, किन्तु प्रायः वे मम्मटाचार्य की परिभाषा से प्रभावित है। आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य की परिभाषा 'अदोषौ सगुणौ सालकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' इस प्रकार करके इस सूत्र की वृत्ति मे 'चकारो निरलकारयोरपि शब्दार्थयो क्वचित्काव्यत्वख्यापनार्थः' लिखा है[9]। कहने की आवश्यकता नही कि हेमचन्द्र की यह परिभाषा पूर्णतया मम्मट पर आधारित है। एक दूसरे जैन आचार्य वाग्भट ने भी 'शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्' कहकर इस सूत्र की वृत्ति मे 'प्रायः सालकाराविति निरलकारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित्काव्यत्व-ख्यापनार्थम्' कहा है[10]। इस प्रकार काव्य की परिभाषा करते समय वे भी मम्मट का अनुसरण करते है। एक स्थल पर हेमचन्द्र ने लोकोत्तर कवि-कर्म को ही काव्य बताया

---

(१) तैः शरीरं च काव्यानामलंकाराश्च दर्शिताः।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥—दण्डी, काव्यादर्श।

(२) वक्रोक्ति काव्यजीवितम्।—कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित।

(३) काव्यस्यात्मा ध्वनि।—ध्वन्यालोक।

(४) रीतिरात्मा काव्यस्य।—वामन, अलकारसूत्र।

(५) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वाऽपि।—मम्मट, काव्यप्रकाश।

(६) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। — विश्वनाथ, साहित्यदर्पण।

(७) रमणीयार्थप्रतिपादक. शब्दः काव्यम्। —जगन्नाथ, रसगंगाधर।

(८) (क) संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम् ॥—अग्निपुराण।

(ख) ननु शब्दार्थौ काव्यम्। —रुद्रट, काव्यालंकार।

(ग) निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम्।—रसान्वितं-भोज, सरस्वतीकंठाभरण।

(घ) निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्।—जयदेव, चन्द्रालोक।

(९) हेमचन्द्र, काव्यानुशासन।   (१०) वाग्भट, काव्यानुशासन।

है[1]। किन्तु उनका यह कथन भी आचार्य मम्मट की 'काव्य लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म' इस उक्ति पर आधारित है।

आलोच्य युग के कुछ महाकाव्यकारो ने भी अपनी कृतियो मे प्रसगवश काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। धर्मशर्माभ्युदयकार हरिचन्द्रसूरि रमणीय अर्थ की प्रतिपादक वाणी को ही काव्य मानते है। उनके मत से रमणीय अर्थ से रहित ललित पदो की योजना सहृदयो के मन को आह्लादित नही कर सकती। अतः महाकवि की वाणी रसपूर्ण अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली एव पीयूषवर्षी होनी चाहिए जो पाठक को आनन्दविभोर कर सके। हरिचन्द्र ने काव्य को यति (विरामस्थल) तथा कातिगुण से युक्त होना भी आवश्यक बताया है। उनकी काव्य-सम्बन्धी मान्यताएँ इन पद्यो मे प्रकट हुई हैं :—

हृद्यार्थवन्ध्या पदबन्धुराऽपि वाणी बुधानां न मनो धिनोति।
न रोचते लोचनवल्लभाऽपि स्नुहीक्षरत्क्षीरसरिन्नरेभ्यः ॥[2]
जयन्ति ते केऽपि महाकवीनां स्वर्गप्रदेशा इव वाग्विलासा.।
पीयूषनिष्यन्दिषु येषु हर्षं केषां न धत्ते सुरसार्थलीलाम् ॥[3]
यतिभावपर कांतिं बिभ्रदभ्यधिका नृप ।
निश्चक्राम पुराच्छ्लोक. कवीन्द्रस्य मुखादिव ॥[4]

हरिचन्द्र की काव्य-सम्बन्धी यह व्याख्या पण्डितराज जगन्नाथ, जो हरिचन्द्र के बहुत बाद हुए, की काव्य-परिभाषा के बहुत निकट है।

सनत्कुमारचरित्र के रचयिता जिनपाल उपाध्याय ने अलकारो से सजी हुई, रसपूर्ण, दोषरहित, ललित पदो की योजना से युक्त तथा सद्गुणो से युक्त वाणी को काव्य माना है। भानुवेग की कन्याओ का वर्णन करते समय कवि ने काव्य के अनिवार्य तत्त्वों का उल्लेख इन पक्तियो मे किया है :—

जात्यजाम्बूनदालकृतिप्रोज्ज्वला
श्चक्रिरेऽङ्गे समस्तेऽपि ताः कन्यका ।
सद्रसा. दोषरिक्ता सुशब्दश्रिय:
सत्कवेः काव्यवाचो यथा सद्गुणाः ॥[5]

अभयकुमारचरित के रचयिता के अनुसार सरस और सुललित पदावली से युक्त वाणी ही काव्य है। अपने अभिमत को उन्होने इस प्रकार व्यक्त किया है :–

वरव्यंजनसंयुक्तं नानारसमनोहरम्
काव्यवत् सुपरीपक्वं भोज्यमस्मि च भोजित' ॥[6]

---

(१) हेमचन्द्र, काव्यानुशासन (२) धर्मशर्माभ्युदय, हरिचन्द्र, सर्ग १, श्लोक १५
(३) वही—सर्ग १, श्लोक ६ (४) वही, सर्ग ३३ श्लोक १६
(५) सनत्कुमारचरित्र, जिनपालोपाध्याय, सर्ग १५, श्लोक ४६
(६) अभयकुमारचरित, चन्द्रतिलक उपाध्याय, सर्ग ७, श्लोक ३८७

अभयकुमारचरितकार ने रस को काव्य की आत्मा माना है। काव्य मे रस की अनिवार्य सत्ता को उन्होने अनेक स्थलो पर स्वीकार किया है। जैसे :—

महाकवेः काव्यकृतौ यथा रसो
जल्पे यथा तार्किकचक्रचक्रिणः।[1]

तथा—क्वचिद्विशश्राम मनोऽस्य भूरुहे
काव्ये प्रसन्ने सरसे कवेर्यथा।[2]

अभयकुमारचरित का रचयिता काव्य मे रस को सर्वाधिक महत्त्व देता है, किन्तु एक स्थल पर वह ध्वनि-सम्प्रदाय से भी प्रभावित दीखता है। जैसे —

अन्तरेण ध्वनिकाव्यं स्वदते नो विपश्चिताम्।[3]

श्रेणिकचरित के रचयिता जिनप्रभसूरि ने भी कई स्थलों पर काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। उन्होने रसाढ्य, रम्यपदालकारधारिणी, मनोरमपदन्यासयुक्त, सदगरुचिर, हृद्य और अमल (दोषरहित) रचना को काव्य कहा है। उनके काव्य-सम्बन्धी स्फुट विचार इन पद्यों मे व्यक्त हुए है —

पक्वदाडिमबीजानि राजादनफलानि च।
रसाढ्याः मृदुमृद्वीकाः काव्यमाला इवोज्ज्वलाः॥
व्यंजनानि रसाढ्यानि विनिर्माय प्रभूतशः।
केऽपि संचस्करुः क्वाऽपि काव्यानि कवयो यथा॥[4]
अभूत्तस्य प्रिया रम्यपदालंकारधारिणी।
धारिणी नाम हृद्येव सुकवेः काव्यपद्धति॥
मनोरमपदन्यासा सदंगरुचिरा सदा।
नन्द्याद् गीर्विशदश्लोका जिनमूर्तिरिवामला॥[5]

नयचन्द्रसूरि ने भी अपने हम्मीर-महाकाव्य मे अनेक स्थलों पर काव्य का स्वरूप व्यक्त करने की चेष्टा की है। वे रस-सम्प्रदायी है। उनके अनुसार रस का उद्रेक करने वाली रचना ही काव्य है :—

कविता वनिता गीति-प्रायो नादो रसप्रदा
उद्गिरन्ति रसोद्रेकं गृह्यमाणाः पुर पुर।[6]

नयचन्द्रसूरि का कथन है कि यदि किसी रचना में रसमग्न करने की क्षमता है तो फिर उसमे यदि कुछ अपशब्द (व्याकरण की दृष्टि से असाधु प्रयोग) भी हों तो उनसे

(१) व (२) वही, सर्ग ४, श्लोक ७२, १७२
(३) वही-सर्ग ७, श्लोक ८६
(४) श्रेणिकचरित्र, जिनप्रभसूरि, सर्ग ४, श्लोक २२४, ११०
(५) वही-सर्ग १, श्लोक ३१,३
(६) हम्मीरमहाकाव्य, नयचन्द्रसूरि, सर्ग १४, श्लोक ३७

उसके काव्यत्व की हानि नही होती, किन्तु रसहीन रचना को काव्य नही कहा जा सकता, वह तो शब्दाडम्बर-मात्र है :—

> प्रायोऽपशब्देन न काव्यहानि समर्थताऽर्थे रससंक्रमश्चेत् ।
> वादेऽप्यसौ नो विदधीत किंचिद् यदि प्रतिज्ञा विरमेन्न विज्ञ ॥
> वदन्ति काव्यं रसमेव यस्मिन् निपीयमाने मुदमेति चेत ।
> किं कर्णतर्णर्णसुपर्णपर्णाभ्यर्णाविवर्णार्णवडम्बरेण ॥[1]

नयचन्द्रसूरि ने अन्यत्र भी रसात्मकता को ही काव्य की आत्मा माना है।[2]

इन सभी काव्य-लक्षणो पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न-भिन्न विद्वानो ने काव्य का स्वरूप-विवेचन करते समय काव्य के सभी तत्त्वो पर ध्यान नही दिया है। किसी ने भाव-पक्ष तो किसी ने कला-पक्ष को अपनी व्याख्या मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यदि एक ने अलकारो को काव्य का आवश्यक तत्त्व बताया है तो दूसरे ने रस को उसका प्राण कहा है। इस प्रकार यद्यपि अभी तक काव्य की कोई निर्विवाद परिभाषा नहीं बन सकी है और सभवत बन भी नही सकेगी, फिर भी इतना कह देना यहाँ आवश्यक है कि आलोच्य युग के महाकाव्यकारो ने, जिनके काव्य-सम्बन्धी विचार ऊपर व्यक्त किये जा चुके है, रसवत्ता को काव्य का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया है। अतः इस युग के जैन महाकाव्यकारो की काव्य-सम्बन्धी मान्यताओ को ध्यान मे रखते हुए विश्वनाथ की काव्य-परिभाषा 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

काव्य के रूप

भारतीय विद्वानो ने मुख्यतया काव्य के दो भेद माने हैं—(१) प्रेक्ष्य काव्य और श्रव्यकाव्य[3]। जिन काव्यो की रचना रगमच पर अभिनय करने के लिए की जाए उन्हे प्रेक्ष्य काव्य कहा जाता है,[4] क्योकि ऐसे काव्यो से पूर्ण आनन्द की प्राप्ति तभी होती है जब उनका अभिनय आँखो के द्वारा देखा जाए। जो काव्य कानो के द्वारा सुने जाएँ उन्हे श्रव्य काव्य कहा जाता है। प्राचीनकाल मे काव्य अधिकतर सुने जाते थे, गायन द्वारा ही उनका प्रचार होता था। पुस्तक के रूप मे पढने की परिपाटी कम थी। अत श्रवणेन्द्रिय द्वारा हृदय को आनन्दित

---

(१) वही-सर्ग १४, श्लोक ३६,३५

(२) काव्य काव्यप्रकाशादिषु रसबहल कीर्तयन्त्युत्तमं यत् ।
तन्नो भावैर्विभावप्रभृतिभिरनभिव्यक्तमुक्तं. कदाचित् ॥
तेनेति व्यक्तमुक्त सरसजनमन प्रीतये काव्यमेतत् ।
कश्चिच्चेन्नीरसोऽस्मिन् भजति वत मुद नो तदा कोऽस्य दोषः ।
—हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १४, श्लोक ३४

(३) काव्य प्रेक्ष्य श्रव्य च । हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र १

(४) प्रेक्ष्यमभिनेयम ।—वही, अध्याय ८, सूत्र १ की वृत्ति

करने वाले काव्य श्रव्य-काव्य कहे जाते है।[1] यद्यपि श्रव्यकाव्यों को आजकल अधिकतर पढा ही जाता है, फिर भी रूढि के अनुसार उन्हे पाठ्य-काव्य न कह कर श्रव्य-काव्य ही कहा जाता है। प्रेक्ष्य-काव्यों का भी पठन और श्रवण किया जा सकता है, किन्तु उनसे वास्तविक आनन्द उनका अभिनय किये जाने पर ही मिलता है। हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य-काव्य के दो भेद किये है—(१) पाठ्य और (२) गेय।[2] पाठ्य के अन्तर्गत उन्होने नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, उत्सृष्टिकाङ्क, प्रहसन, भाण, वीथी तथा सट्टक की गणना की है।[3] उन्होने गेय के अन्तर्गत डोम्बिका, प्रस्थान, शिङ्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और राग-काव्य का समावेश किया है।[4] प्रेक्ष्य-काव्य के इन भेद-उपभेदो पर विस्तार से प्रकाश डालना यहाँ अभीष्ट नही है।

श्रव्य-काव्य के तीन भेद किये गये है[5]—(१) गद्य (२) पद्य और (३) मिश्र। गद्य का अर्थ यद्यपि बोलचाल की स्वाभाविक भाषा है, (गद्य की निष्पत्ति गद् धातु से है) तथापि गद्य-काव्य मे काव्य के आवश्यक तत्त्व रस, गुण, अलकार आदि का समावेश होना आवश्यक है। अत. काव्य के आवश्यक गुणो से अलकृत छन्दोयोजना-रहित काव्य गद्य-काव्य है।[6] विश्वनाथ ने भी 'वृत्तबन्धोज्झित गद्यम्' कह कर इसी कथन की पुष्टि की है। गद्य-काव्य को कथा और आख्यायिका इन दो भागो मे विभक्त किया जाता है। हेमचन्द्र के अनुसार आख्यायिका वह गद्यमयी रचना है जिसमे कोई धीरोद्धत नायक अपने जीवन-वृत्तान्त, जिसमे रोमाचक तत्त्वो जैसे कन्यापहरण, संग्राम, वधू-समागम, नायकाभ्युदय आदि का समावेश रहता है, को अपने ही मुख से अपने मित्र आदि को बताये। सस्कृत के हर्षचरित्र जैसे ग्रन्थ आख्यायिका के अन्तर्गत ही आते है।[7] जहाँ कवि स्वय नायक के

---

(१) श्रव्यमनभिनेयम्। हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र १ की वृत्ति।

(२) प्रेक्ष्यं पाठ्य गेयं च।—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र २

(३) पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिकासमवकारेहामृग डिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनभाण-वीथीसट्टकादि।—वही, अध्याय ८, सूत्र ३

(४) गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिंगकभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासगोष्ठी-श्रीगदितरागकाव्यादि।—वही, अध्याय ८, सूत्र ४।

(५) तच्च गद्य-पद्य-मिश्रभेदैस्त्रिधा—वाग्भट, काव्यानुशासन

(६) गद्यमपाद पदसन्तानच्छन्दोरहितो वाक्यसन्दर्भ।—वाग्भट, काव्यानुशासन

(७) नायकाख्यातवृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादि सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका। धीरप्रशान्तस्य गाम्भीर्यगुणोत्कर्षात् स्वय स्वगुणोपवर्णनं न संभवतीत्यर्थाद्यस्यां धीरोद्धतादिना नायकेन स्वकीयं वृत्त सदाचाररूपं चेष्टितं कन्यापहारसग्राम-समागमाभ्युदयभूषित मित्रादिष्वाख्यायते, अनागतार्थशंसीनि च वक्त्रापरवक्त्रार्थादीनि यत्र बध्यन्ते, यत्र चावान्तरप्रकरणसमाप्तावुच्छ्वासा बध्यन्ते सा संस्कृतभाषा-निबद्धा अपाद. पदसन्तानो गद्य तेन युक्ता। युक्तग्रहणादन्तरादन्तरा प्रविरलपद्य-निबन्धेऽप्यदुष्टाख्यायिका। यथा हर्षचरितादि।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ७ तथा उसकी वृत्ति

जीवन-वृत्त का वर्णन गद्य मे करे उसे कथा कहा जाता है।[1] संस्कृत के दशकुमारचरित, पंचतंत्र तथा कादम्बरी कथाकाव्य ही माने जाते हैं।[2] कथा मे भी रोमांचक तत्त्वो का समावेश बहुलता से रहता है।

छन्दोबद्ध रचना को पद्य कहते है।[3] छन्दोबद्ध होने के कारण पद्य मे संगीतमयता और श्रवणसुखदता विद्यमान रहती है। पद्यकाव्य के दो भेद किये जाते है—(१) प्रबन्ध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य।[4] प्रबन्ध-काव्य मे एक कथा होती है, उसके सभी पद्य एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। प्रबन्ध-काव्य मे वर्णन, प्राक्कथन, पारस्परिक सम्बन्ध और सामूहिक प्रभाव का प्राधान्य रहता है। मुक्तक काव्य के पद्य स्वत पूर्ण होते हैं। उसमे प्रत्येक पद्य की स्वतन्त्र सत्ता रहती है, दूसरे पद्य की वे अपेक्षा नही रखते।

प्रबन्धकाव्य के दो भाग किये जाते है–(१) महाकाव्य और कथाकाव्य। महाकाव्य मे जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति होती है। वह सर्गबद्ध होता है और उसका आकार भी विशाल होता है। महाकाव्य के स्वरूप का विस्तृत विवेचन आगे किया जाएगा। कथा-काव्य में भी एक कथा रहती है। उसमे उन सब रोमांचक तत्त्वो का समावेश रहता है जो आख्या-यिका और गद्यकथा मे होते है। हेमचन्द्र ने कथाकाव्य के आख्यान, मन्थल्लिका, परिकथा उपकथा, सकलकथा, खण्डकथा आदि अनेक भेदो की चर्चा की है[5]। इनमे दो भेद प्रमुख हैं-(१) सकलकथा और (२) खण्डकथा[6]। सकल-कथा-काव्य मे महाकाव्य की तरह सम्पूर्ण जीवन का चित्र होता है और खण्डकथा (जिसे विश्वनाथ ने खण्डकाव्य के नाम से अभि-हित किया है) मे जीवन के एक पक्ष का चित्रण होता है, अथवा एक ही घटना को महत्ता दी जाती है। सकलकथाकाव्य बहुत–कुछ महाकाव्य के निकट है। उसका कथानक विस्तृत होता है, उसमे अवान्तर--कथाओ की योजना भी होती है, फिरभी महाकाव्यीय बन्धनो (सर्गबद्धता, निश्चित वर्ण्य-विषयो का समावेश, छन्द–प्रयोग-सम्बन्धी नियम आदि) से मुक्त रहने के कारण सकलकथाकाव्य महाकाव्य से भिन्न विधा है। जैनो के अधिकांश चरितकाव्य इसी विधा के अन्तर्गत आते हैं। जैसे प्रद्युम्नसूरिकृत 'समरादित्य-चरित', पद्मप्रभसूरिकृत 'मुनिसुव्रतचरित', जिनेश्वरसूरिकृत 'निर्वाणलीलावती' आदि। खण्डकथा (खण्डकाव्य) का कथानक महाकाव्य और सकलकथाकाव्य की तरह व्यापक

---

(१) धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा। आख्यायिकावन्न स्वचरितव्या-वर्णकोऽपितु धीरशान्तो नायक, अस्य तु वृत्तमन्येन कविना वा यत्र वर्ण्यते, या च काचिद् गद्यमयी यथा कादम्बरी, काचित् पद्यमयी यथा लीलावती, या च सर्वभाषा काचित् संस्कृतेन, काचित् प्राकृतेन काचिन्मागध्या, काचिच्छूरसेन्या, काचित् पिशाच्या काचिदपभ्रंशेन बध्यते सा कथा।–वही, अध्याय ८, सूत्र ८ और उसकी वृत्ति।

(२) हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ८ की वृत्ति। (३) तत्र पद्य छन्दोबन्ध। —वाग्भट, काव्यानुशासन (४) वही, पृ० १७ (५) हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ८ की वृत्ति (६) वही—अध्याय ८, सूत्र ८ की वृत्ति।

नही होता । अवान्तर-कथाओ की योजना भी प्राय उसमे नही होती ।[1] कालिदास-कृत मेघदूत तथा उस जैसी कृतियाँ खण्डकथा-काव्य की परिधि मे आती है ।

स्फुट कविताएँ मुक्तक के अन्तर्गत आती है। मुक्तक के दो भेद किये जाते हैं (१) पाठ्य और (२) गेय । जिन कविताओ को पढकर हम आनन्द ले सकते है उन्हे पाठ्य मुक्तक और जिन मुक्तको की रचना मे पाठ्य की अपेक्षा सगीतमयता, भावात्मकता और रागात्मकता अधिक होती है उन्हे गेय मुक्तक कहा जाता है । भर्तृहरि का 'नीतिशतक' पाठ्य-मुक्तक और जयदेव का 'गीतगोविन्द' गेयमुक्तक के अन्तर्गत आता है। पद्य-गणना के हिसाब से भी मुक्तक के भेद किये जाते है । एक पद्यवाली स्फुट कविता को मुक्तक, दो पद्यवाली को युग्म तथा सन्दानितक, तीन और चार पद्य वाली को क्रमश विशेषक और कलापक तथा पाँच से बारह (किसी-किसी के मत से चौदह) पद्य तक की स्फुट कविता को कुलक कहते हैं[२-३] । इनके अतिरिक्त शतक, सघात, सहिता आदि मुक्तक के अन्य भेद भी हैं[४] जिनका स्वरूप-विवेचन यहाँ अभीष्ट नही है ।

गद्यपद्यमयी रचना को मिश्र-काव्य कहा जाता है[५] । कुछ आचार्य इसे चम्पू नाम से अभिहित करते है[६] । चम्पू—काव्य मे महाकाव्य की तरह कथा की योजना होती है और उसमे प्रबन्धात्मकता के दर्शन भी होते है । जैन आचार्य वाग्भट ने तो नाटक को भी मिश्र काव्य के अन्तर्गत ही माना है[७] । नीचे के चक्र से साहित्य की इन सभी विधाओ का विभाजन स्पष्ट हो जाएगा :—

---

(१) हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ८ की वृत्ति ।

(२) तत्रैकेन छन्दसा मुक्तकम् । द्वाभ्यां युग्मं सन्दानितकं च । त्रिभिर्विशेषकम् । चतुर्भिः कलापकम् । द्वादशान्तै. कुलकम् ।

—वाग्भट, काव्यानुशासन

(३) पंचादिभिश्चतुर्दशान्तैः कुलकम् ।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ९

४) वही, अध्याय ८, सूत्र २३ तथा उसकी वृत्ति ।

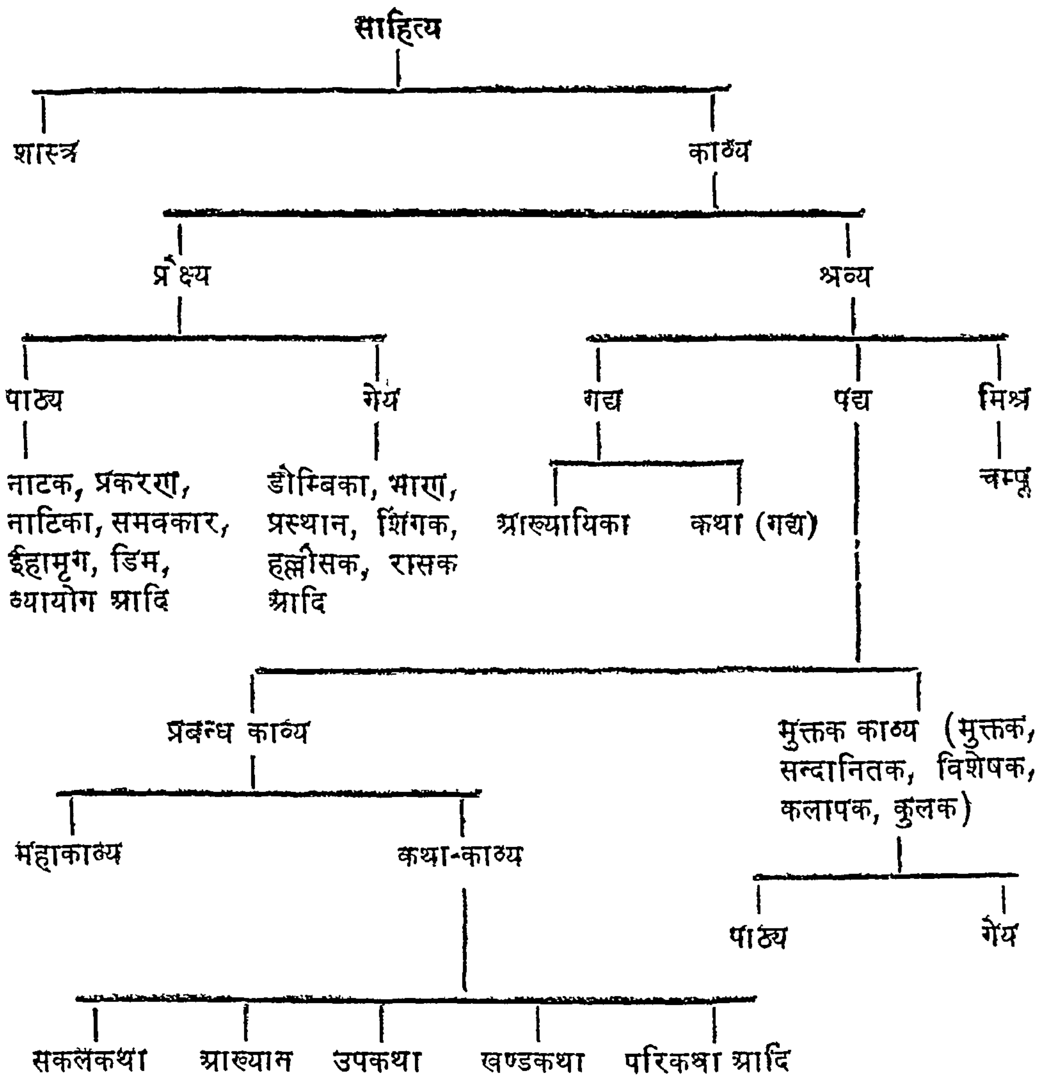
(५) गद्यपद्यमयं मिश्रम् ।—वाग्भट, काव्यानुशासन

(६) गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पू. ।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, सूत्र ९

(७) इह च सतसन्धित्वं शब्दार्थवैचित्र्ययोश्च महाकाव्यवदाख्यायिकाकथाचम्पूष्वपि द्रष्टव्यः।

—वही, अध्याय ८, सूत्र १३ की वृत्ति ।



ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय परम्परा के अनुसार पद्य-काव्य के प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक ये दो भेद किये गये है। महाकाव्य प्रबन्धकाव्य का मुख्य रूप है। काव्य के विविध रूपो मे महाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है। 'महत्' विशेषण के योग से काव्य (महाकाव्य) की व्यापकता की परिधि अत्यन्त विस्तृत हो जाती है जो महाकाव्य की महत्ता का द्योतक है। महाकाव्य अपने युग का ही प्रतिनिधि नही होता, अपितु वह अतीत का गायक, वर्तमान का चित्रकार और भविष्य का द्रष्टा होता है। वह व्यक्ति-विशेष की कथा नही, अपितु जातीय जीवन का चित्र होता है, फलस्वरूप उसमे जातीय भावनाओ और आदर्शों की अभिव्यक्ति होती है।

काव्य के विविध रूपो मे महाकाव्य की महत्ता

सस्कृत के प्राचीन साहित्याचार्यो ने अपने लक्षण-ग्रन्थों मे महाकाव्य का स्वरूप स्थिर करने की चेष्टा की है, फिर भी महाकाव्य की सर्वमान्य परिभाषा अब तक नही बन सकी है। इसका कारण यह है कि भारत के प्राचीन साहित्याचार्यो एव पण्डितो ने महाकाव्य

के लक्षण निर्धारित करते समय अपने सामने कुछ आदर्श महाकाव्यो को रखा था। वे महाकाव्य जिस युग मे निर्मित हुए थे उस युग के लिए तो अवश्य वे परिभाषाएँ उपयुक्त थी, पर बाद के महाकाव्यो पर वे पिछली परिभाषाएँ और मानदड पूर्णतया लागू नही हो पाते है।[१] यहाँ हम सस्कृत के तथा पश्चिम के आचार्यो द्वारा किये गये महाकाव्य के स्वरूप-विवेचन पर दृष्टिपात करके महाकाव्य के सामान्य तत्त्वो और विशेषताओ का विश्लेषण करने का प्रयत्न करेगे।

महाकाव्य-विषयक भारतीय मान्यताएँ :—

महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन सर्वप्रथम भामह ने अपने 'काव्यालकार' मे किया है। उन्होने अपनी महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यता इन शब्दों में प्रस्तुत की है :—

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च तत् ।
भामह **अग्राम्यशब्दमर्थं च सालंकारं सदाश्रयम् ॥**
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।
पंचभि. सन्धिभियुंक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ।
युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः ।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया ॥
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते ।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ ॥[२]

इन पक्तियों के आधार पर भामह द्वारा मान्य महाकाव्य के तत्त्वो को इस प्रकार रखा जा सकता है :—

महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता आवश्यक है। उसमें महान् चरित्रो का वर्णन किया जाता है और वह स्वय भी 'महद्' होता है। उसमे अलकृति-प्रधान शिष्ट (साहित्यिक) भाषा का प्रयोग होता है। उसमे राज-दरबार, दूतप्रेषण, सैन्य-प्रयाण, युद्ध आदि वर्ण्य-विषयो का समावेश करके जीवन के विविध रूपो एव अवस्थाओ का चित्रण किया जाता है। महाकाव्य का नायक कुलीन और वीरता, विद्वता आदि गुणो से युक्त होता है। महाकाव्य मे उसके अभ्युदय का वर्णन होता है और किसी अन्य व्यक्ति का उत्कर्ष दिखाने की इच्छा से उसका वध नही दिखाया जाता। पच-सन्धियो की योजना से उसका कथानक अतिव्याख्यारहित अर्थात् सगठित और सुश्रृङ्खलित होता है जिससे उसमे महाकाव्योपयुक्त गरिमा आ जाती है। महाकाव्य मे समस्त रसो का परिपाक होता है और लोक-स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो वर्गों को उसमे स्थान दिया जाता है, किन्तु प्रधानता उसमे अर्थ (लौकिक अभ्युदय) को ही प्राप्त होती है।

---

(१) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास।—डा० शंभूनाथसिंह, पृष्ठ ४१–४२
(२) भामह, काव्यालंकार, परिच्छेद १, श्लोक १९-२३

भामह के उपरान्त आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श मे महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। महाकाव्य के स्वरूप-विवेचन मे दण्डी ने यद्यपि भामह के काव्यालकार का ही आधार लिया है, फिर भी उसमे मौलिकता का समावेश है। दण्डी ने अपनी विवेचना मे महाकाव्य की सर्गबद्धता, सदाश्रयता, चतुर्वर्गफलायत्तता, लोकरजकता एव उसमे मन्त्रदूतप्रयाणनायकाभ्युदयवर्णन एव रस-भाव के निरन्तर छलकते हुए प्रवाह की अनिवार्यता का वर्णन भामह के अनुसार किया है, किन्तु उन्होने भामह के महान् चरित्र (महताम्) के स्थान पर इतिहासकथोद्भूत तथा चतुरोदात्त नायक कह कर नायक के निर्वाचन-क्षेत्र तथा 'महताम्' की व्यापकता को सीमित कर दिया है। उनकी परिभाषा की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे महाकाव्य की रूढियो एव वर्ण्य-विषयो की विस्तृत नामावली सर्वप्रथम निर्धारित की गई है। दण्डी ने महाकाव्य के आरम्भ मे आशीर्वचन, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देशपरक मगलाचरण का समावेश करना और मध्य मे नगर, अर्णव, शैल, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यानक्रीडा, सलिलक्रीडा, मधुपानोत्सव, रतोत्सव, विवाह, वियोग, कुमारोदय, राजदरबार आदि का वर्णन करना आवश्यक बताया है। उन्होने आकार मे विशाल होने के साथ-साथ सर्गो की अनतिविस्तीर्णता एवं अलकृति को भी कल्पान्तरस्थायी महाकाव्य का सामान्य लक्षण बताया है। हेमचन्द्र और विश्वनाथ जैसे परवर्ती आचार्यो एव भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसे महाकवियो को दण्डी की इस परिभाषा ने बहुत अधिक प्रभावित किया है।

दण्डी

दण्डी के बाद रुद्रट नामक प्रसिद्ध आचार्य हुए है जिन्होने काव्यालकार मे महाकाव्य

---

(१) सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदयवर्णनै।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवै॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनै।
मन्त्रदूतप्रयाणादिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णै श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभि॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥
—दण्डी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद, श्लोक १४–१९

की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की।[1] रुद्रट ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी है वह संस्कृत के इतर आचार्यो से बहुत-कुछ भिन्न है। आलोचको का अनुमान है कि वह

रुद्रट

महाभारत-रामायण और प्राकृत-अपभ्रंश एव संस्कृत के जैन महाकाव्यों को भी ध्यान मे रख कर बनायी गयी है। डा० शम्भूनाथसिह का कथन है कि रुद्रट की महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यता यूरोपीय महाकाव्यो के लक्षणों को भी व्यक्त करती है। कारण यह है कि उन्होंने विकसनशील महाकाव्यो-महाभारत-रामायण-के अतिरिक्त यूरोपीय रोमाचक महाकाव्यो के ढग के भारतीय प्राकृत–अपभ्रश के महाकाव्यो को भी अपनी दृष्टि मे अवश्य रखा था अथवा सस्कृत मे भी उस समय पद्यबद्ध कथा–आख्यायिका के ढग के महाकाव्य होते थे जिनकी शैली मे बाद मे 'बृहत्कथामजरी' और 'कथासरित्सागर' का

---

(१) सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादय काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥
तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कवि. सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्ति नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात् ॥
पंजरमितिहासादिप्रसिद्धमखिलं तदेकदेश वा।
परिपूरयेत् स्ववाचा यत्र कविस्ते त्वनुत्पाद्याः ॥
तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।
सर्वे रसा क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि ॥
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ता ॥
तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च ॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायक न्यस्येत् ॥
विधिवत् परिपालयतः सकलं राज्यं च राज्यवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत् समयम् ॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादिं साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम् ॥
स्वचरात्तद्दूताद्वा कुतोऽपि वा शृण्वतोऽरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम् ॥
संमन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
तं दापयेत् प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेत् मुखरम् ॥
अथ नायकप्रयाणे नागरिकक्षोभजनपदाद्रिनदीः।
अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि ॥

निर्माण हुआ ।[1] रुद्रट की परिभाषा मे महाकाव्य के जिन लक्षणो का निर्देश किया गया है उन्हे इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) महाकाव्य मे उत्पाद्य या अनुत्पाद्य कोई लम्बी कथा पद्यबद्ध की जाती है। वह कथा जिसका ढाँचा कवि अपनी कल्पना से निर्मित करता है, उत्पाद्य कही जाती है। अनुत्पाद्य कथा वह है जिसका अस्थिपजर इतिहास होता है, किन्तु उसे मासल बनाने के लिए कवि यत्र-तत्र अपनी कल्पना का भी प्रयोग करता है।

(२) महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्गफलप्राप्ति होता है और उसमे सभी रसो का समावेश होता है। उसमे रसानुभूति और लक्ष्य की सिद्धि अभिन्न रूप से होती है।

(३) महाकाव्य के आरम्भ मे सन्नगरी-वर्णन और इसके बाद नायक के वश की प्रशसा होती है।

(४) महाकाव्य का नायक द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न, शक्तिशाली, नीतिज्ञ, विजयी और प्रजापालक होता है।

(५) महाकाव्य मे प्रतिनायक और उसके कुल का वर्णन भी होता है, किन्तु उसमे नायक-प्रतिनायक के सघर्ष मे नायक का अभ्युदय ही दिखाया जाता है, प्रतिनायक का नही।

(६) महाकाव्य मे विविध वर्ण्य-विषयो का समावेश रहता है, किन्तु उनका वर्णन प्रसगानुसार इस प्रकार होता है जिससे मूलकथा के प्रवाह मे कोई बाधा न पडे। उसमे किसी प्रधान घटना, युद्ध या साहसिक कार्य के आश्रय से ऋतु, शत्रु, दूत-प्रेषण, रण-प्रयाण, नागरिक-क्षोभ, नगर, देश, पर्वत, नदी, वन, उपवन, मरुभूमि, समुद्र,

---

स्कन्धावारनिवेशं क्रीडा यूनां यथायथ तेषु ।
रव्यस्तमयं संध्या संतमसमथोदयं शशिनः ।।
रजनीं च यत्र यूना समाजसंगीतपानश्रृङ्गारान् ।
इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथा च भूयो निबध्नीयात् ।।
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम् ।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वाऽपि ।।
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्य' ।
स्ववधं विशंकमानान्सन्देशान् दापयेत्सुभटान् ।।
सन्नह्य कृतव्यूह सविस्मय युद्धमानयोरुभयो ।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदय नायकस्यान्ते ।।
सर्गाभिधानानि चाऽस्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत ।
सन्धीनपि सश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यसम्बन्धात् ।।
—रुद्रट, काव्यालंकार, अध्याय १६, श्लोक २–१९

(१) शंभूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० ४१–४२

द्वीप, भुवन, स्कन्धावार, सेनानिवेश, युवकों की क्रीडा, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रात्रि, रात्रि मे समाज-संगीत, पानगोष्ठी, शृंगार आदि प्रसगो का वर्णन होता है।

(७) महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध और सन्धियो की योजना से सुगठित होती है। उसमे नव प्रकरणो (अवान्तर-कथाओ) की योजना भी प्रसगानुसार की जाती है।

(८) महाकाव्य मे अलौकिक और अतिप्राकृत कार्यो का वर्णन होता है, किन्तु ये अलौकिक और असभव कार्य मनुष्य द्वारा सम्पन्न नही दिखाने चाहिए। यदि दिखाने ही पड़ें तो देवता आदि दिव्य और अलौकिक शक्तियो की सहायता से उन्हें सम्पन्न हुआ दिखाना चाहिए। जहाँ पर्वत या समुद्र को लाँघना हो या पृथ्वी की परिक्रमा करनी हो वहाँ देवता आदि दिव्य शक्तियो की महायता लेना आवश्यक है।

रुद्रट की परिभाषा मे यह ध्यान देने योग्य बात है कि उन्होंने [illegible] को महाकाव्य का प्रधान लक्षण नही बताया। उन्होंने महाकाव्य की [illegible] बिलकुल महत्त्व नही दिया जिन्हे भामह और दण्डी ने आवश्यक [illegible] मे मगलाचरण, वस्तुनिर्देश, प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द [illegible] परिवर्तन का नियम आदि। पाश्चात्य आलोचक [illegible] आवश्यक मानते है, वे है—(१) महदुद्देश्य (२) [illegible] जीवन का रसात्मक चित्रण। रुद्रट की [illegible] रुद्रट पहले व्यक्ति है जिन्होने महाकाव्य के [illegible] सत्ता को स्वीकार किया है। जैन—[illegible] का वर्णन भी रुद्रट की विशेषता है। [illegible] वर्णन नही किया है।

रुद्रट के बाद के एक [illegible] भरण' मे महाकाव्य की चर्चा [illegible]

लक्षणो को ही [illegible]

भोजदेव नही दी है। [illegible]

होता है। [illegible]

प्राप्ति होता है। [illegible]

---

(१) शंभूनाथसिंह, हिन्दी [illegible]

(२) [illegible]

[illegible]

योजना होती हैं। महाकाव्य न तो अधिक विस्तृत होता है और न सक्षिप्त। उसमे कर्णसुखद छदो का प्रयोग होता है और सर्गान्त मे वृत्त बदल जाता है। उसमे पुर, उपवन, राष्ट्र तथा देश की सम्पत्ति, समुद्र, आश्रम आदि के चित्राङ्कन से रस मे वृद्धि होती है। उसमे ऋतु, रात-दिन, सूर्य और चन्द्रमा के उदयास्त के वर्णनो के द्वारा काल का चित्रण रस-पोषक होता है। राजकुमारी, राजकुमार, नारी, सेना, सेना के अ गो का चातुर्यपूर्ण सचालन तथा विविध पात्रो का वर्णन महाकाव्य मे रसस्रोत को प्रवाहित करता है। उद्यानक्रीडा, जलक्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, श्रृ गार–चेष्टाएँ, मन्त्र, दूतगमन, युद्ध तथा नायक का अभ्युदय आदि वर्ण्य-विषय उसमे होने चाहिए। यदि कवि महाकाव्य मे पर्वत, ऋतु, रात्रि आदि का वर्णन कर देता हे तो फिर सन्नगरी आदि का वर्णन करना न करना उसकी इच्छा पर है। महाकाव्य मे नायक के द्वारा प्रतिनायक का निराकरण होता है। प्रतिनायक के वश, पराक्रम, विद्या आदि का वर्णन भी महाकाव्य मे होता है, क्योकि ऐसे प्रतिनायक की विजय से नायक का उत्कर्ष वढ जाता हैं।

बारहवी शताब्दी मे वाग्भट ने अपने काव्यानुशासन मे महाकाव्य की परिभाषा गद्य

अविस्तृतमसक्षिप्त श्रव्यवृत्त सुगन्धि च।
भिन्नसर्गान्तवृत्तं च काव्य लोकोऽभिनन्दति ॥
पुरोपवनराष्ट्रादिसमुद्राश्रमवर्णनैः।
देशसम्पत्प्रबन्धस्य रसोत्कर्षाय कल्पते ॥
ऋतुरात्रिन्दिवार्केन्दूदयास्तमयकीर्तनै ।
काल काव्येषु सम्पन्नो रसपुष्टि नियच्छति ॥
राजकन्याकुमारस्त्रीसेनासेनाङ्गभङ्गिभि ।
पात्राणां वर्णन काव्ये रसस्रोतोऽधितिष्ठति ॥
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवा ।
विप्रलम्भा विवाहाश्च चेष्टा काव्ये रसावहा. ॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयादिभि ।
पुष्टि पुरुषकारस्य रस काव्येषु वर्षति ॥
नावर्णनं नगर्यादेर्दोषाय विदुषां मतम्।
यदि शैलर्तुरात्र्यादेर्वर्णनेनैव तुष्यति ॥
गुणत प्रागुपन्यस्य नायक तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः ॥
वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथन च धिनोति नः ॥

—भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण, पचम अध्याय, श्लोक १२६–१३७

सैन्यप्रयाण, युद्ध, नायक का अभ्युदय, विवाह, वियोग, आश्रम, नदी आदि का वर्णन होता है।

वाग्भट की परिभाषा मे प्राय· पूर्ववर्ती आलकारिको के कथनो की पुनरावृत्ति की गयी है। उन्होने अपनी परिभाषा मे जिन नवीन लक्षणो का समावेश किया है वे हैं—(१) महाकाव्य के एक सर्ग मे दुष्कर चित्रबन्ध-काव्य की योजना (२) प्रत्येक सर्ग के अन्त मे कवि की विशिष्ट छाप तथा (३) सस्कृत के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्र श और ग्राम्य-भाषाओ मे भी महाकाव्य की रचना होना।

वाग्भट के समकालीन एक दूसरे महान् आचार्य हेमचन्द्र सूरि हुए। उन्होंने भी वाग्भट की तरह महाकाव्य के सम्बन्ध मे विचार करते हुए प्राकृत, अपभ्र श तथा ग्राम्य भाषा के महाकाव्यो को भी ध्यान मे रखा है। उन्होने अपने काव्यानुशासन मे सूत्र-रूप मे महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की है :—

हेमचन्द्र

पद्य प्राय सस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नाऽन्त्यवृत्तसर्गाश्वाससन्ध्यवस्कन्धकबन्धम् सत्सन्धिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।

इस सूत्र की वृत्ति उन्होने इस प्रकार दी है—

छन्दोविशेषरचित प्राय सस्कृतादिभाषानिबद्धं भिन्नान्त्यवृत्तैर्यथासख्यं सर्गादिभिर्निर्मितम्, सुश्लिष्टमुखप्रतिमुखगर्भविमर्शनिर्वहणसन्धिसुन्दरम्, शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।

हेमचन्द्र की परिभाषा मे सस्कृत महाकाव्य के सर्गबद्ध होने, सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन एव कथानक मे पचसन्धियो की योजना होने से सम्बन्धित नियम पूर्ववर्ती आलङ्कारिको के अनुकरण पर हैं। उनकी परिभाषा मे नवीनता यही है कि उन्होने महाकाव्य मे शब्द-वैचित्र्य, अर्थ-वैचित्र्य एव उभय-वैचित्र्य, इन वैचित्र्यो का होना अनिवार्य माना है। किन्तु वृत्ति मे जब पाठक की दृष्टि शब्द-वैचित्र्य आदि की व्याख्या पर जाती है तो उसे कोई विशेष नवीनता दृष्टिगत नही होती। शब्दवैचित्र्य मे[1] हेमचन्द्रसूरि ने महाकाव्य का आकार विशाल होने, विभिन्न सर्गो की कथा के दृढ सूत्र मे सबद्ध होने, आरम्भ मे आशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशात्मक मगलाचरण के होने, वक्तव्य अर्थ के प्रतिज्ञान, महाकाव्य-निर्माण के प्रयोजन, पूर्वकवि-प्रशसा, सज्जन-दुर्जन-स्वरूप-विधान, किसी एक सर्ग मे दुष्कर चित्रकाव्य की योजना तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक को अपने अभिप्राय, नाम, इष्टदेव के नाम अथवा मगलबोधक किसी अन्य शब्द से चिह्नित करने का समावेश किया

---

(१) **शब्दवैचित्र्यं यथा—असंक्षिप्तग्रन्थत्वं, अविषमबन्धत्वं, अनतिविस्तीर्णपरस्परसम्बद्धसर्गादित्वं, आशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशोपक्रमत्वं, वक्तव्यार्थप्रतिज्ञानतत्प्रयोजनोपन्यासकविप्रशंसादुर्जनसुजनस्वरूपवदादिवाक्यत्वं, दुष्करचित्रादिसर्गत्वं, स्वाभिप्रायस्वनामेष्टनाममगलाङ्कितसमाप्तित्वमिति।**

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय।

है। अर्थ-वैचित्र्य मे[1] उन्होने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्गफलप्राप्ति होना, नायक का चतुरोदात्त होना, उसमे रस-भाव का अविरल प्रवाह होना, धर्म की विजय और अधर्म की पराजय दिखाना, कथानक का सुसगठित होना तथा नगर, आश्रम, शैल, सैन्यावास, अर्णव, ऋतु, रात्रि, दिन, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय. चन्द्रास्त, नायक, नायिका, कुमार, विविध वाहन (गज, अश्व, पुष्पकविमानादि), मन्त्र, दूतप्रेषण, सैन्यप्रयाण, युद्ध, नायक का अभ्युदय, वनविहार, जलक्रीडा, मधुपान, मानापगम, रतोत्सव आदि का वर्णन होना—इन बातो की गणना की है। उभयवैचित्र्य[2] के अन्तर्गत उन्होने रस के अनुरूप शब्दयोजना, अर्थ के अनुरूप छन्द की योजना, समस्तलोकरजकता, सदलकारपूर्ण वाक्यों के प्रयोग, कथानक मे विविध देश-काल-पात्र, चेष्टा एव कथाओ के वर्णन का समावेश किया है।

इस प्रकार हेमचन्द्र की परिभाषा मे अधिकतर पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो की पुनरावृत्ति ही की गई है। फिर भी उसमे कुछ नवीन सूचनाएँ हैं। हेमचन्द्र की परिभाषा की प्रथम विशेषता यह है कि उन्होने महाकाव्य का उद्देश्य 'समस्तलोकरजकता' माना है। इसका अर्थ यह है कि महाकाव्य की भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध और प्रसाद गुण से युक्त होनी चाहिए, अन्यथा महाकाव्य समस्त लोगों का मनोरंजन कैसे कर सकेगा? दूसरी विशेषता यह है कि उसमे यह स्वीकार किया गया है कि कही-कही सस्कृत-महाकाव्यो मे सर्ग की जगह आश्वासक मे कथा का विभाजन मिलता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द का प्रयोग होता है, सर्ग के अन्त मे छन्द बदल जाता है, सभी सर्गो मे भिन्न-भिन्न छन्द होते हैं, इस रूढि को स्वीकार करके भी इसके अपवादो को स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि कुछ महाकाव्यो जैसे रावणवध, हरविजय, सेतुवन्ध आदि मे समाप्ति-पर्यन्त एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है। अत: समस्त महाकाव्य मे एक छन्द का प्रयोग भी दोष नही है। यह हेमचन्द्र की परिभाषा की तीसरी विशेषता है।[3] हेमचन्द्र की

---

(१) अर्थवैचित्र्यं यथा—चतुर्वर्गफलोपायत्वं, चतुरोदात्तनायकत्वं, रसभावनिरन्तरम्, विधिनिषेधव्युत्पादकत्वं, सुसूत्रसंविधानकत्वं, नगराश्रमशैलसैन्यावासार्णवादिवर्णनम्, ऋतुरात्रिन्दिवार्कास्तमयचन्द्रोदयादिवर्णनं, नायकनायिकाकुमारवाहनादिवर्णनं, मन्त्रदूतप्रयाणसंग्रामाभ्युदयादिवर्णन, वनविहारजलक्रीडामधुपानमानापगमरतोत्सवादि-वर्णनमिति।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय।

(२) उभयवैचित्र्य यथा—रसानुरूपसन्दर्भत्वं, अर्थानुरूपछन्दस्त्व, समस्तलोकरजकत्वं, सदलकारवाक्यत्व, देशकालपात्रचेष्टाकथान्तरानुषंजनं मार्गद्वयानुवर्तन चेति।

(३) प्रायो ग्रहणात् सस्कृतभाषयाऽप्याश्वासकबन्धो हरिप्रबोधादौ न दुष्यति। प्रायो ग्रहणादेव रावणवध-हरविजय-सेतुबन्धेष्वादित: समाप्तिपर्यन्तमेकमेव छन्दो भवतीति। गलितकानि तु तत्र कैरपि विदग्धमानिभि: क्षिप्तानि इति तद्विदो भाषन्ते।

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय।

परिभाषा की चौथी विशेषता उसका यह बताना है कि यदि मूल कथा मे नगरार्णव आदि महाकाव्यीय वर्ण्य-विषयो का समावेश न हो सके तो उनका समावेश अवान्तर-कथाओं मे करके इस अभाव की पूर्ति करनी चाहिए।[1] आलोच्य युग के अनेक जैन-सस्कृत-महाकाव्य ऐसे हैं जिनमे महाकाव्यीय वर्ण्य-विषयो का समावेश मूल कथा मे न होकर अवान्तर कथाओ मे किया गया है। हेमचन्द्र की पाँचवी विशेषता यह है कि उन्होंने 'देशकालपात्र-चेष्टाकथान्तरानुषजनम्' कह कर महाकाव्य मे जीवन के व्यापक अनुभवो और युग के सम्पूर्ण चित्र को उपस्थित करने का निर्देश भी किया है।

अमरचन्द्र सूरि

तेरहवी शताब्दी मे अमरचन्द्र सूरि ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' नामक लक्षरण-ग्रन्थ लिखा। उसमे उन्होने महाकाव्य की परिभाषा तो नही दी, किन्तु महाकाव्य के वर्ण्य-विषयो की सूची इन शब्दो मे प्रस्तुत की है—

> **राजाऽमात्यपुरोहितौ नृपवधू राजाङ्गज सैन्यपो**
> **देशग्रामपुरीसरोऽब्धिसरिदुद्यानान्यरण्याश्रमा।**
> **वीवाहो विरह स्वयवरसुरापुष्पाम्बुखेलारतम**
> **मन्त्रो दूतरणप्रयाणमृगयाश्वेभर्तुविनेन्दूदयाः॥**[2]

विश्वनाथ

चौदहवी शताब्दी मे विश्वनाथ महापात्र ने सबसे अधिक विस्तार के साथ महाकाव्य की परिभाषा दी है।[3] यद्यपि महाकाव्य-सम्बन्धी उनकी परिभाषा मे कोई मौलिकता नही है, फिर भी उसकी महत्ता इस बात मे है कि उसमे पूर्ववर्ती आलकारिको की परिभाषा की अपेक्षा अधिक स्पष्टता और व्याख्यात्मकता है। विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षरण इस प्रकार है—

---

(१) **तानि च यदि कथाशरीरे न स्युस्तदा कथान्तरानुषजनेनापि कर्तव्यानीति प्रचक्षते।**
—काव्यानुशासन की हेमचन्द्र-कृत विवेक-टीका, अध्याय अष्टम।

(२) **अमरचन्द्र सूरि, काव्यकल्पलतावृत्ति।**

(३) **सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक सुर।**
सद्वंश क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वित।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धय.॥
इतिहासोद्भवं वृत्तं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पाः नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥

(१) महाकाव्य की कथा सर्गो मे विभक्त होती है।

(२) इसका नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई सद्वशोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए। एक वश मे उत्पन्न अनेक राजा भी इसके नायक हो सकते हैं।

(३) इसमे शृ गार, वीर और शान्त इन तीनों रसो मे से कोई एक रस अ गी होना चाहिए और अन्य रस उसके अ ग रूप में आने चाहिए।

(४) इसमे नाटक की सभी सन्धियो का समावेश होना चाहिए।

(५) इसका कथानक ऐतिहासिक होता है। यदि वह ऐतिहासिक न हो तो किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाला होना चाहिए।

(६) इसमे चार वर्गो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मे से कोई एक वर्ग फल-रूप से होना चाहिए।

(७) इसके आरम्भ मे नमस्कार, आशीर्वचन अथवा वस्तुनिर्देश के रूप मे मगलाचरण होना चाहिए।

(८) इसमे कही-कही खल-निन्दा और सज्जन-प्रशसा भी होती है।

(९) इसके सर्गों की सख्या आठ से अधिक होनी चाहिए। सर्गो का आकार न तो बहुत छोटा और न अधिक बडा ही होना चाहिए। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए और सर्ग का पर्यवसान भिन्नवृत्तक पद्यो से होना चाहिए। कही-

---

नानावृत्तमय क्वाऽपि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तु वनसागरा॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नानानायकस्येतरस्य वा॥
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुन. सर्गा. भवन्त्याख्यानसंज्ञका॥
प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञका.।
छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि॥
अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन् सर्गा कुडवकाभिधाः।
तथाऽपभ्रंशयोग्यानिच्छन्दांसि विविधान्यपि॥
भाषाविभाषानियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम्॥

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, श्लोक ३१५–३२८

कही किसी सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी हो सकता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे आगामी सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

(१०) इसमे सध्या, सूर्य, इन्दु, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, सयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, युद्धयात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का यथावसर साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए।

(११) महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु, नायक अथवा किसी अन्य पात्र के नाम के आधार पर होना चाहिए और सर्गो के नाम सर्गगत कथा के आधार पर होने चाहिए।

विश्वनाथ की इस परिभाषा मे पूर्ववर्ती आलकारिको से भिन्न निम्न बाते और जोडी गई हैं—

(१) पूर्ववर्ती आलकारिको ने नायक को सदाश्रय, चतुर और उदात्त होना ही आवश्यक माना था उसके कुलीन क्षत्रिय या देवता होने की कोई शर्त नही रखी थी। विश्वनाथ ने सर्वप्रथम नायक का सद्व शोत्पन्न क्षत्रिय या देवता होना अनिवार्य बताया है।

(२) पूर्ववर्ती आलकारिको ने सर्गों की कोई सख्या निर्धारित नही की थी। विश्वनाथ ने सर्वप्रथम महाकाव्य मे कम से कम आठ सर्गों का होना अनिवार्य बताया है।

(३) सर्गों की लम्बाई के सम्बन्ध मे पूर्ववर्ती आचार्यो ने केवल यही कहा था कि वे अति-विस्तीर्ण न हो। विश्वनाथ ने उसमे यह और जोड दिया कि वे बहुत छोटे भी न हो।

(४) विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यो के इस कथन को कि प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए, स्वीकार करते हुए भी सर्वप्रथम यह कहा कि एक ही सर्ग मे नाना छन्दो का प्रयोग भी दोष नही हैं।

(५) पूर्ववर्ती आचार्यो ने जिन वस्तु-व्यापारो के वर्णन का निर्देश किया है, लगभग उन्ही की सूची विश्वनाथ ने प्रस्तुत की है, किन्तु उन्होने इतना और कहा है कि इनका वर्णन यथायोग (प्रसगानुकूल) और साङ्गोपाङ्ग होना चाहिए अर्थात् उनका समावेश बलपूर्वक अप्रासगिक रूप मे नही करना चाहिए।

सस्कृत के आलकारिको की विभिन्न परिभाषाओ पर विचार करने के उपरान्त भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्त्वो को इस प्रकार रखा जा सकता है—

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्त्व

(१) भारतीय मान्यता के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। हेमचन्द्र और वाग्भट के मत से वह आश्वासकबद्ध भी हो सकता है। महाकाव्य के सर्ग न अधिक लम्बे और न अधिक छोटे होने चाहिए। विश्वनाथ को छोड कर अन्य आचार्यो ने सर्गो की सख्या और उनके नामकरण पर अपने विचार प्रकट नही किये। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य मे कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए और सर्गो का नामकरण उनमे वर्णित कथा के आधार पर होना चाहिए।

(२) महाकाव्य का कथानक असंक्षिप्त अर्थात् विशाल होना चाहिए। रुद्रट के अनुसार कथानक का आधार कोई महती घटना होनी चाहिए।

(३) उसमे पाँच नाट्य-सधियो की योजना होनी चाहिए जिससे कथानक का विस्तार सगठित और व्यवस्थित हो सके।

(४) महाकाव्य का कथानक इतिहास और पुराण पर आधारित अथवा परम्परा की दृष्टि से प्रख्यात एवं सज्जनाश्रित होना चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य का कथानक उत्पाद्य (कविकल्पनाजन्य) भी हो सकता है। उनका यह भी कथन है कि यदि महाकाव्य का कथानक अनुत्पाद्य हो (अर्थात् इतिहास या पुराण से लिया गया हो) तो इतिहास-पुराणादि से केवल कथापजर ही लेना चाहिए। शेष सभी बाते कवि को अपनी कल्पना से रक्त-मास की तरह उस कथापजर मे भर कर महाकाव्य के शरीर का सुगठित निर्माण करना चाहिए। ऐसा कथानक भी अनुत्पाद्य ही कहलाता है। रुद्रट का आशय यह है कि कथानक चाहे उत्पाद्य हो या अनुत्पाद्य, उसमे कल्पना का उपयोग कवि को अवश्य करना चाहिए।

(५) रुद्रट और हेमचन्द्र के मत से महाकाव्य मे अवान्तर–कथाओ की योजना अवश्य होनी चाहिए, क्योकि उनके द्वारा जीवन के गम्भीर और व्यापक अनुभवो को उपस्थित करने मे सुविधा रहती है। अन्य आचार्यों ने इस सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है।

(६) महाकाव्य मे प्राकृतिक दृश्यो, जीवन के विविध व्यापारों एव परिस्थितियो के विशद वर्णन होने चाहिए। सभी आचार्यों ने वर्ण्य-विषयो की सूची प्रस्तुत की है। इनमे सूर्य, चन्द्र, दिन, रात्रि, प्रातःकाल, मध्याह्न, सध्या, षट्-ऋतु, पर्वत, वन, नगर, सागर, आश्रम, मरुभूमि, द्वीप, देश, वापी, तडाग, नदी, उद्यानक्रीडा, सलिलक्रीडा, मधुपान, रतोत्सव, सगीतगोष्ठी, दूतीवचन, मान, मानापगम, असतीचरित्र, सयोग, वियोग, स्वग, मुनि, यज्ञ, विवाह, कुमारजन्म, मन्त्रणा, दूतप्रेषण, सेनाप्रयाण, स्कन्धावार, व्यूहरचना, नगरावरोध, नागरिक-क्षोभ, युद्ध, नायक-विजय, मृगया, वाहन आदि की गणना की गई है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार यदि मूलकथा मे इन समस्त वर्ण्य-विषयो का समावेश न हो सके तो उनका समावेश अवान्तर–कथाओ मे करना चाहिए। भोजदेव का मत है कि एक महाकाव्य मे इन समस्त विषयो का समावेश करना कठिन है, अतः कवि यदि महाकाव्य मे काल (दिन, रात, प्रातः, मध्याह्न, ऋतु आदि) का वर्णन कर देता है तो फिर देश (नगरी, देश, वन, आश्रम, मरुभूमि, द्वीप आदि का वर्णन करना न करना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। इस प्रकार भोज के मत से काल-वर्णन तो महाकाव्य के लिए आवश्यक है, किन्तु देश-वर्णन उसमे न हो सके तो कोई दोष नही है। अमरचन्द्र सूरि ने इन वर्ण्य–विषयों के भी उपवर्ण्य-विषय बता कर इस प्रसग को बहुत विस्तृत कर दिया है। षट्-ऋतु-वर्णन-प्रसंग मे प्रत्येक ऋतु का वर्णन करते समय क्या-क्या वर्णन करने चाहिए, इसका निर्देश इन पक्तियो मे किया गया है—

सुरभौ दोलाकोकिलमारुतसूर्यगतितरुदलोद्भेदा ।
जातीतरपुष्पचयाम्रमंजरीभ्रमरझङ्कारा ॥
ग्रीष्मे पाटलमल्लीतापसर पथिकशेषवातालय ।
सक्तुप्रपाप्रपास्त्रीमृगतृष्णाम्रादिफलपाका ॥
वर्षासु घनशिखिस्मयहंसगमा पङ्ककन्दलोद्भेदौ ।
जातीकदम्बकेतकझञ्झाऽनिलनिम्नगाहलिप्रीति. ॥
शरदीन्दुरविपटुत्वं जलाच्छताऽगस्तिहसवृषदर्पा: ।
सप्तच्छदपद्मसिताभ्रधान्यशिखिपक्षमदपाता ॥
हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुबकहिमानि ।
शिशिरे शिरीषघूमाहिकुन्दाम्बुजदाहशिखिरतोत्कर्षा ॥

इस प्रकार उन्होने देश, ग्राम, पुर, सरसी, अब्धि, सरिता, उद्यान, शैल, अरण्य, आश्रम, मन्त्र, दूत, युद्ध, प्रयाण, मृगया, अश्व, गज, सूर्य, चन्द्र, विवाह, विरह, स्वयवर, सुरापान, पुष्पावचय, जलकेलि और सुरत के उपवर्ण्य-विपयो का विस्तृत वर्णन किया है ।

(७) रुद्रट और विश्वनाथ महाकाव्य मे अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो का होना आवश्यक मानते है । पर रुद्रट का साथ-ही-साथ यह भी कहना है कि महाकाव्य मे अलौकिक और अतिप्राकृत कार्य मानव द्वारा सम्पादित नही दिखाने चाहिए । जहाँ ऐसा करना ही हो वहाँ दिव्य शक्तियो—देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, व्यन्तर आदि की सहायता लेनी चाहिए । विश्वनाथ महाकाव्य मे देवता का भी नायक होना उचित मानते है और उनके अनुसार उसमे मुनि और स्वर्ग का वर्णन भी होना चाहिए । देवता और स्वर्ग तो अलौकिक होते ही है, मुनियो मे भी अतिप्राकृत शक्तियाँ होती है ।

(८) महाकाव्य का आरम्भ किस प्रकार किया जाए, इस सम्बन्ध मे भामह और भोजदेव मौन हैं । दण्डी के अनुसार महाकाव्य के आदि मे आशीर्वचन, नमस्क्रिया तथा वस्तु-निर्देश का निर्देश होना चाहिए । रुद्रट महाकाव्य के आरम्भ मे सन्नगरी–वर्णन तथा नायक के वश की प्रशसा आवश्यक समझते है । वाग्भट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ आशीर्वचन, नमस्क्रिया तथा वस्तुनिर्देश के साथ-साथ खलनिन्दा और सज्जनशसा भी आवश्यक मानते है । वाग्भट और हेमचन्द्र ने वक्तव्य विषय का प्रतिज्ञान तथा काव्य-रचना का प्रयोजन बताना भी महाकाव्य के आरम्भ मे आवश्यक माना है ।

(९) महाकाव्य के अन्त के सम्बन्ध मे रुद्रट और हेमचन्द्र को छोड कर अन्य आचार्यो ने कुछ नही कहा है । हेमचन्द्र का कथन है कि महाकाव्य के अन्त मे कवि को अपना उद्देश्य प्रकट करना चाहिए, अपना तथा अपने इष्टदेव का नाम व्यक्त करना चाहिए और मंगलवाची शब्दो का प्रयोग करके महाकाव्य की समाप्ति करनी चाहिए ।

स्पष्ट है हेमचन्द्र ने जैन-महाकाव्यो को देख कर ही यह नियम निर्धारित किया है। जैन-महाकाव्यो मे ग्रन्थ के अन्त मे कवि-परिचय, गुरु-परम्परा आदि का वर्णन मिलता है। रुद्रट को इस प्रकार का उपसहारात्मक वर्णन अभीष्ट नही है। उनके अनुसार नायक का अभ्युदय दिखा कर महाकाव्य की समाप्ति कर देनी चाहिए।

(१०) सर्ग-समाप्ति के सम्बन्ध मे विश्वनाथ और वाग्भट को छोड कर अन्य आचार्यों ने कुछ नही कहा। विश्वनाथ का कथन है कि सर्ग के अन्त मे अगले सर्ग की कथा की सूचना दी जानी चाहिए और वाग्भट का मत है कि प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य कवि द्वारा अभिप्रेत शब्द—श्री, लक्ष्मी आदि—से अकित रहना चाहिए।

(११) महाकाव्य के नामकरण के सम्बन्ध मे विश्वनाथ को छोड कर अन्य सभी आचार्य मौन है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु अथवा चरितनायक के नाम पर होना चाहिए।

(१२) महाकाव्य मे नायक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। दण्डी, भोज, वाग्भट और हेमचन्द्र के अनुसार नायक को चतुरोदात्त होना चाहिए। भामह महाकाव्य के नायक को कुलीन, वीर और विद्वान् होने के साथ-साथ विजयी होना भी आवश्यक मानते है। उसके मतानुसार नायक का वध महाकाव्य मे नही दिखाना चाहिए। रुद्रट के अनुसार नायक त्रिवर्गो मे से किसी एक वर्ग का, सर्वगुण-सम्पन्न, शक्तिशाली, नीतिज्ञ, प्रजापालक और विजयी होना चाहिए। विश्वनाथ देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय को नायक बनाना उचित मानते है। उनके अनुसार महाकाव्य मे एक वश मे उत्पन्न अनेक राजा अथवा उच्च कुलो मे उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते है।

(१३) रुद्रट के अनुसार नायक की तरह प्रतिनायक भी महाकाव्य मे आवश्यक है। उसके कार्य-कलाप ऐसे होने चाहिए जिनसे नायक की क्रोधाग्नि भडक उठे और वह प्रतिनायक पर आक्रमण कर दे। प्रतिनायक को भी वीरतापूर्वक नायक का सामना करता हुआ दिखाना चाहिए।

(१४) नायक, प्रतिनायक के अतिरिक्त महाकाव्यो मे अन्य गौण पात्र भी होते है। भामह, दण्डी, रुद्रट, वाग्भट, हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ ने मन्त्र-दूत-प्रयाण आदि की चर्चा आवश्यक बताई है अर्थात् महाकाव्य मे मन्त्री, दूत, सैनिक, सेनापति आदि महा-काव्य के गौण पात्र होते है। भोज ने इन पात्रो मे राजकन्या, कुमार तथा कुमारपत्नी का समावेश और किया है और कहा है कि गौण पात्रो की सम्यक् योजना से कथा में रस-स्रोत प्रवाहित होने लगता है। इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक विशद वर्णन अमरचन्द्रसूरि का है। उन्होने राजा, मन्त्री, पुरोहित, रानी, राजकुमार, दूत, सैनिक आदि पात्रो का समावेश करना तो महाकाव्य में आवश्यक

माना ही है, इन पात्रो की स्वभावगत विशेषताओ का विशद वर्णन भी किया है। इनमे से कुछ पात्रो की स्वभावगत विशेषताएँ पाद-टिप्पणी मे दी जा रही है।[1]

(१५) महाकाव्य के मूल तत्वो मे रस का स्थान सर्वप्रमुख है। सभी आचार्यों ने महाकाव्य मे नव रसो का विधान अनिवार्य बताया है। किसी विशेष रस को उन्होने प्रधानता नही दी। विश्वनाथ ने रस का क्षेत्र सीमित करते हुए कहा है कि महाकाव्य मे शृगार, वीर और शान्त मे से कोई एक रस प्रधान तथा अन्य रस गौण रूप मे प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

(१६) रुद्रट, वाग्भट और विश्वनाथ के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने अलकारों की गणना भी महाकाव्य के प्रमुख लक्षणो मे की है। भामह ने 'सालंकार', दण्डी ने 'सदलकृतिम्,' भोज ने 'रसालकारसकरान्' तथा हेमचन्द्र ने 'सदलकारवाक्यत्व' कह कर महाकाव्य मे अलकारो की योजना आवश्यक मानी है। संस्कृत के परवर्ती महाकाव्य तो वाग्वैदग्ध्य और पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है, फिर भी आश्चर्य है कि रुद्रट,

---

(१) नृप—नृपे विद्यानय शक्तिर्बलं तस्करताक्षयं।
प्रजाशास्ति प्रजारागो धर्मकामार्थतुल्यता॥
प्रयाणरणखड्गादिशस्त्राण्यरिपराजय।
अरिनाशोऽरिशैलादिवासोऽरिपुरशून्यता॥
महः श्रीदानकीर्त्याद्या गुणौघा रूपवर्णनम्।
मानवा मौलितो वर्ण्याः देवाश्चरणत पुन॥

महामात्य—महामात्ये नय, शास्त्रं स्थैर्यं बुद्धिगभीरता।
शक्ति शस्त्रमलोभत्वं जनरागो विवेकिता॥
मन्त्री भक्तो महोत्साहः कृतज्ञो धार्मिकः शुचि।
अकर्कश कुलीनश्च स्मृतिज्ञ सत्यभाषक॥
विनीत स्थूललक्षश्चाऽव्यसनो वृद्धसेवक।
अक्षुद्र सत्त्वसम्पन्नः प्राज्ञ शूरोऽचिरक्रिय॥
राज्ञा परीक्षित सर्वोपधासु निजदेशज।
राजार्थस्वार्थलोकार्थकारको निस्पृहः शमी॥
अमोघवचन कल्प पालिताशेषदर्शन।
पात्रौचित्येन सर्वत्र नियोजितपदक्रम॥
आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तादण्डनीतिकृतश्रमः।
क्रमागतो वणिक्पुत्रो भवेद्राज्यविवृद्धये॥

—अमरचन्द्रसूरि, काव्यकल्पलतावृत्ति, श्लोक ४७–५५। इसी प्रकार पुरोहित (५६), रानी (५७–५९), कुमार (६०) सेनापति (६१), दूत (७३) आदि की स्वभावगत विशेषताएँ कोष्ठाङ्कित श्लोको मे वर्णित हुई हैं।

वाग्भट और विश्वनाथ ने अलंकारों की गणना महाकाव्य के अनिवार्य तत्त्वों में क्यो नही की ?

(१७) भारतीय मान्यता के अनुसार महाकाव्य का छन्दोबद्ध होना आवश्यक है। छदप्रयोग के सम्बन्ध मे भामह और रुद्रट ने कुछ नही कहा है। दण्डी के अनुसार महाकाव्य का छन्द श्रव्य अथवा श्रुतिमधुर होना चाहिए और सर्गान्त मे उसे बदल कर भिन्न छन्द का प्रयोग करना चाहिए। भोज 'श्रव्यवृत्तम्' तथा 'भिन्नसर्गान्तिवृत्तम्', वाग्भट और हेमचन्द्र 'भिन्नान्त्यवृत्त' तथा विश्वनाथ 'एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः' कह कर दण्डी का ही अनुकरण करते है। इस सम्बन्ध मे हेमचन्द्र ने इतना और कहा है कि छन्दो का चुनाव अर्थ के अनुकूल होना चाहिए और समस्त काव्य मे एक छन्द का प्रयोग भी दोष नही है। विश्वनाथ भी दण्डी के छन्द-सम्बन्धी नियम के अपवाद स्वीकार करते है और कहते है कि कही-कही एक ही सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी हो सकता है।

(१८) महाकाव्य मे उदात्त भापा का प्रयोग होना चाहिए। अग्निपुराण महाकाव्य मे समस्त रीति (वैदर्भी, गौडी, पाचाली), गुण (प्रसाद, माधुर्य, ओज) एव अलकारो से युक्त भाषा का प्रयोग समीचीन मानता है। अर्थात् प्रसग के अनुसार माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणवाली, वैदर्भी, गौडी और पाचाली रीतिवाली तथा अलकृत भापा का प्रयोग महाकाव्य मे होना चाहिए। भामह उसमे साहित्यिक भाषा का प्रयोग उचित समझते हैं। उनके मत से महाकाव्य मे ग्राम्य शब्दो का प्रयोग नही होना चाहिए। भोज महाकाव्य की भाषा को प्रसंगानुकूल तीनो शब्दशक्तियो (अभिधा, लक्षणा, व्यजना) से युक्त होने पर बल देते हैं। दण्डी और हेमचन्द्र महाकाव्य मे ऐसी भाषा का प्रयोग उचित समझते है जिससे महाकाव्य समस्त लोक का रजन कर सके। इसका अर्थ यह है कि महाकाव्य की भाषा सरल और बोधगम्य होनी चाहिए तभी उससे समस्त लोक का रजन हो सकेगा। हेमचन्द्र महाकाव्य की भाषा की दूसरी विशेषता 'रसानुरूपसन्दर्भत्व' बताते है जिसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि महाकाव्य मे रति के प्रकर्ष के लिए कोमल, उत्साह के प्रकर्ष के लिए प्रौढ, क्रोध के प्रकर्ष के लिए कठोर एव शोक के प्रकर्ष के लिए मृदु पदावली का प्रयोग करना चाहिए। आश्चर्य की बात है कि एक ओर तो हेमचन्द्र भाषा का गुण 'समस्तलोकरजकता' मानते है तो दूसरी ओर महाकाव्य के एक सर्ग मे दुष्कर चित्रबन्ध भी आवश्यक बताते हैं। दुष्कर चित्रबन्ध मे भापा प्रसाद-गुण-युक्त कैसे रह सकेगी ? वाग्भट ने भी महाकाव्य के एक सर्ग मे दुष्कर चित्रकाव्य की योजना को आवश्यक बताया है। इन समस्त मतो पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाकवि का भापा पर असाधारण अधिकार होना चाहिए और उसमे सरल से सरल तथा दुरूह से दुरूह भाषा का

प्रयोग करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य के कलेवर मे कवि के भाषाधिकार की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

(१६) भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति माना है, किन्तु उनमे अकेले विश्वनाथ ही ऐसे व्यक्ति है जो इन चारो पुरुषार्थों मे से किसी एक की प्राप्ति को ही महाकाव्य का लक्ष्य मानते हैं।

महाकाव्य-विषयक पाश्चात्य मान्यताएँ —

प्राचीन भारतीय आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणो और तत्त्वो पर विचार कर लेने के उपरान्त अब हम महाकाव्य-सम्बन्धी पाश्चात्य मान्यताओ पर भी विचार करना उचित समझते हैं जिससे महाकाव्य के सार्वजनीन और सार्वभौम लक्षण निर्धारित किये जा सके।

पाश्चात्य साहित्य मे महाकाव्य को 'एपिक' कहा गया हे। पश्चिमी विद्वानो मे सर्वप्रथम अरस्तू ने महाकाव्य के सिद्धान्तो का विवेचन किया है। उसके अनुसार महाकाव्य

अरस्तू

काव्यानुकृति का वह भेद है जिसका रूप समाख्यानात्मक हो, जिसमे एक छन्द का प्रयोग किया गया हो, जिसमे उच्चतर कोटि के व्यक्तियो का चरित्र वर्णित हो, जिसकी सीमाएँ विस्तृत हो और जो अनेक घटनाओ के उचित समावेश के कारण घनत्व और गरिमा से युक्त हो।[1] अरस्तू ने महाकाव्य के चार तत्त्व माने हैं—(१) कथावस्तु (२) चरित्र (३) विचारतत्त्व (४) भाषा। अरस्तू के अनुसार महाकाव्य की मूल विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) वह प्रख्यात (जातीय दन्त-कथाओ अथवा ऐतिहासिक घटनाओ पर आश्रित) होता है। एक ओर वह शुद्ध इतिहास से भिन्न होता है, दूसरी ओर वह सर्वथा काल्पनिक भी नही होता। उसमे यथार्थ की अपेक्षा श्रेष्ठ जीवन का चित्रण रहता है।[2]

(२) महाकाव्य का आकार विपुल और वैविध्यपूर्ण होता है। उसमे अपनी सीमाओ का विस्तार करने की बडी क्षमता होती है, क्योकि नाटक (ट्रैजेडी) की भाँति वह देश-काल-सम्बन्धी सीमाओ मे परिबद्ध नही होता। उसमे एक ही समय घटित होने वाली अनेक घटनाओ का सहज समावेश हो सकता है जिनसे महाकाव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और उधर अनेक उपाख्यानो (अवान्तर-कथाओ) के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न होता है, परन्तु फिर भी यह विस्तार अनियन्त्रित नही होना चाहिए। उस पर भी वही नियन्त्रण होना चाहिए जो नाटक (ट्रैजेडी) के कथानक पर होता है अर्थात् उसमे नाटक के वस्तु-सगठन के सभी

---

(१) **अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक नगेन्द्र, पृ० १२७**

(२) **अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक नगेन्द्र, पृ० १२८**

अन्तरग और प्रमुख अग होने चाहिए। उसका आयाम भी इतना होना चाहिए कि आदि और अवसान एक ही दृष्टि की परिधि मे आ सके।[1]

(३) आकार की विपुलता और घटनाओ की बहुलता के रहते हुए भी महाकाव्य का आधार आदि-मध्य-अवसानयुक्त एक ही समग्र और पूर्ण कार्य होना चाहिए। इतिहास और महाकाव्य मे यही मूल अन्तर है। इतिहास एक कालखण्ड को और उस कालखण्ड मे एक या अनेक व्यक्तियो से सम्बद्ध सभी घटनाओ को उपस्थित करता है, ये घटनाएँ परस्पर असम्बद्ध हो सकती है और इसके परिणाम भिन्न हो सकते है। परन्तु, महाकाव्य सभी घटनाओ को ग्रहण नही करता। वह ऐसी घटनाओ को ग्रहण करता है जो परस्पर सम्बद्ध हो और जिनका परिणाम एक हो। कुशल महाकाव्यकार एक प्रमुख कार्य को लेकर अनेक सम्बद्ध घटनाओ और उपाख्यानो के रूप गुम्फित करता है, जिससे कथानक की अनेकता मे एकता स्थापित हो जाती है। विविधता और व्यापकता महाकाव्य के कथानक के प्रमुख गुण है, किन्तु एकान्विति उसका प्राणतन्तु है। साराश यह है कि महाकाव्य का कथानक व्यापक, वैविध्यपूर्ण, सुसगठित एव अन्वितिपूर्ण होना चाहिए।[2]

(४) नाटक (ट्रेजेडी) के वस्तु-सगठन के अन्य गुण पूर्वापरक्रम, सभाव्यता तथा कुतूहल भी महाकाव्य मे यथावत् विद्यमान रहते है। सभाव्यता (असभव बातों के वर्णन) की परिधि यहाँ अपेक्षाकृत व्यापक हो जाती है। उसमे प्रत्यक्ष प्रस्तुति के अभाव तथा आधारफलक के कारण अतिप्राकृत तत्त्व के लिए अधिक अवकाश रहता है। नाटक (ट्रेजेडी) मे तो अतिप्राकृत तत्त्व को रगमच के भौतिक उपकरणो मे बाँधना दुष्कर है, किन्तु महाकाव्य की दिगन्तव्यापी कल्पना मे वह सहज ही बँध जाता है और उसके विपुल समाख्यान-प्रवाह मे वह सहज ही अदृश्य हो जाता है। अतः कुतूहल के लिए महाकाव्य मे स्वाभावतः अधिक अवकाश रहता है।[3]

(५) महाकाव्य समाख्यान-काव्य है। अतः उसकी कथावर्णन-शैली मूलतः समाख्यानात्मक ही होती है, जिसमे कवि कथा का अपनी ओर से अप्रत्यक्ष शैली मे वर्णन करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि कवि स्वय बराबर हमारे सामने बना रहे और सब कुछ अपनी ओर से ही कहे। परोक्ष समाख्यान-शैली से भी अधिक प्रत्यक्ष नाटकीय शैली महाकाव्य के लिए उपयुक्त है।[4] अर्थात् अरस्तू के मत से महाकाव्य की समाख्यान-शैली मे नाटकीय शैली का भी सामजस्य होना चाहिए।

(६) महाकाव्य मे मूल कथा और उपाख्यानो के अतिरिक्त विविध वस्तुओ और पात्रो के

---

(१) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १२८
(२) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १२८
(३) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १२६
(४) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १३१

भाव-अनुभावो का वर्णन भी होना चाहिए। महाकाव्य के कथानक को सुसगठित रूप देने के लिए कवि नायक के जीवन की प्रमुख घटनाओ को ही चुनता है, किन्तु जीवन के सर्वाङ्गपूर्ण चित्रण के लिए वह विविध घटनाओ का वर्णन अवश्य करता है, जैसे समुद्री पोतो की सूची या इसी तरह के अन्य विवरण। नाटक (ट्रैजेडी) की तरह महाकाव्य मे भी जीवन के विविध व्यापारो जैसे युद्ध, क्रान्ति, अन्वेषण, दुर्घटना, विनाश आदि का वर्णन होना चाहिए। इन बातो से महाकाव्य मे समग्र जीवन के रूपो और पक्षो का वैविध्य दिखाई पडता है।[1]

(७) अरस्तू के अनुसार अनुकरण-रूप काव्य के दो प्रयोजन है—(१) ज्ञानार्जन या शिक्षा और (२) आनन्द। उसके शब्दो मे 'आरम्भ मे वह (मनुष्य) अनुकरण के द्वारा ही सीखता है। अनुकृत वस्तु से प्राप्त आनन्द भी कम सार्वभौम नही। अनुभव इसका प्रमाण है कि जिन वस्तुओ के प्रत्यक्ष दर्शन से हमे क्लेश होता है उन्ही की यथावत् प्रकृति का भावन आह्लादकारी बन जाता है जैसे किसी अत्यन्त जघन्य पशु अथवा शव की रूप-आकृति का उदाहरण लिया जा सकता है।'[2] ज्ञानार्जन और आनन्द ये दोनो प्रयोजन सामान्यत पृथक् होते हुए भी तत्त्व-रूप से एक हो जाते हैं। क्योकि शिक्षा और ज्ञानार्जन भी साध्य न होकर आनन्द का साधन ही तो है। अरस्तू ने महाकाव्य का प्रयोजन नाटक (ट्रैजेडी) के समान ही माना है। ट्रैजेडी का एक और प्रयोजन है मानव-मन का विरेचन (परिशुद्धि) और शान्ति। यह उद्देश्य महाकाव्य का भी माना जा सकता है। इस प्रकार अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का उद्देश्य शिक्षा देकर मानव को आनन्द प्रदान करना है जिससे उसके मन की परिशुद्धि होकर उसे शान्ति मिल सके।

(८) महाकाव्य के पात्रो के सम्बन्ध मे अरस्तू ने स्वतन्त्र विवेचन नही किया, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटक (ट्रैजेडी) और महाकाव्य को समान बताते हुए उसने कहा है—महाकाव्य और ट्रैजेडी मे यह समानता है कि उसमे उच्चतर कोटि के पात्रो की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।[3] इमसे स्पष्ट है कि जो विशेषताएँ ट्रैजेडी के पात्रो मे होती हैं वे ही महाकाव्य के पात्रो मे होनी चाहिए। नाटक (ट्रैजेडी) के पात्रो की अरस्तू ने निम्न विशेषताएँ बतायी है—

(१) वे भद्र होने चाहिए (२) वैभवशाली, यशस्वी और कुलीन होने चाहिए। (३) सहज मानव-गुणो (गुण-दोषो) से विभूषित होने चाहिए, जिनके सुख-दुख के साथ सहृदयो का तादात्म्य हो सके और (४) नम्र मिलाकर उच्चतर कोटि के अर्थात् उदात्त होने चाहिए।

---

(१) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० ६२
(२) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १४
(३) अरस्तू का काव्यशास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० १८

(९) अरस्तू ने महाकाव्य की शैली पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उसके अनुसार महाकाव्य की शैली का पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न हो, किन्तु क्षुद्र (गरिमाहीन) न हो ।[1] अर्थात् प्रसाद गुण और गरिमा उसके दो मूल तत्त्व है । अरस्तू के अनुसार सबसे अधिक प्रसाद गुण उस शैली में होता है जिसमे केवल प्रचलित या उपयुक्त शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु साथ ही वह शैली क्षुद्र होती है । अरस्तू ने गरिमा का आधार असामान्यता को बताया है और कहा है, "इसके विपरीत वह शैली उदात्त होती है जिसमे असामान्य शब्दो का प्रयोग रहता है । असामान्य से मेरा मतलब है अपरिचित, कम प्रचलित, औपचारिक और उन शब्दों का प्रयोग जो साधारण मुहावरे से भिन्न हो ।"[2] यद्यपि अरस्तू ने यह स्वीकार किया है कि जिस पदावली मे अपरिचित (अप्रयुक्त) शब्द रहते है वह शब्दजाल-मात्र है,[3] फिर भी उसकी यह धारणा है कि इन तत्त्वो (अपरिचित पदावली के प्रयोग) का थोडा-बहुत समावेश शैली के उत्कर्ष के लिए आवश्यक है, क्योकि अपरिचित (अप्रयुक्त) शब्द और औपचारिक, आलकारिक तथा उपर्युक्त अन्य प्रकार के शब्द उसे (शैली को) साधारण और क्षुद्र धरातल से ऊपर उठा देगे और उधर प्रचलित शब्दो के प्रयोग से उसमे (शैली मे) प्रसाद गुण का सन्निवेश हो जाएगा ।[4] अरस्तू ने छह प्रकार के शब्द बताए है—(१) प्रचलित (२) अप्रचलित (३) लाक्षणिक (४) आलकारिक (५) नवनिर्मित (६) परिवर्तित । उसने महाकाव्य मे इन सभी प्रकार के शब्दो का प्रयोग किये जाने की सिफारिश की है । इस प्रकार अरस्तू के मत से महाकाव्य की भाषा-शैली (१) अलकृत, अप्रचलित प्रयोगो से कलात्मक, उदात्त और गरिमा-वरिष्ठ होनी चाहिए (२) साथ ही प्रसाद गुण से युक्त होनी चाहिए (३) उसका आधार अत्यन्त व्यापक होना चाहिए जिसमें सभी प्रकार की शब्दावली एव प्रयोगो आदि का समावेश हो सके ।

(१०) अरस्तू के छन्द-सम्बन्धी कथनो से डा० नगेन्द्र ने निम्न निष्कर्ष निकाले है —[5]

(क) महाकाव्य मे केवल एक ही छन्द का प्रयोग आरम्भ से अन्त तक होना चाहिए, क्योंकि इससे समाख्यान के अविच्छिन्न प्रवाह की रक्षा होती है। अनेक छन्दो के मिश्रण से इस प्रवाह मे बाधा पडती है जिससे महाकाव्य की गरिमा की हानि होती है ।

(ख) वृत्त का चयन किसी शास्त्रीय नियम के अनुसार प्रयत्नपूर्वक नही किया जाता, अपितु काव्य-वस्तु की प्रकृति ही स्वानुरूप छन्द का चयन करा लेती है ।

---

(१) अरस्तू का काव्य-शास्त्र, सम्पादक डा० नगेन्द्र, पृ० ५७

(२) वही, पृ० ५७ (३) वही, पृ० ५८

(४) वही, पृ० ५८ (५) वही, पृ० ५८

पश्चिम के अन्य आलोचको ने भी महाकाव्य को परिभाषा मे बांधने का प्रयत्न किया है। लार्ड केम्स (Lord Kames) के अनुसार वीरतापूर्ण कार्यो का उदात्त शैली मे वर्णन ही महाकाव्य है।'[1] प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् लवस्सु (Le Bossu) के अनुसार 'महाकाव्य ऐसा रूपक है जिसमे प्राचीन महत्त्वपूर्ण घटनाओ का वर्णन पद्यबद्ध-रूप मे हो।"[2] हाब्स (Hobbes) वीरतापूर्ण समाख्यानात्मक कविता को ही महाकाव्य स्वीकार करते हैं।[3] लैफकैडिया हर्न (Lafcadio Hearn) ने महाकाव्य को सम्पूर्ण जाति के आदर्शों की पद्यबद्ध अभिव्यक्ति करने वाला काव्य कहा है।[4]

केम्स, लवस्सु, हाब्स तथा लैफकैडियो हर्न

आधुनिक पाश्चात्य विचारक महाकाव्य की दो कोटियाँ निर्धारित करते हैं (१) विकसनशील महाकाव्य (Epic of Growth) तथा (२) कलात्मक महाकाव्य[5] (Epic of Art)। विकसनशील महाकाव्य की रचना एक कवि के द्वारा नही, अपितु अनेक कवियो के द्वारा पर्याप्त लम्बे समय मे की जाती है। होमर के 'ईलियड' और 'ओडेसी' जैसे महाकाव्यो को विकसनशील महाकाव्य माना जाता है। इस प्रकार के महाकाव्यो मे समाज-पक्ष प्रबल रहता है, किन्तु कलात्मकता कम होती है। कलात्मक महाकाव्य कवि-विशेष की साहित्यिक रचना होती है। उसमे स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता और कलात्मकता पर जोर दिया जाता है। वर्जिल का 'ईनियड' और मिल्टन का 'पैराडायज लौस्ट' जैसी रचनाओ को कलात्मक महाकाव्य माना जाता है। आधुनिक युग के सम्पूर्ण महाकाव्य कलात्मक महाकाव्य की कोटि मे आते है।

पश्चिम के आधुनिक आलोचको ने भी महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने और उसकी परिभाषा करने का प्रयत्न किया है। इन आलोचको मे विलियम रोज बैनिट, वाल्टेयर, एम० डिक्सन, एबरक्रोम्बी, टिलयार्ड, सी० एम० बावरा तथा डब्ल्यू० पी० केर प्रमुख है। इनकी महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यताओ को नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

---

(1) As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related is an elevated style will, without further requisite, be deemed an apic poem

M Dixon, English Epic & Heroic Poetry, Page 18

(2) Le Bossu defined epic, therefore as "a composition in verse intended to form the manners by instructions disguised under the allegories of an important action" ....Ibid—Page 2.

(3) "The heroic poem narrative is called an epic poem" said Hobbes, "the heroic poem is dramatic tragedy"......Ibid, Page, 22,

(४) हिन्दी महाकाव्य एवं महाकाव्यकार, ले० श्री रामचरण महेन्द्र, पृ० १४ से उद्धृत

(5) Epic poetry may be divided into two main classes (1) Epic of Growth. (2) Epic of Arts.

L. Abercombie, The Epic, Page 28

विलियम रोज़ बैनिट के अनुसार "महाकाव्य नाटकीय तत्त्वो से युक्त वर्णनात्मक पद्यवद्ध काव्यरूप है जिसमे किसी ऐतिहासिक दन्तकथामूलक अथवा काल्पनिक महती घटना का वर्णन वीर अथवा अतिप्राकृत पात्रो के माध्यम से किया गया हो।"[1] बैनिट की इस परिभाषा मे महाकाव्य मे इन तत्त्वो का होना आवश्यक वताया गया है—

विलियम रोज़ बैनिट

(१) महाकाव्य का कथानक किसी ऐतिहासिक, दन्तकथामूलक अथवा किसी काल्पनिक घटना पर आधारित होना चाहिए।

(२) उसका कथानक नाटकीय तत्त्वो से युक्त होना चाहिए।

(३) उसका नायक वीर या देव आदि अलौकिक पात्र होना चाहिए। महाकाव्य मे अलौकिक तत्त्वो का समावेश दोष नही है।

(४) महाकाव्य का स्वरूप समाख्यानात्मक होता है और वह पद्यबद्ध होता है।

आधुनिक युग के आलोचको मे वाल्टेयर का नाम भी उल्लेखनीय है। महाकाव्य के सम्बन्ध मे उसका कथन है, "मान्य लक्षणो के होने या न होने से ही कोई काव्य महाकाव्य नही बन जाता। ऐसे काव्य-ग्रन्थ ही महाकाव्य नाम के अधिकारी है जिनमे किसी महान् घटना का वर्णन होता है और जिन्हे समाज व्यवहारतः महाकाव्य मानने लगता है। चाहे वह घटना सरल हो या जटिल, चाहे वह ईलियड की तरह एक स्थान पर घटित हो या ओडेसी की तरह उसका नायक ससार भर मे भटकता फिरे, चाहे उसमे एक नायक हो या अनेक, चाहे वे अभागे हो या सौभाग्यशाली, एचिलीस की तरह भयकर क्रोधी हो या एनियास की तरह धर्मात्मा, चाहे वे राजा हों या इनमे से कुछ भी न हो, चाहे उसके दृश्य हिन्दमहासागर के हो जैसे कैमास के 'लूसियाडा' मे या पश्चिम द्वीप-समूह के हो, चाहे वे स्वर्ग के हो या नरक के, जो इस धरती पर नही होते, इनसे कुछ नही बनता-विगडता। इनके बावजूद तब तक कोई काव्य महाकाव्य कहा जाता रहेगा जब तक आप उसके गुणो के अनुरूप कुछ और नामकरण नही कर देते।"[2]

वाल्टेयर

---

1. A poem of dramatic character dealing by means of narration with history, real or fictions, of some notable action or series of action carried out under heroic or supernatural guidance.
   ...Mr. William Rose Benit, "The readers Encyclopedia" Page 345

2. Use alone has prefixed the name of epic particularly to those poems which relate some great action. Let the action be simple or complex, let it lie in one single place, as in the Illiad or let the hero wander all the world over, as in the Odyssey, let there be one single hero or a great many, happy or unfortunate, furious as Achilles or pious as Aeneas, let them be kings or generals or neither of them; let the scene lie upon the Indian ocean, as in

इस परिभाषा मे वाल्टेयर ने महाकाव्य के बाह्य तत्त्वो, जो परम्परागत रूढि पर आधारित हैं, को महाकाव्य के अस्थायी तत्त्व बताया है। इनके होने न होने से उस पर कोई प्रभाव नही पडता। वाल्टेयर ने महाकाव्य के लिए दो अनिवार्य शर्तें रखी हैं, वे है—

(क) महाकाव्य की घटना महान् और गरिमायुक्त होनी चाहिए।

(ख) उसमे उन गुणो का समावेश होना चाहिए जो सामाजिक मन को प्रभावित कर सके और उससे प्रभावित होकर समाज उसे स्वत: महाकाव्य की सज्ञा प्रदान कर दे।

वाल्टेयर से ही मिलता-जुलता मत एबरक्रोम्बी का है जिसका कथन है कि "महाकाव्य एक ऐसा काव्यरूप है जिसको पढ कर 'पैराडाइज़ लॉस्ट', 'ईलियड' या 'साँग ऑव रोलेण्ड' जैसी भावना जाग्रत हो।"[1] महाकाव्य के विशिष्ट लक्षणो

एबरक्रोम्बी का विवरण देता हुआ वह लिखता है, "बृहदाकार का होने से ही किसी काव्य को महाकाव्य नही कहा जा सकता। जब उसमे महाकाव्योपयुक्त उदात्त शैली होगी तभी वह महाकाव्य अभिधा का अधिकारी है। महाकाव्य की शैली कवि की अभिव्यक्ति, विचारधारा और कल्पना से जुडी रहती है। इस प्रकार की शैली के महाकाव्य पाठक को उस लोक मे पहुँचा देते है जहाँ कुछ भी महत्त्वहीन और असारगर्भित नही होता। महाकाव्य मे महत्त्वपूर्ण, स्पष्ट तथा प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक गतिशील बनाये रखता है।"[2] एबरक्रोम्बी ने इस परिभाषा मे महाकाव्य

---

the Lusiada of Camoens, in the west Indies, as in the Arancana of Alonzo of Ericilla, in hell, in heaven, out of the limits of our nature, as in Milton, the poem will equally deserve the name of epic, unless you have a mind to honour it with another title proportionate to its merit.

डा० शम्भूनाथसिंह-कृत 'हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप-विकास' से उद्धृत, पृष्ठ १०४

(1) An easy way to define epic, though not a very profitable way, would be to say simply that an epic is a poem, which produces feelings similar to those produced by 'Paradise Lost' or the 'Illiad', 'Beowulf' or the 'Song of Rolend'. Indeed you might include all the epics of Europe in this defination without loosing your breath, for the epic poet is the rarest kind of artist.

—Abercrombie, The Epic, Page 40-41.

(2) What epic quality, detached from epic proper, do these poems posses, then, apart from the mere fact that they take up great many pages ? It is simply a question of their style—the style of their conception and the style of their writing, the whole style

के लिये महती घटना, उदात्त शैली, महदुद्देश्य, गाम्भीर्य एव गतिशीलता को आवश्यक बताया है। एबरक्रोम्बी ने अपने ग्रन्थ 'दी एपिक' मे महाकाव्य के लक्षणों का विस्तार से विवेचन किया है। महाकाव्य के कथानक के सम्बन्ध मे उसका मत है कि वह महत्त्वपूर्ण, लोकविश्रुत और विशाल होना चाहिए।[1] महाकाव्य की घटना ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात होनी चाहिए, कवि-कल्पित नही।[2] उसके मत से महाकाव्य के नायक एक से अधिक हो सकते है, उसमे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वो का समावेश भी आवश्यक है।[3] उसमे आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है और उसकी भाषा-शैली पुष्ट एवं असाधारण गरिमा लिये हुए होती है।[4]

वाल्टर पेटर ने महाकाव्य की विशेषताएँ बताते हुए लिखा है, 'महाकाव्यो में विस्तृत परिधि, विविधता, महान् उद्देश्यो के साथ मैत्री, विद्रोह के स्वर की

---

of their imagination in fact. They take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant, a dominant, noticable symbolic purpose presides over each poem moulds it greatly and informs it throughout,

—L. Abercrombie-The Epic, Page 41-42.

(1) To do this he takes some great story which has been absorbed into a prevailing consciousness of his people. As a rule, though not quite invariably, the story will be of things which are or seem, so far back in the past, that anything may cedible it happen in it, so imagination has its freedom and so significance is displayad. —Ibid, Page 48.

(2) The prime meterial of the epic-poet, then, must be real and not invented. The reality of the central subject is, of course, to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of man. —Ibid, Page 55.

(3) Other things which epic have been required to contain, besides much that is not worth mentioning are a descent into hell and some supernatural machinery. Both of these are obviously devices for enlarging scope of action. And it is plain that it must greatly assist the epic purpose to surround the action with immortals, who are deeply implecated in it, nothing could more certainly liberate or atleast more appropreately decorate, the significant force of the subject. —Ibid, Pags 65-67.

(4) "It will tell its tale both largly and intensely, and the diction will be carried on the volume of a powerful flowing meter".

—Ibid, Page 55.

गहनता, आशा की विशालता, जन-कल्याण की श्रीवृद्धि के प्रयत्न, सन्तप्त प्राणियो की विपत्ति दूर करने की चेष्टा, पारस्परिक सहानुभूति-संवर्धन की

वाल्टर पेटर भावना, प्राचीन और नवीन मानव-सत्यो का उद्‌घाटन, जीवन के क्षणो को सुखमय बनाने की योजना, मानव की आत्मा आदि का वर्णन होना चाहिए ।"[1]

अग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक सी० एम० बावरा महाकाव्य की परिभाषा करते हुए कहते है—"निर्विवाद रूप से महाकाव्य वह समाख्यानात्मक काव्य-रूप है जिसका आकार बृहत् होता है, जिसमे महत्त्वपूर्ण एव गरिमामयी घटनाओ का वर्णन

सी०एम० बावरा होता है और जिसमे कुछ व्यक्तियो की क्रियाशील जीवन-कथा, जिसमे युद्ध आदि भयङ्कर और साहसपूर्ण कार्यो का प्राधान्य रहता है, का वर्णन होता है। ऐसा काव्य पाठक को विशेष आनन्द प्रदान करता है, क्योकि उसकी घटनाएँ और उसके चरित्र पाठक के भीतर मानव की महत्ता, गुरुता और उपलब्धियो के प्रति विश्वास उत्पन्न करते है।"[2] बावरा की इस परिभाषा से महाकाव्य के कतिपय बाह्य और आन्तरिक गुणो पर प्रकाश पडता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) महाकाव्य का रूप समाख्यानात्मक होता है। (२) उसका कलेवर विशाल होता है। (३) उसमे महती घटना पर कथानक आधारित रहता है। (४) उसके पात्र क्रियाशील एवं साहसी होते है। (५) उसमे युद्ध जैसी घटनाओ का वर्णन होता है। (६) उसका उद्देश्य समाज को आनन्दित करना तथा मानव को अपनी गुरुता एव महत्ता के प्रति जागरूक करना होता है।

महाकाव्य के सम्बन्ध मे डब्ल्यू० पी० केर ने अपने ग्रन्थ 'एपिक एण्ड रोमास' मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के लक्षणो पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है—

डब्ल्यू० पी० केर "महाकाव्य मे चरित्रो की कल्पना अत्यन्त स्पष्ट और विशद रूप मे की जाती है। फलस्वरूप उसकी विभिन्न परिस्थितियो एव समस्याओ के चित्रण मे स्वाभावतः ही विविध दृश्यो और नाना वर्ण्यविषयो का समावेश हो जाता है और इस प्रकार कथानक मे समग्र जीवन का चित्रण हो जाता है। महाकाव्य की सफलता कवि की कल्पना-शक्ति और चरित्रो की स्थापना-

---

(1) Appreciation, Page 36

(2) "An epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events which have a certain grandure and importace and come from a life of action, especially of violent action, such as war. It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man."

—C. M. Bowara, From Virgil to Milton, Pags-1.

ति पर आश्रित रहती है। कतिपय महाकाव्यों के कथानक मे यद्यपि नाटकीय तत्त्व नही और नवीन दृश्य तथा नवीन साहसपूर्ण कार्यों की प्रधानता होते हुए भी उनका नायक त्वहीन होता है, फिर भी ऐसे कथानको मे एक प्रकार की गरिमा होती है जिसके रण वे महाकाव्य माने जाते हैं।"[1] इस विवेचन मे श्री केर ने महाकाव्य में चरित्र-ाण की उदात्तता, विविध दृश्यो एव नाना वर्ण्य-विषयो का वर्णन, जीवन की ग्रता का अङ्कन तथा महत्त्वपूर्ण कथानक—इन तत्त्वो को अनिवार्य बताया है।

महाकाव्य की विवेचना करने वाले एक अन्य आलोचक है एम० डिक्सन। डिक्सन ाल्टेयर के मत का समर्थन किया है और कहा है कि—"यद्यपि आलङ्कारिको ने महाकाव्य की परिभाषा कर उसके लक्षण निश्चित किये हैं, फिर भी उसे सकीर्ण लक्षणो के घेरे मे नही बाँधा जा सकता। उदाहरण के लिए आलङ्कारिको द्वारा दिये गये अलकृत महाकाव्य के इस लक्षण को कि मे कल्पित और अविश्वसनीय तत्त्व नही होने चाहिए, दृढतापूर्वक स्वीकार किया जाए अनेक मान्य महाकाव्यो को महाकाव्यो की श्रेणी से बहिष्कृत करना पड़ेगा।"[2] यद्यपि सन ने महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करना उसे सकीर्ण बन्धन मे बाँधना बताया है र भी उन्होंने महाकाव्य के लिए कुछ आवश्यक तत्त्व बताये हैं। उसके अनुसार महाव्य की कथा और नायक राष्ट्रीय गौरव के अनुकूल होने चाहिए। महाकाव्य के नायक विजयी दिखाना आवश्यक है, क्योंकि वह समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।

म० डिक्सन

(1) In an epic poem where the characters are vividly imagined, it follows naturally that their various moods and problems involve a variety of scenery and properties and so the whole business life comes into the story, the success of epic poetry depend on the authors power of imagination and representing characters. A kind of success and a kind of magnificence may be attained in stories, professing to be epic in which there is no dramatic virtue, in which every new scene and new adventure merely goes to accumulate, in immortal verse, the proofs of the heroes nullity and insignificance.

W. P. Ker, Epic & Romance, Page 17.

(2) And we may remind ourselves and before all things that the term epic, definite enough in meaning, can bear no narrow interpretation. The rules like that for the exclution of the marvellous or fantastic element, laid down by the critics, would have excluded from the role of epic poet, if rigidly applied, names the most brilliant, had they not indeed made of it a total blank.

—M. Dixon-English Epic & Heroic Poetry, Pags 9.

उसकी विजय समस्त राष्ट्र की विजय होती है।[1] डिक्सन ने यद्यपि यह स्वीकार किया है कि आज मानव-जीवन का क्षितिज इतना विस्तृत हो गया है कि एक महाकाव्य मे कवि युग की समस्त वस्तुओ का समावेश नही कर सकता,[2] फिर भी उन्होंने गौण चरित्रो की सृष्टि, अवान्तर-कथाओ की योजना एव विविध दृश्यो के चित्रण को महाकाव्य के लिए आवश्यक बताया है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि महाकाव्य मे नाटक जैसी धारावाहिकता की खोज करना व्यर्थ है, उसका कथानक तो मन्थर गति से आगे बढता है। डिक्सन के इस कथन मे उनकी महाकाव्य-सम्बन्धी समस्त मान्यताओ का समावेश हो जाता है, "सभी देशो के महाकाव्य समान होते हैं। महाकाव्य चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो या दक्षिण का, उसकी आत्मा और प्रकृति सर्वत्र समान होती है। सच्चा महाकाव्य जहाँ कही भी निर्मित हो, उसका स्वरूप सदैव वर्णनात्मक होता है, उसकी रचना सुव्यवस्थित होती है, उमका सम्बन्ध महान् कार्यों और महान् पात्रो से रहता है, उसकी शैली उसके उद्देश्य की गरिमा के अनुकूल उदात्त और प्रौढ होती है, उसके कार्य और पात्रो के चरित्र आदर्श की ओर अग्रसर होते हैं उसका कथानक उपाख्यानो एव वर्ण्य-विषयो से सजोया हुआ होता है।"[3]

महाकाव्य के सम्बन्ध मे सबसे अधिक क्रान्तिकारी विचार टिलयार्ड के हैं। टिलयार्ड महाकाव्य के विकसनशील और कलात्मक दो रूपो मे विभाजन को उचित नही समझता तथा महाकाव्य को अत्यन्त व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करके गद्य, पद्य, नाटक के भेदो

---

(1) Epic, for instance, one notices, usually depicts a victorious hero it cannot well do otherwise. For in such a poem the interest is rather national than individual. The hero represents a country or a cause which trumphs with his trumph, whose honour would suffer from his defeat.

—M. Dixon, English Epic & Heroic poetry, Page 21.

(2) The horizens of human life have widened that epic poet can no longer include them however far—seeing his vision, no longer, as did Homer, weav "So many histories togather as contain the whole learning of his life"

—M. Dixon—English Epic and Heroic poetry, Page 16.

(3) Yet heroic poetry is one, whether of East or West, the North or South, its blood and temper are the same and the true epic whereever created, will be a narrative poem, organic in structure, dealing with great actions and characters, in a style commensurate with the lordliness of its theme, which tends to idealise these characters and actions and to sustain embellish its subject by mean of episode and amplification.

—M. Dixon—English Epic & Heroic Poetry, Page 24

ो उसी मे समाविष्ट कर लेता है। उसके मतानुसार उपन्यास भी महाकाव्य हो सकता है। वह महाकाव्य को गरिमामयी शैली तक ही सीमित नही रखना चाहता। इस प्रकार महाकाव्य टिलयार्ड के लिए एक नितान्त आधुनिक अर्थ रखता है, हाँ, उसकी विश्वात्मकता उसे भी ग्राह्य है। टिलयार्ड के विचारो पर आधुनिक युग का प्रभाव स्पष्ट है।[1]

टिलयार्ड

'दी बुक ऑव एपिक' का लेखक ग्रन्थ की भूमिका मे महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करता हुआ लिखता है, "एपिक या महाकाव्य प्रधानतः उस वीर-रस-प्रधान काव्य-गाथा को कहते है जिसमे सुख-दुःख, सयोग-वियोग, गीतितत्त्व और कथातत्त्वादि श्रेष्ठ काव्य के सभी गुणों का हृदयहारी चित्रण हो, जिसमे स्वाभाविक जीवन के मनोहारी चित्र और घात-प्रतिघात वर्णित हों और जिसमे सारे तत्त्वो का प्रकृत समन्वय इस कुशलता से किया गया हो कि कृति सदा के लिए अमर हो जाए। विस्तार से सोचने पर ऐसा लगता है जैसे कि पौराणिक कथाएँ, जिनमे हम प्रकृति को अपने ढग से सोचने-समझने के प्रयत्न करते रहे हैं और महात्माओ के जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ, जिनमें हम इतिहास को आदर्श पथ पर ले चलने के प्रयत्न करते रहे हैं, महाकाव्य के मुख्य आवश्यक अग हैं। और चूँकि महाकाव्य किसी भी जाति-विशेष का जीता-जागता इतिहास होता है अतएव, उसमे एक बड़ी नदी की चौडाई, गहराई और विस्तार होना अनिवार्य है। कहा जा सकता है कि आदिकाल से ही कल्पनाशील जातियाँ प्रकृति और जीवन को लेकर कितने ही अनुभव करती रही हैं। ये महाकाव्य और कुछ न होकर, इन्ही अनुभवो के प्रथम परिणाम एव निष्कर्ष रहे हैं और वास्तविक कवि नियमित रूप से स्वय एक जाति का व्यक्त-रूप रहा है।"[2] इस परिभाषा मे महाकाव्य के निम्नोद्धृत लक्षण बताये गये हैं—

दी बुक ऑव एपिक' की भूमिका

(१) महाकाव्य वीर-रस-प्रधान काव्य-गाथा होता है (२) उसका कथानक पौराणिक अथवा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आश्रित रहता है। (३) उसमे सम्पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। (४) उसका नायक एक महान् आत्मा होता है। (५) उसका आयाम विस्तृत होता है तथा उसकी शैली में गम्भीरता होती है। (६) उसका उद्देश्य मानव-जाति को आदर्श पथ पर ले जाकर भावी समाज का निर्माण करना होता है।

महाकाव्य की उपर्युक्त परिभाषाओ एव व्याख्याओ के आधार पर पाश्चात्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत महाकाव्य के प्रधान लक्षणो को हम सामान्यतया इस प्रकार व्यक्त कर सकते है :—

---

(१) प्रो० बलवीर रत्न, महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण सरस्वती-संवाद, महाकाव्य विशेषाङ्क, पृ० ३९-४०

(२) गोपीकृष्ण 'गोपेश' द्वारा अनुवादित 'दी बुक ऑव एपिक' की भूमिका से, पृ० १३

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख तत्त्व

(१) महाकाव्य का कथानक प्रख्यात, महत्त्वपूर्ण और विशाल होना चाहिए । उसका आधार जातीय दतकथाएँ अथवा गरिमामयी ऐतिहासिक घटनाएँ होनी चाहिए। (२) महाकाव्य का नायक महापुरुष, शूरवीर और विजयी होना चाहिए। महाकाव्य के नायक को विजयी दिखाना आवश्यक है, क्योकि वह समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी विजय समग्र राष्ट्र की विजय है। महाकाव्य का नायक देवता आदि अलौकिक व्यक्ति भी हो सकता है और उसमे एक से अधिक नायक भी हो सकते है। गौण-पात्रो की अवतारणा भी महाकाव्य के लिए आवश्यक होती है।

(३) महाकाव्य मे सर्वाङ्गीण युग-जीवन का चित्रण होता है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए महाकाव्य मे गौण पात्रो की अवतारणा, विविध घटनाओ की सृष्टि, अवान्तर कथाओ की योजना एव विविध दृश्यो के चित्रण के द्वारा कथानक को समृद्ध बनाना चाहिए।

(४) महाकाव्य का कथानक नाटकीय तत्त्वो से युक्त होना चाहिए। उसकी विविध घटनाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध होनी चाहिए। कथानक को गतिशील, सुसगठित और अन्वितिपूर्ण होना चाहिए अर्थात् कथानक की समस्त घटनाएँ एक कार्य की ओर अग्रसर होनी चाहिए।

(५) महाकाव्य मे अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो का समावेश भी हो सकता है। पश्चिम के ईलियड, ओडिसी, इनीयड, पैराडाइज़ लॉस्ट जैसे महाकाव्यो मे भूत, प्रेत, देवता आदि अतिप्राकृत पात्रो एव उनके अकल्पनीय कार्यो का समावेश हुआ है।

(६) महाकाव्य की भाषा-शैली उदात्त और प्रौढ होनी चाहिए।

(७) महाकाव्य के आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए। छन्द का प्रयोग वर्ण्य-विषय के अनुकूल होना चाहिए।

(८) महाकाव्य का उद्देश्य महान् होना चाहिए। यह उद्देश्य आध्यात्मिक भी हो सकता है और भौतिक भी। अरस्तू जहाँ महाकाव्य का उद्देश्य शिक्षा देना, आनन्द प्रदान करना और मन की परिशुद्धि करना मानता है वहाँ वाल्टर पेटर की दृष्टि मे उसका उद्देश्य निराश मानव मे आशा का सचार करना, जन-कल्याण की श्रीवृद्धि मे योग देना, सन्तप्त प्राणियो की विपत्ति दूर करने का प्रयत्न करना, नवीन मानव-सत्यो का उद्घाटन करना, परस्पर सहानुभूति-सवर्धन की भावना उत्पन्न करना और नवीन समाज का निर्माण करना है।

महाकाव्य-विषयक भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उनमे विशेष अन्तर नही है। भारतीय और पाश्चात्य समीक्षक

भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण पर एक तुलनात्मक दृष्टि

इस सम्बन्ध मे एकमत है कि महाकाव्य एक छन्दोबद्ध समाख्यानात्मक काव्य-रूप है। उसमे एक महती घटना होती है। उसका कथानक प्रख्यात अथवा इतिहास-पुराण पर आधारित होता है। रुद्रट जैसे भारतीय विद्वान् तथा कुछ पाश्चात्यो के अनुसार कथानक कल्पनामूलक (रुद्रट

के शब्दो मे उत्पाद्य) भी हो सकता है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों समीक्षक महाकाव्य के कथानक को खण्डो मे विभक्त करना आवश्यक मानते है। भारतीय समीक्षको ने इन खण्डो को सर्ग अभिधा प्रदान की है।

पाश्चात्य समीक्षको के अनुसार प्रधान कथा के अ ग-रूप मे कथानक मे अवान्तर कथाओ की योजना भी होती है। उनके अनुसार इनसे महाकाव्य की गरिमा मे वृद्धि होती है और पाठको की कुतूहल-वृत्ति शान्त होती है, क्योकि विभिन्न उपाख्यानो मे विविध प्रकार के चरितो और दृश्यो की योजना रहती है। भारतीय आचार्यो मे रुद्रट और हेमचन्द्र ने भी मूल कथा मे अवान्तर-कथाओ की योजना को आवश्यक माना है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनो आदर्शों मे महाकाव्य के कथानक मे नाटकीय तत्त्वो का समावेश आवश्यक माना गया है। भारतीय समीक्षक कथानक में पच-सन्धियो की योजना आवश्यक मानते हैं, उधर पाश्चात्य समीक्षक महाकाव्य मे नाटक के वस्तु-सगठन के सभी अन्तरग गुण होने चाहिए, यह स्वीकार करते हैं। दोनो ही नाटकीय तत्त्वो की योजना कथानक को सुसगठित और शृङ्खलाबद्ध रूप देने के लिए स्वीकार करते है। दोनो के अनुसार कथानक मे चाहे धारावाहिकता न हो, किन्तु महाकाव्य की समग्र घटनाएँ एक सूत्र मे ग्रथित प्रतीत होनी चाहिए।

दोनो ही आदर्श महाकाव्य मे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वो के समावेश को अनुचित नही मानते, किन्तु दोनो की हो मान्यता है कि अतिप्राकृत और अलौकिक कार्य मानव द्वारा सम्पादित नही दिखाये जाने चाहिए, अन्यथा वे पाठक की आस्था मे गतिरोध उत्पन्न कर देते हैं। इसलिए भारतीय आचार्य रुद्रट ऐसे कार्यो को सम्पन्न करने के लिए अलौकिक शक्तियो—देवता, राक्षस, भूत, प्रेत, गन्धर्व, यक्ष आदि की सहायता लेने का निर्देश करते है तो दूसरी ओर पाश्चात्य समीक्षक असम्भाव्य सभावनाओ की अपेक्षा सभाव्य असभावनाओ को प्राथमिकता देने का निर्देश करते है।

पाश्चात्य समीक्षक महाकाव्य मे जातीय आदर्शो की अभिव्यक्ति पर बल देते है। भारतीय आलोचको ने प्रत्यक्ष-रूप से इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा, किन्तु जब वे नायक के धीरोदात्त होने पर बल देते हैं, जिसकी विशेषताएँ दशरूपककार ने इस प्रकार बताई है—

महासत्त्वोऽतिगम्भीर क्षमावानविकत्थन ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्त दृढव्रत ॥

तो उनका उद्देश्य यही रहा है कि नायक के आदर्श गुणो से युक्त होने के कारण महाकाव्य जातीय आदर्शो और भावनाओ की सशक्त अभिव्यक्ति कर सकने मे समर्थ होगा।

महाकाव्य के नायक के सम्बन्ध मे भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण समान है। दोनो के अनुसार नायक को महाकाव्य की महान् घटनाओ के अनुरूप उदात्त-चरित्र वाला होना चाहिए, महाकाव्य की प्रधान घटना का सूत्रधार होना चाहिए और उसमे जातीय आदर्शो को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। भारतीय कलाकारो ने नायक के व्यक्तित्व की आदर्श-रूप मे कल्पना की है। वह किसी महान् उद्देश्य को प्राप्त करने के

लिए निरन्तर अग्रसर होता है और अन्त मे अपने आदर्श व्यक्तित्व की छाप पाठको के मन पर छोड कर उद्देश्य-प्राप्ति मे सफल होता है। पश्चिम और भारत के कुछ महाकाव्यो के नायक सत्-असत्, आदर्श-यथार्थ के मिश्रण भी हैं और महाकाव्य के अन्त मे उनकी पराजय भी दिखाई गई है जैसे मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' तथा नयचन्द्रसूरि के 'हमीर-महाकाव्य' मे। फिर भी समष्टिरूप मे उनके नायको का चरित्र महान् प्रतीत होता है।

भारतीय महाकाव्यो मे नव रसो का चित्रण आवश्यक माना गया है। विश्वनाथ के अनुसार शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीनो रसो मे से कोई एक रस प्रमुख होना चाहिए, किन्तु पाश्चात्य आलोचक महाकाव्य मे केवल वीर रस की प्रमुखता स्वीकार करते है। इसीलिए उनके यहाँ 'एपिक' को 'हीरोइक पोइट्री' या वीर-काव्य भी कहा जाता है। डा० गोविन्दराम शर्मा के शब्दो मे—"युद्ध वास्तव मे पाश्चात्य महाकाव्यो का केन्द्रीय तत्त्व है। उनमे सघर्ष का प्राधान्य है। जहाँ होमर के ईलियड मे एकिलिस जैसे नायक के बाहुबल की महत्ता बताई गई है वहाँ रामायण और महाभारत जैसे भारतीय महाकाव्यो मे शारीरिक बल की अपेक्षा धर्मबल को अधिक महत्त्व दिया गया है। राम और युधिष्ठिर की वीरता उनके शौर्य, पराक्रम और बाहुबल मे नही, अपितु सत्यनिष्ठा, आत्मत्याग और उदारता मे लक्षित होती है। भारतीय महाकाव्यो मे पर्याप्त युद्ध-व्यापार के होते हुए भी वीर रस को अधिक महत्त्व नही दिया गया है। इसीलिए रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यो का अन्त नायक की विजय-जन्य प्रसन्नता मे नही, अपितु शान्ति मे दीख पडता है। पाश्चात्य महाकाव्य सघर्ष-प्रधान पाश्चात्य जीवन का प्रतिनिधित्व करते है, जब कि भारतीय महाकाव्य त्याग और वैराग्य-प्रधान भारतीय सस्कृति के प्रतीक है। युद्ध और सघर्ष के प्रचुर परिमाण मे वर्तमान होते हुए भी भारतीय महाकाव्यो मे नीति-तत्त्वो का समावेश दिखाई पडता है।"[1]

महाकाव्य की भाषा-शैली के सम्बन्ध मे पाश्चात्य और भारतीय आलोचक एकमत है। दोनो के अनुसार महाकाव्य की भाषा सरल, प्राजल एव परिष्कृत होनी चाहिए। दोनो ही कही-कही क्लिष्ट भाषा के पक्षपाती हैं। अरस्तू महाकाव्य मे कही-कही अप्रचलित भाषा के प्रयोग की सलाह देता है तो हेमचन्द्र आदि कुछ भारतीय समीक्षक एक सर्ग मे चित्रबन्ध-काव्य की योजना को आवश्यक बताकर महाकाव्यकार को क्लिष्ट भाषा के प्रयोग की छूट देते है। कुल मिला कर दोनो आदर्श महाकाव्य मे उदात्त और प्रौढ भाषा के पक्षपाती है।

महाकाव्य के छन्द-सम्बन्धी नियमो मे पश्चिम और भारत के समीक्षको मे थोडा मतभेद है। भारतीय आलोचक एक सर्ग मे एक छन्द और सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन के नियम के पक्षपाती है। उनके अनुसार किसी सर्ग मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग भी हो सकता

(१) डॉ० गोविन्दराम शर्मा, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ३६

है। पाश्चात्य आलोचको की छन्द-सम्बन्धी कैद बहुत बडी है। उनके अनुसार समस्त महाकाव्य का प्रणयन एक छन्द मे होना चाहिए। किन्तु इस सम्बन्ध मे दोनो सहमत हैं कि छन्द का चुनाव विषय के अनुकूल करना चाहिए।

पाश्चात्य आलोचको के अनुसार महाकाव्य का उद्देश्य महान् होना चाहिए। भारतीय आचार्यों ने भी चतुर्वर्गफल-प्राप्ति को महाकाव्य का उद्देश्य बता कर उद्देश्य की महत्ता का निर्देश किया है। महाकाव्य मे विविध वर्ण्य-विषयो का समावेश होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे पाश्चात्य और भारतीय दोनो आलोचक सहमत है। दोनों ही महाकाव्य मे देश-काल-पात्र का वर्णन आवश्यक समझते है।

इनके अतिरिक्त भारतीय आलकारिको ने महाकाव्य के लिए कुछ नियम और बताये है जिनका निर्देश पाश्चात्य आलोचको ने बिलकुल नही किया। वे इस प्रकार है —

(१) महाकाव्य मे कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए।

(२) महाकाव्य के आरम्भ मे मगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन-दुर्जन-स्मरण, कवि द्वारा आत्म-विनय का प्रदर्शन एव वक्तव्य अर्थ का प्रतिज्ञान होना चाहिए। महाकाव्य के अन्त मे कवि को अपने तथा अपने इष्टदेव के नाम एव अपनी गुरु-परम्परा का समावेश करना चाहिए।

(३) सर्ग के अन्तिम पद्य मे कवि द्वारा अभिप्रेत शब्द की मुद्रा लगानी चाहिए।

(४) महाकाव्य मे सुनिश्चित वर्ण्य-विषयो का वर्णन होना ही चाहिए।

इस प्रकार पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यो के मूल तत्त्व एक जैसे ही है। उनमे थोडा-बहुत अन्तर महाकाव्य के बाहरी ढाँचे को लेकर है। एम० डिक्सन का यह कथन ठीक ही है—"सभी देशो के महाकाव्य समान होते है। महाकाव्य चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो या दक्षिण का, उसकी आत्मा और प्रकृति एक जैसी होती है।"[1]

महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य आदर्शो का अध्ययन कर लेने के उपरान्त तेरहवी और चौदहवी शताब्दी के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो को दृष्टि मे रख कर महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्त्वो को इस प्रकार रखा जा सकता है :—

निष्कर्ष

महाकाव्य का कथानक इतिहास, पुराण, दन्तकथा, प्राचीन महाकाव्य, समसामयिक घटना या व्यक्ति पर आधारित होना चाहिए। रुद्रट जैसे आलकारिको के अनुसार कथानक कल्पनामूलक भी हो सकता है, किन्तु जहाँ तक सभव हो महाकाव्य के लिए काल्पनिक कथानक का निर्माण नही करना चाहिए, क्योकि ऐसा करने से कथानक लोक-विश्रुत नही हो सकता, जिस पर भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् बहुत बल देते है।

(क) सुसगठित और व्यापक कथानक

महाकाव्य का कथानक पर्याप्त विस्तृत होना चाहिए। जिससे उसमे मानव-जीवन की सर्वाङ्गीण अभिव्यक्ति सम्भव हो सके। यदि महाकाव्य का विषय अधिक व्यापक नही है और उसमे जीवन की विविध परिस्थितियो के चित्रण के लिए अवकाश

(१) प्रस्तुत प्रबन्ध, पृष्ठ संख्या ३८

नही है तो उसमे अवान्तर-कथाओ और उपाख्यानो की योजना करके उनमे जीवन के विविध रूपो का चित्रण किया जा सकता है। महाकाव्य का कथानक सुसगठित और शृङ्खलाबद्ध होना चाहिए। भारतीय आचार्यो ने महाकाव्य के कथानक मे पच नाट्य-सन्धियो की योजना को और पाश्चात्य विद्वानो ने उसमे नाटकीय तत्त्वो के समावेश को आवश्यक माना है, जिसका आशय कथानक को सुसगठित रूप देना मात्र है। अत. कथानक मे पच-सन्धियो की योजना आवश्यक है, फिर भी यदि उनकी योजना सम्भव न हो, तो कम-से-कम कथानक मे आदि से अन्त तक धारावाहिकता और गति अवश्य होनी चाहिए और कथानक का विकास क्रम—उसका आदि, मध्य और अन्त—सुनियोजित ढग से होना चाहिए। महाकाव्य मे आने वाले विविध प्रसग, उपाख्यान तथा वर्णन आधिकारिक कथा से सुसम्बद्ध होने चाहिए। यद्यपि महाकाव्य मे नाटक जैसी एकान्विति सम्भव नही है, फिर भी कथा का सूत्र कही भी खण्डित और विशृङ्खलित नही होना चाहिए और आधिकारिक कथा एव प्रासगिक घटनाओ मे पूर्ण सामजस्य होना चाहिए। महाकाव्य के कथानक मे अति-प्राकृतिक और अलौकिक तत्त्वो का समावेश भी हो सकता है, किन्तु असम्भव घटनाओ को इस प्रकार चित्रित करना चाहिए जिससे वे सम्भव सी लगने लगे। वस्तुत. अलौकिक और असंभव तत्त्वो का प्रयोग महाकाव्य का कोई आवश्यक अ ग नही है।

(ख) उदात्त और शालीन चरित्र-चित्रण

महाकाव्य के तत्त्वो मे चरित्र-चित्रण का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्य के कथानक का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के पात्रो से होता है। उन पात्रो की चरित्रगत दुर्बलताओ और विशेपताओ का मनोविज्ञान-सम्मत चित्रण करना ही चरित्र-चित्रण कहलाता है। महाकाव्य मे दो प्रकार के पात्र होते है—(१) प्रमुख पात्र या नायक, और (२) सामान्य पात्र। महाकाव्य मे नायक को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसका व्यक्तित्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कथानक की सभी घटनाओ और पात्रो पर छाया रहता है और वह महाकाव्य की मुख्य घटनाओ को गति प्रदान करने वाला होता है। महाकाव्य का नायक एक ऐसा महान् व्यक्ति होता है जो किसी महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार की आपत्तियो को सहन करके अपना सब-कुछ बलिदान कर सके, क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर उठ सके और इस प्रकार समस्त राष्ट्र या जाति की भावनाओ और आदर्शो का सच्चे रूप मे प्रतिनिधित्व कर सके। भारतीय आचार्यो ने इन आदर्श गुणो से युक्त नायक को 'धीरोदात्त' या 'चतुरोदात्त' कहा है। आलकारिको के अनुसार महाकाव्य का नायक सद्वशोत्पन्न व्यक्ति या देवता होना चाहिए, परन्तु वास्तव मे नायक के गौरव की प्रतिष्ठा उच्च वश मे जन्म लेने के कारण नही, अपितु उसके उदात्त गुणो एव लोकोपकारी कार्यो के कारण होती है, चाहे वह सामान्य अथवा तथाकथित नीच वश मे ही क्यो न उत्पन्न हुआ हो। महाकाव्य के नायक एक वश या धर्म से सम्बन्ध रखने वाले अनेक व्यक्ति भी हो सकते है। पुरुप ही नही, स्त्री भी महाकाव्य का प्रधान पात्र हो सकती है। तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के कुछ जैन महाकाव्यो मे

सद्गुण-सम्पन्न महिलाओ को भी नायक का पद दिया गया है। नायक मे कुछ दुर्बलताएँ भी हो सकती है, किन्तु कुल मिला कर उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित करने वाला और आदर्श की स्थापना करने वाला होना चाहिए।

नायक के अतिरिक्त महाकाव्य मे अन्य सामान्य चरित्र भी होते है, जो समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते है। उनमे कुछ साधु चरित्र के, कुछ असाधु चरित्र के तथा कुछ ऐसे चरित्र के व्यक्ति होते है जिनमे मानवोचित दुर्बलताएँ और सबलताएँ दोनो विद्यमान रहती है। इन सामान्य पात्रो मे कुलटा पतिव्रता, दूती-सखी, कन्या-युवती, वृद्धा, रानी, चेटी, श्वश्रू वधू आदि स्त्रियाँ तथा राजा, मन्त्री, कुमार, श्रेष्ठी, परिजन, पुरजन, साधु आदि विभिन्न प्रकार के अच्छे-बुरे, स्वार्थी-परमार्थी तथा उच्च-नीच व्यक्तियो का समावेश होता है। इन विविध पात्रो के द्वारा वैविध्यपूर्ण मानव-जीवन का चित्रण करने मे सुविधा रहती है। महाकाव्य मे पात्रो का चरित्र-चित्रण-मात्र पर्याप्त नही है, अपितु उसमे चरित्रचित्रणगत उदात्तता और शालीनता भी होनी चाहिए अर्थात् पात्रो का चरित्र स्वाभाविक और मनोविज्ञान-सम्मत होना आवश्यक है। उसमे अस्वाभाविकता नही होनी चाहिए। विभिन्न परिस्थितियो मे पड कर पात्र के कार्य-कलापो मे क्या परिवर्तन हो जाता है, उसकी मनोदशा और विचारधारा मे क्या मोड आ जाता है, इसके चित्रण की ओर महाकाव्यकार को सतत जागरूक रहना चाहिए, तभी चरित्र-चित्रण मे शालीनता का समावेश सभव है।

महाकाव्य को जीवन की व्याख्या कहा जाता है। उसमे मानव-जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। जो महाकाव्य जीवन और जगत् को जितने अधिक व्यापक विस्तार से समेट लेता है वह सफलता के चरम बिन्दु के उतने ही समीप पहुँच जाता है। जीवन के दो पक्ष होते है--एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। मानव-जीवन के बाह्य जीवन से सम्बद्ध सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों तथा जीवन के उत्थान-पतन के विविध रूपो का महाकाव्य मे वर्णन होना आवश्यक है।

(ग) जीवन की सर्वाङ्गीण अभिव्यक्ति

सच्चा महाकाव्य देश-विशेष और युग-विशेष के सामाजिक आदर्शो, सास्कृतिक चेतना, धार्मिक मान्यताओ एव युग-जीवन के समष्टि-रूप को अपने कलेवर मे समेटे रहता है। महाकाव्य मे जीवन के आन्तरिक पक्ष से सम्बन्ध रखने वाली मूल-प्रवृत्तियो के उस सार्वभौम और सार्वजनीन द्वन्द्व का चित्रण होना भी परम आवश्यक है जो मानव-मन मे सदा से चला आ रहा है। मानव-मन मे सुख-दु ख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जय-पराजय, प्रेम-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष आदि भावनाएँ उत्पन्न होती है, महाकाव्य मे इन सबका स्वाभाविक वर्णन होना चाहिए। एक सफल महाकाव्यकार जीवन के विविध व्यापारो, अन्तर्जगत् के नाना भावो और मानसिक दशाओं का इतना हृदयग्राही और यथार्थ वर्णन करता है जो समस्त मानव-समाज को भावुकता की उस परमोच्च भूमि पर ले जाता है, जहाँ जाति, धर्म, देश और काल के भेद-भाव नष्ट हो जाते है और विश्व-हृदय का स्पन्दन सुनने को मिलता है। ऐसे

महाकाव्य किसी देश-विशेष की नही, अपितु समस्त ससार की सम्पत्ति बन जाते है, क्योकि वे मानव-जीवन की घनीभूत, विशद और गूढतम शाश्वत अनुभूतियो को वाणी प्रदान करके ऐसी भावना का प्रसार करते है जो समस्त मानवता को एक भाव-भूमि पर लाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष करती हे ।

रस महाकाव्य का अन्य आवश्यक तत्त्व है । यो तो रस को प्रत्येक वर्ग के काव्य की आत्मा बताया गया है, तथापि महाकाव्य मे अविरल रसानुभूति को विशेष प्रधानता दी गई है । आचार्य विश्वनाथ महाकाव्य मे शृ गार, वीर और शान्त इन तीन रसो मे से एक रस प्रमुख होना चाहिए तथा अन्य रसो का गौण-रूप मे समावेश होना चाहिए, यह कह कर रस के क्षेत्र को सीमित कर देते हैं । यद्यपि सस्कृत साहित्य मे प्राय ऐसे ही महाकाव्य पाये जाते है जिनमे उक्त तीनो रसो मे से किसी एक रस का प्राधान्य है, फिर भी आधुनिक विद्वान् रसो की सीमा बाँधने के पक्ष मे नही है, क्योकि करुण जैसे अन्य रस भी महाकाव्य मे प्रधान रस के रूप मे स्थान पा सकते है । ध्वन्यालोककार तो रामायण को करुण-रस-प्रधान काव्य ही स्वीकार करते है । महाकाव्यकार को विभाव, अनुभाव और सचारी भावो के द्वारा इन रसो की व्यजना करनी चाहिए ।

(घ) तीव्र रस-व्यजना

किन्तु, महाकाव्य मे विविध रसो की योजना-मात्र पर्याप्त नही है, अपितु रस-व्यजना मे तीव्रता भी अपेक्षित हे । रस-व्यजना मे तीव्रता तभी आती है जब विविध अनुकूल-प्रतिकूल घटनाओ और परिस्थितियो मे पड कर पात्रो की मन स्थिति कैसी होती है, इसके चित्रण की ओर महाकाव्यकार सतत सचेष्ट रहे । यथार्थ तो यह है कि कथा-प्रवाह के निर्वाह-मात्र से सफल महाकाव्यकार का काम नही चल सकता जब तक कि कथावस्तु मे जीवन के मार्मिक प्रसगो का हृदयग्राही वर्णन न हो । अत जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलो को चुन कर उनका रसात्मक चित्रण करना महाकाव्य की बहुत बडी आवश्यकता है । यदि कथावस्तु के नीरस इतिवृत्तात्मक स्थलो को मरुभूमि की उपमा दी जाए तो मार्मिक प्रसगो को मरुभूमि मे कही-कही पाये जाने वाले नखलिस्तान कहा जा सकता है जहाँ पहुँच कर काव्य की इतिवृत्तात्मकता-रूपी मरुभूमि मे भटकते हुए पाठक के हृदय को अपूर्व शान्ति मिलती है । जो कवि मार्मिक स्थलो की सृष्टि करने मे जितनी कुशलता का परिचय देगा, उसकी रस-व्यजना उतनी ही तीव्र और गम्भीर हो सकेगी । शास्त्रीय भाषा मे इसे 'रसानुरूपसन्दर्भत्व' कहा जाता है जिसे हेमचन्द्र ने महाकाव्य के लिए अनिवार्य बताया है ।

(ङ) वस्तु-वर्णन

महाकाव्य मे प्रकृति तथा अन्य विविध विषयो का मनोहर वर्णन होना चाहिए । भारतीय और पाश्चात्य आलङ्कारिको ने महाकाव्य के वर्ण्य-विषयो की लम्बी सूची प्रस्तुत की है । सस्कृत-साहित्य-शास्त्र के अनुसार सन्ध्या, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रभात, सूर्योदय, नगर, वन, पर्वत, षड्ऋतु, सागर, युद्ध, मन्त्रणा, जलक्रीडा, सुरापान, सुरत, पुष्पावचय, सयोग, वियोग आदि वर्णनो

को महाकाव्य मे स्थान मिलना चाहिए। इनके द्वारा महाकाव्यकार युग-जीवन की झाँकी को प्रस्तुत करने मे समर्थ होता है। मनुष्य-मनुष्य, मनुष्य-प्रकृति, मनुष्य-पशुपक्षी-जगत्, माता-पुत्र, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, श्वश्रू-वधू, भाई-बहिन आदि के जो सम्बन्ध है उनका विशद वर्णन करना ही इन वर्ण्य-विषयो का मुख्य उद्देश्य है। महाकाव्य मे इन वर्ण्य-विषयो का समावेश सन्दर्भ के अनुकूल और कथानक का अग बना कर करना चाहिए जिससे वे अलग से चिपकाये गये प्रतीत न हो। एक दूसरी बात यह है कि ये वर्णनात्मक अश इतने लम्बे नही होने चाहिए जिससे कि कथानक मे शिथिलता आ जाए। महाकाव्य की घटनाओ और कथानक के प्रवाह मे वे बाधक-रूप मे नही, अपितु साधक-रूप मे आने चाहिए।

(च) प्रौढ़ भाषा-शैली

महाकाव्य की भाषा मे प्रौढता और उसकी शैली मे प्राजलता आवश्यक है। महाकाव्य का विषय महान् एव व्यापक होता है, उसमे मानव के सर्वाङ्गीण जीवन की सरस अभिव्यक्ति होती है, पर यह सब सम्भव है प्रौढ भाषा-शैली के माध्यम से। महाकाव्य का साध्य महान् होता है तो उसका साधन (भाषा-शैली) भी महान् होना चाहिए। भावानुकूल पदावली के प्रयोग से महाकाव्यकार अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त और गरिमामयी बनाता है। महाकाव्य की भाषा सरस, प्रौढ, प्रवाहपूर्ण तथा अलङ्कारो के स्वाभाविक प्रयोग से समृद्ध होनी चाहिए। भाषा मे अलङ्कारो का स्वाभाविक प्रयोग रस-परिपाक मे सहायता पहुँचाता है और काव्य-सौन्दर्य मे वृद्धि करता है। लाक्षणिक और व्यङ्ग्य प्रयोग भी भाषा-सौष्ठव मे वृद्धि करते है। महाकाव्य की भाषा व्यवस्थित, सजीव और स्वाभाविक होनी चाहिए तथा ग्राम्य, श्रुतिकटुत्व जैसे दोषो से मुक्त होनी चाहिए। कुल मिला कर महाकाव्यकार का भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए।

(छ) छन्दोबद्धता और कथानक का खण्डों से विभक्त होना

महाकाव्य समाख्यानात्मक पद्यबद्ध रचना है और पद्य की रचना छन्द मे होती है। इस प्रकार महाकाव्य को छन्दोबद्ध रचना कहा जा सकता है। छन्दो के बिना महाकाव्य की रचना सम्भव ही नही है। कवि पारम्परिक छन्दो के साथ-साथ नवीन छन्दो का प्रयोग कर सकता है। महाकाव्य मे किस प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया जाए, इस सम्बन्ध मे कोई नियम निर्धारित नही किया जा सकता। यह तो कवि के अपने दृष्टिकोण की बात है। पर छन्दो का चयन अर्थ के अनुरूप हो, इसकी ओर उसे ध्यान रखना चाहिए। यही लक्ष्य करके हेमचन्द्र ने महाकाव्य की व्याख्या करते समय 'अर्थानुरूपछन्दस्त्वम्' कहा था।

महाकाव्य का कथानक भारतीय आलङ्कारिको के अनुसार सर्गों मे (हेमचन्द्र के अनुसार आश्वासको मे भी) विभक्त होना चाहिए। पर आधुनिक विद्वान् उसका सर्गबद्ध होना अनिवार्य नही मानते। उनके अनुसार महाकाव्य का कथानक विविध घटनाओ और प्रासगिक कथाओ के कारण इतना व्यापक हो जाता है कि उसे खण्डो मे विभक्त करना तो

महाकाव्यकार के लिए अनिवार्य है, किन्तु उन खण्डो को सर्ग या आश्वासक नाम देना अनिवार्य नही है। उन खण्डो को सर्ग, आश्वासक, परिच्छेद, उच्छ्वास, उत्साह, काण्ड, पर्व, प्रकाश आदि अनेक नामो मे से कोई भी नाम दिया जा सकता है, किन्तु उस खण्ड की विषय–वस्तु मे एकता और पूर्णता होना बहुत आवश्यक है।

महाकाव्य का उद्देश्य चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक, हर हालत मे महान् होना चाहिए। भारतीय विद्वानो ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्गफल—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—की प्राप्ति माना है जिसमे जीवन की विविध कामनाओ, मनोरथो और उद्देश्यो का अन्तर्भाव हो जाता है। महाकाव्य का उद्देश्य मानवता की विजय-पताका फहराना, लोक-कल्याण का पथ प्रशस्त करना तथा जीवन की विषम परिस्थितियो से सघर्ष करते हुए सत् अथवा श्रेय की साधना मे निरत रहने की प्रेरणा देना है।

(ज) महान् उद्देश्य

एक आदर्श महाकाव्य मे इन सब तत्त्वो का समावेश होना चाहिए, किन्तु विश्व-साहित्य मे ऐसे महाकाव्यो की सख्या बहुत कम है जिनमे उक्त सभी महाकाव्यीय तत्त्वो का समावेश हो। सस्कृत के लब्ध-प्रतिष्ठ महाकाव्य – किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीय चरित, हरविजय आदि—भी इस कसौटी पर कसने मे खरे नही उतरते, फिर भी उन्हे महाकाव्य की परिधि से बाहर नही किया जा सकता, क्योकि उनमे उपर्युक्त तत्त्वो मे से कुछ तत्त्वो को छोड कर अन्य तत्त्व विद्यमान है। अत हमारी दृष्टि मे महाकाव्य के स्वरूप-विधायक उक्त तत्त्वो मे से कुछ तत्त्वो का अभाव होने पर भी किसी काव्य को महाकाव्य माना जा सकता है यदि महाकाव्य-सम्बन्धी अन्य विशेषताएँ उसमे विद्यमान है। दण्डी ने स्पष्ट-रूप से कहा है :—

> न्यूनमप्यत्र यै कैश्चिदङ्गै काव्य न दुष्यति।
> यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विद ॥

अर्थात् यदि महाकाव्य का स्वरूप और उसके विभिन्न तत्त्व सुसम्बद्ध एव सहृदय जनो के लिए आनन्ददायक हो तो कुछ लक्षणो के अभाव मे भी महाकाव्य महाकाव्य ही रहता है, उसे महाकाव्य की श्रेणी से निकाला नही जा सकता।

महाकाव्य के उपर्युक्त तत्त्वो को ध्यान मे रखते हुए महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है —महाकाव्य प्रख्यात अथवा काल्पनिक वृत्त पर आधारित सर्ग अथवा अन्य किसी उचित शीर्षक मे विभक्त, उदात्त भाषा-शैली मे ग्रथित वह समाख्यानात्मक छन्दोबद्ध रचना है, जिसमे उद्देश्य की महत्ता, सुनियोजित शृङ्खलाबद्ध व्यापक कथानक मार्मिक स्थलो का वर्णन, मर्मस्पर्शी भाव-व्यजना, रस-प्रवाह, प्रकृति तथा वर्ण्य-विषयो के विशद वर्णन द्वारा वैचित्र्य-पूर्ण मानव-जीवन का चित्रण, महत्त्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्रो के माध्यम से युग-जीवन की झाँकी, जातीय आदर्शो की स्थापना तथा सास्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हो।

महाकाव्य की परिभाषा

द्वितीय अध्याय

पूर्ववर्ती और समवर्ती महाकाव्य-परम्परा

आलोच्य युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो पर पूर्ववर्ती और समवर्ती सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श के महाकाव्यो का बहुत प्रभाव पडा है। ऐसी स्थिति मे इस युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो के अध्ययन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनके पूर्ववर्ती एव समवर्ती महाकाव्य-साहित्य पर एक विहगम दृष्टि डाल कर उसकी शैलीगत विशेषताओ का अध्ययन किया जाए। प्रस्तुत अध्याय मे इसी दृष्टि से सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श के महाकाव्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पाश्चात्य समीक्षक, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महाकाव्य के दो भेद स्वीकार करते है—सकलनात्मक महाकाव्य (Epic of Growth) और अलकृत महाकाव्य (Epic of Art)। सकलनात्मक या विकसनशील महाकाव्य उसे कहते है जो अनेक शताब्दियो मे अनेक हाथों से सशोधित, सम्पादित, परिवर्द्धित और सस्कृत होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त होता है। उसका आधार प्राचीन गाथाएँ होती हैं। अलकृत महाकाव्य व्यक्ति-विशेष की रचना होता है। उसमे कलापक्ष और भाषा-शैली की सुन्दरता की ओर कवि का विशेष ध्यान रहता है। सस्कृत-महाकाव्यो मे रामायण और महाभारत की गणना विकसनशील या सकलनात्मक महाकाव्यो मे और परवर्ती महाकाव्यो की गणना अलकृत महाकाव्यों मे की जाती है।

संस्कृत के महाकाव्य

सस्कृत-साहित्य में रामायण को आदि काव्य और उसके रचयिता वाल्मीकि को आदि कवि माना जाता है। भारतीय विद्वान् महाभारत को महाकाव्य न कह कर इतिहास, पुराण या आख्यान कहना अधिक उचित समझते हैं, जबकि पाश्चात्य विद्वान् दोनो ग्रन्थों को महाकाव्य कहने के पक्ष मे है।

सस्कृत-साहित्य मे रामायण और महाभारत के पूर्व भी महाकाव्यों का अस्तित्व किसी न किसी रूप मे अवश्य रहा होगा, यह इन दोनो महाकाव्यो के विकसित रूप और परिमार्जित शैली से सिद्ध होता है। किन्तु, महाकाव्य के प्रारम्भिक विकास का ठीक-ठीक पता लगाना बहुत कठिन है। डॉ० वर्नेट जैसे विद्वान् ऋग्वेद के सवाद-सूक्तो एव ब्राह्मण-ग्रन्थों मे आये हुए कथानकों को महाकाव्य का प्रारम्भिक रूप मानते है, फिर भी इस आधार पर यह सिद्ध नही हो जाता कि वैदिक काल मे महाकाव्यो का अस्तित्व था। वस्तुतः रामायण-पूर्व महाकाव्यो का इतिहास अभी तक अन्धकार में लीन है।

'रामायण' विश्व-साहित्य के प्राचीनतम महाकाव्यो की तुलना मे भाषा, भाव, छन्द, रचना-विधान एव रस-व्यजना सभी दृष्टियो से एक उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हो चुकी है। यद्यपि कुछ विदेशी विद्वान् उसे एक ही व्यक्ति की रचना नही मानते, तथापि अधिकाश भारतीय विद्वान् उसे एक ही व्यक्ति (वाल्मीकि) की रचना मानते हैं। परन्तु, उसमे प्रक्षिप्त अशो के होने की सभावना वे भी स्वीकार करते हैं। रामायण मे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का जीवनचरित सात काण्डो मे वर्णित है। रामायण की प्रधान विशेषता यह है कि उसमे घर की ही बाते अत्यन्त विस्तृत-रूप मे वर्णित हुई है। पिता-पुत्र मे, भाई-भाई मे, पति-पत्नी मे और स्वामी-सेवक मे जो धर्म-बन्धन है, जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है उसको रामायण ने इतना उदात्त एव आदर्श बना दिया है कि वह सहज मे ही समस्त मानव-जाति के लिए उपयोगी तथा अनुकरणीय हो गया है। हिमालय जैसे उन्नत आदर्शों तथा सागर जैसे गम्भीर विचारो का यदि एक साथ किसी ग्रन्थ मे समावेश हो पाया है तो वह रामायण ही है।

विकसनशील महाकाव्य
रामायण

रामायण की मुख्य कथा के अन्तर्गत कई सुन्दर उपाख्यान ग्रथित हैं जिनमे विष्णु के वामनावतार, कुमारोत्पत्ति, गङ्गावतरण, समुद्रमन्थन और ययाति एव नहुष आदि से सम्बन्धित उपाख्यान महत्त्वपूर्ण है। रामायण के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनो मे स्वाभाविक सौन्दर्य है। मृदुल भावो की योजना, सरल और परिष्कृत भाषा-शैली, विविध रसो के परिपाक तथा अपूर्व प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्ति के कारण रामायण मे काव्य-शैली का स्वाभाविक रूप निहित है। श्री वी० वरदाचार्य ने अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास मे उन ग्रन्थो की सूची दी है जिनकी रचना रामायण की कथा का दाय लेकर हुई है। इस सूची को देख कर रामायण की लोकप्रियता का पता सहज ही लग जाता है।[1]

१८ पर्वों मे विभक्त 'महाभारत' एक विशालकाय ग्रन्थ है। परम्परा से यह व्यास की कृति कहा जाता है, किन्तु आधुनिक शोधो से यह सिद्ध हो चला है कि जिस रूप मे महाभारत आज प्राप्त है वह एक व्यक्ति की कृति नही है। उसकी रचना अनेक व्यक्तियो ने की। समय-समय पर उसमे प्रक्षिप्ताश मिलते गये, इसलिए महाभारत का कलेवर पहले की अपेक्षा बढ गया। इतिहासकार विन्टरनित्स का कहना है कि महाभारत का कथानक अपने मूल-रूप मे पहले-पहल केवल वीर-गीतो के रूप मे प्रचलित था। उन्ही वीर-गीतो का सकलन, सशोधन और व्यवस्थापन करके कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने महाभारत की रचना की। इसके सैंकडो वर्षों बाद उसमे सूतो और चारणो द्वारा दूसरी वीर-गाथाएँ और गीत सम्मिलित कर लिये गये जिससे उसके कलेवर मे वृद्धि हो गई। इन बातो के अतिरिक्त महाभारत के उपाख्यानो मे जो त्याग, वैराग्य, क्षमा, दया, दाक्षिण्य, करुणा, उदारता, पशु-पक्षी, देव-दानव, भूत-प्रेत एव

महाभारत

---

(१) **वी० वरदाचार्य, संस्कृत-साहित्य का इतिहास, अनुवादक डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ३८३-८४**

साधु-सन्तो से सम्बन्धित दूसरी कथाएँ मिलती है उनका भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। इन प्रसगो का समावेश साधुओ और सन्तो ने किया। इन नये मनोरजक आख्यानों के जुड जाने से महाभारत का आकार और बढ गया।

महाभारत की मुख्य कथा कौरव-पाण्डवो की युद्ध-कथा है, किन्तु उसमे बीच-बीच मे इतने उपाख्यान जुडे हुए है कि उनके कारण मुख्य कथा प्रवाह स्थल-स्थल पर अवरुद्ध होता है। इनमे से कुछ उपाख्यान तो इतने बडे है कि पाश्चात्य आलोचक उन्हे 'एपिक विदिन एपिक' कहते है। वस्तुत. महाभारत मे मुख्य कथा और उपकथानको मे अन्विति का अभाव दिखाई देता है। महाभारत मे अपने युग की सस्कृति, सभ्यता तथा सामाजिक, राजनीतिक एव धार्मिक स्थितियों के सजीव चित्र है। महाभारत का विषय अत्यन्त व्यापक है। उसमे राजनीति, दर्शन, इतिहास, धर्मशास्त्र, विज्ञान आदि सभी विषयो का समावेश है। इसी कारण वह महाकाव्य ही नही, अपितु विविध विषयो का विश्वकोश है। इसलिए महाभारत ने स्वय ही अपने गौरव को व्यक्त करते हुए कहा है, कि इस ग्रन्थ मे जो कुछ है, वह अन्यत्र भी है, किन्तु इसमे जो नही है वह कही नही है। श्री वी० वरदाचार्य ने अपने इतिहास मे ऐसी कृतियो की लम्बी सूची प्रस्तुत की है जिनका कथानक महाभारत से लिया गया है या उससे प्रभावित है।[1] वास्तव मे 'रामायण' और 'महाभारत' ये दोनो महाकाव्य परवर्ती साहित्य के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, भास, वस्तुपाल, अमरचन्द्र-सूरि आदि कवियो की अधिकाश कृतियो का आधार ये दो ही ग्रन्थ हैं।

रामायण' और 'महाभारत' के पश्चात् ऐसे महाकाव्यो का उदय हुआ जिनमे कलात्मकता अधिक आती गयी और स्वाभाविकता का ह्रास होता गया। इसी कारण इन महाकाव्यो को अलकृत महाकाव्य कहा जाता है। कतिपय विद्वान् इन्हे अनुकृत महाकाव्य की अभिधा प्रदान करते है। उनका कथन है, कि परवर्ती सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यो को रामायण और महाभारत ने प्रभावित किया है। कुछ ने महाभारत की शैली को अपनाया है और कुछ ने रामायण की शैली को। अत. रामायण और महाभारत के बाद के महाकाव्यो को अनुकृत महाकाव्य भी कहा जा सकता है। ये सभी अनुकृत या अलकृत महाकाव्य एक-एक व्यक्ति की रचना हैं।

अलंकृत महाकाव्य

आलोच्य युग (तेरहवी-चौदहवी शताब्दी) के पूर्व जितने भी सस्कृत के अलकृत महाकाव्य उपलब्ध होते हैं उन्हे सामान्यतया तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) शास्त्रीय महाकाव्य (२) ऐतिहासिक महाकाव्य (३) पौराणिक महाकाव्य। संस्कृत-महाकाव्यो मे कतिपय ऐसे भी महाकाव्य है जिनमे एकाधिक शैलियो के दर्शन होते हैं जैसे हेमचन्द्र का कुमारपालचरित। उसमे एक ओर शास्त्रीय शैली का समावेश है तो

---

(१) वी० वरदाचार्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनु० डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ३८३–८४

दूसरी ओर ऐतिहासिक शैली का । इसी तरह अन्य महाकाव्यो मे पौराणिक एव ऐतिहासिक शैलियो के दर्शन होते है । अत. यह विभाजन पूर्णत: सत्य न होकर अशत सत्य ही माना जाना चाहिए । इतिहासकार विन्टरनित्स, कतिपय अन्य पाश्चात्य समीक्षक तथा उनका अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वान् सस्कृत के कुछ महाकाव्यो को जो मूलत पौराणिक पृष्ठभूमि पर निर्मित है, रोमाचक महाकाव्यो मे गिनते है, क्योकि उनमे प्रेम-तत्त्व तथा लौकिक आख्यानको की विशेषताओ का प्रचुर समावेश है । इस दृष्टि से कदाचित् ही कोई पौराणिक महाकाव्य ऐसा होगा जिसमें लौकिक आख्यानको एव प्रेम-तत्त्व का समावेश न हो । इसलिए यहाँ रोमाचक शैली को एक पृथक् शैली नही माना गया है । सच तो यह है कि उन कथाओ को भी, जो कदाचित् पूर्णतया लौकिक प्रेम-कहानी ही है, काव्यकारो ने गहरे पौराणिक रग से रँग दिया है । अत. उन्हे पौराणिक महाकाव्यो के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

अलंकृत महाकाव्यो के रूप

शास्त्रीय महाकाव्यो को भी तीन भागो मे बाँटा जा मकता है । एक ता वे जिनका निर्माण भामह और दण्डी जैसे आलकारियो द्वारा बनाये गये लक्षण-ग्रन्थो के पूर्व हुआ । इन महाकाव्यो की रचना मुख्यतया रामायण की शैली से प्रभावित थी । इनका स्वरूप महाकाव्यो के रूप-शिल्प-सम्बन्धी नियमो के वन्धन मे जकडा हुआ नही था । इनकी रचना किसी आचार्य के अलकार-शास्त्र का अध्ययन करके महाकाव्य-सम्बन्धी सभी रूढियो और महाकाव्य के नियमो की खानापूरी करके नही की गई है । अत इन रचनाओ मे कवि-प्रतिभा का स्वाभाविक प्रस्फुटन हुआ है । उनमे स्वाभाविकता और कलात्मकता दोनो विशेषताओ को स्थान मिला है । ऐसे काव्यो को रीतिमुक्त महाकाव्य कहा जा सकता है । अश्वघोष और कालिदास के काव्य रीतिमुक्त शैली के प्रतिनिधि काव्य है ।

शास्त्रीय महाकाव्य

(क) रीतिमुक्त महाकाव्य

अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' नामक दो महाकाव्य ईसा की प्रथम शताब्दी मे लिखे । इन दोनों महाकाव्यो में स्वाभाविक सौन्दर्य विद्यमान है । 'बुद्धचरित' मे गौतम बुद्ध का जीवन-चरित विस्तार से वर्णित है । कहा जाता है कि 'बुद्धचरित' २८ सर्गों मे लिखा गया था, किन्तु आज तो उसके केवल १४ सर्ग ही प्राप्त होते है । 'सौन्दरनन्द' काव्य मे गौतम बुद्ध के अनुज नन्द के बौद्ध धर्म मे दीक्षित होने का रोचक वर्णन है । यह महाकाव्य १८ सर्गो मे समाप्त हुआ है । अश्वघोष प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु तथा महान् पण्डित थे, इस कारण उनके काव्यो में धर्म-प्रचार की भावना भी दीख पडती है और दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन भी हुआ है । फिर भी उनके वर्णन प्रसगोचित और स्वाभाविक है । प० बलदेव उपाध्याय के शब्दो मे "अश्वघोष की कविता-शैली सरस वैदर्भी है । स्वाभाविकता की वह खान है और कृत्रिमता से कोसो दूर है । माधुर्य और प्रसाद गुण उसमे कूट-कूट कर भरे हुए हैं । रस-परिपाक भी खूब है । वस्तुत अश्वघोप की शैली स्वाभाविक सौन्दर्य और सुकुमारता को

लिए हुए है।"[1] परवर्ती महाकाव्यो मे जो अप्रासङ्गिक, असन्तुलित और कृत्रिम दीर्घ वर्णन मिलते है उनका अश्वघोष के इन काव्यो मे अभाव है। उनके कथानको मे प्रवाह और गति है।

रीतिमुक्त शैली के दूसरे कवि है—कालिदास। कालिदास और अश्वघोष मे कौन पूर्ववर्ती है? इस विवाद मे पडना यहाँ अभीष्ट नही है। जीवन के दोनो पक्षो—राग-विराग और भोग-त्याग का जितना सुन्दर वर्णन कालिदास के काव्यो मे मिलता है वह अन्यत्र सुलभ नही है। कालिदास के दो महाकाव्य है—(१) रघुवश और (२) कुमारसंभव। 'कुमारसम्भव' मे १८ सर्ग उपलब्ध होते है। इनमे प्रारम्भिक आठ सर्ग कालिदास की रचना माने जाते है। इनमे पार्वती-जन्म, मदन-दहन, रति-विलाप, पार्वती की तपश्चर्या, शिव-पार्वती-विवाह तथा उनकी रति का वर्णन है। 'रघुवश' मे रघुवशी राजाओ का जीवन १९ सर्गो मे वर्णित है। इन काव्यो मे काव्य-कला का विकसित और निखरा हुआ रूप दृष्टिगत होता है। डा० शम्भूनाथसिह के शब्दो मे—"वस्तुतः कालिदास समन्वय और सन्तुलन के कवि है। उनका विचारक और दार्शनिक पक्ष जितना प्रबल है उससे कम प्रबल उनका सौन्दर्य-प्रेमी और कलाकार रूप नही है। पर उन दोनो रूपो का परस्पर ऐसा रासायनिक सम्मिश्रण हुआ है कि कालिदास का व्यक्तित्व समूचे भारतीय साहित्य मे बिलकुल अलग दिखाई देता है। उन्होने भोग और त्याग, आकर्षण और विकर्षण, शरीर और आत्मा का समन्वय तो किया ही है, रूप-शिल्प मे भी सादगी और अलकृति, सहजता और गम्भीरता, लघुता और विराट्ता, माधुर्य और ज्ञान-गरिमा, काव्य-प्रतिभा और पाण्डित्य का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण किया है।"[2] कालिदास के महाकाव्यो मे कथानक मे ऋजु प्रवाह, चरित्र-चित्रण मे उदात्तता, भाषा-शैली मे गरिमामयी प्राजलता तथा मार्मिक स्थलो के चित्रण मे रसमयता का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

रीतिमुक्त महाकाव्यो की परम्परा का निर्वाह सातवी शताब्दी के कवि कुमारदास के 'जानकीहरण' तथा नवी शताब्दी के कवि अभिनन्द-कृत 'रामचरित' मे भी हुआ है। यद्यपि ये कवि भारवि के उपरान्त हुए, परन्तु उन्होने भारवि की शैली न अपना कर कालिदास की शैली अपनाई। ये दोनो महाकाव्य सरसता, सरलता एव स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। अभिनन्द के 'रामचरित' पर रामायण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

दूसरी प्रकार के शास्त्रीय महाकाव्यो मे उन महाकाव्यो की गणना की जा सकती है जिनमे स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता, सरलता के स्थान पर दुरूहता और काव्यत्व के स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना का बाहुल्य है। ऐसे काव्यो मे अत्यधिक अलकृति, पाण्डित्य-प्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पनातिरेक, कथावस्तु की उपेक्षा तथा वस्तुव्यापार का अनावश्यक विस्तार मिलता है। इन काव्यो को रीतिबद्ध

---

(१) प० बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ९७

(२) डॉ० शम्भूनाथसिह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १४५

महाकाव्य कहा जा सकता है। रीतिबद्ध शैली के जन्मदाता भारवि माने जाते हैं। श्री बलदेव उपाध्याय ने इस शैली की दो विशेषताएँ बताई है,[1] विषय-सम्बन्धी और भाषा-सम्बन्धी। भारवि के पहले वाल्मीकि और कालिदास ने अपने महाकाव्य का जो विषय चुना था वह अत्यन्त विस्तृत तथा परिमाण मे विपुल है। कालिदास ने अपने रघुवश के केवल १९ सर्गो के भीतर दिलीप से प्रारम्भ कर अग्निवर्ण तक रघुवश की अनेक पीढियो का वर्णन बडी सफलता के साथ किया है, पर भारवि ने

(ख) रीतिबद्ध महाकाव्य

अर्जुन का किरात के पास जाना और उनसे युद्ध कर अस्त्र प्राप्त करने की स्वल्प कथा को २० सर्गो मे कह डाला है। इन्होने अपने काव्य मे पर्वत, नदी, सन्ध्या, प्रात, ऋतु तथा अनेक प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे अनेक सर्ग समाप्त कर दिये है और इस प्रकार इस छोटे से कथानक को इतना अधिक विस्तार प्रदान किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारवि से पहले काव्य का विषय विस्तृत होता था और प्राकृतिक वर्णन कम। परन्तु भारवि के बाद काव्य की कथावस्तु अत्यन्त कम होने लगी और प्राकृतिक वर्णन अधिक। दूसरी बात भाषा-सम्बन्धी है। वाल्मीकि तथा कालिदास ने अपने महाकाव्यो मे सीधी-सादी, चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है, उनकी कविता प्रसाद-गुण से युक्त है। न तो उसमे कही क्लिष्ट-कल्पना मिलती है और न अलङ्कारो की बेसुरी झनकार। उनकी कविता मे अलङ्कारो के लाने का परिश्रमपूर्वक प्रयास नही किया गया है और न चित्र-काव्य लिख कर गोमूत्र और द्वादशार चक्र का ही प्रदर्शन किया गया है। उनकी कविता मे जहाँ कही भी अलङ्कार आये हैं वे स्वाभाविक रीति से अनायास-प्रयुक्त है। उनस कविता को समझने मे कष्ट नही होता, बल्कि उसका सौष्ठव और अधिक बढ जाता है। परन्तु, भारवि ने एक ऐसी शैली को जन्म दिया, एक ऐसी रीति का काव्य मे प्रयोग किया जो अलङ्कार के भार से लदी है, श्लेष के प्रयोग से दुरूह बन गई है तथा चित्रकाव्य का प्रदर्शन करने की बलवती इच्छा से पहेली के समान कठिन हो गई है।

भारवि ने छठी-सातवी शताब्दी मे 'श्र्यङ्क' महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' लिखा। किरातार्जुनीय का मूल कथानक, जैसा कि ऊपर बताया गया है, बहुत छोटा है, किन्तु वस्तु-व्यापार की अनावश्यक स्फीति उसमे है। चतुर्थ सर्ग मे शरद, पचम मे हिमालय, अष्टम मे कुसुमावचय तथा जलक्रीडा, नवम मे सन्ध्या, पानगोष्ठी, रतिक्रीडा, दशम मे षड्ऋतु तथा पन्द्रहवें सर्ग मे चित्रात्मक युद्ध का वर्णन किया गया है। भारवि के किरातार्जुनीय मे महाकाव्य की विषय-वस्तु तथा रूप-शिल्प का सन्तुलन बिगडा तो आगे वह उत्तरोत्तर बिगडता ही चला गया। माघ (७वी शताब्दी उत्तरार्द्ध) ने वस्तु-व्यापार के अप्रासङ्गिक वर्णनो एव पाण्डित्य-प्रदर्शन मे किरातार्जुनीय से भी आगे निकलने की चेष्टा की है। उन्होने अपने २० सर्ग के 'लक्ष्म्यङ्क' महाकाव्य 'शिशुपालवध' मे तीसरे सर्ग से लेकर

(१) पं० बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १६६–१६७

तेरहवें सर्ग तक श्रीकृष्ण का अतुल वैभव, वनविहार, जलक्रीडा, मधुपान, प्राकृतिक छटा आदि का विस्तृत वर्णन किया है और चित्रालङ्कार का सन्निवेश पूरे एक सर्ग मे किया है। उसमे स्थान-स्थान पर कवि ने अपने विविध-शास्त्र-विषयक पाण्डित्य को प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। बृहत्त्रयी के तीसरे महाकाव्य 'नैषधचरित' में भी आलङ्कारिक वर्णनो एव चमत्कार-प्रदर्शन की प्रमुखता है। इन महाकाव्यो मे व्याकरण, योग, न्याय, राजनीति, कामशास्त्र, दर्शन, नाट्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, अलङ्कार-शास्त्र आदि शास्त्रो का पाण्डित्य प्रदर्शित किया गया है। रीतिबद्ध महाकाव्यो की परम्परा मे नवी शताब्दी मे निर्मित रत्नाकर का विशालकाय महाकाव्य 'हरविजय' है। यह महाकाव्य ५० सर्गों का है। इसका कथानक बहुत ही स्वल्प है—शङ्कर के द्वारा अन्धकासुर का वध। पर उसके लगभग ३५ सर्गों मे नगर, ऋतु, शिव-ताण्डव, पर्वत, कुसुमावचय, जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय, उषा, समुद्रोल्लास, प्रसाधन, विरहदशा, पानगोष्ठी, सभोग, चण्डीस्तोत्र, सैन्य-प्रस्थान, चित्रयुद्ध, दूतसवाद और अन्य अनावश्यक वर्णनो का साम्राज्य है। इसमे भी कवि द्वारा शैवदर्शन, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, इतिहास, पुराण, नाट्य, सगीत, अलङ्कारशास्त्र, चित्रकाव्य प्रभृति अनेक विषयो से सम्बन्धित अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन किया गया है। इसी शताब्दी मे शिवस्वामी ने 'कप्फिणाभ्युदय' नामक २० सर्गो का एक 'शिवाङ्क' काव्य लिखा जिसमे बौद्ध-साहित्य मे प्रसिद्ध कप्फिण आख्यान का आधार लिया गया है। प्रसेनजित से पराजित होकर कप्फिण को वैराग्य हो जाता है और वह बुद्ध की शरण मे जाकर कृतकृत्य हो जाता है। बस इतना ही इसका कथानक है, किन्तु छठे सर्ग से लेकर अठारहवें सर्ग तक मलय-पर्वत, षड्ऋतु, कुसुमावचय, जलक्रीडा, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, मदिरापान, शृंगार-क्रीडा, प्रभात, चित्रयुद्ध आदि का वर्णन किया गया है। बारहवी शताब्दी मे मङ्खक द्वारा रचित 'श्रीकण्ठचरित' भी रीतिबद्ध काव्यो की परम्परा मे आता है। इसमे भगवान् शङ्कर और त्रिपुर के युद्ध का वर्णन है। इसमे २५ सर्ग है जिनमे सातवें सर्ग से लेकर सोलहवें सर्ग तक दोलान्दोलन, पुष्पावचय, जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय, प्रसाधन, पानकेलि, प्रभात आदि के विस्तृत वर्णन हैं। इसी शताब्दी मे वासुदेव कवि ने आठ आश्वासो मे महाभारत के युद्ध से सम्बन्धित 'युधिष्ठिरविजय' रचा, जिसके प्रत्येक श्लोक मे यमक की पाण्डित्यपूर्ण योजना की गई है। इस प्रकार कालिदास के बाद सस्कृत-महाकाव्य-साहित्य ह्रासोन्मुख होकर रुढि-पालन और चमत्कार-प्रदर्शन का प्रयत्न-मात्र रह गया।

तीसरे प्रकार के शास्त्रीय काव्य वे है जिनमे अलकृत शैली के द्वारा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति शास्त्र-काव्यो एवं बह्वर्थक (नानार्थक) काव्यो के रूप मे उपलब्ध होती है। शास्त्र-

(ग) शास्त्र-काव्य और बह्वर्थक काव्य

काव्य की परम्परा का प्रचलन छठी शताब्दी मे भट्टि ने किया। उन्होने २० सर्गों मे 'रावणवध' नामक महाकाव्य लिखा जो 'भट्टि-काव्य' के नाम से प्रख्यात है। इसमें राम-कथा के साथ-साथ व्याकरण के प्रयोग और अलङ्कारो के लक्षण भी बताये गये है। काव्य के साथ-साथ यह व्याकरण-शास्त्र का भी ग्रन्थ है, अतः इसे शास्त्र-काव्य

कहा जाता है। परन्तु इस कारण, श्री वाचस्पति गैरोला के शब्दो मे, "काव्य की सुकोमल प्रकृति को व्याकरण के निर्मम हाथो ने इस काव्य मे ऐसा मसल दिया हे कि वह महाकाव्य की जगह व्याकरण का ग्रन्थ ही बन गया है।"[1] सातवी शताब्दी मे (किसी-किसी के मत से पॉचवी शताब्दी मे) भौमक या भीमक कवि ने २७ सर्गों मे रावणार्जुनीयम्' महाकाव्य लिख कर इस परम्परा को आगे बढाया। इसमे रावण और सहस्रार्जुन के युद्ध का वर्णन है। इसमे भी कथा के साथ पाणिनीय व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को बताया गया है। दिवाकर-कृत 'लक्षणादर्श' काव्य मे भी सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। बारहवी शताब्दी मे रचित आचार्य हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित' या 'द्वयाश्रय काव्य' इस परम्परा के महाकाव्यो मे बहुत प्रसिद्ध है। इसके २८ सर्गो मे २० सस्कृत मे और ८ सर्ग प्राकृत मे है। इसमे चालुक्यवशी राजाओ, विशेष कर कुमारपाल का जीवन-चरित वर्णित होने के साथ-साथ भट्टि-काव्य के सदृश सस्कृत व्याकरण के प्रयोगो को तो विशद किया ही गया है, प्राकृत और अपभ्रश का व्याकरण भी बताया गया है। बारहवी शताब्दी मे ही वासुदेव कवि ने 'वासुदेवविजय' नामक महाकाव्य छह सर्गों मे लिखा है जिसमे कृष्ण-कथा के साथ-साथ धातु-रूप भी प्रदर्शित किये गये है।

शास्त्रीय शैली का एक रूप बह्वर्थक महाकाव्यो मे भी दिखाई पडता है। जिन महाकाव्यो मे दो या दो से अधिक कथानको को विविध अलङ्कारो के सहारे ऐसा पिरोया जाए कि पाठक चमत्कृत हो उठे, उन्हे बह्वर्थक महाकाव्य कहा जाता है। ऐसे महाकाव्यों का लक्ष्य चमत्कृति और पाण्डित्य-प्रदर्शन ही होता है। इस प्रकार के काव्य बारहवी शताब्दी मे अधिक लिखे गये। जैन कवि धनजय ने १८ सर्गो मे 'राघवपाण्डवीयम्' नामक उच्च कोटि का महाकाव्य लिखा। इसमे श्लेष की सहायता से रामायण की कथा के साथ-साथ महाभारत की कथा भी वर्णित है। इन्ही दो कथानको को लेकर, बारहवी शताब्दी मे ही, कविराज माधव भट्ट ने एक दूसरा महाकाव्य 'राघवपाण्डवीयम्' १३ सर्गो मे लिखा। मेकडानल ने माधव भट्ट का समय आठवी शताब्दी माना है। बारहवी शताब्दी मे कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्र ने 'सप्तसन्धान' महाकाव्य लिखा, जिसमे प्रत्येक श्लोक के सात अर्थ निकलते थे। दुर्भाग्य से यह काव्य अब नही मिलता है। इसी समय के लगभग सन्ध्याकरनन्दी ने 'रामचरित' लिखा जिसमे बंगाल के राजा रामपाल के जीवनचरित के साथ-साथ रामायण की कथा भी निबद्ध है। इन महाकाव्यो की परम्परा मे आगे चल कर हरिदत्तसूरि-कृत 'राघवनैषधीयम्', चिदम्बर-कृत 'राघवपाण्डवयादवीयम्', विद्यामाधव-कृत 'पार्वतीरुक्मिणीयम्' तथा वेङ्कटाध्वरि-कृत यादवराघवीयम्' आदि का निर्माण हुआ।

सस्कृत मे ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य भी लिखे गये है, यद्यपि वे सख्या मे कम है। ऐतिहासिक कहे जाने वाले महाकाव्यो मे काल-क्रम से शकुक-रचित 'भुवनाभ्युदय' काव्य सर्वप्रथम आता है। इसमे मम्मट और उत्पलक के युद्ध का ऐतिहासिक विवरण दिया गया था। इसकी सूचना कल्हण की 'राजतरगिणी' से मिलती है, किन्तु सम्प्रति

(१) वाचस्पति गैरोला, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८५५

यह ग्रन्थ अप्राप्य है। दसवी शताब्दी मे सिन्धुराज के भ्राता मुंज के सभाकवि पद्मगुप्त या परिमल ने १८ सर्गों का एक ऐतिहासिक महाकाव्य 'नवसाहसाङ्कचरित' लिखा। इस काव्य मे नवसाहसाङ्क को नायिका शशिप्रभा की प्राप्ति किस प्रकार हुई, इसका विवरण है। 'नवसाहसाङ्क' राजा भोज के पिता सिन्धुराज का विरुद था। इसके बारहवे सर्ग मे सिन्धुराज के पूर्ववर्ती समस्त परमारवशी राजाओं का काल-क्रम से वर्णन है जिनकी सत्यता शिलालेखो से प्रमाणित हो चुकी है। यद्यपि इसमें प्रेम-कहानी का वर्णन है, फिर भी घटना ऐतिहासिक होने के कारण इसे ऐतिहासिक महाकाव्यो मे स्वीकार किया जाता है। दूसरा ऐतिहासिक महाकाव्य, जो इतिहास के घटनाचक्र पर विशेष बल देता है, 'विक्रमाङ्कदेवचरित' है। इसकी रचना ग्यारहवी शताब्दी मे विल्हण ने १८ सर्गों में की। इसमे दक्षिण भारत के कल्याणी के चौलुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ (राज्यकाल १०७६–११२७ ई०) का और उसके वश का विवरण दिया गया है। कल्याणी के चौलुक्यवशी नरेशो का इतिहास जानने के लिए यह काव्य अत्यन्त उपयोगी है। इस महाकाव्य मे यद्यपि अनेक अनैतिहासिक और काल्पनिक घटनाएँ भी है, फिर भी उसकी मुख्य घटनाएँ और उसके मुख्य चरित्र विशुद्ध ऐतिहासिक हैं। ग्यारहवी शताब्दी मे ही सन्ध्याकरनन्दी ने बगाल के पालवशी राजा रामपाल का ऐतिहासिक वृत्तान्त 'रामचरित' महाकाव्य मे दिया है। इस परम्परा में राजपुरी के राजा सोमपाल की प्रशंसा में लिखित काश्मीरी कवि जल्हण (बारहवी शताब्दी) कृत 'सोमपालविजय' का भी उल्लेखनीय स्थान है। इसमे सोमपाल के सुस्सल के साथ हुए युद्ध और सोमपाल-विजय की ऐतिहासिक घटना दी हुई है। ऐतिहासिक महाकाव्यो के क्षेत्र मे कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'राजतरङ्गिणी' मे पौराणिक काल से लेकर बारहवी शताब्दी तक का क्रमबद्ध राजनीतिक इतिहास लिखा गया है जिसे आज प्रामाणिक माना जाता है। 'राजतरङ्गिणी' मुख्यतया इतिहास-ग्रन्थ है, फिर भी काव्यकला की दृष्टि से उसका इतना महत्त्व है कि अनेक विद्वान् उसे महाकाव्य स्वीकार करते है। कल्हण ने स्वय भी अपनी इस कृति को महाकाव्य कहा है।

ऐतिहासिक महाकाव्य

बारहवी शताब्दी मे ही आचार्य हेमचन्द्र ने अणहिलपत्तन के चालुक्य राजा कुमारपाल के जीवनचरित को 'कुमारपालचरित' महाकाव्य मे २८ सर्गों में निबद्ध किया। मध्यकालीन गुजरात का इतिहास जानने के लिए यह नितान्त उपादेय ग्रन्थ है। तेरहवी शताब्दी मे गुजरात के राजा वीरधवल और वीसलदेव के शासन-काल मे सोमेश्वर ने पन्द्रह सर्गों मे 'सुरथोत्सव' काव्य लिखा। इसके पन्द्रहवे सर्ग मे चालुक्यवशी राजाओ का ऐतिहासिक वर्णन दिया हुआ है। इसी समय के आस-पास गुर्जरेश वीरधवल और वीसलदेव के महामात्य वस्तुपाल के सम्बन्ध मे अरिसिंह ठक्कुर ने 'सुकृतसकीर्तन' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य लिखा। ऐतिहासिक महाकाव्यों की यह परम्परा बाद मे सत्रहवी-अठारहवीं शताब्दी तक चलती रही।

सस्कृत मे वैसे तो पौराणिक महाकाव्यो के रूप मे रामायण और महाभारत को सर्वप्रथम महाकाव्य स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु वस्तुतः पौराणिक शैली के महाकाव्यो की अविच्छिन्न परम्परा सातवी-आठवी शताब्दी मे निर्मित जिनसेन के 'आदिपुराण', जिनसेन के शिष्य गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' तथा रविषेण के 'पद्मपुराण' से चली। जिस प्रकार सस्कृत के अनेक जैनेतर काव्यो का कथानक 'रामायण' और 'महाभारत' से लिया गया है उसी प्रकार परवर्ती जैन महाकाव्यो मे से अनेक का कथानक 'आदिपुराण' और 'उत्तपुरराण' पर आधारित है। इन पुराणो मे कथा के भीतर कथा कहने की प्रवृत्ति, पूर्वजन्मो का विवरण एव अनेक चमत्कारपूर्ण वर्णनो का प्राचुर्य है। पौराणिक शैली की परम्परा मे नवी शताब्दी मे जटासिहनन्दी-कृत 'वराङ्गचरित' ३१ सर्गो की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे एक प्रेम-कथा का वर्णन किया गया है। फलस्वरूप इसमे रोमाचक तत्त्वो का प्राचुर्य दीख पड़ता है। दसवी-ग्यारहवी शताब्दी मे वीरनन्दी ने तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ के चरित्र से सम्बन्धित एक महाकाव्य 'चन्द्रप्रभचरित' १८ सर्गों मे लिखा। इसमे अवान्तर-कथाओ एव भवान्तर-वर्णनो का भी समावेश है। पौराणिक महाकाव्यो मे पाई जाने वाली प्रायः सभी कथानक-रूढियो का इसमें प्रयोग पाया जाता है। इसमे मुनि का उद्यान मे आना, राजा का उनके दर्शनार्थ जाना, मुनि-देशना, देशना मे मुनि द्वारा पूर्वभवो का विवरण बताना, संसार को अनित्य सिद्ध करने वाली किसी घटना-विशेष से राजा को वैराग्य होना, दीक्षा लेकर मुक्ति प्राप्त करना आदि का समावेश है। स्वप्नदर्शन, दोहदकामना, पुत्रजन्म, पत्नी की प्राप्ति के लिए कुमार का युद्ध करना और शत्रु को परास्त करना, उन्मत्त गज को वश मे करना आदि कथानक-रूढियो का इसमे भरपूर प्रयोग हुआ है। यथावसर ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, नगर, राजा, युद्ध, दीक्षा आदि का भी वर्णन हुआ है। 'चन्द्रप्रभचरित' मूलत एक पौराणिक काव्य है जिसमे रोमाचक तत्त्वो—नायिका की प्राप्ति के लिए साहसपूर्ण कृत्यो—का समावेश भी हुआ है। दसवी-ग्यारहवीं शताब्दी मे ही जैन कवि धनेश्वरसूरि ने १४ सर्गो मे 'शत्रुजयमाहात्म्य' लिखा। इसमे जैनो के प्रसिद्ध तीर्थस्थान शत्रुजय के माहात्म्य का वर्णन है। इसमे उन सभी तत्त्वो का समावेश है जो वीरनन्दी-कृत 'चन्द्रप्रभचरित' मे प्राप्त होते है। इसी समय की कृति अभिनन्द-कृत 'रामचरित' महाकाव्य मे जानकी-हरण के बाद की राम-कथा का वर्णन किया गया है। कनकसेन वादिराज-कृत चार सर्गो का 'यशोधरचरित' काव्य भी इसी समय की रचना है जिसमे प्रसिद्ध यशोधर नृप का चरित्र वर्णित किया गया है। ग्यारहवी शताब्दी मे काश्मीर के क्षेमेन्द्र ने 'रामायणमजरी' 'भारतमजरी' तथा 'दशावतारचरित्र' की रचना की, जिनकी गणना पौराणिक महाकाव्यो मे ही होती है। रामायण की तरह 'रामायणमजरी' की कथा सात काण्डो मे और महाभारत की तरह 'भारतमजरी' की कथा १८ पर्वो मे विभक्त है। इन दोनो काव्यो मे रामायण और महाभारत की विशाल कथा का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। 'दशावतारचरित' मे पुराणवर्णित विष्णु के दस अवतारो का वर्णन मनोहर शैली मे

किया गया है। इसके बाद फिर गुजरात मे बारहवी शताब्दी में आचार्य हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' एक विशाल महाकाव्य १० पर्वो मे लिखा। इसमे जैनो के २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव तथा ६ प्रतिवासुदेवो का वर्णन पौराणिक शैली मे किया गया है। नेमिनाथ के जीवन से सम्बन्धित १५ सर्गो वाले 'नेमिनिर्वाण' की रचना वाग्भट ने तथा 'अममस्वामीचरित' एव 'मुनिसुव्रतस्वामीचरित' की रचना मुनिरत्नसूरि ने इसी (बारहवी) शताब्दी मे की। इन काव्यो की परम्परा का निर्वाह तेरहवी शताब्दी मे जैनेतर कवियो ने भी किया। इनमे वेकटनाथ-कृत 'यादवाभ्युदय', जयद्रथ-कृत 'हरचरितचिन्तामणि' तथा त्रिविक्रमाचार्य के 'उषाहरण' प्रसिद्ध है। कृष्णचरित्र से सम्बन्धित 'यादवाभ्युदय' की रचना २४ सर्गो मे हुई है। इसमे कवि का स्थल-स्थल पर धर्मप्रचारक रूप दृष्टिगत होता है। ३२ प्रकाशो मे विभक्त 'हरचरितचिन्तामणि' मे महादेव के विभिन्न अवतारो का वर्णन किया गया है। इसमे शिवपुराण की प्रायः सभी प्रसिद्ध कथाओं का समावेश हुआ है। 'उषाहरण' की रचना चार सर्गो मे हुई है। इसमे अनिरुद्ध द्वारा उषा-हरण किये जाने से सम्बन्धित महाभारतीय प्रसङ्ग का वर्णन है। पौराणिक शैली के इन सभी काव्यो को उनके रचयिताओ ने महाकाव्य कहा है, पर वस्तुतः उदात्त भाषा-शैली, महच्चरित्र एव रसमग्न करने की क्षमता के अभाव मे इनमे से अनेक काव्यो को उच्चकोटि का महाकाव्य तो क्या, महाकाव्य कहने मे भी झिझक होती है। फिर भी वे परम्परा से महाकाव्य के रूप मे प्रसिद्ध है, अतः उन्हे साधारण कोटि का महाकाव्य कहा जा सकता है। एक बात और है, इन सभी पौराणिक महाकाव्यो मे किसी-न-किसी रूप मे प्रणय-गाथा और नायक के साहसिक कार्यो के रोमाञ्चकारी वर्णन है अत उनमे रोमाञ्चक तत्त्वो का भी समावेश है।

सस्कृत-भाषा के क्षेत्र मे जितने अधिक महाकाव्यो की रचना हुई, उतनी प्राकृत मे नही हुई। प्राकृत का व्यवहार अधिकतर जैनो ने किया। उन्होने अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत को अपनी धार्मिक भाषा बनाया, जिसमे उनके सूत्र या आगम ग्रन्थ मिलते है। जैनो ने अधिकतर प्राकृत मे पौराणिक शैली को अपनाया है। जैनेतर कवियो ने इस शैली को न अपना कर शास्त्रीय शैली को अपनाया। अजैन कवियो के दो प्रसिद्ध महाकाव्य प्राप्त है—(१) प्रवरसेन का 'सेउबन्ध' या 'रावणवहो' तथा (२) वाक्पतिराज का 'गउडवहो'। ये दोनो शास्त्रीय-शैली के महाकाव्य हैं। इस प्रकार प्राकृत मे पौराणिक तथा शास्त्रीय इन दो शैलियो के काव्य ही मिलते है।

प्राकृत के महाकाव्य

प्राकृत का प्राचीनतम महाकाव्य विमलसूरि का 'पउमचरिय' है। यद्यपि कवि ने इसे पुराण कहा है,[1] फिर भी आधुनिक विद्वान् इसे महाकाव्य स्वीकार करते हैं। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। विन्टरनित्स इसे प्रथम शताब्दी की,

---

(१) ठिइ वंससमुप्पत्ती पत्थाणरणं लवंकुसुप्पत्ती।
निव्वाणमणेयभवासत्तपुराणेऽत्थ अहिगारा:॥ —पउमचरिय

प्राकृत के पौराणिक महाकाव्य

जैकोबी तृतीय शताब्दी की तथा मुनि जिनविजय, केशवलाल ध्रुव एव ए० सी० उपाध्याय आदि विद्वान् उसे छठी शताब्दी की रचना मानते है। जैकोबी के अनुसार 'पउमचरिय' की भाषा प्रारम्भिक प्राकृत है जिससे उसे तीसरी शताब्दी के बाद की रचना नही माना जा सकता। जैकोबी ने यह भी अनुमान किया है कि विमलसूरि के पहले भी प्राकृत मे अनेक प्रसिद्ध महाकाव्य रहे होगे। 'पउमचरिय' वाल्मीकि-रामायण का जैन रूपान्तर है जिसकी रचना ११८ विभागो तथा ९००० श्लोको मे हुई है। वाल्मीकि-रामायण की तरह इसमे भी सात अधिकार है, किन्तु उनके नाम भिन्न हैं। वे इस प्रकार है—(१) स्थिति (२) वशोत्पत्ति (३) प्रस्थान (४) युद्ध (५) लवकुशोत्पत्ति (६) निर्वाण (७) अनेकभव। 'पउमचरिय' मे वाल्मीकि-रामायण की तरह प्रारम्भ से लगा कर अन्त तक अनवरुद्ध कथा-प्रवाह दिखलाई पडता है। उसकी शैली भी उदात्त है। 'पउमचरिय' मे पौराणिक शैली के अनेक तत्त्व प्राप्त होते है। कथा का प्रारम्भ सवाद-रूप मे होता है। 'पउमचरिय' के अनुसार सर्वप्रथम महावीर स्वामी ने अपने शिष्यो—इन्द्रभूति आदि से राम-कथा कही, इन्द्रभूति ने उसे अपने शिष्यो को बताया, जहाँ से वह लोक मे फैली। 'पउमचरिय' मे राम की कथा इन्द्रभूति और श्रेणिक के सवाद के रूप मे कही गई है। बीच-बीच मे अनेक अवान्तर-कथा, स्तोत्र, धर्मोपदेश तथा भवान्तर-वर्णनो की योजना हुई है। प्रारम्भ मे तीर्थंकरो की स्तुति, देश एव नगरी के वर्णन भी हुए हैं। वस्तुत महाकाव्य की दृष्टि से 'पउमचरिय' एक उत्कृष्ट पौराणिक महाकाव्य है।

पौराणिक शैली के अन्य महाकाव्य आठवी शताब्दी के उपरान्त मिलते है। इनमे से कोई भी अभी प्रकाशित नही हुआ है। वे जैसलमेर, पाटन, खम्भात आदि के जैन-भण्डारो मे हस्तलिखित-रूप मे विद्यमान है। इनमे से प्रमुख काव्य ये है—गुणपाल-कृत 'जम्बूचरिय', लक्ष्मणदेव का 'णेमिणाहचरिय', सोमप्रभ का 'सुमइनाहचरिय', देवचन्द्रसूरि-कृत 'सन्तिणाहचरिय', शीलाचार्य-कृत 'पासनाहचरिय', हरिभद्रसूरि-कृत 'णेमिणाहचरिय' तथा हेमचन्द्र-कृत 'णेमिणाहचरिय' आदि। अप्रकाशित होने के कारण इन काव्यो के सम्बन्ध मे कुछ कह सकना कठिन है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन सभी काव्यो मे जैनो के तीर्थंकरो एव पुराणपुरुषो का जीवनचरित वर्णित किया गया है।

प्राकृत मे कतिपय ऐसी भी पद्यमय रचनाएँ मिलती हैं जिन्हे कथा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। प्राय ये सभी प्रेमाख्यानक काव्य है जिन्हे रुद्रट के शब्दो मे 'महाकथा' और हेमचन्द्र के शब्दो मे 'सकलकथा' कहना चाहिए। किन्तु कतिपय आधुनिक विद्वान् उन्हे रोमाञ्चक महाकाव्यो के अन्तर्गत ग्रहण करते है। पादलिप्त की 'तरङ्गवई-कहा', उद्योतन की 'कुवलयमालाकहा', कौतूहल की 'लीलावईकहा', जिनेश्वर की 'निव्वाणलीलावई' (११वी शताब्दी), साधारण कवि की 'विलासवईकहा' (स० ११२३), हरिभद्रसूरि की 'समराइच्चकहा' (दसवी शताब्दी), महेश्वर-सूरि (बारहवी शताब्दी) की 'पुष्पवईकहा', धनेश्वरसूरि (बारहवी शताब्दी) की 'सुरसुन्दरीकहा', वर्धमानसूरि-कृत

'मनोरमाचरिय' (स० ११४४), महेन्द्रसूरि की 'नम्मयासुन्दरीकहा' (स० ११७८), देवेन्द्रसूरि-कृत 'सुदसणाचरिय' (सं० १२४४), गुणसमृद्धिमहत्तरा की 'अजणासुन्दरीकहा' (सं० १४५०) तथा किन्ही अज्ञात कवियो की 'कालकाचार्यकहा' एव 'मलयसुन्दरीकहा', ऐसे ही कथा-ग्रन्थ है जिनमे चमत्कारपूर्ण काल्पनिक मन्त्र-तन्त्र-सम्बन्धी घटनाओं से भरी हुई लोक-प्रचलित प्रेमकथाओ का वर्णन किया गया है। इनमे भी अवान्तर-कथाओ एव भवान्तर-वर्णनो का समावेश हुआ है। ये काव्य न तो सर्गबद्ध है और न इनमे महाकाव्य-सम्बन्धी अधिकाश लक्षणो का समावेश ही हुआ है। अत हमारी दृष्टि मे इन्हे महाकाव्य न कह कर कथा कहना ही अधिक उपयुक्त है। किन्तु, इन कथा-आख्यायिकाओं का प्रभाव जैन सस्कृत पौराणिक महाकाव्यो पर बहुत पडा है। जैन पौराणिक महाकाव्यों मे जो रोमाञ्चकता की प्रवृत्ति पाई जाती है वह इस कथा-साहित्य के प्रभाव के कारण ही है।

प्राकृत के शास्त्रीय महाकाव्य

प्राकृत के शास्त्रीय महाकाव्यो मे प्रवरसेन का 'सेउबन्ध' या 'रावणवहो' और वाक्पतिराज का 'गउडवहो' इन दो महाकाव्यो का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इनमे 'सेउबन्ध' की रचना पाँचवी-छठी शताब्दी मे हुई। इसकी कथा १५ आश्वासो मे विभक्त है। इसमे राम के रण-प्रस्थान से लेकर अयोध्या-आगमन तक की परम्परागत रामकथा वर्णित है। 'सेउबन्ध' मे शास्त्रीय शैली के महाकाव्यो की सम्पूर्ण विशेषताएँ उपलब्ध होती है। इसकी कथावस्तु बहुत सक्षिप्त है, किन्तु प्रकृति-वर्णन, युद्ध, विरह, शोक आदि के यथोचित वर्णन, प्रौढ भाषा-शैली तथा अलकृत चित्रण आदि के कारण 'सेउबन्ध' की गणना उच्च कोटि के शास्त्रीय महाकाव्यो मे होती है। 'गउडवहो' और 'सेउबन्ध' के अतिरिक्त कृष्ण-लीलाशुक के 'सिरिचिंघकव्व' की गणना भी शास्त्रीय महाकाव्यो मे होती है। यह १२ सर्गों की गाथाबद्ध रचना है। इसके प्रारम्भिक आठ सर्ग कृष्णलीलाशुक द्वारा और अन्तिम चार उनके शिष्य दुर्गाप्रसाद द्वारा लिखे गये है। इसमे कृष्ण-लीला-वर्णन के साथ-साथ वररुचि और त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरणो की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वस्तुतः यह संस्कृत के भट्टि-काव्य की परम्परा का काव्य है। इसमे पाण्डित्य तो है, किन्तु रसपूर्णता नहीं है। साधारण पाठक के लिए यह दुर्बोध एवं नीरस है। प्राकृत मे रामपाणिपाद-कृत 'उसाणिरुद्ध' नामक एक प्रबन्ध-काव्य और मिलता है, किन्तु विद्वान् उसे महाकाव्यो की श्रेणी मे स्थान नही देते।

अपभ्रंश के महाकाव्य

भाषा-विज्ञान के विद्वान् अपभ्रंश भाषा का समय सन् ५०० ई० से १००० ई० तक मानते है। डॉ० हीरालाल जैन का मत है कि छठी शताब्दी मे अपभ्रंश काव्य सस्कृत और प्राकृत काव्य की बराबरी मे आ बैठा था, इसमें तो कुछ सन्देह है ही नही।[1] किन्तु, इसका साहित्य हमे आठवी शताब्दी से मिलना प्रारम्भ होता है। डॉ० हरिवश कोछड के अनुसार

---

(१) श्री हीरालाल जैन, अपभ्रंश भाषा और साहित्य, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अङ्क ३–४, पृ० १०६

अपभ्र श-साहित्य का समृद्ध युग नवी शताव्दी से तेरहवी शताब्दी तक का है। इसी काल मे पुष्पदन्त, धनपाल, धवल, नयनन्दी, कनकामर, धाहिल इत्यादि अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए है।[1] यो अपभ्र श-साहित्य का निर्माण सोलहवी शताव्दी तक चलता रहा, किन्तु तेरहवी-चौदहवी शताव्दी के बाद उसमे साहित्य-रचना उत्तरोत्तर कम होने लगी थी। प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री अगरचन्द नाहटा के अनुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन १३वी-१४वी शताब्दी के पश्चात् अपभ्र श मे रचना करना छोड कर तत्कालीन लोक-भापाओ मे रचना करने लगे, दिगम्बर सम्प्रदाय के जैन विद्वानो ने १६वी शताव्दी तक भी अपभ्रश को बनाए रखा।[2]

पहले हम देख चुके हैं कि इसी समय (८वी से १४वी शताब्दी तक) अपभ्र श के साथ-साथ प्राकृत और सस्कृत के महाकाव्य लिखे गये है। इस कारण सभी भाषाओ के साहित्य मे काव्य-रूपो, रूप-शिल्प के विविध तत्त्वो और भाव-विचारो मे बहुत अधिक सादृश्य दिखाई पडता है। अपभ्र श की महाकाव्य-परम्परा ने जैन-सस्कृत-महाकाव्यो को कहाँ तक प्रभावित किया, यह देखने के लिए ही यहाँ अपभ्र श के महाकाव्यो का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। अपभ्रश मे शास्त्रीय और ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो का अभाव है। उसमे पौराणिक शैली के महाकाव्यो की प्रचुरता हे। कतिपय काव्य ऐसे भी हैं जिनमे प्रणय-तत्त्व की प्रचुरता है। अतः कतिपय आलोचक उनको रोमान्चक शैली के महाकाव्यो के अन्तर्गत रखते है, किन्तु उनमे भी धर्म-भावना इतनी मुखर है कि उन्हे पौराणिक शैली के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अपभ्र श की यह प्राञ्जल काव्य-परम्परा स्वयभू (आठवी शताव्दी के 'पउमचरिउ' से मिलती है। 'पउमचरिउ' आदि जैन-रामायण है। जैन-पुराणो मे राम, लक्ष्मण और रावण को क्रमश आठवाँ वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव माना जाता है। जैन-पुराणो मे राम-कथा का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वही 'पउमचरिउ' मे ग्रथित किया गया है। कवि का उद्देश्य विशुद्ध काव्य-ग्रन्थ लिखना नही था, वल्कि एक धर्मग्रन्थ लिखना था, अत जैन-पुराणो मे स्वीकृत रामकथा मे अधिक परिवर्तन करने अथवा कल्पना द्वारा नवीन वाते जोडने की कवि ने स्वतन्त्रता नही दिखाई है। 'पउमचरिउ' पाँच काण्डो मे विभक्त है, विद्याधरकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड। इसमे कुल ९० सन्धियाँ, १२६९ कडवक तथा १२००० बारह हजार श्लोक है। प्रत्येक सन्धि के अन्त मे पुष्पिका मे कवि ने 'सयभुअवलेण', 'सयभु जतउ' इत्यादि शब्दो के द्वारा अपने नाम का उल्लेख किया है। ग्रन्थ का आरम्भ 'परमायरिय' की वन्दना से हुआ है। 'पउमचरित' मे रसात्मकता और सौन्दर्य उत्पन्न करने

पउमचरिउ

---

(१) **डॉ० हरिवश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० ३४**

(२) **श्री अगरचन्द नाहटा, वीरगाथाकाल का जैन साहित्य, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५० अङ्क १–२, पृ० १०**

के लिए विविध भावो का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। उसके प्राकृतिक दृश्यों एव घटनाओ के वर्णन मे पर्याप्त मौलिकता लक्षित होती है। डॉ० शम्भूनाथसिंह के शब्दों मे "काव्य-शैली की दृष्टि से स्वयभू का महाकाव्य विशेष महत्त्व का है। काव्यारभ मे देवता की स्तुति, विषय-वस्तु का निर्देश, अपनी असमर्थता और दीनता का निवेदन, पूर्व-कवि-प्रशसा, सज्जन-प्रशसा और दुर्जन-निन्दा, देश-वर्णन, नगर-वर्णन और कही-कही विभिन्न वस्तुओ की नामावली और परिगणना आदि बाते ऐसी है जो सस्कृत के परवर्ती काव्यो तथा प्राकृत-अपभ्र श के प्राय सभी काव्यो मे समान रूप से अपना ली गई है।"[1]

रिट्ठणेमिचरिउ या हरिवंश पुराण

स्वयभू का दूसरा महाकाव्य 'रिट्ठणेमिचरिउ' महाभारत के जैन-रूपान्तर को प्रस्तुत करता है। इसमे ११२ सन्धियाँ, १९३७ कडवक तथा १८००० श्लोक हैं। इसमे चार काण्ड हैं—यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर-काण्ड। 'पउमचरिउ' की तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' में भी कवि ने देव-स्तुति, विषय की महत्ता, अपनी विनम्रता, तथा पूर्ववर्ती कवियो एव आलकारिको के प्रति आभार-प्रदर्शन के वर्णन के पश्चात् श्रेणिक और गणधर के प्रश्नोत्तर के रूप मे ग्रन्थ का आरम्भ किया है। कथानक को जैन धर्म के अनुकूल बनाने के लिए कही-कही कुछ परिवर्तन भी किये गये है, जैसे द्रौपदी-स्वयंवर मे मत्स्यवेध की प्रतिज्ञा के स्थान पर केवल धनुष चढाने की प्रतिज्ञा का कवि ने उल्लेख किया है। इस परिवर्तन मे जैन धर्म की अहिसा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वस्तु-व्यापार, प्रकृति, युद्ध आदि के वर्णनो मे कवि ने महाकाव्यों मे प्रचलित शैली को अपनाया हैं। वस्तुत यह काव्य भी 'पउमचरिउ' की तरह उच्चकोटि का है।

दसवी शताब्दी (सन् ९८५ ई०) मे लिखे गये पुष्पदन्त-कृत 'महापुराण' की गणना भी अपभ्र श के श्रेष्ठ पौराणिक महाकाव्यो मे की जाती है। ६३ शलाकापुरुषो का जीवन-

महापुराण

चरित वर्णन करने वाले ग्रन्थो को जैन (दिगम्बर) परम्परा मे महापुराण कहा जाता है। इस महापुराण में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव इन ६३ महापुरुषो का वर्णन किया गया है। महापुराण यद्यपि एक पुराण है, किन्तु उसमे कवि का कवि-रूप अधिक मुखरित हुआ है, अत उसे महाकाव्य के रूप मे स्वीकार किया जाता है। कवि ने स्वय भी इसे प्रत्येक सन्धि के अन्त मे महाकाव्य कहा है —

महापुराणे तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारे महाकइपुष्पदन्तविरइए
महाभव्वमरहाणुमारणिए महाकव्वे।

प्रस्तुत महाकाव्य के कथानक मे अन्विति नही है। कथानक मे विशृङ्खलता अधिक है, फिर भी उद्देश्य की महत्ता, भाषा-शैली की उदात्तता तथा उत्कृष्ट कवित्व-कला के कारण उसके महाकाव्यत्व मे शका उत्पन्न नही होती। प्रारम्भ मे कवि दुर्जनो के भय से

(१) डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १८१

महापुराण आरम्भ करने मे सकोच का अनुभव करता है, किन्तु भरत उसे प्रोत्साहित करते हैं कि 'दुर्जनों का स्वभाव ही परदोषान्वेषण का होता है, उस पर ध्यान न दो। कुत्ता पूर्ण-चन्द्र पर भोकता रहे तो उसका क्या बिगडेगा ? अत महापुराण आरम्भ करो।' परम्परागत सज्जन-प्रशसा और दुर्जन-निन्दा के बाद कवि आत्म-विनय के साथ काव्य का आरम्भ करता है। कालिदास रघुवश का आरम्भ करते हुए अनुभव करते है कि सूर्यवशी राजाओ का वर्णन उडुप (छोटी नौका) से विशाल समुद्र को पार करने के समान उपहासास्पद होगा। पुष्पदन्त के लिए भी महापुराण की रचना उडुप द्वारा समुद्र नापने के तुल्य है'—**अइ दुग्गम होइ महापुराणु कडएण भवइ को जलणिहाणु।**

महाकाव्य का कथानक अत्यन्त शिथिल है। डॉ० हरिवश कोछड के शब्दो मे "६३ महापुरुषो का वर्णन ही विशाल है, फिर उनकी अनेक पूर्व-जन्म की कथाओ तथा अन्य अवान्तर-कथाओ से कथानक इतना विस्तृत हो गया है कि उसमे कथा का सूत्र पकडना कठिन हो जाता है। कथानक की अनेक कथाएँ अलौकिक घटनाओ और चमत्कारो से पूर्ण हैं, किन्तु ऐमी घटनाओ के मूल मे जिन-भक्ति है।"[1] महापुराण की भाषा मे लोकोक्तियो और मुहावरो का सुन्दर प्रयोग किया गया है, तथा ऐसे अनेक शब्दो का प्रयोग हुआ है जो हिन्दी के अत्यधिक निकट हैं। डॉ० कोछड ने अपने 'अपभ्र श साहित्य' मे इनको उद्धृत किया है।

हरिवश पुराण

दसवी-ग्यारहवी शताब्दी मे धवल कवि ने 'हरिवशपुराण' की रचना की। इसमे १२२ सन्धियाँ और १८ हजार पद्य है। इसमे भी कथा का स्वरूप वही है जो स्वयभू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' मे उपलब्ध है। कवि ने ग्रन्थारम्भ मे जिनेश्वर की स्तुति करके अनेक जैन कवियो का नाम उल्लासपूर्वक लिया है। कवि ने अपने हरिवशपुराण को नाना पुष्प-फलो से अलकृत और बद्धमूल तरु कहा है। इसके बाद सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा तथा आत्म-विनय के बाद कथा का प्रारम्भ हुआ है। विविध देशनाओ की योजना, द्रौपदी, भीष्म आदि के पूर्वभवो के वर्णन तथा अनेक अवान्तर-कथाओ एव अलौकिक घटनाओ की योजना भी इसमे विद्यमान है। स्थान-स्थान पर उसमे अलकृत और सुन्दर भाषा मे रसमय वर्णन उपलब्ध होते हैं। समस्त काव्य मे शान्त रस का प्राधान्य है, किन्तु इसके साथ-साथ उसमे वीर, करुण, आदि का समावेश भी है।

ऊपर जिन महाकाव्यो का उल्लेख किया गया है उनमे एक साथ ही अनेक धार्मिक पुरुषो के जीवनचरित का एक साथ वर्णन किया गया हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त अपभ्र श मे ऐसे अनेक पौराणिक शैली के महाकाव्य है जिनमे एक ही महापुरुष के जीवन का वर्णन किया गया है। इन महाकाव्यो मे भी किसी धार्मिक या पौराणिक व्यक्ति की

वैयक्तिक पुरुषो से सम्बन्धित पौराणिक शैली के चरितकाव्य

---

(१) डॉ० हरिवश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० ७६

जीवन-कथा को जैन परम्परा मे स्वीकृत-रूप मे कहा गया है, कवि ने अपनी ओर से उसके कथानक मे कोई परिवर्तन नही किया है। कतिपय ऐसे महाकाव्यो का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

वीर कवि ने 'जम्बुसामिचरिउ' काव्य मे जम्बूस्वामी के जीवनचरित्र को ११ सन्धियो मे लिखा है। इस काव्य की रचना स० १०७६ मे हुई है। ग्रन्थ मे कवि ने अपने से पूर्व के अनेक कवियो का उल्लेख किया है। मंगलाचरण के अनन्तर कवि ने

जम्बुसामिचरिउ

सज्जन-दुर्जन-स्मरण किया है और अपनी अल्पज्ञता का उल्लेख किया है। इसमे नगर के बाह्य उद्यान मे वर्द्धमान जिनेश्वर का आगमन, श्रेणिक का उनके दर्शनार्थ वहाँ जाना तथा जिनेश्वर द्वारा जम्बूस्वामी के पूर्वभवो का वर्णन हुआ है। जम्बूस्वामी की माता स्वप्न में जम्बू देखती है, अत: उनका नाम जम्बू-स्वामी रखा जाता है। जम्बूस्वामी की पत्नियाँ जम्बूस्वामी को वैराग्य से विरत करने के लिए अनेक वैराग्य-विरोधी कथाएँ सुनाती हैं, किन्तु अन्त मे सुधर्मा स्वामी की देशना से जम्बूस्वामी दीक्षा ग्रहण कर लेते है। कथानक मे अनेक अतिप्राकृत घटनाओ का वर्णन है। तीसरी सन्धि मे विद्युच्चर चोर विद्यावल से चोरी करता है, सागरचन्द्र मुनि को देख कर शिवकुमार को जाति-स्मृति हो जाती है। आकाशवाणी, पुष्पवर्षा आदि के वर्णन भी काव्य मे आये है। काव्य मे ग्राम, नगर, अरण्य, सूर्योदय, सूर्यास्त, युद्ध आदि के रमणीय वर्णन हुए है। कवि ने अपने काव्य को महाकाव्य कह कर सबोधित किया है :—

'इय जम्बुसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइ देवयत्तसुय वीर विरइय।'

इन पक्तियो मे कवि ने प्रस्तुत काव्य को शृंगार-वीर-रस-पूर्ण काव्य कहा है, किन्तु डॉ० रामसिह तोमर एव डॉ० हरिवश कोछड इसे शृ गार-वैराग्य-कृति कहते है।[1] वस्तुत यह काव्य शान्तरसपर्यवसायी है।

सन् १०६५ के आस-पास कनकामरमुनि-रचित 'करकण्डचरिउ' की गणना भी अपभ्र श के महाकाव्यो मे की जाती है। यह १० सन्धियो का महाकाव्य है। इसमे करकण्डु महाराज के चरित्र का वर्णन किया गया है जो पूर्णतया पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसके कथानक मे धर्मोपदेशो की योजना तथा अतिप्राकृत घटनाओ

करकण्डचरिउ

का वर्णन अनेक स्थलो पर विद्यमान है। विद्याधर हाथी का रूप धारण कर करकण्डु की पत्नी मदनावली को हर लेता है। छठी सन्धि मे एक तपस्विनी के शाप से मनुष्य तोता बन जाता है। द्वितीय सन्धि में मन्त्र के प्रभाव से राक्षस वश मे हो जाता है। शीलगुप्त मुनिराज करकण्डु के पूर्वभवो का विवरण बताते है। चरितनायक की कथा के साथ 'करकण्डचरिउ' मे नौ अवान्तर-कथाओ की योजना भी की गई है जिनका उद्देश्य जैन धर्म के सिद्धान्तो को व्यक्त करना है। द्वितीय सन्धि मे चार अवान्तर-कथाएँ है, जिनमे क्रमश: मन्त्रशक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच संगति के

---

(१) डॉ० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० १५४

बुरे परिणाम तथा सत्सगति के अच्छे परिणाम बताये गए है। ऐसी ही अन्य अवान्तर कथाएँ है। डॉ० हरिवश कोछड के शब्दो मे—'करकण्डचरिउ एक धार्मिक काव्य है और अन्य ग्रन्थो के समान अनेक अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटनाओ से युक्त है। काव्य-प्राचुर्य की अपेक्षा इसमे घटना-प्राचुर्य अधिक दीख पडता है।'[1] पौराणिक, काल्पनिक और अलौकिक घटनाओ के कारण कथानक का सम्बन्ध-निर्वाह भली-भाँति नही हो पाया है। प्रस्तुत काव्य भी शान्तरसपर्यवसायी है। अ ग-रूप मे वीर, शृ गार आदि रसो का वर्णन भी हुआ है। डॉ० शम्भूनाथसिंह 'करकण्डचरिउ' को एक प्र`माख्यानक काव्य मानते है। वे लिखते है, 'करकण्डचरिउ प्रधानतया एक प्र`माख्यानक काव्य है जिसमे करकण्डु के मदनावली से विवाह, विद्याधर द्वारा मदनावली का हरण, सिंहल-यात्रा और सिंहल की राज-कन्या रतिवेगा से विवाह, लौटते समय समुद्र मे मच्छ का आक्रमण और विद्याधरी द्वारा करकण्डु का हरण, विद्याधरी से विवाह, रतिवेगा से मिलन, मदनावली से मिलन आदि की रोमाचक कथा कही गई है।'[2]

पासचरिउ

दसवी-ग्यारहवी शताब्दी मे रचित पद्मकीर्ति-कृत 'पासचरिउ' १८ सन्धियो तथा ३३२३ पद्यो से युक्त एक काव्य है। इसमे तेईसवे तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का चरित्र वर्णित किया गया है। ग्रन्थ का आरम्भ २४ तीर्थङ्करो की वन्दना से किया गया है। इसके बाद आत्मविनय तथा सज्जन-दुर्जन-स्मरण किया गया है। इसके बाद पार्श्वनाथ के कई पूर्व-भवो का सविस्तार वर्णन हुआ है। कथानक मे ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, सूर्यास्त, रजनी, चन्द्रोदय आदि के सुन्दर वर्णन है।

पासचरिउ तथा सुकुमालचरिउ

एक दूसरे 'पासचरिउ' का निर्माण श्रीधर कवि ने बारहवी-तेरहवी शताब्दी मे किया है। काव्य का आरम्भ इसमे भी परम्परागत रीति से हुआ है। दिल्ली नगर, यमुना तथा युद्ध के वर्णनो मे कवि का कवित्व निखर उठा है। इस काव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि कवि ने प्रत्येक सन्धि के आरम्भ तथा अन्त मे ग्रन्थ-रचना मे प्रेरणा देने वाले नट्टल साहु की सस्कृत-पद्यो मे प्रशसा की है, तथा ग्रन्थ की समाप्ति पर नट्टल साहु की वशावली एव उसके गुणो का वर्णन किया है। श्रीधर कवि ने अपना दूसरा काव्य 'सुकुमालचरिउ' स० १२०८ मे पुरवाडवशोत्पन्न साहु कुमार की प्रेरणा से लिखा है। इसमे भी कुमार की प्रशसा की गई है। इसमे सुकुमालस्वामी के पूर्वभवो का वर्णन हुआ है।

बारहवी शताब्दी मे सिंह कवि द्वारा रचित 'पज्जुणचरिउ', चौदहवी शताब्दी के लखमदेव (लक्ष्मणदेव) का 'णेमिणाहचरिउ' तथा धनपाल का 'बाहुबलिचरिउ' भी अपभ्र श के पौराणिक काव्य है। 'पज्जुणचरिउ' की १५ सन्धियो मे कवि ने जैन धर्म के

---

(१) डॉ० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० १८४

(२) डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १८७

अनुसार २४ कामदेवो मे से २१ वे कामदेव कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र-वर्णन किया है। रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न को पूर्वजन्म के कर्मो के अनुसार एक राक्षस उठा ले जाता है। प्रद्युम्न वही बडे होते हैं और फिर बारह वर्ष के बाद कृष्ण से मिलते हैं। 'बाहुबलिचरिउ' मे १८ सन्धियो मे जैन सम्प्रदाय के प्रथम कामदेव बाहुबलि के चरित्र का वर्णन किया गया है। 'णेमिणाहचरिउ' मे चार सन्धियो मे बाईसवे तीर्थङ्कर नेमिनाथ का चरित्र-वर्णन किया गया है। इन तीनो महाकाव्यो का प्रारम्भ जिनेश्वर-वन्दना से हुआ है। इसके पश्चात् सज्जन-प्रशसा, दुर्जन-निन्दा, पूर्व-कवियो एव आत्म-विनय का वर्णन किया गया है। तीनो काव्यो मे नायक के पूर्व-भवो का वर्णन है। इन प्रसगो मे अवान्तर कथाएँ भी आई है और धर्मोपदेशो की योजना भी हुई है। 'पज्जुणचरिउ' मे सन्धियो के प्रारम्भ मे सस्कृत के कुछ श्लोक भी दिए गए है। महाकाव्य एव प्राचीनता की दृष्टि से हरिभद्रसूरि-कृत 'णेमिणाहचरिउ' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'णेमिणाहचरिउ' का एक अ श जैकोबी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित भी हो चुका है। इसमे बाईसवे तीर्थ-ङ्कर नेमिनाथ और उनके नौ भवो का वर्णन है। यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। यद्यपि इसका कथानक जैन पुराणो मे प्राप्त नेमिनाथ-चरित्र से पूर्णतया मिलता है, फिर भी इसमे अलकृत महाकाव्यो की शैली मे रोमाचक दृश्यो एव प्राकृतिक वस्तुओ का वर्णन हुआ है। शृ गार और वीर रस को प्रमुख स्थान मिलने पर भी समग्र प्रभाव की दृष्टि से इसमे शान्त रस ही प्रमुख है।

अन्य काव्य

अपभ्र श मे कतिपय काव्य ऐसे भी है जिनमे पौराणिक शैली के तत्त्व तो मिलते ही है, रोमाचक तत्त्व भी प्रचुरता से पाये जाते है। किसी नायिका के लिए नायक का युद्ध एव अनेक साहसिक कार्य करना जैसे बीहड यात्राये, उजाड नगर या भयकर वन मे अकेले जाना, यक्ष-गन्धर्व आदि से युद्ध करना, समुद्र यात्रा और जहाज का टूटना आदि का वर्णन इनमे रहता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रेमाख्यानक (रोमेन्टिक) महाकाव्यो का कथानक न तो पौराणिक होता है और न ऐतिहासिक। वह अर्द्धपौराणिक या पूर्णतया लौकिक होता है।[1]

अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक महाकाव्य

प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा मे दसवी शताब्दी मे धनपाल ने 'भविस्सयत्तकहा' लिखी। इसकी रचना श्रुतपचमीव्रत का माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिए की गई है। डॉ० हरिवश कोछड के शब्दो मे—"इस महाकाव्य की कथा लौकिक है। इस काव्य को लिख कर कवि ने परम्परागत ख्यातवृत्त नायक-पद्धति को तोडा और अपभ्र श मे लौकिक नायक की परम्परा का एक प्रकार से प्रतिपादन किया।[2]" 'भविस्सयत्तकहा' का कथानक २२ सन्धियो मे विभक्त है। इसके प्रारम्भ मे जिन-वन्दना के बाद प्रचलित रीति से

१. डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १६०
२. डॉ० हरिवश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० ९५

विनम्रता-प्रदर्शन, सज्जन-प्रशसा तथा दुर्जन-निन्दा की गई है। फिर सक्षेप मे कहा गया है कि यह कथा श्रुतपचमी का महत्त्व पूछने पर गणधर गौतम ने श्रेणिक से कही थी। इसके बाद कुरुजाङ्गल देश, गजपुर नगर, राजा तथा नगरश्रेष्ठी के वर्णन से कथा आरम्भ हुई है। काव्य के पूर्वार्द्ध मे भविष्यदत्त का व्यापार के लिए विदेश जाना, समुद्र-यात्रा मे आँधी से नौका का पथभ्रष्ट होना, नौका का उजाड नगर मे पहुँचना, वहाँ दिव्य सुन्दरी को देखना, असुर की सहायता से उससे विवाह करना, चिरकाल तक पुत्र के न लौटने पर माता का पुत्रकल्याणार्थ श्रुतपचमी का व्रत करना, भविष्यदत्त का सपत्नीक प्रभूत धन लेकर घर लौटने का उपक्रम करना, मार्ग मे बन्धुदत्त का विश्वासघात, यक्ष की सहायता से भविष्यदत्त का घर पहुँचना, यहाँ राजा द्वारा अपनी पुत्री उसे ब्याह देना तथा राज्य का उत्तराधिकारी बनाना—इन बातो का वर्णन है। उत्तरार्द्ध मे युद्धो मे भविष्यदत्त की वीरता तथा जैन मुनि से अपने प्राग्भवो का वृतान्त सुन कर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है। अन्त मे श्रुतपचमी के माहात्म्य के साथ कथा की समाप्ति होती है। 'भविस्सयत्तकहा' मे पौराणिक शैली के तत्त्वो के साथ-साथ प्रेमाख्यानक महाकाव्यो की कथानक-रूढियाँ जैसे उजाड नगर का मिलना, गन्धर्व से भेट एव उसकी सहायता-प्राप्ति, आँधी से नौका का भटक जाना आदि भी प्राप्त होती है। पौराणिक शैली के महाकाव्यो की तरह इसमे भवान्तर-वर्णन, अवान्तर-कथाओ की योजना, पूर्वभव के कर्मों से इस भव की घटनाओ का सम्बन्ध होना, अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वो की अधिकता आदि तत्त्वो का समावेश भी है।

नयनन्दि-कृत 'सुदसणचरिउ' भी एक ऐसा पौराणिक काव्य है जिसमे रोमाचक तत्त्वो की प्रधानता है। १२ सन्धियो के इस काव्य का प्रणयन स० ११०० के आसपास हुआ। ग्रन्थ के आरम्भ मे अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-जनो को नमस्कार किया गया है और फिर आत्मविनय प्रदर्शित की गई है। इसमे मरते समय पचनमस्कार के फलस्वरूप निर्धन गोपाल अगले जन्म मे अर्हद्दासी श्रेष्ठिनी के गर्भ से सुदर्शन के रूप मे उत्पन्न होता है। इसके बाद सुदर्शन और मनोरमा की प्रेम-कथा और विवाह का वर्णन, राजा धाडीवाहन की रानी अभया तथा कपिला नामक अन्य स्त्री के सुदर्शन पर आसक्त होने और सुदर्शन द्वारा अपने शील की रक्षा करने का विवरण दिया हुआ है। अन्त मे सुदर्शन के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर पचनमस्कार का माहात्म्य-वर्णन करते हुए कथा की समाप्ति की गई है। 'सुदसणचरिउ' धर्मप्रधान और शान्तरसपर्यवसायी काव्य है जिसमे सुदर्शन आदि के भवान्तर-वर्णनो को प्रमुखता मिली है।

ग्यारहवी शताब्दी मे रचित धाहिल का 'पउमसिरीचरिउ' भी चार सन्धियो का पौराणिक शैली में लिखा गया एक प्रेम-काव्य है। 'पउमसिरीचरिउ' मे पद्मश्री-समुद्रदत्त की प्रेम-कथा का वर्णन है। पद्मश्री पूर्व जन्म मे किये गये कर्मों का फल भोगती हुई अन्त मे निर्वाण प्राप्त करती है। सारे प्रसग इसी कार्य की ओर अग्रसर होते दीख पड़ते है। काव्य मे शृगार रस प्रमुख है, किन्तु उसका पर्यवसान शान्त रस मे हुआ है। धार्मिक

आवरण के कारण इस प्रेमकथा मे कही-कही अलौकिक घटनाओं का समावेश भी हो गया है। उदाहरण के लिए चित्रमयूर कान्तिमती के हार को निगल जाता है और फिर माया द्वारा उसे वापिस कर देता है। डॉ० हरिवश कोछड के शब्दो मे—'इस आवरण को हटा देने पर प्रेमकथा स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आ जाती है।'[1] पद्मश्री और समुद्रदत्त का एक दूसरे को देख कर परस्पर अनुरक्त होना, एक दूसरे को न पाकर व्याकुल होना, पूर्वानुराग की परिणति विवाह मे होना, विवाहानन्तर वियोग के कारण विह्वलता आदि प्रसङ्गो के स्वाभाविक वर्णन कवि ने किये है। ऋतु-वर्णन आदि के साथ-साथ कवि ने विवाह-समय के रीति-रिवाजो का सुन्दर वर्णन किया है।

ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी मे लिखित 'सुलोचनाचरिउ' भी अपभ्रंश का एक धार्मिक महाकाव्य है। इसकी रचना देवसेनगणि ने २८ सन्धियो मे की। इसमे चक्रवर्ती भरत के सेनापति जयकुमार की पत्नी सुलोचना के जीवन का वर्णन हुआ है। सुन्दरी सुलोचना स्वयवर मे जय को चुनती है, फलस्वरूप चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति इसे अपना अपमान समझ कर जय से युद्ध करता है जिसमे जय विजयी होता है। विजयी जय सुलोचना के साथ घर लौटता है। काव्य का प्रारभ पचनमस्कार और जिनेश्वर तथा गुरु की स्तुति से हुआ है। कवि ने अपनी विनम्रता प्रदर्शित कर सज्जन-दुर्जन-स्मरण भी किया है। काव्य के वर्ण्य-विषयो—नगर, युद्ध, ऋतु, जलकेलि, उद्यानक्रीडा, सुरत आदि—का वर्णन भी हुआ है।

सं० १२७५ मे लाखू (लक्ष्मण?) पण्डित ने ११ सन्धियो मे जिनदत्त-विमलमती की प्रेम-कहानी 'जिणदत्तचरिउ' लिखी। इसका प्रारम्भ जिनेश्वर तथा सरस्वती की वन्दना से हुआ है। इसके अनन्तर जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश तथा वसन्तपुर नगर का वर्णन है। इसके पूर्व कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवि अकलक, चतुर्मुख और कालिदास आदि का स्मरण करके आत्मविनय प्रदर्शित की है। इसमे युवक जिनदत्त का विवाह विमलमती से होता है। जिनदत्त धनोपार्जन के लिए सिंहल जाता है, वहाँ सिहल-नरेश की पुत्री श्रीमती उस पर आसक्त हो जाती है जिसकी परिणति विवाह मे होती है। पत्नी-सहित जिनदत्त अपने घर लौटता है। मार्ग मे श्रीमती उससे बिछुड जाती है, किन्तु अन्त मे दोनो का मिलन होता है। जिनदत्त घर लौट कर विमलमती से मिलता है। बाद मे दीक्षा लेकर वह निर्वाण प्राप्त करता है। 'जिणदत्तचरिउ' मे कवि ने धर्म के आवरण मे एक सुन्दर प्रेमकथा का वर्णन किया है। चित्र मे विमलमती के सुन्दर रूप को देख कर जिनदत्त उसकी ओर आकर्षित होता है और फिर विवाह हो जाता है। कथानक मे अनेक अलौकिक घटनाओ की योजना है, उदाहरण के लिए श्रीमती के पेट मे विषधर सर्प का होना। उसके सो जाने पर सर्प निकल कर श्रीमती के अनेक प्रेमी राजकुमारो को मार डालता है। जिनदत्त अपने अपूर्व साहस से उसे मार डालता है। काव्य मे समाधिगुप्त मुनि की देशना मे जैनधर्म के नियमो की व्याख्या भी हुई है।

---

(१) डॉ० हरिवंश कोछड़, अपभ्रंश साहित्य, पृ० ९७

पुष्पदन्त-विरचित 'णायकुमारचरिउ' ९ सन्धियो का काव्य है। इसमे नागकुमार के अनेक स्त्रियो से विवाह करने तथा इसी प्रसग मे अनेक राजाओ से युद्ध करने का वर्णन है। इसमे नागकुमार के अनेक साहसिक कार्यो का वर्णन है। वह द्यूतक्रीडा मे सबको हरा देता है, उद्धत अश्व एव गज को वश मे कर लेता है। चौथी सन्धि से लेकर आठवी सन्धि तक अनेक अलौकिक कृत्यो एव चमत्कारो का वर्णन हुआ है। शिशु नागकुमार के चरण-स्पर्श से ही जिन-मदिर का द्वार खुल जाता है, उसके कुएँ मे गिर पडने पर नाग उसकी रक्षा करता है। कथानक के अन्तिम भाग मे पिहिताश्रव मुनि के धर्मोपदेशो की योजना भी है। इस प्रसग मे मुनि नागकुमार के पूर्वभवो का विवरण भी बताते हैं जिसमे वे कहते हैं कि पूर्वभव मे श्रुतपचमी का व्रत पालन करने से उसे यह उत्तम भव मिला है। देशना सुन कर नागकुमार दीक्षा ग्रहण कर लेता है और निर्वाण प्राप्त करता है। 'णायकुमारचरिउ' की नवी सन्धि मे कवि ने ब्राह्मण, बौद्ध, चार्वाक आदि मतो का खण्डन किया है और जैन धर्म की महत्ता प्रतिपादित की है। काव्य के वर्ण्य-विषयो—नगर, ऋतु, जलक्रीडा युद्ध आदि—का वर्णन भी 'णायकुमारचरिउ' मे हुआ है। कवि ने अपने काव्य की प्रत्येक सन्धि के अन्त मे पुष्पिका म 'महाकइ पुप्फयन्तविरइये महाकव्वे' कहकर 'णायकुमारचरिउ' के महाकाव्यत्व को स्वीकार किया है। इसका आरम्भ सरस्वती-वन्दना, आत्मनिवेदन, सज्जन-दुर्जन-चिन्ता और मगध वर्णन के बाद श्रेणिक और महावीर के सवाद के रूप मे हुआ है। इसी तरह का एक काव्य 'विलासवईकहा' है। ग्यारह सन्धियो के इस काव्य मे विलासवती की कथा है।

आलोच्य युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो पर पूर्ववर्ती तथा समवर्ती सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश की महाकाव्य-परम्परा का व्यापक प्रभाव पडा है। शास्त्रीय महाकाव्यो की परम्परा मे इस युग के जैन महाकवियो ने कई महाकाव्य लिखे। वस्तुपाल-कृत 'नरनारायणा-नन्द' महाकाव्य शास्त्रीय शैली की रीतिबद्ध परम्परा का महाकाव्य है जिसमे भारवि और माघ की शैली को पूर्णत अपनाया गया है। जिनपाल उपाध्याय-कृत सनत्कुमारचरित्र' हरिचन्द्रसूरि-कृत 'धर्मशर्माभ्युदय', अर्हद्दास-कृत 'मुनिसुव्रतकाव्य' तथा अभयदेवसूरि-कृत 'जयन्तविजय' यद्यपि मूलत पौराणिक महाकाव्य हैं, फिर भी उनमे भारवि और माघ की रीतिबद्ध शास्त्रीय शैली का अनुकरण किया गया है। इन काव्यो मे पाण्डित्य-प्रदर्शन की चेष्टा पग-पग पर मिलती है। दूसरे प्रकार के शास्त्रीय महाकाव्य, जिन्हे शास्त्रकाव्य या द्वयाश्रय महाकाव्य कहते हैं, और जो पूर्ववर्ती सस्कृत और प्राकृत के साहित्य मे मिलते हैं, इस युग के जैन कवियों ने भी लिखे। जिनप्रभसूरि-कृत 'श्रेणिकचरित' या 'द्वयाश्रय महा-काव्य' इसी परम्परा का महाकाव्य है। सस्कृत-प्राकृत के ऐतिहासिक महाकाव्यो की पर-म्परा मे इस युग मे नयचन्द्रसूरि-कृत 'हम्मीरमहाकाव्य' सर्वानन्दसूरि-कृत 'जगडूचरित' उदयप्रभसूरि-कृत 'धर्माभ्युदय महाकाव्य' तथा जयसिहसूरि-कृत 'कुमारपालचरित' नामक

सस्कृत प्राकृत, और अपभ्रश के महाकाव्यो का जैन-संस्कृत-महाकाव्यो पर प्रभाव

ऐतिहासिक महाकाव्य लिखे गए। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के पौराणिक महाकाव्यो की परम्परा मे 'मल्लिनाथचरित्र', 'वासुपूज्यचरित्र', 'पद्मानन्द', 'पार्श्वनाथचरित्र', 'श्रेयासनाथ चरित्र', 'पुण्डरीकचरित्र' आदि अनेक काव्य लिखे गये जिनमे पौराणिक शैली की समस्त विशेषताएँ उपलब्ध है। अपभ्रश के प्रेमाख्यानक काव्यो मे जो रोमाचक तत्त्व प्राप्त होते है उनका समावेश भी इन पौराणिक महाकाव्यो मे यत्र-तत्र हुआ है। इस प्रकार तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के समस्त जैन-सस्कृत-महाकाव्य रूप-शिल्प, विषय और उपादान, काव्य-रूढि एव शैली—सभी दृष्टियो से पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा का अनुसरण करते है। पूर्ववर्ती और समवर्ती सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश के महाकाव्यो की उन पर गहरी छाप दृष्टिगत होती है।

तृतीय अध्याय

तत्कालीन परिस्थितियाँ और जैन महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

"किसी कवि के काव्य का सम्बन्ध उसके पूर्व और उसके समकालीन युग से बहुत होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावो को किसी-न-किसी अ श मे लेता हुआ ही अपनी कृति से अपने युग को अथवा आगामी युगो को प्रभावित करता है। इसलिए उस कवि या उस युग के कवियो के अध्ययन के लिए उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा मे ही हम उस कवि या उस युग के कवियो की सहानुभूतिपूर्ण आलोचना कर सकते हैं।"[1] वस्तुत: किसी युग के कवियो के दृष्टिकोण और उनके विचारों की तह तक पहुँचने के लिए उस युग की विचारधारा का अध्ययन बहुत आवश्यक हो जाता है। इसलिए तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन महाकाव्यो के अध्ययन के लिए उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियो का परिचय प्राप्त करना समीचीन होगा। यहाँ सम्पूर्ण देश की तत्कालीन स्थिति को न देख कर केवल तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो की जन्मभूमि गुजरात और पश्चिमी राजस्थान की परिस्थितियो का अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। इस युग मे जैनो (श्वेताम्बर) का प्रभाव-क्षेत्र गुजरात, पश्चिमी राजस्थान, पजाब के दक्षिणी भाग, मालवा के उत्तरी भाग तथा सिन्ध के पूर्व भाग तक फैला हुआ था। पश्चिम मे सौराष्ट्र, कच्छ तथा वर्तमान सिन्ध के अमरकोट नगर तक, उत्तर मे भटनगर (भटिण्डा) तक, पूर्व मे सरस्वती सिरसा), आसिका (हाँसी), दरिद्रेरक (आधुनिक ददरेवा ग्राम जो सादूलपुर स्टेशन के पास है), नरभट (आधुनिक नरहद जो पिलानी के पास है), हर्षनाथ (सीकर के पास एक ग्राम), मरुक्कोट (आधुनिक मरोट, साँभर के पास), शाकम्भरी (साँभर), अजयमेरु (अजमेर), विद्युद्वल्लि (बीजोलिया ग्राम) तथा चित्रकूट (चित्तौड) तक, तथा दक्षिण मे धार एव माण्डू तक जैन (श्वेताम्बर) धर्म का विशेष प्रचार था। गोपाद्रि (ग्वालियर) तथा धवलपुर (धौलपुर) की ओर भी श्वेताम्बर जैनो का पर्याप्त प्रभाव था। अगले पृष्ठ मे दिये गये मानचित्र से जैनो के प्रभावक्षेत्र को समझने मे सहायता मिल सकेगी।

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय, डॉ० दीनदयालु गुप्त, पृ० १६

तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में जैनों (श्वेताम्बर) का प्रभाव-क्षेत्र *

उ त्त र

प श्चि म

द क्षि ण

* इस मानचित्र में नगरों के प्राचीन नाम दिये गये हैं। इन नगरों के अर्वाचीन नाम इस प्रकार हैं—

नगरों के प्राचीन नाम		वर्तमान नाम
1—दरिद्रेरक	....	ददरेवा (शार्दूलपुर स्टेशन के पास एक गाँव)
2—विक्रमपुर	....	बीकमपुर (बीकानेर के पास एक गाँव)
3—नरभट	....	नरभट (पिलानी के पास एक गाँव)
4—माण्डव्यपुर	....	मण्डोर (जोधपुर के पास)

राजनीतिक अवस्था :—

ईसा की तेरहवी शताब्दी मे गुजरात मे चालुक्य (सोलकी) वश तथा वाघेला वश के हिन्दू राजाओ का शासन रहा और ईसा की चौदहवी शताब्दी मे गुजरात दिल्ली के मुसलमान शासकों के अधीन रहा। सोलकी वश के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिह ने सन् १०९४ से सन् ११४३ तक राज्य किया। उसने अपने प्रबल पराक्रम

गुजरात[१]

से सौराष्ट्र, मालवा, महोबा तथा शाकम्भरी के नरेशो को पराजित कर गुजरात की सीमा का विस्तार किया। अणहिल्लपत्तन उसकी राजधानी थी। उसके शासन-काल मे राज्य मे चारो ओर शान्ति थी और जनता समृद्ध थी। सिद्धराज के उपरान्त सन् ११४३ मे कुमारपाल अणहिल्लपत्तन के सिंहासन पर बैठा। वह भी सिद्धराज की भाँति ही पराक्रमी था। उसने भी पार्श्ववर्ती राजाओ—मालवा के राजा बल्लाल, कोङ्कणेश मल्लिकार्जुन एव सौराष्ट्र, चेदि तथा सपादलक्ष (साँभर) के नरेशो को युद्ध-भूमि मे परास्त

5—भटनगर भटिण्डा 6—आशिका हाँसी
7—सरस्वती सिरसा 8—डिण्डवाणा डीडवाना
9—फलवर्द्धिपुर फलौदी 10—जैसलमेरु जैसलमेर
11—पुष्करिणी पोकरण 12—लवणखेटक लूणी
13—अर्बुद आबू 14—प्रह्लादनपुर पालनपुर
15—चित्रकूट चित्तौड़ 16—अणहिल्लपत्तन पाटन
17—विद्यापुर बीजापुर 18—धवलक्कक धौलका
19—धन्धुक धन्धूका 20—स्तम्भतीर्थ खम्भात
21—वटपद्रि बड़ौदा 22—पालित्राण पालिताना
23—देवकूप दीव, ड्यू 24—जीर्णदुर्ग जूनागढ
25—सत्यपुर साँचौर 26—वाग्भटमेरु बाड़मेर
27—नागपुर नागौर 28—जाबालिपुर जालौर
29—शम्यानयन सिवाना 30—स्वर्णगिरि सोनगारा
31—कासह्रद कासेरा 32—कर्णावती अहमदाबाद
33—गोपाद्रि ग्वालियर 34—धवलपुर धौलपुर
35—विद्युद्वल्लि बीजौलिया 36—पल्ली पाली
37—शाकम्भरी साँभर 38—नरानयन नरैना
39—भृगुकच्छ भड़ोच 40—भिन्नमाल भीनमाल
41—अजयमेरु अजमेर

(१) यहाँ गुजरात की राजनीतिक दशा का वर्णन 'गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास' लेखक दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री तथा 'गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास' (इस्लाम युग) लेखक रत्नमणिराव भीमराव बी० ए० के आधार पर किया गया है।

किया था। सिद्धराज की भाँति कुमारपाल को भी जनता की सुख-समृद्धि का बड़ा ध्यान था। कुमारपाल के बाद अजयपाल ने (सन् ११७४–११७७ तक) तीन वर्ष और तत्पश्चात् मूलराज द्वितीय ने (११७७–११७९ तक) दो वर्ष शासन किया। मूलराज के बाद सोलंकी वश के अन्तिम शासक भोला भीम ने सन् ११७९ से १२४२ तक राज्य किया। भीम निर्बल शासक था, अतः उसके समय मे अर्णोराज के पुत्र लवणप्रसाद बाघेला ने सन् १२१९ ई० में धौलका को राजधानी बना कर गुजरात का शासन अपने हाथ मे ले लिया और गुजरात मे बाघेलावश के शासन की नीव डाली। लवणप्रसाद ने सन् १२३३ ई० तक राज्य किया। वह वीर और कुशल शासक था। उसने गुजरात को बाह्य आक्रमणो से सुरक्षित रखा, फलस्वरूप वह राज्य मे शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने मे समर्थ हो सका। लवणप्रसाद के उपरान्त उसके पुत्र वीरधवल ने सन् १२३३ से १२३८ तक राज्य किया। उसने वस्तुपाल जैसे कुशल व्यक्ति को महामात्य बनाया जिसकी सहायता से वह बाह्य शत्रुओ को दबाने और जनता की सुख-समृद्धि बढाने मे सफल हो सका। वीरधवल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वीसलदेव गुजरात का अधीश्वर बना। उसने अणहिल्लपत्तन को अपनी राजधानी बनाया और महाराजाधिराज की पदवी धारण की। वीसलदेव शूरवीर और कुशल शासक था। उसकी मृत्यु सन् १२६१ मे हुई। उसके बाद उसके भतीजे अर्जुनदेव ने सन् १२६२ से १२७४ ई० तक और अर्जुनदेव के उपरान्त उसके पुत्र सारंगदेव ने सन् १२७४ से १२९५ तक राज्य किया। सारगदेव के उपरान्त सन् १२९५ मे बाघेला कर्णदेव अणहिल्लपत्तन के सिहासन पर आरूढ हुआ। इसके समय मे दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायक अलपखा और निसुरतखा ने गुजरात पर आक्रमण किया और सन् १२९९–१३०० मे (किसी-किसी के मत से सन् १२९७ मे) कर्ण को पराजित कर गुजरात के हिन्दू शासन का अन्त कर दिया और गुजरात मे मुसलमानी शासन की नीव डाली।

दिल्ली में अलाउद्दीन खिलजी का शासन सन् १३१६ तक रहा। उसने अलपखा को सन् १३०० मे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया जो सन् १३१६ तक वहाँ इस पद पर रहा। अलपखा का शासन गुजरात की हिन्दू जनता के लिए, जो सोलकी और बाघेला राजाओ के समय सुख-शान्ति का अनुभव कर रही थी, बडा कष्टकर सिद्ध हुआ। उसने गुजरात की हिन्दू प्रजा पर बडा अत्याचार किया। उसने खभात, शत्रु जय एव अन्य तीर्थो के पवित्र मन्दिरो को ध्वस्त किया और उनके सामान से अनेक मसजिदो का निर्माण कराया। लूटपाट की घटनाएँ तो बहुत सामान्य बात थी। अलाउद्दीन के परवर्ती खिलजी शासको—कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तथा खुसरो के समय (सन् १३१६ से १३२० तक) मे क्रमश अईनउलमुल्क मुलतानी, जफरखा, मलिक दीनार तथा हिसामुद्दीन गुजरात के सूबेदार हुए।

सन् १३२० से लेकर चौदहवी शताब्दी के अन्त तक दिल्ली का सिंहासन तुगलक बादशाहो के अधीन रहा, फलस्वरूप गुजरात मे उनके द्वारा नियुक्त सूबेदार शासन करते

रहे। गयासुद्दीन तुगलक (शासनकाल सन् १३२०–१३२५) तथा मुहम्मद तुगलक (शासनकाल सन् १३२५–१३५१ ई०) के शासनकाल मे गुजरात की हिन्दू जनता के साथ कुछ नरम व्यवहार हुआ, फिर भी राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल रही। गुजरात के नवमुस्लिम अमीर डभोई, बडोदा आदि मे उपद्रव तथा लूटपाट की वारदातें करते रहे। एक बार तो इन अमीरो ने गुजरात के सूबेदार मलिक मुकबिल को, जो गुजरात से कर का रुपया राजकीय कोष मे जमा करने दिल्ली ले जा रहा था, लूट लिया। इस वृतान्त को सुन कर सुलतान मुहम्मद तुगलक ने शेख मुईजुद्दीन को गुजरात का सूबेदार बनाया। उसने अमीरो का दमन करके भडोच को खूब लूटा। यद्यपि इन विविध उपद्रवो का दमन करने मे शासन को तात्कालिक सफलता अवश्य मिली, तथापि प्रजा मे त्रास का सचार हो गया। इन अमीरो के उपद्रव तो बाद मे भी होते रहे और एक बार तो विद्रोहियो ने गुजरात के सूबेदार शेख मुईजुद्दीन को भी कैद कर लिया। अन्त मे गुजरात के विद्रोह का दमन करने के लिए स्वय सुलतान मुहम्मद तुगलक ने प्रस्थान किया। अणहिल्लपत्तन मे उसकी सेना ने कुछ दिनो तक पडाव डाला। जूनागढ के राव खगार ने भी विद्रो॰ का झण्डा उठाया, किन्तु सुलतान ने स्वय वहाँ जाकर विद्रोह का दमन किया। इसी प्रकार अन्य विद्रोह भी राज्य मे होते रहे। वस्तुत मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अन्तिम दिनो मे गुजरात नाममात्र के लिए दिल्ली साम्राज्य का अ ग था, वस्तुत वहाँ अस्थिरता और अशान्ति का साम्राज्य था।

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद उसका भतीजा फीरोजशाह तुगलक दिल्ली का सुलतान हुआ। उसने सन् १३५१ से १३८८ ई० तक राज्य किया। फीरोज मुसलमानो के लिए न्यायप्रिय और दानशील शासक था। वह कट्टर धर्मान्ध मुसलमान था जिसने हिन्दुओ पर बहुत अत्याचार किये। उसने मूर्ति-पूजा का नाश करने के लिए असख्य मन्दिरो को तोडा। फीरोज के शासनकाल मे गुजरात की सूबेदारी अमीरहुसैन(सन् १३५१-१३६३ ई०), जफरखा (सन् १३६३–७१ ई०), दरियाखा (सन् १३७१–१३७६), शम्सुद्दीन (सन् १३७६–१३७७ ई०), फरहत उलमुल्क (सन् १३७७–१३९७ ई०) के पास रही। इनमे शम्सुद्दीन ने करवसूली मे बहुत अत्याचार किये, अत. गुजरात के अमीरो एव ठाकुरो ने उसका विरोध किया और उसे मार डाला। शम्सुद्दीन के बाद फरहत उलमुल्क गुजरात का सूबेदार बना। उसने हिन्दुओ के साथ बडा अच्छा व्यवहार किया, फलस्वरूप उसकी सूबेदारी मे बहुत से हिन्दू-जैन-मन्दिर बने। कुछ कट्टर मुसलमान अमीरो ने तो फीरोज से उसकी शिकायत भी की थी कि वह मूर्ति-पूजा को बढावा दे रहा है।

फीरोज तुगलक की मृत्यु सन् १३८८ ई० मे हुई। उसके बाद उसका पौत्र गयासुद्दीन तुगलक द्वितीय (सन् १३८८–१३८९), फिर क्रमश. मलिक रुकनुद्दीन (सन् १३८९–८९), अबूबकर (सन् १३८९–९०), नासिरुद्दीन मुहम्मद (सन् १३९०–९४), हुमायू (सन् १३९४) नासिरुद्दीन मुहम्मद (सन् १३९४–१४१२ ई०) ने दिल्ली साम्राज्य पर अधिकार जमाया। फीरोज के बाद शासन दिन पर दिन अशक्त होता गया। नासिरुद्दीन मुहम्मद

(सन् १३९०-९४) के समय मे फरहत उलमुल्क, जो गुजरात का सूबेदार था, ने विद्रोह कर दिया, फलस्वरूप सुलतान ने जफरखा को विद्रोह दवाने के लिए भेजा। जफरखां ने सन् १३९१ मे विद्रोह को दवा दिया। सन् १३९१ के बाद जफरखां ही गुजरात का सूबेदार रहा। तैमूर के आक्रमण के वाद, दिल्ली साम्राज्य मे अव्यवस्था फैल जाने से सन् १४०१ मे जफरखा गुजरात का स्वतन्त्र शासक वन वैठा।

इस प्रकार सन् १२९९ से लेकर चौदहवी शताब्दी के अन्त तक गुजरात दिल्ली साम्राज्य का अंग रहा और उस पर दिल्ली सल्तनत के अधीन प्रान्ताध्यक्ष शासन करते रहे।

ईसा की तेरहवी शताब्दी मे जालौर मे चौहान राजपूतो का राज्य था। सन् १२०० से १२०५ तक वहाँ का शासक समरसिह चौहान रहा। उसके वाद जालौर मे निम्नलिखित

जालौर[1]

चौहानवशी राजाओ ने राज्य किया –(१) उदयसिह (शासनकाल सन् १२०५ से १२५६ ई०) इसके अधिकार मे नाडौल, जावालिपुर (जालौर), माण्डव्यपुर (जोधपुर का प्रदेश), वाग्भटमेरु (वाड़मेर) सुराचन्द्र, राटह्रद, खेड़ा, रामसैन्य, श्रीमाल, रत्नपुर, सत्यपुर (साँचौर) तथा मेदपाट (मेवाड) का कुछ भाग था। उत्तरी भारत मे उस समय उदयसिह से अधिक शक्तिशाली और कोई नरेश नही था। दिल्ली का प्रसिद्ध गुलाम-शासक अल्तमश भी राजस्थान के चौहान शासको को समाप्त नही कर पाया था।

(२) चाचिगदेव (शासनकाल सन् १२५६-१२८२ ई०)

(३) सामन्तसिह (शासनकाल सन् १२८२-१२९६ ई०)

(४) सामन्तसिंह और उसके पुत्र कान्हडदेव का सयुक्त शासन (सन् १२९६ से १३०५) .—इनके सयुक्त शासनकाल मे सन् १२९९–१३०० के आसपास कान्हड़देव ने गुजरात-विजय कर लौटती हुई अलाउद्दीन खिलजी की सेना को परास्त किया था। सन् १३०५ मे अलाउद्दीन ने कान्हड़देव पर आक्रमण किया, पर उसे पराजित होकर लौटना पडा था।

(५) कान्हडदेव (शासनकाल सन् १३०५–१३१५ ई०) :—अन्त मे सन् १३१५ मे अलाउद्दीन ने कान्हड़देव को पूर्णतया पराजित कर जालौर को दिल्ली-साम्राज्य मे मिला लिया।

सन् १ १५ से लेकर चौहदवी शताब्दी के अन्त तक जालौर पर दिल्ली के सुलतानो द्वारा नियुक्त किये गये मुसलमान अधिकारी शासन करते रहे।

ईसा की तेरहवी शताब्दी मे सन् १२७६ के पूर्व आवू और चन्द्रावती मे परमार राजपूतो का राज्य था। सन् १२७६ मे वहाँ चौहानो ने अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया,

आबू और चन्द्रावती (आधुनिक सिरोही)

---

(१) जालौर की राजनीतिक अवस्था का वर्णन डॉ० दशरथ शर्मा के 'अरली चौहान डायनेस्टी' के आधार पर किया गया है।

तव से लेकर चौदहवी शताब्दी तक वहाँ चौहानो का राज्य रहा। सन् १२७६ से १३११ तक आबू और चन्द्रावती जालौर के चौहान शासक चाचिगदेव, सामन्तसिंह और कान्हडदेव के अधीन रहे। इसके बाद वहाँ निम्नलिखित चौहान शासक हुए —

(१) महाराव लुभा (शासनकाल सन् १३११ से १३२० तक)
(२) महाराज तेजसिंह (शासनकाल सन् १३२० से १३३६ ई० तक)
(३) कान्हडदेव (शासनकाल सन् १३३६ से १३४३ ई० तक)
(४) सामन्तसिंह
(५) सलखा
(६) रणमल
(७) शिवभाण
} (शासनकाल सन् १३४३ से १४०० ई० तक)

साँचौर[1] सत्यपुर (साँचौर) पर सन् १२०० से लेकर १३१५ तक जालौर के चौहान शासको का अधिकार रहा। इसके बाद चौदहवी शताब्दी तक वहाँ क्रमश सोमित, साल्ह, विक्रमसिंह, भीमदेव तथा प्रतापसिंह, इन चौहान राजाओ का शासन रहा।

मरु और जांगलदेश (आधुनिक मारवाड और बीकानेर डिवीजन का दक्षिणी भाग) जिसकी राजधानी माण्डव्यपुर (आधुनिक मडोर जो जोधपुर से कुछ मील की दूरी पर है) थी,

मरु और जांगलदेश[2] पर सन् ११४३ ई० (वि० स० १२००) के लगभग पडिहार राजपूतो का राज्य था। किन्तु सन् ११४५ (वि० स० १२०२) मे वहाँ चौहानो ने अधिकार जमा लिया। चौहानो का अधिकार वहाँ सन् १२२७ (वि० स० १२८४) तक रहा। सन् १२२७ (वि० स० १२८४) मे माण्डव्यपुर पर कुछ समय के लिए दिल्ली-सुलतान अल्तमश ने अधिकार कर लिया, किन्तु पडिहार राजपूतो ने मुसलमानो को भगा कर चौहानो को सत्ता सौप दी। तव से सन् १२९४ (वि० स० १३५१) तक माण्डव्यपुर चौहानो के अधिकार मे रहा। सन् १२९४ मे जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी ने माण्डव्यपुर पर आक्रमण करके उसे दिल्ली सल्तनत के अधीन किया। इस समय से लेकर लगभग १०० साल तक वहाँ मुसलमानो का शासन रहा। सन् १३९५ मे माण्डव्यपुर के पडिहारो ने मुसलमानो को भगा दिया और तब से माण्डव्यपुर राठौरवशी नरेशो के हाथ मे आ गया।

---

(१) साँचौर की राजनीतिक दशा का वर्णन डॉ० दशरथ शर्मा लिखित 'अरली चौहान डायनेस्टी' के आधार पर किया गया है।
(२) मरुभूमि की राजनीतिक परिस्थितियो का वर्णन इन ग्रन्थो के आधार पर किया गया है :—(क) मारवाड़ का इतिहास–विश्वेश्वरनाथ रेउ (ख) जोधपुर का इतिहास–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (ग) बीकानेर का इतिहास–गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

जैसलमेर[1]

तेरहवी-चौदहवी शताब्दी मे जैसलमेर मे प्राय. भाटी राजपूतो का शासन रहा। यद्यपि बीच-बीच मे यदा-तदा उस पर मुस्लिम सत्ता भी स्थापित हो गई, पर भाटी वीरो ने अवसर पाते ही उसे उखाड डाला। इस काल मे जैसलमेर मे निम्नलिखित भाटी शासको ने राज किया :—

(१) केलणजी (वि० स० १२४७ से १२७५ तक) सन् ११९० से १२१८ ई० तक।
(२) चाचकदेव (वि० स० १२७५ से १२९९ तक) सन् १२१८ से १२४२ ई० तक।
(३) कर्णसिह (वि० स० १२९९ से १३२७ तक) सन् १२४२ से १२७० तक।
(४) लखनसेन (वि० स० १३२७ से १३३२ तक) सन् १२७० से १२७५ तक।
(५) पुण्यपाल (वि० स० १३३२) सन् १२७५ ई०।
(६) जैत्रसिह (वि० स० १३३२ से १३५० तक) सन् १२७५ से १२९३ ई० तक
(७) मूलराज (वि० स० १३५० से १३५१ तक) सन् १२९३ से १२९४ ई० तक

सन् १२९४ से १२९९ तक जैसलमेर पर मुसलमानो का अधिकार रहा। सन् १२९९ मे दूदा ने पुनः मुसलमानो से जैसलमेर छीन लिया और सन् १३०६ (वि० स० १३५६ से १३६३) तक राज्य किया। सन् १३०६ मे अलाउद्दीन- खिलजी के सेनानायक मलिक काफूर ने जैसलमेर पुन. जीत लिया। लगभग १० वर्ष अर्थात् सन् १३०६ से १३१६ (वि० स० १३६३ से १३७३) तक जैसलमेर पुन मुसलमानो के अधीन रहा। सन् १३१६ (वि० स० १३७३) मे वीर घडसी ने जैसलमेर को पुन- स्वतन्त्र किया। वीर घड़सी के उपरान्त उनके वशधर महाराज केहर (शासनकाल वि० सं० १४०० से १४५१ अर्थात् सन् १३४३ से १३९४ ई० तक) तथा लखमणजी (शासनकाल स० १४५१ से १४९६ अर्थात् सन् १३९४ से १४३९ ई० तक) ने जैसलमेर पर शासन किया।

इस राजनीतिक स्थिति का प्रभाव जैन महाकाव्य-साहित्य पर भी पडा है। पाठक आगे देखेगे कि आलोच्यकाल मे जितने भी महाकाव्यो का निर्माण हुआ, उनमे से अधिकांश की रचना ईसा की तेरहवी शताब्दी (वि० स० १२५७ से वि० स० १३५७) के बीच हुई है,

राजनीतिक परिस्थिति का जैन-संस्कृत-महाकाव्य-साहित्य पर प्रभाव

क्योकि इस शताब्दी मे गुजरात तथा राजस्थान के पश्चिमी भाग (मरु तथा जांगलप्रदेश, जाबालिपुर, नागपुर, सत्यपुर, नड्डुल्य, प्रह्लादनपुर, जैसलमेरु, आबू तथा चन्द्रावती आदि राज्यो) मे हिन्दू शासक थे जिनके राज्य मे पूर्ण शान्ति थी। ये हिन्दू नरेश जैनो और जैन मुनियो के साथ सहिष्णुता का व्यवहार ही नही करते थे, अपितु उनका अत्यधिक आदर-सत्कार भी करते थे। चौदहवी शताब्दी (वि० स० १३५७–१४५७) मे समस्त गुजरात और पश्चिमी राजस्थान के अधिकाश भागो मे मुसलमानो का आधिपत्य रहा। इनके शासनकाल मे

---

(१) जैसलमेर की राजनीतिक दशा के वर्णन मे प० व्यास श्रीहरिदत्त गोविन्द-कृत 'जैसलमेर का इतिहास' का आधार लिया गया है।

हिन्दू प्रजा, जिसमे जैन भी शामिल थे, का उत्पीडन और उनके मन्दिरो का ध्वस होना प्रारम्भ हुआ। अशान्ति का यह काल साहित्य-रचना के उपयुक्त नही था, अत. ईसा की चौदहवी शताब्दी मे रचित जैन महाकाव्य भी सख्या मे केवल दो-तीन ही मिलते है।

धार्मिक स्थिति

विवेच्य युग मे गुजरात और राजस्थान मे, मुख्यतया परम्परागत हिन्दू धर्म तथा जैन धर्म का प्रचार था। इनके अतिरिक्त तेरहवी शताब्दी मे कुछ कम तथा चौदहवी शताब्दी मे उससे बहुत अधिक इस्लाम धर्म का प्रचलन भी हो गया। तेरहवी शताब्दी मे गुजरात और राजस्थान के सभी नरेश हिन्दू थे, अत वे हिन्दू धर्म का ही पालन करते थे। हिन्दू धर्म बडा व्यापक शब्द है। इसमे शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक सम्प्रदायो का समावेश हो जाता है। तेरहवी शताब्दी में गुजरात और राजस्थान मे शैव मत का पर्याप्त प्रचार था। गुजरात के सभी

हिन्दू धर्म

हिन्दू नरेश शैव थे, अत उनके काल मे अनेक शिव-मन्दिरो का निर्माण गुजरात मे हुआ। जनता मे भी शिव-उपासना का प्रचार था। राजस्थान के नरेश भी शैव थे। शाकम्भरी के चौहानो के कुलदेवता हर्षनाथ शिव थे। वाक्पतिराज, सिंहराज तथा उनके परवर्ती चौहान शासको ने अनेक शिव-मन्दिरो का निर्माण कराया।[1] नाडौल के चौहान शासक भी शैव थे। अल्हण, कीर्तिपाल तथा केल्हण ने भी शिव-मन्दिर बनवाये थे।[2] इसी प्रकार जालौर माण्डव्यपुर और आबू-चन्द्रावती के शासक भी शैव थे। यहाँ की हिन्दू जनता भी शिव की उपासना करती थी।

इन सभी प्रदेशो मे शक्ति-पूजा भी प्रचलित थी, विशेष कर राजस्थान मे इसका अधिक प्रचार था। गुजरात मे अम्बा भवानी, कालीमाता और बालादेवी के पीठ उस समय विद्यमान थे और धार्मिक जनता उनके दर्शन करने जाया करती थी।[3] उच्चवर्ण के लोगो से लेकर निम्नवर्ण के निरक्षर लोगो तक मे माताजी (देवी) का पूजन कुलाचार के रूप मे स्वीकार कर लिया गया था।[4] राजस्थान मे नवरात्र आदि अवसरो पर देवी को पशुबलि देने का बहुत रिवाज था। किन्तु गुजरात मे, कदाचित् जैनो के प्रभाव के कारण, यह प्रथा लगभग बन्द हो गई थी। वस्तुत गुजरात की जनता को देवी की उग्र पूजा (बलि आदि देना) पसन्द न थी।[5]

वैष्णव धर्म का प्रचार भी गुजरात और राजस्थान मे बहुत पहले से था। गुजरात मे द्वारका और डाकोर के प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिर बहुत पुराने समय से वर्तमान थे। किन्तु विष्णु-पूजा का व्यापक प्रचार इस समय न था। गुजरात मे वैष्णव धर्म का व्यापक प्रचार तो सोलहवी शताब्दी मे वल्लभाचार्य ने किया। शिव, शक्ति और विष्णु के अतिरिक्त सूर्य, गणपति और ब्रह्मा की पूजा भी इस समय होती थी, किन्तु उसका व्यापक प्रचार न था।

---

(१) अरली चौहान डाइनेस्टी, डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० २३० (२) वही, पृ० २३०
(३) गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास, रत्नमणिराव भीमराव बी०ए०, खण्ड १, पृ० २३२-३३
(४) वही, पृ० २३४ (५) वही, पृ० २३४

वस्तुतः हिन्दू पौराणिक देवताओ मे शिव और शक्ति इन दो देवताओ की ही पूजा उस समय अधिक प्रचलित थी।

किन्तु इस काल का सर्वाधिक प्रिय और लोक-प्रचलित धर्म जैन-धर्म था। ईसा की बारहवी शताब्दी मे आचार्य हेमचन्द्र और परमार्हत राजा कुमारपाल ने अपने अनवरत प्रयत्नो से गुजरात मे जैन धर्म को बहुत व्यापक बना दिया था। ग्यारहवी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक जैन धर्म ने जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनपतिसूरि, जिनवल्लभगणी जैसे अनेक उत्कृष्ट विद्वान् उत्पन्न किये जिन्होने जैन धर्म के प्रचार मे तन-मन लगा दिया।

जैन धर्म

राजस्थान मे जैन धर्म को फैलाने का प्रमुख श्रेय खरतरगच्छ के आचार्यों, मुनियो एव श्रावकों को है। आलोच्य युग मे जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनकुशलसूरि, जिनपद्मसूरि आदि अनेक जैन विद्वानो एव मुनियो ने चित्रकूट (चित्तौड), जैसलमेरु, वाग्भटमेरु, सत्यपुर, माण्डव्यपुर, जावालिपुर, नागपुर, पल्ली, मरुक्कोट, अर्बुद, चन्द्रावती, नड्डुलय, डिण्डवाणा प्रह्लादनपुर तथा उच्च (सिन्ध) आदि नगरो मे ससघ यात्रा करके जैन धर्म का व्यापक प्रचार किया। जैन धर्म के प्रचार मे उन ज्ञात और अज्ञातनामा हिन्दू नरेशो, उनके जैन-अजैन मन्त्रियो एव जैन श्रेष्ठियों का भी कम योग नही है जिन्होने धर्म-प्रचार के लिए मुक्तहस्त होकर धन व्यय किया। वास्तव मे व्यापकता और प्रचार की दृष्टि से गुजरात और पश्चिमी राजस्थान मे जैन धर्म का स्थान सर्वप्रथम था।

यो तो श्वेताम्बर-जैन-धर्म के सभी गच्छो ने जैन धर्म का प्रचार किया है, तथापि तपागच्छ, खरतरगच्छ और उपकेशगच्छ के आचार्यों ने जैन धर्म का विशेष प्रचार किया।

शासक—वर्ग, श्रेष्ठि—वर्ग तथा जनसाधारण पर जैन धर्म का प्रभाव

इनमे खरतरगच्छ के पट्टधरो द्वारा किये गये जैन धर्म के व्यापक प्रचार का विवरण 'खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावली' मे दिया गया है। यहाँ हम पादटिप्पणी मे इसमे से कुछ ऐसे अंशो का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करते है[1] जिनसे आलोच्य युग के राजा, महाराजा, राव, राजकुल के व्यक्तियो, राजपुरुषो एव श्रेष्ठियो पर जैन मुनियो का कितना प्रभाव था, यह ज्ञात हो सकेगा।

---

(१) श्रीजिनदत्तसूरि जब अजमेर पधारे तो वहाँ का चौहान राजा अर्णोराज स्वयं उनके दर्शनार्थ आया था और उनके उपदेश से अति प्रसन्न होकर उन्हे सर्वदा अजमेर मे ही रहने की प्रार्थना की थी, परन्तु सूरिजी ने साध्वाचार का स्वरूप बतलाया और समय-समय पर वहाँ आते रहने का कह कर राजा को सन्तुष्ट किया। अर्णोराज ने अजमेर के दक्षिणी भाग में पहाड़ी के नीचे श्रावको को मन्दिर व निवासगृह बनाने के लिए यथेच्छ भूमि प्रदान की।

२२३ में जिनदत्तसूरि के शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरि दिल्ली के निकटवर्ती ग्राम मे पधारे। उनको वन्दना करने के लिए जाते हुए श्रावक-समुदाय को राजप्रसादस्थित

ये अ श 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली' के प्रारम्भ मे दिये गये श्री अगरचन्द नाहटा के लेख 'खरतरगच्छगुर्वावली का ऐतिहासिक महत्त्व' से उद्धृत किये गये हैं। हिन्दू राजा-महाराजा

महाराजा मदनपाल ने देखा और मन्त्रियो से सूरिजी के पधारने की सूचना पाकर महाराजा ने समस्त मुसाहिबो और सेना को एकत्र किया और समारोहपूर्वक सूरिजी के पास गया। उनके धर्मोपदेश को श्रवण कर महाराजा ने उनसे अपने नगर मे पधारने की अत्यन्त आग्रहपूर्वक विनती की। राजा के आग्रह पर सूरि दिल्ली पधारे। बड़े समारोह से उनका प्रवेशोत्सव हुआ। महाराजा मदनपाल स्वय सूरिजी का हाथ पकड़े हुए उनकी पेशवाई मे चल रहा था। राजा की प्रार्थना से उन्होंने वहीं चातुर्मास किया।

श्री जिनपतिसूरि सं० १२२८ मे बब्बेर नगर को पधारे। समाचार पा आशिका के श्रावक राजा भीमसिह के साथ सूरिजी के दर्शनार्थ आये। सूरिजी के उपदेश से प्रसन्न होकर उन्होने उनसे आशिका (हाँसी) पधारने का आग्रह किया। राजा ने बड़े समारोह के साथ उनका प्रवेशोत्सव किया। स० १२३२ मे सूरिजी मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए पुन आशिका (हाँसी) गये। आशिका-नरेश और उनके आज्ञावर्ती राजाओ ने धूमधाम से प्रतिष्ठा-समारोह मे भाग लिया। जिनपतिसूरि सं० १२३९ मे अजमेर पधारे। यहाँ उन्होने राजसभा मे चैत्यवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभु को परास्त किया। चौहान राजा पृथ्वीराज ने स्वयं नरानयन (नरायना) के राजप्रसादो से आकर सूरिजी को जयपत्र दिया। स० १२४९ मे श्रीजिनपतिसूरि लवणखेटक से विहार करके पुष्करिणी (पोकरण), विक्रमपुर आदि मे विचरते हुए अजमेर गये। वहाँ से पाटण, भीमपल्ली, कुहियप होकर पुन राणा केल्हण के आग्रह से लवणखेटक पधारे। वहाँ उनका दक्षिणावर्त आरातिकावतारणोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया।

स० १२७३ मे नगरकोट के राजा पृथ्वीपाल ने, मनोनानन्द नामक काश्मीरी पण्डित को परास्त करने के उपलक्ष मे जिनपतिसूरि के शिष्य जिनपालोपाध्याय को जयपत्र दिया। स० १३१० मे श्रीमहावीरविधि चैत्य मे राजा व प्रधान पुरुषो की उपस्थिति मे जाबालिपत्तन (जालौर) के राजमान्य महामन्त्री के तत्वावधान मे पालनपुर, बागड़ आदि देश के श्रावको के एकत्र होने पर श्री चतुर्वि शतिजिनालय आदि की प्रतिष्ठादीक्षादि महामहोत्सवपूर्वक हुई।

सं० १३१४ मे जाबालिपुर के राजा उदयसिह के सान्निध्य मे कनकगिरि के मुख्य मन्दिर पर ध्वजारोप हुआ। स० १३१६ मे स्वर्णगिरि के राजा चाचिगदेव के सान्निध्य मे स्वर्णगिरि के शान्तिनाथ-मन्दिर मे स्वर्णमय ध्वजदण्ड व कलश स्थापित किये गये। सं० १३१७ मे भीमपल्ली मे वहाँ के राजा माण्डलिक के राजत्वकाल मे उनके दण्डनायक के सान्निध्य मे महावीर-जिनालय पर स्वर्णदण्डकलशादि चढ़ाये गये। स० १३३५ मे चित्तौड़ के युवराज अरिसिंह के सान्निध्य मे आदिनाथ-मन्दिर मे ध्वजारोप हुआ।

बीजापुर-नरेश का मन्त्री विन्ध्यादित्य श्रीजिनप्रबोधसूरि का भक्त था। उसने

ही नही, कतिपय मुसलमान शासको पर भी जैन मुनियो का बहुत प्रभाव था। 'खरतरगच्छ-गुर्वावली' मे गुजरात, मेवाड, मारवाड, सिन्ध, बागड और पजाब आदि प्रदेशो मे रहने वाले सैकड़ो धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओ के कुटुम्बो और व्यक्तियो का नामोल्लेख

सं० १३३७ में जिनप्रबोधसूरि का नगरप्रवेशमहोत्सव बड़े समारोह से किया। सं० १३३९ मे शम्यानयन (सिवाना) का राजा श्रीसोम श्रीजिनप्रबोधसूरि को बड़े आग्रह से शम्यानयन में चातुर्मास करने के लिए ले गया। स० १३४० में श्रीजिनप्रबोधसूरि जैसलमेरु पधारे। उनके नगरप्रवेशमहोत्सव में जैसलमेर का नरेश कर्णदेव भी ससैन्य सम्मिलित हुआ था। महाराजा ने बड़े आग्रह से उनसे वहाँ चातुर्मास करने को कहा। सं० १३४२ मे जाबालिपुर के महाराजा सामन्तसिंह के सान्निध्य मे अनेक जिनप्रतिमाओ की प्रतिष्ठा और इन्द्रमहोत्सव सम्पन्न हुआ।

सं० १३४६ मे श्रीजिनचन्द्रसूरि शम्यानयन आये। उनके सम्मान के लिए वहाँ का राजा सोमेश्वर चौहान ससैन्य नगर के बाहर आया और उनका प्रवेशमहोत्सव किया। सं० १३५६ में जैसलमेरु-नरेश जैत्रसिंह की प्रार्थना को मान कर श्रीजिनचन्द्रसूरि जैसलमेर पधारे। नरेश सूरिजी के स्वागतार्थ नगर के बाहर आठ कोस सम्मुख गया था। स० १३५७ मे जैसलमेर मे होने वाले दीक्षा-समारोह में महाराजा जैत्रसिंह ने अपने वादको और विभिन्न दासो को भेजा था। सं० १३६० से शम्यानयन-नरेश शीतलदेव और उनके मन्त्री नागचन्द्र की अभ्यर्थना से जिनचन्द्रसूरि शम्यानयन आये थे। स० १३७४ में मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंह द्वारा तत्कालीन भारत के बादशाह कुतुबुद्दीन खिलजी से सर्वत्र निर्विघ्नतया यात्रा करने का फरमान प्राप्त करके श्रीजिनचन्द्रसूरि ने नागपुर (नागौर) से संघ निकाला। दिल्ली में सुलतान सूरिजी के भव्य व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुआ था।

सं० १३७६ में मेड़ता के राणा मालदेव की प्रार्थना से श्रीजिनचन्द्रसूरि मेडता पधारे। वे वहाँ राणा व संघ की प्रार्थना से २४ दिन ठहरे।

स० १३८० में दिल्ली-निवासी सेठ रयपति के पुत्र साहु धर्मसिंह ने दिल्लीपति गयासुद्दीन बादशाह से उसके प्रधानमन्त्री नेब साहब की सहायता से तीर्थयात्रा का फरमान निकलवाया और जिनकुशलसूरि के नेतृत्व मे शत्रुंजयादि तीर्थो को संघ निकाला। स० १३८१ मे भीमपल्ली के सेठ वीरदेव ने भी दिल्ली-सम्राट् से तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त करके जिनकुशलसूरि के नेतृत्व मे संघ निकाला।

सं० १३९१ में जिनपद्मसूरि वाग्भटमेरु पधारे। उस समय वहाँ का चौहान-नरेश राणा शिखरसिंह, राजपुरुष एव नागरिक जनों के साथ सूरिजी के सम्मुख गया और महोत्सवपूर्वक उनका नगर-प्रवेश कराया। इसी वर्ष (सं० १३९१ मे) जिनपद्मसूरि वाग्भटमेरु से सत्यपुर (साँचौर) पधारे। उस समय सत्यपुर का राणा हरिपालदेव आदि उनके स्वागतार्थ सम्मुख गये। सं० १३९३ मे पाटन से जिनपद्मसूरि आशोटा पधारे। उस

मिलता है जिनसे उक्त प्रदेशों मे जैन धर्म के व्यापक प्रचार का पता लगता है। ये श्रावक-श्राविका धर्माभ्युदय के कार्यों मे मुक्तहस्त होकर धन व्यय करते थे। सघयात्रा का रिवाज उन दिनों बहुत अधिक था। प्रवेशमहोत्सव, दीक्षा, मालारोपण, सघयात्रा, मन्दिर-निर्माण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, ध्वजारोपण आदि सभी धार्मिक उत्सव मनाये जाते थे जिनमे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी वर्णों और वर्गों के लोग सम्मिलित होते थे। डॉ० दशरथ शर्मा

समय वहाँ का राजा रुद्रनन्दन, राज० गोधा सामन्तसिंह आदि के साथ स्वागतार्थ पूज्य श्री के सम्मुख आया। स० १३९३ मे ही जिनपद्मसूरि बूजद्री पधारे। वहाँ उनके नगर-प्रवेशोत्सव में नागरिकों के साथ-साथ वहाँ के राजा उदयसिंह ने भी भाग लिया। इसके बाद अन्यत्र विहार करके सूरिजी फिर वहाँ पधारे, तब भी राजा उदयसिंह प्रवेशोत्सव में सम्मिलित हुए थे। स० १३९३ मे जिनपद्मसूरि त्रिशृङ्गम् आए। यहाँ उनकी चरणवन्दना स्वयं वहाँ के महाराजा महीपाल और राजकुमार रामदेव ने की थी और उनकी विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

सं० १२७९ मे जिनेश्वरसूरि के खभात पधारने पर गुजरात के महामात्य वस्तुपाल ने बड़े समारोह से उनका नगरप्रवेशोत्सव किया था।

स० १३८५ मे जिनप्रभसूरि का साक्षात्कार भारत-सम्राट् मुहम्मद तुगलक से हुआ। उनकी अगाध विद्वत्ता से प्रसन्न होकर मुहम्मद तुगलक ने उन्हे १००० गाय, बहुत सा द्रव्य, श्रेष्ठ उपवन, १०० वस्त्र, १०० कम्बल तथा अन्य वस्तुएँ प्रदान की थीं तथा उनके प्रति अपनी आदर-भावना व्यक्त करने के लिए उन्हे हाथी पर चढा कर भेरी, शंख, मृदंग, मर्दल कंसाल, ढोल, आदि वादित्र बजाते हुए समारोह के साथ उपाश्रय में भेजा था। बादशाह ने उनकी प्रसन्नता के लिए जैन-श्वेताम्बर-तीर्थ-रक्षा का फरमान निकाला था और जिनप्रभसूरि के कहने से अनेक वन्दियो को मुक्त कर दिया था। सुलतान ने संघ को एक सराय भी प्रदान की थी जिसमे चार सौ श्रावकों का एक कुटुम्ब रहने लगा था। श्रीजिनप्रभसूरि का प्रभाव फीरोज तुगलक पर भी था। उसने भी (ध्यान रहे फीरोज कट्टर मुसलमान था) सूरि का अतिशय आदर किया था।

खरतरगच्छ के मुनियो के अतिरिक्त अन्य गच्छ के सूरियों ने भी इस काल में दिल्ली सम्राट् से सम्मान प्राप्त किया था। वि० सं० १४१० मे 'शान्तिनाथचरित्र' की रचना करने वाले मुनिभद्रसूरि को दिल्ली के सुलतान फीरोज तुगलक ने अपनी सभा मे बुला कर उनका सम्मान किया था। मुनिभद्रसूरि के गुरु बृहद्गच्छीय गुणभद्र का सम्मान दिल्लीपति मुहम्मद तुगलक भी करता था। उसने एक बार उन्हे दस सहस्र सुवर्ण-टंकाएँ प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की थी, किन्तु सूरि ने तपस्वियो को इनका ग्रहण करना निषिद्ध है, यह कहकर उन्हे स्वीकार नहीं किया था। इस पर मुहम्मद तुगलक ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। (देखिए जिनप्रभसूरि अने सुलतान महम्मद, पं० लालचन्द्र भगवान गाधी, पृ० ११०)

वि० सं० १४२७ मे फीरोज तुगलक ने गणितज्ञ महेन्द्रसूरि तथा रत्नशेखर का

के शब्दों मे "बारहवी शताब्दी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक राजस्थान के चौहान शासको और उनकी प्रजा पर जैन आचार्यों का अतुल प्रभाव था और वे जैनधर्म के अभ्युदय मे भरसक सहयोग देते थे। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथभौर के जैन मन्दिर पर स्वर्ण-कलश लगवाया था। अजयराज ने भी अजमेर के पार्श्वनाथ के मदिर को एक स्वर्णकलश भेट किया था। जैन विद्वान् धर्मघोषसूरि अर्णोराज के आश्रय मे रहता था। विग्रहराज चतुर्थ ने अपनी राजधानी मे एक जैन विहार बनवाया था और उसने अपने सम्पूर्ण राज्य मे मास की कुछ तिथियो मे पशुवध की निषेधाज्ञा जारी कर दी थी। सोमेश्वर ने बीजोलिया के जैन मन्दिर को एक ग्राम दिया था। पृथ्वीराज तृतीय ने अनेक जैनो को राज्य की उच्च सेवा मे लिया था। नाडौल का शासक कुतुकराज शान्तिनाथ की पूजा के लिए आठ द्रम्म दिया करता था। नाडौल के अन्य शासक रायपाल तथा कुमारपाल ने जैन मन्दिरो को प्रचुर धन दान मे दिया था। रत्नपुर के शासक पूर्णपक्षदेव तथा नाडौल के शासक अल्हण ने अपने राज्य मे अमारि-घोषणाएँ कर दी थी। जालौर के राज्य मे भी जैनो की स्थिति बडी सुदृढ थी। उदयसिंह सोनीगरा का प्रधानमन्त्री यशोवीर था जिसकी गणना प्रसिद्ध जैन श्रावको मे की जाती है। गुजरात मे वस्तुपाल महामात्य जैसे प्रसिद्ध श्रावक हुए जिन्होने जैन धर्म का उत्कर्ष किया।"[१]

वस्तुत इस युग मे जैन धर्म गुजरात, मेवाड, जालौर, मारवाड, आबू, चन्द्रावती, वागड आदि प्रदेशो का सबसे अधिक उत्कर्षशील धर्म था। उससे प्रभावित होकर असख्य ब्राह्मणो, क्षत्रियो और वैश्यो ने जैन धर्म ग्रहण किया। आचार्य मुनिजिनविजय का कथन है कि "गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में जो श्रीमाल, प्राग्वाट, उपकेश, पल्लीवाल, मोढ गुर्जर, नागर, दीशावाला, हुवड, आदि अनेक वैश्यवशो के नाम दृष्टिगोचर होते है वे सभी उस समय जैन धर्म का पालन करते थे।"[२] इसके अतिरिक्त सामान्य जनता पर

सत्कार किया था। देखिये जिनप्रभसूरि अने सुलतान महम्मद, प० लालचन्द्र भगवान गांधी, पृ० ११३-१४।

उपकेशगच्छीय श्रीदेवगुप्तसूरि के शिष्य हरिश्चन्द्र वाचनाचार्य (१३ वी शताब्दी) के व्याख्यानो को सारगदेव भूपति भी श्रद्धा से सुनता था। देवगुप्तसूरि के शिष्य सिद्धसूरि की आज्ञा से साहू समरसिह ने गुजरात के तत्कालीन सूबेदार अलपखां से आज्ञा प्राप्त करके सं० १३७१ में शत्रुंजयतीर्थ मे ऋषभदेव के मन्दिरों मे प्रतिष्ठा कराई थी। सिद्धसूरि के व्यक्तित्व से जीर्णदुर्ग (जूनागढ) के राजा महीपाल तथा प्रभासपत्तन के अधिकारी मुग्धराज भी प्रभावित थे। स० १३७१ मे समरसिह के संघाधिपत्य मे जो संघ वहाँ पहुँचा, तो इन दोनो नरेशो ने सघ की अभ्यर्थना कर सूरि की चरणवन्दना की थी। द्वीप (डयू) के राजा मूलराज ने भी सघ का आदर करके सूरिजी की अर्चना की थी। (देखिये जैन गुर्जर कविओ, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० २२६९-२२७०)

(१) डॉ० दशरथ शर्मा डी० लिट्, अरली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २२७-२२८

(२) मुनि जिनविजय, जैन पुस्तक-प्रशस्ति-सग्रह, प्रस्तावना, पृ० १९

जैन धर्म का व्यापक प्रभाव पडा। जैनों के प्रभाव से ही गुजरात की जनता प्राय: शाकाहारी हो गई और राजस्थान के ब्राह्मणों ने भी मासाहार का पूर्णतया त्याग कर दिया। इस प्रकार जैन धर्म की अहिंसा का प्रभाव लोकमानस पर अमिट-रूप से पड चुका था।[1]

जैन धर्म मे सहिष्णुता की भावना पाई जाती है, फिर भी यदा-कदा जैन धर्म के आचार्यों तथा अन्य धर्म के विद्वानो मे सघर्ष हो जाता था, फलस्वरूप प्राय शास्त्रार्थ होते रहते थे। इस समय तक जैन धर्म भी अनेक अवान्तर शाखाओ मे बँट गया था। गच्छ-उपगच्छो की सख्या बढती जा रही थी, फलस्वरूप इन विविध गच्छो के आचार्यों मे भी कभी-कभी सघर्ष हो जाता था और वे शास्त्रार्थ के अखाडे मे कूद पडते थे। इस युग के जैन धार्मिक आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता यह है कि इन जैनाचार्यों ने देश मे स्थित अनेक धार्मिक मतो का खण्डन किया है, किन्तु उन्होने मुसलमानी धर्म के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा और न इनका इस्लाम के किसी सन्त के साथ शास्त्रार्थ होना पाया जाता है।

इस्लाम

आलोच्य युग के बहुत पहले ही गुजरात और राजस्थान मे कुछ मुसलमान बस चुके थे। हिन्दू राजाओ के राज्य मे उन्हे पूरी धार्मिक स्वतत्रता थी। सिद्धराज जयसिह ने उन लोगो को कडा दण्ड दिया था जिन्होने मुसलमानो की मसजिदो को क्षति पहुँचाने का विचार किया था।[2] वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल ने तो स्वय राज्य के खर्चे से अनेक मसजिदो का निर्माण तक करा दिया था।[3] राजस्थान के राजाओ ने भी मुसलमानो का पर्याप्त सत्कार किया था। ईसा की चौदहवी शताब्दी मे तो पूरे गुजरात तथा राजस्थान के कुछ प्रदेशो पर मुस्लिम सत्ता ही स्थापित हो गई थी। इस समय तलवार के जोर से हजारो-लाखो हिन्दुओ को मुसलमान बनाया गया। हिन्दुओ के मन्दिरो को तोड कर उनके सामान से मसजिदो का निर्माण किया गया। अत्याचार से पीडित जनता मे से बहुतो ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार गुजरात और राजस्थान म चौदहवी शताब्दी मे इस्लाम का प्रभाव भी बढ रहा था।

सामाजिक दशा

इस युग मे प्रत्येक वर्ग अनेक जातियो और उपजातियो मे विभाजित हो गया था। यह भेद-भाव उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा था। हिन्दू सभ्यता मे प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थिर रूढिवाद और कठोरता ने पैर जमा लिये थे। तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका, शकुन-मुहूर्त आदि मे अशिक्षित जनता ही नही अपितु शिक्षित जनता भी विश्वास करती थी। चमत्कार-प्रदर्शन की धूम थी। जैनाचार्य भी अपने चमत्कारो और अवधानो से जनता और शासको मे अपना प्रभाव बढा रहे थे।

इस समय मुख्यतया प्रत्येक वर्ण स्मृति-प्रतिपादित धर्म का आचरण ही करता था,

---

(१) डॉ० दशरथ शर्मा, अरली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २२८

(२) गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास, गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद पृ० २७३ (३) गुजरात का जैन धर्म, मुनिजिनविजय, पृ० ५

किन्तु उसमे अब उतनी कट्टरता नही थी । ब्राह्मण, श्रीमाली, नागर, पंचगौड़, पचद्रविड़, रायकवालस, पुष्करणा, दाधीच, आदि अनेक उपविभागो मे विभक्त हो गये थे । ब्राह्मणो मे छुआछूत का विचार वढ रहा था । एक उपविभाग के ब्राह्मण दूसरे उपविभाग के ब्राह्मणो के साथ खान-पान, रोटी-बेटी का सम्बन्ध नही रखते थे । ब्राह्मण अधिकतर पौरोहित्य और ज्यौतिष का काम करते थे । अध्ययन-अध्यापन और स्वाध्याय के अतिरिक्त मन्दिरो मे देवार्चना करना भी उनका मुख्य व्यवसाय था । श्वेताम्बर जैन मदिरो मे भी ब्राह्मण देव-सेवा के लिए नियुक्त किये जाते थे ।

ईसा की तेरहवी शताब्दी मे राजपूत शासक जाति थी । राजपूत भी अनेक उपजातियो मे विभक्त थे, परन्तु उनमे परस्पर खान-पान और विवाह इत्यादि के सम्बन्ध थे । राजपूत सैनिक-जीवन व्यतीत करते थे और उनका मुख्य काम भारतीय सस्कृति की रक्षा करना समझा जाता था । इस काल मे कुछ राजपूत शासक शस्त्रविद्या के साथ शास्त्र-विद्या मे भी कुशल थे ।

कृषि-कर्म पहले वैश्यो का ही कार्य था, किन्तु जैन धर्म के प्रभाव के कारण अधिकाश वैश्य इस कार्य को हिसायुक्त और पापमय समझ कर छोड बैठे थे । यह कार्य शूद्रो के हाथ मे आ गया था । कुछ ब्राह्मण और क्षत्रिय भी कृषि-कार्य करने लगे थे । वैश्यो ने अधिकतर व्यापार और उससे सम्वन्धित व्यवसाय—रुपयो को व्याज पर उधार देना आदि कार्य अपना रखे थे । इसी कारण उस समय उन्हे श्रेष्ठी और साहू कहा जाता था । कुछ वैश्य कुशल प्रशासक और योद्धा भी हुए है जिनमे गुर्जरेश वीरधवल का महामात्य वस्तुपाल, जालौर-नरेश उदयसिह का महामात्य यशोवीर तथा नाडौल-नरेश कुतुकदेव का बलाधिप यशोदेव प्रमुख है । वैश्य भी अनेक उपजातियो मे विभक्त हो गये थे ।

शूद्रो का प्रमुख कर्म कृषि करना तथा उच्च वर्णों की सेवा करना था । शूद्रों में भी एक वर्ग उन लोगो का था जो अस्पृश्य कहलाते थे । डोम और मातंग जाति की गणना अस्पृश्यो मे ही की जाती थी । सामाजिक और आर्थिक दोनो दृष्टि से शूद्रों की दशा दयनीय थी ।

समाज मे स्त्रियो को पुरुषो के वरावर अधिकार प्राप्त न थे । साधारणतया कन्याजन्म पर कोई विशेष समारोह नही मनाया जाता था । वाल-विवाह, विशेषकर कन्याओ का बाल्यावस्था मे विवाह भी प्रारम्भ हो गया था । इस काल मे राजाओं और धनाढ्यो मे बहुपत्नीप्रथा प्रचलित थी । यदा-कदा स्त्रियो को राजनीति का शिकार बनना पडता था और वे विजेताओ को व्याह दी जाती थी । ऐसी दशा मे अनमेल विवाह के अवसर हो जाते थे । उदाहरण के लिए विक्रम की तेरहवी शताब्दी मे कुमारपाल से पराजित होने पर शाकम्भरी-नरेश अर्णोराज को अपनी १७–१८ वर्ष की पुत्री का विवाह ५७ वर्षीय कुमारपाल से करना पड़ा था । स्त्रियो का क्षेत्र घर माना जाता था । उनमें सती और जौहर की प्रथा भी थी । राजा और धनाढ्य लोग अनेक रखिताएँ (Keep-wives) भी रखते थे । नगरो मे अनेक गणिकाएँ रहती थी । इन गणिकाओं का नृत्य-वाद्य धार्मिक अवसरो पर भी होता था ।

सामान्य जनता मे शिक्षा का प्रचार कम था, किन्तु ब्राह्मण और जैन मुनि प्राय शिक्षित होते थे। भीनमाल या श्रीमाल उस समय ब्राह्मणो का गढ था। वहाँ के ब्राह्मण चार वेद, षट्शास्त्र, अष्टव्याकरण, चतुर्दश विद्या, अष्टादश पुराण, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, ज्योतिष, पिंगल आदि के ज्ञाता थे। जैन मुनि जैन-आगम, दर्शन, तर्क, काव्य, नाटक, अलकार शास्त्र और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करते थे। उस समय श्रीमाल, जावालिपत्तन, आबू, चन्द्रावती, पत्तन (पाटन), स्तम्भतीर्थ (खम्भात), धवलक्कक (धौलका) तथा प्रह्लादनपुर (पालनपुर) मे प्रसिद्ध शिक्षापीठ थे। चौदहवी शताब्दी मे जब गुजरात मे मुसलमानी सत्ता स्थापित हो गई तो इनमे से बहुत से शिक्षापीठो को राजकीय सहायता मिलनी बन्द हो गई, फिर भी धनिक वणिजो की उदारता के बल पर कुछ पीठ चलते रहे। मुस्लिम शासन मे मकतब प्रारम्भ हुए जिनमे इस्लामी पद्धति से शिक्षा दी जाती थी। स्त्री-शिक्षा का प्रचार कम था।

इस प्रकार ईसा की चौदहवी शताब्दी मे हिन्दुओ के राजनीतिक जीवन के साथ-साथ भारतीयो का सामाजिक जीवन भी जीर्ण-शीर्ण हो गया था। मुसलमानी धार्मिक अत्याचार से बचने के लिए हिन्दुओ को खान पान, ब्याह-शादी आदि के कडे बन्धन बढाने पडे, जिससे प्रत्येक जाति स्वय को बाहरी प्रभावो से बचाती रहे। अब पीडित और अशिक्षित जनता मे अन्धविश्वास, साहसहीनता और कलह के भाव और भी प्रबल हो गये, फिर भी हिन्दू-समाज आक्रान्ताओ के अत्याचार से बराबर टक्कर लेता रहा।

साहित्यिक अवस्था

इस युग मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश तीनो भाषाओ में रचना हुई। भाषा की दृष्टि से यद्यपि सस्कृत अब उतनी प्रचलित नही थी, तो भी जनसाधारण मे उसका गौरव और मान वैसा ही था। इस काल मे अनेक सस्कृत-ग्रन्थो का प्रणयन इसका प्रमाण है। ब्राह्मणो ने ही सस्कृत का आश्रय लिया हो, ऐसी बात नही, अनेक जैन मुनियो और आचार्यों ने भी अपने धर्म के प्रचार और तीर्थङ्करो की स्तुति के लिए संस्कृत का आश्रय लिया। सस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रश के भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। सस्कृत और प्राकृत को तत्कालीन राजवर्ग का भी आश्रय मिला था। गुजरात के सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, वीरधवल, तथा वीसलदेव जैसे राजा विद्वानो के आश्रयदाता थे। वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल तथा जालौरनरेश के महामात्य यशोवीर स्वय विद्वान् होने के साथ-साथ विद्वानो के आश्रयदाता भी थे। इस युग की कृतियो को देख कर यह सरलता से कहा जा सकता है कि इस युग मे भी भारतीय प्रतिभा अकुण्ठित रही। काव्य, दर्शन, नाटक, काव्यशास्त्र आदि सभी विषयो पर इस काल मे ग्रन्थ लिखे गये। चौदहवी शताब्दी मे गुजरात और राजस्थान के मुसलमानो द्वारा पदाक्रान्त होने पर ग्रन्थ-रचना का वह उत्साह विद्वानो मे नही रहा, फलस्वरूप चौदहवी शताब्दी मे प्रचुर साहित्य की रचना नही हो सकी। इस युग का सस्कृत-साहित्य प्रादेशिक भाषाओ के काव्यो से भी प्रभावित होने लगा था, क्योकि इस समय प्रादेशिक भाषाएँ भी साहित्य के क्षेत्र मे पदार्पण कर चुकी थी।

तत्कालीन परिस्थितियाँ और जैन महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक अवस्था का प्रभाव इस युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्य-साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ा है। विशेष कर जैन महाकाव्यकारों का दृष्टिकोण धार्मिक होने के कारण उनकी रचनाओ मे धार्मिक विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है। वस्तुतः धार्मिक चेतना और भक्ति-

जैन महाकाव्यों की मूल प्रेरणाएँ

भावना इन महाकाव्यो के निर्माण की मूल प्रेरणा-शक्ति है। अणहिल्लपत्तन, भृगुकच्छ, खम्भात, कपडभज, धौलका, धन्धूका, कर्णावती, डभोई, भडोच, प्रह्लादनपुर (पालनपुर), चन्द्रावती, वडनगर, जाबालिपुर (जालौर), जैसलमेर, सत्यपुर (साँचौर) आदि नगरों के उपाश्रयो मे रह कर जैन यतियों ने असख्य धार्मिक ग्रन्थो की रचना की, जिनमे अनेक महाकाव्य है।

धर्म-भावना

अपने धर्म को व्यापक और लोकप्रिय बनाने तथा आत्मकल्याण की भावना से प्रेरित हो उन्होने ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरो तथा पुडरीक आदि महापुरुषो के चरित्रो को महाकाव्य का रूप प्रदान किया। जैन साधुओ का लक्ष्य समाज की धार्मिक चेतना को उद्‌बुद्ध करना, जैन धर्म के उपदेशो को, जिनमें नैतिकता और सदाचार पर अधिक बल दिया गया है, जनसाधारण तक पहुँचाना तथा स्वान्तः सुखाय अपने आराध्य का स्मरण करना था। इस युग के अधिकाश महाकाव्य इन्ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लिखे गये हैं। उनकी रचना विद्वद्वर्ग के लिए नही, अपितु जनता के साधारण वर्ग के लिए हुई। इसी कारण उनकी भाषा अत्यधिक सरल रखी गई है। जनसाधारण को सरल रीति से धार्मिक नियमो को समझाने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ कर अधिक प्रभावशाली साधन अन्य कोई नही है। अत जनता को प्रभावित करने के लिए इन महाकाव्यो मे कथाओं और उपकथाओ की योजना की गई है। शान्तिनाथचरित्र, पार्श्वनाथचरित्र, श्रेयासनाथचरित्र, पद्मानन्द, पुण्डरीकचरित्र आदि महाकाव्य इसी प्रकार के हैं। 'लीलावतीसार' काव्य तो एक प्रेमाख्यानक काव्य है, किन्तु वह भी धार्मिक आवरण से आवृत है। वास्तव मे चाहे प्रेमकथा हो अथवा चरित, सभी प्रकार के महाकाव्यो के निर्माण मे धर्म-भावना का प्रमुख हाथ रहा है।

धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रद्धालु श्रावक की प्रेरणा

जैन कवियो ने कतिपय महाकाव्यो की रचना किसी धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रद्धालु श्रावक की प्रेरणा से की है। इन कृतियों मे किसी व्रत के माहात्म्य अथवा किसी महापुरुष के चरित्र का वर्णन किया गया है। अमरचन्द्रसूरि ने 'पद्मानन्द' महाकाव्य की रचना पद्ममन्त्री की तथा 'बालभारत' की रचना वायट-निवासी ब्राह्मणो की प्रार्थना पर, देवप्रभसूरि ने 'पाण्डवचरित्र' की रचना देवानन्दसूरि की आज्ञा से तथा चन्द्रतिलक उपाध्याय ने 'अभयकुमार-चरित्र' की रचना अपने विद्यागुरु जिनपालोपाध्याय के आदेश पर की। इस युग के अनेक जैन कवियो को राज्याश्रय प्राप्त था। अमरचन्द्रसूरि, बालचन्द्रसूरि, उदयप्रभसूरि, माणिक्य-चन्द्रसूरि और नयचन्द्रसूरि आदि कवियो को राजदरबार मे प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इनमें

नयचन्द्रसूरि ग्वालियरनरेश वीरमदेव के तथा अन्य कवि गुर्जरेश्वर वीरधवल-वीसलदेव के महामात्य वस्तुपाल के विद्वन्मण्डल को सुशोभित करते थे। यद्यपि इन कवियो को राज्याश्रय प्राप्त था, तथापि इन्हे धन की इच्छा नही थी, क्योकि ये सभी कवि वीतराग यति थे और भौतिक कामनाओ से परे थे, फिर भी इनमे से कुछ कवियो ने अपने आश्रयदाता अथवा अन्य किसी लौकिक व्यक्ति की प्रशसा मे कुछ महाकाव्यो की रचना की। इसका कारण यह है कि जिन आश्रयदाता अथवा अन्य लौकिक व्यक्तियो के जीवनचरित को उन्होने काव्यबद्ध किया उन सबने जैन धर्म की प्रभावना के लिए अपना तन-मन-धन लगा दिया था। परमार्हत कुमारपाल, महामात्य वस्तुपाल, जगड्डशाह ऐसे ही उदारमना धर्मिष्ठ व्यक्ति थे जो किसी भी जाति और देश के लिए गौरव की वस्तु हैं। जैन यतियो ने उनके जैन-धर्म-सम्मत आदर्श जीवन से प्रभावित होकर उन्हे अपने महाकाव्य का नायक बना कर उनका प्रशस्तिगान किया है। उनके इस प्रशस्तिगान मे न तो कही चाटुकारिता की प्रवृत्ति पाई जाती है और न मिथ्या यश-वर्णन करने की प्रवृत्ति। तथ्य तो यह है कि इन महापुरुषो के आदर्श जीवन ने कवियो को प्राकृतजनगुणगान की प्रेरणा दी। जगड्ड की अद्‌भुत दानशीलता ने सर्वानन्दसूरि को 'जगड्डचरित', कुमारपाल की अपूर्व धर्मभावना ने जयसिहसूरि को 'कुमारपालचरित्र' तथा वस्तुपाल की जैन धर्म मे अविचल निष्ठा तथा जैनधर्म के प्रसार मे लोकोत्तर सक्रियता ने बालचन्द्रसूरि को 'वसन्त-विलास' एव उदयप्रभसूरि को 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य रचने की प्रेरणा दी। समसामयिक अथवा निकट अतीत के इन ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन को महाकाव्यबद्ध करने से इन महाकाव्यो मे प्राय सच्ची घटनाओ का ही वर्णन हुआ है। फलस्वरूप उनमे उस युग के इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री वर्तमान है।

जैन धर्म के समसामयिक प्रभावको का आदर्श जीवन

कतिपय जैन कवियो ने सस्कृत के मूर्द्धन्य महाकवियो—कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि—की पक्ति मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा से भी महाकाव्यो की रचना की। सस्कृत के महाकाव्यपचक (रघुवश, कुमारसभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधचरित) की टक्कर का महाकाव्य जैन-सस्कृत-साहित्य मे कोई नही था। इस अभाव की पूर्ति के लिए मुनिभद्रसूरि ने 'शान्तिनाथचरित्र' की रचना की। उन्होने बडे गर्व के साथ कहा है कि जिन्हे कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यो मे दोष दीख पडते है उन्हे इस काव्य मे गुण ही गुण दिखाई देंगे —

संस्कृत के मूर्द्धन्य महाकवियो की पक्ति मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा

ये दोषान् प्रतिपादयन्ति सुधियः श्रीकालिदासोक्तिषु
श्रीमद्भारविमाघपण्डितमहाकाव्यद्वयेऽप्यन्वहम् ।
श्रीहर्षामृतसूक्तिनैषधमहाकाव्येऽपि ते केवलम्
यावद् वृत्तविवर्णनेन भगवच्छान्तेश्चरित्रे गुणान् ॥

कवि की इस गर्वोक्ति मे उसकी कालिदास, भारवि आदि महाकवियो की समकक्षता मे आकर यश प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा झाँकती हुई दीख रही है। 'हम्मीर-महाकाव्य' की रचना भी कालिदास-प्रभृति महाकवियो की पक्ति मे स्थान पाने एव अपने अपूर्व काव्यकौशल को व्यक्त करने की आकाक्षा से हुई है। गोपाचल (ग्वालियर) के तत्कालीन शासक वीरमदेव तोमर ने 'प्राचीन कवियो के सदृश मनोहर और सरल काव्य की रचना अब कोई भी नही कर सकता' यह कह कर अपनी सभा के सभी कवियो को चुनौती सी दी, जिसके परिणामस्वरूप नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमहाकाव्य' का प्रणयन किया। हरिचन्द्र के 'धर्मशर्माभ्युदय, वस्तुपाल के 'नरनारायणानन्द', तथा जिनपाल उपाध्याय के 'सनत्कुमारचरित' जैसे प्रौढ काव्यो की रचना भी महाकवि के उच्चपद पाने की अव्यक्त आकाक्षा से ही हुई है। इन तीनो महाकाव्यो मे जो पूरे एक-एक सर्ग मे चित्र-काव्य की योजना की गई है उसका अर्थ पाण्डित्य-प्रदर्शन की धाक जमा कर कवि-यश प्राप्त करने के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस प्रकार आलोच्य युग के जैन-महाकाव्यो के निर्माण मे मुख्यतया ये प्रेरक शक्तियाँ दृष्टिगत होती है—(१) धार्मिक भावना (२) किसी धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रावक आदि की प्रार्थना (३) धार्मिक महापुरुषो का यशोगान तथा (४) संस्कृत के उत्कृष्ट कवियो मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा, क्षमता तथा विद्वत्ता का प्रदर्शन।

इन प्रेरक शक्तियो का अध्ययन कर लेने के पश्चात् जैन सस्कृत महाकाव्यों को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) पौराणिक (२) ऐतिहासिक तथा (३) शास्त्रीय महाकाव्य। किसी धार्मिक राजा, राजमन्त्री, गुरु अथवा श्रद्धालु श्रावक की प्रेरणा से धर्म-प्रचार अथवा पुण्यप्राप्ति का लक्ष्य लेकर किसी तीर्थकर अथवा पौराणिक महापुरुष के जीवन पर लिखे गये महाकाव्य पौराणिक महाकाव्यो के, ऐतिहासिक महापुरुषो के जीवन पर लिखे गये महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्यो के तथा सस्कृत के उत्कृष्ट कवियो मे स्थान प्राप्त करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर सस्कृत के उत्कृष्ट महाकाव्यो की पद्धति पर लिखे गये महाकाव्य शास्त्रीय महाकाव्यो के अन्तर्गत स्वीकार किये जा सकते है।

इस युग के पौराणिक महाकाव्यो मे पाई जानेवाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ इस प्रकार है —

पौराणिक महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(१) इन महाकाव्यो मे जैन धर्म के शलाकापुरुषो के चरित्र का वर्णन किया गया है। ६३ शलाकापुरुषो के अतिरिक्त अन्य धार्मिक पुरुषो के जीवनचरित्र भी इसमे वर्णित हुए है। कभी-कभी किसी प्रसिद्ध पुरुष के चरित-वर्णन के अतिरिक्त किसी व्रत, पचनमस्कार आदि के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भी काव्य-रचना की गई है।

(२) इन जीवनचरितो का वर्णन पूर्णतया जैन-पुराणो एव प्राचीन चरित-ग्रन्थों के अनुकूल है। कवियो ने कथानक मे कल्पना द्वारा परिवर्तन करने की चेष्टा नही की है।

(३) इन कवियो का लक्ष्य जनसाधारण तक पहुँच कर उनको सदाचार की दृष्टि से ऊँचा उठाना था। जैनाचार्यों ने शिक्षित और पण्डित वर्ग के लिए ही न लिख कर जन-साधारण के लिए भी लिखा। फलस्वरूप इन काव्यो की भाषा सरल रखी गई है।

(४) इन सब काव्यो मे चरितनायको एव उनसे सम्बन्धित पूर्वभवो की कथा, मूल कथा के आवश्यक अङ्ग के रूप मे कही गई है।

(५) पूर्वभवो की कथा कहने का उद्देश्य कर्मफल मे पूर्ण विश्वास और आस्था प्रकट करना है। पात्रो को इस जन्म मे जो दु.ख-सुख मिलते है उनका कारण पूर्व जन्म के कर्मों का विपाक है।

(६) इन सब चरितकाव्यों में अलौकिक-अप्राकृत तत्त्वो की प्रधानता है। विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, देव, राक्षस एव नाग आदि समय-समय पर आकर पात्रो की सहायता करते है और उनसे युद्ध करते है। विद्याधर देव आदि का समय पडने पर उपस्थित हो जाना कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होता है, किन्तु इन काव्यो मे उनकी उपस्थिति का सम्बन्ध पूर्व जन्म के कर्मों से बता कर उस अस्वाभाविकता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। तन्त्र-मन्त्र, मुनिवाणी, स्वप्न और शकुन-अपशकुनो मे विश्वास करने वाले व्यक्ति भी इनमे दिखाई देते हैं।

(७) ये सभी काव्य धार्मिक हैं। धर्म का उपदेश देना ही इनका उद्देश्य है। इनमे काव्य-रस गौण है और धर्मभाव प्रधान है। इन कृतियो मे आत्मज्ञान, ससार की नश्वरता, विषय-त्याग, वैराग्य-भावना एव श्रावकोचित कर्तव्यो का प्रतिपादन किया गया है। इसी कारण इनमे नैतिक और सदाचारमय जीवन को उन्नत करने वाले आदर्शों की योजना की गई है।

(८) इन काव्यो मे स्तोत्रो की योजना प्रायः की गई है। इनमे किसी तीर्थङ्कर, पौराणिक पुरुष या मुनि की स्तुति की गई है। तीर्थस्थान और व्रतो का माहात्म्य भी किसी-किसी काव्य मे वर्णित किया गया है।

(९) जनसाधारण को प्रभावित करने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ कर अच्छा और कोई साधन नही, कदाचित् इसीलिए इन काव्यो की मूलकथा अनेक अवान्तरकथाओ से ओतप्रोत है। फलस्वरूप इन महाकाव्यो मे कथानक मे शिथिलता आ गई है और उनमे कथात्मक सम्बन्ध का निर्वाह नही हो सका है।

(१०) किसी-किसी काव्य मे काम, मोह, अहकार, सुगति, धर्म, अज्ञान, राग और द्वेष आदि भावो को पात्रो का रूप देकर प्रतीक-योजना भी की गई है।

(११) इन काव्यो मे प्राय. प्रथम पक्ष के रूप मे ब्राह्मण, चार्वाक एव बौद्ध आदि धर्मो के सिद्धान्तो का वर्णन हुआ है और उसके बाद उनका खण्डन करके जैन-सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है।

(१२) रस की दृष्टि से इन काव्यों में मुख्य रूप से शृगार, वीर, और शान्त रस का वर्णन अधिक है। शृंगार और वीर रसो के वर्णन होने पर भी प्रधानता शान्त रस की ही रखी गई है। जीवनकाल मे राज्य-प्राप्ति के पश्चात् वीरता से शत्रुओ का उच्छेद कर

विषय-सुखो का उपभोग करते हुए अन्त मे किसी मुनि के उपदेश-श्रवण के द्वारा जीवन और ससार से विरक्त हो जाना, यही सक्षेप मे सभी पौराणिक महाकाव्यो का कथानक है। इससे इन महाकाव्यो मे शान्त रस अगी और शेष रस उसके अग रूप मे आये है।

(१३) इन सभी काव्यों का कथानक एक ही प्रकार से प्रारम्भ हुआ है—जैसे तीर्थंकरो की स्तुति, पूर्वकवियो और विद्वानो का स्मरण, सज्जन-दुर्जन-चिन्ता, काव्य-रचना मे प्रेरणा देने अथवा सहायता करने वाले व्यक्तियो की स्तुति, विनम्रता-प्रदर्शन, नगर, राजा-रानी का वर्णन, तीर्थंकर या मुनि का नगर के बाह्य उद्यान मे आना, राजा का वहाँ जाना, देशना सुनना और फिर सवाद रूप मे पूरी कथा का कहना।

(१४) कथानक के मध्य मे महाकाव्योचित वर्ण्य-विषयों—नदी, पर्वत, सागर, प्रातः, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, सुरापान, सुरति, जलक्रीड़ा, उद्यानक्रीड़ा, वसन्तादि ऋतु, शारीरिक सौन्दर्य, जन्म, विवाह, युद्ध और दीक्षा आदि के वर्णन प्रस्तुत कर समग्र जीवन के चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है।

(१५) इन महाकाव्यो मे महाकाव्य-परम्परा के विरुद्ध कही-कही क्षत्रियकुलोत्पन्न धीरोदात्तगुणविशिष्ट राजा को नायक न बना कर मध्यम श्रेणी के वणिक् आदि पुरुष को और कही-कही स्त्री को प्रमुख पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(१६) इनमे से कतिपय काव्य प्रेमाख्यानक काव्य है। उनमे प्रेम और युद्ध को बहुत महत्त्व दिया गया है। यद्यपि इनका बाह्य सगठन पौराणिक काव्यों जैसा ही है, फिर भी उनमे नायक के साहसिक कार्यो का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता है। विन्टरनित्स एव डॉ० शम्भूनाथसिह ऐसे काव्यो को रोमाचक महाकाव्यो के अन्तर्गत स्वीकार करते है। उनके अनुसार इन महाकाव्यो की प्रबन्ध-रूढ़ियाँ इस प्रकार है[1] :—

(१) उजाड नगर का मिलना, कुमारी-दर्शन तथा उससे विवाह (२) प्रथम दर्शन, गुणश्रवण या चित्रदर्शन से प्रेम (३) द्वीपान्तर-यात्रा, समुद्र मे जहाज का डूबना या अन्य बाधाएँ आना (४) दोहदकामना (५) शत्रुसतापित सरदार की सहायता करना और युद्ध मोल लेना (६) मुनि का शाप (७) पूर्वजन्म की याद (८) कई भवो मे उत्पन्न होकर शत्रुता निभाना या पूर्वजन्म के उपकार का बदला चुकाना या पति-पत्नी होना (९) दुश्चरित्र या धोखेबाज पत्नी का होना (१०) रूप-परिवर्तन करना।

वस्तुतः ये सभी रूढियाँ पौराणिक महाकाव्यो मे मिलती है। इसलिए इन्हे पौराणिक महाकाव्यो की एक प्रवृत्ति माना जा सकता है।

(१७) शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है। पौराणिक महाकाव्य भी अधिकतर सर्गबद्ध है, किन्तु कतिपय महाकाव्यों मे कथा का विभाजन सर्गो मे न होकर उत्साह, पर्व आदि मे हुआ है, फिर भी उनके रचयिताओ ने उन्हे

---

(१) डॉ० शम्भूनाथसिह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृ० १९२

महाकाव्य कहा है । अमरचन्द्रसूरि का 'बालभारत' पर्वो और सर्गो मे, माणिक्यचन्द्र सूरि-कृत 'नलायनम्' स्कन्धो और सर्गो मे तथा 'लीलावतीकथासार' उत्साहो मे विभाजित किया गया है ।

(१८) पौराणिक महाकाव्यो की भाषा प्राय सरल और स्वच्छन्द है । इनमे भाषा का व्यावहारिक तथा दैनिक बोलचालवाला रूप मिलता है । ऐसे महाकाव्यो मे कही-कही अपभ्रश और प्राकृत के उद्धरण भी दिये गये हैं । कतिपय स्थलो पर सस्कृत-प्राकृत-गद्य के प्रयोग की प्रवृत्ति भी मिलती है । मुहावरो, लोकोक्तियो तथा देशज शब्दो का प्रयोग इन महाकाव्यो की भाषा की प्रमुख विशेषता है । इनमे से अधिकाश मुहावरे और लोकोक्तियाँ हिन्दी मे आज भी प्रयुक्त होती है । देशज शब्दो का सस्कृतकरण करके उन्हे प्रयुक्त किया गया है, जैसे बकरा के लिए बक्कर या बर्कर ।

(१९) इन महाकाव्यो मे मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिकता से हुआ है, किन्तु कही-कही इन छन्दो मे अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है जिससे छन्दो मे गेयता का गुण अधिक आ गया है और लय मे गतिशीलता आ गई है । यह अन्त्यानुप्रास प्रत्येक चरण के अन्त मे ही नही, अपितु चरण के मध्य मे भी पाया जाता है । छन्द शास्त्र के नियमानुसार वर्णिक वृत्तो मे जहाँ-जहाँ यति का विधान किया गया है वहाँ भी अन्त्यानुप्रास के प्रयोग ने छन्द को नवरूपता प्रदान की है । पौराणिक काव्यो मे अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है । अन्य छन्दो मे उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका आदि प्रमुख छन्दो का प्रयोग अधिकता से हुआ है । पौराणिक महाकाव्यो मे अप्रचलित एव वर्णिक छन्दो का प्रयोग भी हुआ है जिनमे षट्पदी (छप्पय), कुण्डलिक (कुण्डलिया), आख्यानकी, वैतालीय, वेगवती, वैश्वदेवी, निवास, सवैया तथा अनेक प्रकार के अर्धसम और विषम वर्णिक वृत्तो का प्रयोग हुआ है ।

ऐतिहासिक शैली के जैन महाकाव्यो मे निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं —

ऐतिहासिक महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(१) ऐतिहासिक महाकाव्यो के रचयिता अधिकतर राज्याश्रित थे । उनमे आश्रयदाता को तुष्ट करने की प्रवृत्ति थी । अत उन (आश्रयदाताओ) के जीवन का जो अश उन्हे (आश्रयदाताओ को) अप्रिय था उसे महाकाव्य मे छोड दिया गया । उदाहरण के लिए वस्तुपाल एक पुनर्विवाहिता महिला का पुत्र था, किन्तु उसके जीवन पर लिखे गये किसी महाकाव्य मे इसका सकेत तक नही मिलता ।

(२) इनमे मुख्य कथा तो ऐतिहासिक ही होती है, किन्तु उसमे अतिशयोक्तिपूर्ण और काल्पनिक घटनाओ की भी कमी नही होती ।

(३) इनमे नायक की वीरता प्रदर्शित करने के लिए प्राय नायक की दिग्विजयो के काल्पनिक विवरण प्रदर्शित किये गये है ।

(४) कतिपय काव्यो मे घटनाओ की तिथियो के विवरण भी इतिहास-सम्मत नही है ।

(५) इनमे नायक की वंश-परम्परा और उसके कुल की उत्पत्ति के विवरण पौराणिक ढग पर दिये गये है। जैसे चौलुक्यवंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक से होना।

(६) इनमे नायक के जन्म, विवाह, राज्यप्राप्ति, युद्ध, विजय आदि का वर्णन विस्तार के साथ मिलता है।

(७) इनमे नायको को अच्छा और प्रतिनायको को बुरा बताया गया है।

(८) शास्त्रीय महाकाव्यो की भाँति इनमे भी ऋतुवर्णन, जलक्रीडा, वनविहार, सयोग, वियोग, युद्ध, पुत्रोत्पत्ति आदि का वर्णन रहता है।

जैन महाकाव्यों मे शास्त्रीय महाकाव्यो की सख्या बहुत कम है। उनमे निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है —

शास्त्रीय महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(१) शास्त्रीय महाकाव्यो मे कथावस्तु तो अत्यन्त स्वल्प होती है, किन्तु वस्तुव्यापार का अनावश्यक विस्तार मिलता है। कथावस्तु की उपेक्षा और प्राकृतिक वर्णनो का बाहुल्य इन महाकाव्यो की प्रमुख विशेषता है। फलस्वरूप इनका कथानक उखडा सा प्रतीत होता है।

(२) इनमे स्थान-स्थान पर कवि पाण्डित्य-प्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पना-प्रवणता को दिखाने की चेष्टा करता हुआ दीख पडता है।

(३) शास्त्रीय महाकाव्यो का स्वरूप महाकाव्यो के रूप-शिल्प-सम्बन्धी नियमो के बन्धन मे जकडा हुआ है। उनमे लक्षण-ग्रन्थो मे प्राप्त अधिकतर महाकाव्य-सम्बन्धी नियमो का पालन हुआ है।

(४) इन महाकाव्यो की भाषा-शैली उदात्त, प्रौढ और कही-कही दुरूह भी है। उनमे अलकृति और भाषा की साजसज्जा पर बहुत बल दिया गया है। उनकी भाषा भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि के महाकाव्यो की भाषा को अपना आदर्श मान कर चली है। अधिकतर काव्यो मे चित्रकाव्यो की श्रमसाध्य योजना भी की गई है।

(५) इनमे स्थान-स्थान पर कवियो द्वारा अपने विविध शास्त्रविषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया गया है।

(६) रस की दृष्टि से इनमे शृङ्गार, वीर और शान्त रस को प्रमुखता दी गई है तथा अन्य रसो का चित्रण गौण-रूप मे किया गया है।

तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन सस्कृत महाकाव्यो को हमने दो वर्गो मे विभक्त करना उचित समझा है—(१) प्रमुख महाकाव्य और (२) सामान्य महाकाव्य। प्रमुख महाकाव्यो

आलोच्य युग के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो का वर्गीकरण

मे (१) नरनारायणानन्द (वस्तुपाल) (२) श्रेणिकचरित्र (जिनप्रभसूरि) (३) वसन्तविलास (बालचन्द्रसूरि) (४) हम्मीरमहाकाव्य (नयचन्द्रसूरि) (५) धर्मशर्माभ्युदय (हरिचन्द्रसूरि) (६) सनत्कुमारचरित्र (जिनपाल उपाध्याय) (७) बालभारत (अमरचन्द्रसूरि) (८) जयन्तविजय (अभयदेवसूरि) (९) पद्मानन्द

महाकाव्य (अमरचन्द्रसूरि) (१०) मुनिसुव्रतकाव्य (अर्हद्दास) (११) नलायनम् (माणिक्यदेवसूरि) तथा (१२) शान्तिनाथचरित्र (मुनिभद्रसूरि)

प्रमुख महाकाव्य ये बारह महाकाव्य सम्मिलित हैं। प्रमुख महाकाव्यो को तीन वर्गो मे रखा गया है–(१) शास्त्रीय महाकाव्य (२) ऐतिहासिक महाकाव्य तथा (३) पौराणिक महाकाव्य। उक्त बारह महाकाव्यो मे से पहले दो—नरनारायणानन्द तथा श्रेणिकचरित्र—को शास्त्रीय महाकाव्यो मे, वसन्तविलास तथा हम्मीरमहाकाव्य को ऐतिहासिक महाकाव्यो मे तथा शेष आठ महाकाव्यो को पौराणिक महाकाव्यो मे रखा गया है।

सामान्य महाकाव्यो के अन्तर्गत (१) पार्श्वनाथचरित्र (माणिक्यचन्द्रसूरि) (२) शान्तिनाथचरित्र (माणिक्यचन्द्रसूरि) (३) पाण्डवचरित्र (देवप्रभसूरि) (४) धर्माभ्युदय महाकाव्य (उदयप्रभसूरि) (५) पार्श्वनाथचरित्र (सर्वानन्दसूरि) (६) वासुपूज्यचरित्र (वर्धमानसूरि (७) पार्श्वनाथचरित्र (विनयचन्द्रसूरि) (८) मल्लिनाथचरित्र (विनयचन्द्रसूरि) (९) मुनिसुव्रतचरित्र (विनयचन्द्रसूरि) (१०) चन्द्रप्रभचरित्र (सर्वानन्दसूरि)

सामान्य महाकाव्य

(११) प्रत्येकबुद्धचरित्र (लक्ष्मीतिलक उपाध्याय, (१२ अभयकुमारचरित्र (चन्द्रतिलक उपाध्याय) (१३) पार्श्वनाथचरित्र (भावदेवसूरि) (१४) नरवर्मचरित्र (विवेकसमुद्रगणी) (१५) शान्तिनाथचरित्र (मुनिदेवसूरि) (१६ श्रेयासनाथचरित्र (मानतुगसूरि) (१७) जगडूचरित्र (सर्वानन्दसूरि) (१८) लीलावतीसार (जिनरत्न-लक्ष्मीतिलक उपाध्याय) (१९) यशोधरचरित्र (माणिक्यदेवसूरि) (२०) पुण्डरीकचरित्र (कमलप्रभ) तथा (२१) कुमारपालचरित्र (जयसिंहसूरि) इन इक्कीस महाकाव्यो को स्थान दिया गया है। इन महाकाव्यो मे कोई भी काव्य शास्त्रीय महाकाव्य नही है, अत इन सामान्य महाकाव्यो को दो वर्गों मे विभक्त किया गया है (१) ऐतिहासिक महाकाव्य तथा (२) पौराणिक महाकाव्य। ऐतिहासिक महाकाव्य के अन्तर्गत केवल दो महाकाव्यो—'जगडूचरित्र' तथा 'कुमारपालचरित्र' को रखा गया है। शेष सभी महाकाव्यो की गणना पौराणिक महाकाव्यो के अन्तर्गत की गई है। सामान्य महाकाव्यो मे महाकाव्य की दृष्टि से कई त्रुटियाँ हैं, फिर भी उनमे महाकाव्य के अनेक तत्त्वो का समावेश है। अत उनका समावेश प्रमुख महाकाव्यो मे न करके सामान्य महाकाव्यो मे किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख महाकाव्य

(क) शास्त्रीय महाकाव्य

(१) नरनारायणानन्द (वस्तुपाल)

(रचनाकाल सं० १२७७—१२८७ के मध्य)

आलोच्य काल के महाकाव्यो मे महामात्य वस्तुपाल-कृत 'नरनारायणानन्द' महाकाव्य को प्रमुख स्थान दिया जाता है और इसे पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। आलोचकों ने इसका मूल्याकन करते समय इसे माघ-कृत 'शिशुपालवध' की टक्कर का महाकाव्य स्वीकार किया है। वस्तुपाल ने श्रीकृष्ण और अर्जुन की मैत्री, रैवतक पर उनका विहार और अन्त मे अर्जुन द्वारा किया गया सुभद्रा-हरण, इस महाभारतीय प्रसंग को लेकर 'नरनारायणानन्द' महाकाव्य की रचना की है। महाभारत के इस लघु कथानक को सुसगठित करके उसे महाकाव्य के अनुरूप व्यापक रूप प्रदान किया गया है।

'नरनारायणानन्द' शास्त्रीय महाकाव्य है। संस्कृत साहित्य के आचार्यो ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किए है उनके आधार पर 'नरनारायणानन्द' एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। महाकाव्य के परम्परागत लक्षणो के अनुसार 'नरनारायणानन्द'

नरनारायणानन्द का महाकाव्यत्व

की रचना एक सर्गबद्ध काव्य के रूप में हुई है। धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त क्षत्रियकुलप्रसूत अर्जुन इसके नायक है। शृंगार इसमे प्रधान रस है। वीर, रौद्र और भयानक रस भी गौण-रूप में इसमे वर्तमान हैं। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध होना चाहिए। 'नरनारायणानन्द' का कथानक भी लोक-प्रसिद्ध अर्जुन और कृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित है, जिसका आधार महाभारत है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से किसी एक की सिद्धि महाकाव्य का लक्ष्य होना चाहिए। इस दृष्टि से 'नरनारायणानन्द' का लक्ष्य अर्थ की प्राप्ति है। अर्थ से अभिप्राय यहाँ लौकिक अभ्युदय से है। 'नरनारायणानन्द' के दोनो प्रमुख पात्र अर्जुन और कृष्ण मित्र-धर्म का निर्वाह करते हुए चित्रित किये गये हैं। सहज पवित्र मैत्री को कृत्रिम वन्धन से दृढ करके शत्रुओं को नीचा दिखा कर लौकिक अभ्युदय को प्राप्त करने की भावना इस काव्य में वर्तमान है। कथानक के अन्त मे कवि ने इस लक्ष्य को इन शब्दो मे पूर्णत स्पष्ट कर दिया है:—

पवित्र यन्मैत्र्यं सहजमपि तन् कृत्रिमतया
दृढीकृत्य प्रीताविति जगति नारायणनरौ।

तदालोके शोकव्यसनवशगानामसहन—
क्षितीशानां साक्षादुरसि विरसं शल्यमविशत् ॥[१]

परम्परागत नियमो के अनुसार महाकाव्य मे पाँच सन्धियो का समावेश आवश्यक है। यद्यपि 'नरनारायणानन्द' का कथानक बहुत सक्षिप्त है, फिर भी उसमे पाँचो सन्धियाँ मिल जाती है। द्वितीय सर्ग मे दूत द्वारा अर्जुन के रैवतक पर्वत पर आने की सूचना पाने पर कृष्ण के वहाँ पहुँचने और उनके वार्तालाप मे मुखसन्धि है। चतुर्थ सर्ग मे अर्जुन द्वारा रैवतक के वर्णन से लेकर दशम सर्ग मे श्रीकृष्ण से मिलने के लिए बलराम के ससैन्य रैवतक पर आने तथा जलक्रीडा के लिए सुभद्रा के वहाँ जाने तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है। बारहवे तथा तेरहवे सर्ग मे अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण करने पर बलराम के युद्ध के लिए प्रस्तुत होने मे गर्भ सधि है। चौदहवे सर्ग मे कृष्ण द्वारा युद्ध बन्द करवाने मे विमर्श-सन्धि तथा पन्द्रहवे सर्ग मे अर्जुन-सुभद्रा के विवाह-वर्णन मे निर्वहण सन्धि मानी जा सकती है। महाकाव्यो की प्राचीन परम्परा के अनुसार महाकाव्य के प्रारम्भ मे मगलाचरण का होना आवश्यक है। यह मगलाचरण तीन प्रकार का होता है, आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक एव वस्तुनिर्देशात्मक। 'नरनारायणानन्द' का प्रारम्भ द्वारवती–वर्णन से इस प्रकार हुआ है:—

आस्ते पुरी शक्रपुरीव मध्ये वारांनिधेर्द्वारवती प्रतीता।
शोणाश्मवेश्मांशुदलत्तमिस्रा या दुर्गभूमीव बभौ दिनस्य ॥[२]

इस श्लोक मे लाल पत्थर से बने भवनो की प्रभा से अन्धकार को दूर करने वाली दिवस की दुर्गभूमि की भाँति द्वारवती का वर्णन श्रीकृष्ण के अनुरागपूर्ण व्यवहार के कारण अर्जुन के सुभद्रा–विरह रूपी अन्धकार के अन्त का सूचक है। इस प्रकार 'नरनारायणानन्द' का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मगलाचरण से माना जा सकता है। महाकाव्य के आरम्भ मे सन्नगरीवर्णन का विधान भी है। द्वारवती के वर्णन द्वारा कवि ने इस आवश्यकता की पूर्ति कर दी है। छन्द–प्रयोग के सम्बन्ध मे 'नरनारायणानन्द' मे परम्परागत नियमो का पालन हुआ है। प्राय प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द को प्रधानता दी गई है और सर्ग के अन्त मे छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन भी किया गया है। महाकाव्य मे छन्द–प्रयोग–सम्बन्धी नियमो के अनुसार ही 'नरनारायणानन्द' के चौदहवे सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग दिखाई देता है। महाकाव्य की परम्परागत परिपाटी के अनुसार प्रस्तुत महाकाव्य मे सन्ध्या, रात्रि, सूर्योदय, सुरापान, सुरत, जलक्रीडा, दोलान्दोलन, वन, पर्वत, सैन्य–प्रयाण आदि के विस्तृत वर्णन पाये जाते है। 'नरनारायणानन्द' का नामकरण भी प्रतिपाद्य विषय के आधार पर किया गया है। अर्जुन (नर) और कृष्ण (नारायण) की मैत्री (आनन्द) का वर्णन ही इस काव्य का मुख्य विषय है। इस प्रकार महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार 'नरनारायणानन्द'

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १५, श्लोक ३८ (२) वही, सर्ग १, श्लोक १

एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। महाकाव्य मे शास्त्रीय लक्षणो के निर्वाह के साथ-साथ कतिपय अन्य विशेषताएँ भी होनी चाहिए। इन विशेषताओ मे कथानक की विविध घटनाओं के साथ अन्विति तथा मानव-जीवन की गहनतम अनुभूतियो और उच्च आदर्शो की उद्भावना मुख्य हैं। ये सभी विशेषताएँ 'नरनारायणानन्द' मे हैं। काव्य का विषय यद्यपि सकुचित है, तथापि उसमे मानव-जीवन का सर्वांगीण चित्र उपस्थित करने की क्षमता है। उसकी सभी घटनाएँ मुख्य कथानक से सम्बद्ध दिखाई पड़ती हैं। मानव-हृदय की शाश्वत वृत्तियों का चित्रण भी उसमें अच्छा हुआ है। कृष्ण और अर्जुन का चित्र उपस्थित करते समय मित्र के प्रति कर्तव्यपरायणता, स्वार्थत्याग आदि भावनाओ की सुन्दर व्यंजना हुई है। 'नरनारायणानन्द' मे उच्च कोटि के महाकाव्य के उपयुक्त रसात्मकता, उदात्त भावो की अभिव्यक्ति, शैलीगत मनोरमता और भाषागत प्रौढता विद्यमान है। इन विशेषताओ के कारण वस्तुपाल की यह अमर कृति निश्चय ही सस्कृत का एक श्रेष्ठ शास्त्रीय महाकाव्य है। कवि ने स्वय इसे महाकाव्य अभिधा प्रदान की है —

नरनारायणानन्दो नाम कन्दो मुदामिदम्।
तेन तेने महाकाव्यं वाग्देवीधर्मसूनुना॥[1]

कविपरिचय और काव्यरचनाकाल

वस्तुपाल धौलका (गुजरात) के राजा वीरधवल तथा उसके पुत्र वीसलदेव का महामात्य था। वह जैन धर्म और गुजरात के इतिहास मे अद्वितीय व्यक्ति हुआ है। तत्कालीन लेखको ने मुक्तकण्ठ से उसके शौर्य, औदार्य तथा जनोपयोगी कार्यों की प्रशसा की है। वह एक वीर योद्धा और निपुण राजनीतिज्ञ ही नही था, बल्कि विद्वान्, कवि और काव्य-पारखी भी था। 'नरनारायणानन्द' काव्य के अतिरिक्त 'शत्रुंजयमण्डन', 'आदिनाथ-स्तोत्र', 'गिरिनारमण्डन', 'नेमिनाथस्तोत्र', 'अम्बिकास्तोत्र' आदि स्तोत्रो की रचना भी उसने की है।[2] सुमधुर सूक्तियो की रचना मे वह बडा सिद्धहस्त था। उसके द्वारा रचित सुभाषित जल्हण की 'सूक्तिमुक्तावली' और शार्ङ्गधर की 'शार्ङ्गधरपद्धति' मे उद्धृत किये गये है। गुजरात मे ग्रथित मेरुतुगकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', जयशेखर-कृत 'चतुर्विशतिप्रबन्ध', जिनहर्षकृत 'वस्तुपालचरित' और 'पुरातनप्रबधसंग्रह' आदि प्रबन्धात्मक ग्रन्थो मे भी वस्तुपाल की सूक्तियाँ मिलती हैं।[3] भिन्न-भिन्न प्रबन्धों मे उद्धृत किसी कवि के निम्नलिखित श्लोक से वस्तुपाल की सूक्तियो की रसमग्न करने की क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है:—

पीयूषादपि पेशला शशधरज्योत्स्नाकलापादपि

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १६, श्लोक ४०

(२) वस्तुपाल का विद्यामण्डल, डॉ० भोगीलाल साडेसरा, पृ० १

(३) वस्तुपाल का विद्यामण्डल, डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, पृ० २

स्वच्छानूतनचूतमंजरिभरादप्युल्लसत्सौरभा. ।
वाग्देवीमुखसामसूक्तविशदोद्गारादपि प्रांजला:
केषां न प्रथयन्ति चेतसि मुद श्रीवस्तुपालोक्तय ।।

सोमेश्वर-कृत 'उल्लाघलाघव' नाटक मे भी वस्तुपाल की सूक्तियो की प्रशसा इन शब्दो मे की है —

अम्भोजसम्भवसुता ववत्राम्भोजेऽस्ति वस्तुपालस्य ।
यद्वीरणारणितानि श्रूयन्ते सूक्तिदम्भेन ।।[1]

तत्कालीन कवि-जगत् मे वस्तुपाल की काव्य-कला अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। गिरनार के उत्कीर्ण लेख मे उसे 'सरस्वतीधर्मपुत्र' कहा गया है।[2] 'कविकुजर' और 'कविचक्रवर्ती' उसके दूसरे विरुद थे। कीर्तिकौमुदी मे उसे 'वाग्देवतासुत' कहा गया है।[3] एक दूसरे कवि ने उसे 'कूर्चालसरस्वती' और दूसरे ने उसे 'सरस्वतीकण्ठाभरण' कह कर पुकारा है।[4] 'अलकारमहोदधि' मे कहा गया है कि केवल वस्तुपाल ही काव्यमार्ग मे कर सका है।[5] आबू-मदिर की प्रशस्ति मे सोमेश्वर ने उसे सर्वश्रेष्ठ कवि कह कर यह स्वीकार किया है कि वस्तुपाल भावापहरण नही करता।[6]

स्वय कवि होने के साथ-साथ वस्तुपाल कवियो का आश्रयदाता भी था। इसी कारण वह 'लघुभोजराज' कहलाता था। विक्रम की तेरहवी और चौदहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे गुजरात मे जो मूल्यवान समृद्ध साहित्य रचा गया वह मुख्य रूप से वस्तुपाल के विद्यामण्डल की साहित्यप्रवृत्ति का और वस्तुपाल के आश्रय का परिणाम है। विद्यामण्डल मे राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाकपण्डित, मदन, सुभट, मन्त्री यशोवीर और अरिसिंह थे। वस्तुपाल के अतिसम्पर्क मे आये हुए कवियो और पण्डितो मे अमरचन्द्रसूरि,

---

(१) उल्लाघराघव, ८ वां अंक, सोमेश्वर

(२) धर्मसूनु. सरस्वत्या शारदाप्रतिपन्नापत्येन (गिरनार का उत्कीर्ण शिलालेख)

(३) वस्तुपालयशोवीरौ सत्यं वाग्देवतासुतम् ।
एको दानस्वभावोऽभूत् उभयोरन्यथा कथम् ।।—कीर्तिकौमुदी १।३९

(४) पण्डितस्तूचे—देव लघुभोजराज विचारचतुर सरस्वतीकण्ठाभरण अवधारय
—राजशेखर-कृत चतुर्विंशतिप्रबन्ध के 'हरिहरप्रबन्ध' से।

(५) विरचयति वस्तुपालश्चुलुक्यसचिवेषु च प्रवर:
न कदाचिदर्थहरणं श्रीकरणे काव्यकरणे वा ।।—आबूमंदिर की प्रशस्ति।

(६) केचित्कांचिझलज्झलायितपदव्युत्पादिन केचन
प्रत्यग्रप्रतिभावभातभणिति व्युत्पत्तिवैहासिका ।
वैदर्भीं दधते रसेष्वपि सदा सर्वाभिसारोल्बणां
काव्यस्याध्वनि वस्तुपालसचिवस्यैव प्रतिष्ठा पुन ।।
—अलंकारमहोदधि, श्लोक १५

विजयसेनसूरि, उदयप्रभसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि, बालचन्द्रसूरि, जयसिंहसूरि, माणिक्यचन्द्रसूरि आदि जैन साधुओ के नाम गिन सकते है। इनके अतिरिक्त दूसरे अनेक कवि जिनके नाम आज नही मिलते है वस्तुपाल के पास विद्यमान थे।[1] इनमें सोमेश्वर ने वस्तुपाल की प्रशसा मे 'कीर्तिकौमुदी' तथा अरिसिह ने 'सुकृतसंकीर्तन' नामक काव्य लिखे। नरचन्द्रसूरि-कृत 'कथारत्नसागर' तथा नरेन्द्रप्रभसूरि-कृत 'अलंकारमहोदधि' जैसे साहित्यिक ग्रन्थ वस्तुपाल की प्रेरणा पर ही लिखे गये थे। उसके दान की प्रशंसा मे अनेक प्रबन्धों मे पृष्ठ के पृष्ठ भरे पडे हैं। कहा जाता है कि उसने १८ करोड की लागत से भडोच, खम्भात और पाटण में तीन ग्रन्थागार स्थापित किये थे। आचार्य मुनिजिनविजय ने ठीक ही कहा है—"मध्ययुग के इतिहास मे जितने भी समर्थ जैन श्रावक हो गये है उन सबमे वस्तुपाल सबसे महान् था और जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि था। उसने सहस्रो वेदपाठी ब्राह्मणों की आजीविका बाँध दी और इन सब कार्यों के अतिरिक्त एक अनुपम और अद्भुत कार्य यह किया कि मुसलमानो के लिए अनेक मसजिदे भी बनवा दी थी। अपने धर्म मे अत्यन्त चुस्त होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति ऐसी उदारता बरतने वाला और अन्य धर्म-स्थानो के लिए इस ढंग से लक्ष्मी का उपयोग करने वाला अन्य कोई पुरुष भारतवर्ष के इतिहास मे मुझे तो दृष्टिगोचर नही होता।"[2]

वस्तुपाल का दूसरा नाम वसन्तपाल भी था। इस नाम को स्वय उसने अपने काव्य मे प्रयुक्त किया है।[3] वह अणहिल्लपत्तन के शिक्षित कुटुम्ब मे उत्पन्न हुआ था। उसके प्रपितामह चण्डप गुर्जरेश की राज्यसभा को अलकृत करते थे। उसके पिता का नाम आशारज या अश्वराज और माता का नाम कुमारदेवी था। अपने मातापिता के पुण्य के लिए उसने रैवतक आदि तीर्थों की यात्रा की थी। उसके गुरु विजयसेन सूरि थे।[4]

'नरनारायणानन्द' के प्रशस्ति सर्ग मे कवि ने काव्य का रचनाकाल नहीं लिखा, किन्तु इसी सर्ग मे उसने यह अवश्य लिखा है कि शत्रुंजय पर्वत पर अवस्थित आदीश्वर प्रभु की भव्य मूर्ति को देख कर उसके हृदय की भावनाएँ स्तोत्र के रूप मे निकल पड़ी। यही उसकी प्रथम काव्य-कृति थी।[5] इस स्तोत्र की रचना उस समय हुई थी जब वस्तुपाल

(१) वस्तुपाल का विद्यामण्डल, डॉ० भोगीलाल साण्डेसरा, पृ० ३

(२) गुजरात का जैनधर्म, मुनिजिनविजय, पृ० २६–२७

(३) कीर्त्या सौरभसारसान्द्रसुमन. सन्दोहसन्दोहकृत्
कान्त्या पाति वसन्तमन्वहमसावित्यर्पितार्थक्रमम्।
ख्यात प्राप वसन्तपाल इति यो नामाद्वितीयं मुदा
विद्वद्भि परिकल्पितं हरिहरश्रीसोमशर्मादिभि ॥
—नरनारायणानन्द, सर्ग १६, श्लोक ३८

(४) नरनारायणानन्द, प्रशस्ति सर्ग, श्लोक १६

(५) श्रीशत्रुंजयशैलशेखरमणे श्रीनाभिसूनुप्रभो.

अपनी प्रथम तीर्थयात्रा पर गया था । 'प्रबधचिन्तामणि' के लेखक के अनुसार इस यात्रा का समय स० १२७७ वि० है ।[1] अत: यह निश्चित है कि 'नरनारायणानन्द' की रचना स० १२७७ के अनन्तर हुई है । जिनहर्ष ने अपने 'वस्तुपालचरित' मे लिखा है कि उक्त स्तोत्र का नवाँ श्लोक वस्तुपाल ने आदिनाथ के समक्ष गाया था । वस्तुपाल ने आदिनाथ के दो मदिर बनवाये थे, एक अर्बुदाचल (आबूपर्वत) पर स० १२८७ मे और दूसरा रैवतक (गिरनार) पर्वत पर स० १२८८ मे । 'नरनारायणानन्द' के अन्तिम सर्ग मे कवि ने इन मदिरो का कोई सकेत नही किया । अत अनुमान है कि इस महाकाव्य की रचना स० १२८७ से पूर्व ही हो गई होगी । इस प्रकार 'नरनारायणानन्द' का रचना-काल सं० १२७७ से १२८७ के मध्यवर्ती काल को स्वीकार किया जा सकता है । वस्तुपाल का स्वर्गवास माघकृष्णा ५, स० १२९६ (सन् १२४०) मे हुआ ।[2] इससे इतना तो दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि प्रस्तुत रचना ईसा की तेरहवी शताब्दी की है ।

'नरनारायणानन्द' का रचना-परिमाण ७४० श्लोक है । 'नरनारायणानन्द' मे सोलह सर्ग हैं । अन्तिम सर्ग प्रशस्ति सर्ग है जिसमे कवि ने अपना, अपनी वश-परम्परा तथा अपने गुरु का परिचय दिया है । मूल कथानक से इस सर्ग का कोई सम्बन्ध नही है ।

कथानक

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'नरनारायणानन्द' का कथानक १५ सर्गो मे विभक्त किया गया है । प्रथम सर्ग मे समुद्र के मध्य मे स्थित द्वारवती नगरी और उसके नृप श्रीकृष्ण का वर्णन किया गया है । नगरी-वर्णन के अन्तर्गत भवनो और उनमे निवास करने वाले स्त्री-पुरुषो का विस्तृत वर्णन किया गया है । इस सर्ग का नाम 'पुरनृपवर्णन' है । दूसरे सर्ग 'सभावर्णन' का प्रारम्भ श्रीकृष्ण की सभा के वर्णन से होता है । श्रीकृष्ण राजसभा मे बैठे है । रैवतक पर्वत से एक दूत आकर उन्हे सूचना देता है कि पाण्डुनन्दन अर्जुन अनेक तीर्थो की यात्रा करते हुए इस समय प्रभास तीर्थ पर आ गये है ।

'नरनारायणसगम' नामक तीसरे सर्ग मे श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अर्जुन से मिलने के लिए रथ पर आरूढ होकर पर्वत पर चल देते है । वहाँ पहुँच कर श्रीकृष्ण अर्जुन को हृदय से लगा लेते है । कुशल-वार्ता के पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुन से रैवतक की

पीत्वा वक्त्रसुधाशुदीधितिसुधामाकण्ठमुत्कण्ठया ।
व्यातन्वन् कवितां नितान्तमुदित सद्यस्तदुद्गारवत्
तस्यैवादिजिनेश्वरस्य जनयामास स्तव यो नवम् ॥

—नरनारायणानन्द, सर्ग १६, श्लोक ३९

(१) अथ स० १२७७ वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरणलघुभोजराजमहाकविमहामात्यश्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारेभे । —प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० २५४

(२) जैनसाहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० ३९८, अवतरण ५७२

रमणीयता के सम्बन्ध मे पूछते है कि यह प्रदेश तुम्हें कैसा लगा ? इस पर अर्जुन रैवतक का वर्णन करते हैं। चौथे 'ऋतुवर्णन' सर्ग मे रैवतक के अभिराम प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन-प्रसग मे षड्ऋतुओ का परम्परागत वर्णन है। अर्जुन और कृष्ण का परस्पर वार्तालाप सन्ध्या तक चलता रहता है। 'चन्द्रोदय' नामक पाँचवे सर्ग का आरम्भ सन्ध्या-वर्णन से होता है और समाप्ति चन्द्रोदय-वर्णन से होती है। छठा सर्ग 'सुरापानसुरतवर्णन' का है, जिसमे रात्रि के समय द्वारवती के नवयुवक दम्पतियो द्वारा किये गये सुरापान तथा सुरतविलास का वर्णन है। सातवे 'सूर्योदय' नामक सर्ग मे रात्रि के अवसान और सूर्योदय का वर्णन परम्परागत परिपाटी के अनुसार हुआ है। आठवे सर्ग मे श्रीकृष्ण से मिलने के लिए बलराम अपने परिवार को साथ लेकर सेना-सहित रैवतक पर आते है। यहाँ उनकी सेना पड़ाव डालती है जिसका विस्तृत वर्णन इस सर्ग मे हुआ है। इसी कारण इस सर्ग का नाम 'सेनानिवेशवर्णन' है। नवे 'पुष्पावचयप्रपच' मे पौर-परिवार-समेत श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर वनक्रीडा के लिए वन मे जाते है। इस अवसर पर दोलान्दोलन और पुष्पचयन का वर्णन किया गया है। दसवे 'सुभद्रादर्शन' सर्ग मे युवक-युवती जलक्रीडा करते है। जलक्रीडा के अवसर पर सुभद्रा और अर्जुन की आँखे मिलती है और दोनो एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते है। ग्यारहवे 'दूतिकाद्योतक' सर्ग में अर्जुन सुभद्रा के विरह मे विलाप करते है। मित्र को व्याकुल देख कर श्रीकृष्ण उन्हे धैर्य बँधाते है और आसुर विधि से सुभद्राहरण का सकेत देते है। इधर सुभद्रा भी विरह-व्याकुल है। वह एक दूती द्वारा अर्जुन को अपनी विरह-व्यथा से अवगत कराती है। अर्जुन दूती द्वारा किसी बहाने रैवतक पर्वत पर आने का सन्देश सुभद्रा को भेजते है। 'सुभद्राहरण' नामक बारहवे सर्ग मे अर्जुन के सन्देश के अनुसार नियत समय पर सुभद्रा रक्षको के साथ मन्मथ-पूजा के व्याज से रैवतक उद्यान मे पहुँचती है। यहाँ अर्जुन उसे रथ मे बैठा कर ले जाते है। बलराम को जब इसकी सूचना मिलती है तो वे क्रुद्ध होकर सात्यकि को सेना-सहित अर्जुन को पकडने के लिए भेजते है। श्रीकृष्ण अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर बलराम का कोप शान्त कर देते है और स्वय सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कर देने के लिए उन्हे राजी कर लेते है। इसके बाद वे दोनो युद्ध बन्द कराने के लिए युद्धस्थल की ओर चल देते है। तेरहवे 'संकुलकलिसकलन' नामक सर्ग मे सात्यकि की सेना से अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। 'अर्जुनावर्जन' नामक चौदहवे सर्ग मे बलराम और श्रीकृष्ण आकर दोनो पक्षो को युद्ध से विरत करते हैं। 'विवाह-वर्णन' नामक पन्द्रहवे सर्ग मे बलराम स्वय सुभद्रा का परिणय अर्जुन से कर देते हैं। इस परिणय से कृष्ण और अर्जुन की मैत्री और भी प्रगाढ हो जाती है।

'नरनारायणानन्द' की कथावस्तु का आधार महाभारत है। द्वारवती, रैवतक, षड्ऋतु-वर्णन, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि विविध वर्णनो के द्वारा महाभारत के लघुप्रसग को महाकाव्योचित विस्तार और व्यापकता प्रदान करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है, किन्तु साथ-ही-साथ ये विविध वर्णन मार्मिक होने पर भी कथावस्तु के विकास मे

शिथिलता उत्पन्न करते है। वस्तुत 'नरनारायणानन्द' की कथावस्तु मे अविच्छिन्न धारावाहिकता नही मिलती। किन्तु, हम इसके लिए कवि को दोषी नही ठहरा सकते, क्योकि उसका आदर्श 'शिशुपालवध' और 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य थे जिन्हे सस्कृत मे अत्युच्च स्थान प्राप्त है, यद्यपि इन काव्यो की धारावाहिकता स्थान-स्थान पर खण्डित हो गई है। 'शिशुपालवध' और 'किरातार्जुनीय' की तरह 'नरनारायणानन्द' मे भी कथानक गौण और वस्तुव्यापारवर्णन एव अलंकृत प्रकृतिचित्रण प्रधान हो गया है।

'नरनारायणानन्द' मे पात्रो के चरित्र-चित्रण मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। 'नरनारायणानन्द' का कथानक अधिक विस्तृत नही है इसलिए उसमे पात्रो की अधिकता भी नही है। उसमे श्रीकृष्ण, अर्जुन, सुभद्रा, बलराम, सात्यकि और दूत आदि पात्र है, किन्तु इनमे श्रीकृष्ण और अर्जुन के चरित्र ही चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। ये सभी पात्र ऐतिहासिक (पौराणिक) और प्रसिद्ध हैं और उनके चरित्र के विकास मे उनके पौराणिक रूप की रक्षा हुई है।

चरित्रचित्रण

अर्जुन और श्रीकृष्ण 'नरनारायणानन्द' के नायक है। अर्जुन को श्रीकृष्ण से अत्यन्त प्रेम है। श्रीकृष्ण को देखते ही वह उन्हे आलिगनपाश मे बद्ध कर लेता है। जब श्रीकृष्ण उससे पूछते है कि उसने कहाँ कहाँ की तीर्थ-यात्रा की, उस समय वह जो उत्तर देता है, उसमे श्रीकृष्ण के प्रति उसकी अगाध भक्ति और निश्छल प्रीति छिपी हुई है. —

अर्जुन

ध्रुवमवधिमपूरयं पुराऽहं नियमितकाननवासवासराणाम्।
त्वयि पुनरवलोकिते ममाभूत् त्रिभुवनतीर्थमयेऽद्य तीर्थयात्रा॥
त्वमपि मदवलोकमद्वचोभिर्यदि मुदमुद्वहसि त्रिलोकनाथ।
तदिति फलमदत्त भाग्यवल्लिर्मयि तवभालनिभालनोद्भवैव॥[1]

वस्तुपाल ने अर्जुन के चरित्र मे सौन्दर्य, शील और शक्ति का समन्वय दिखाया है। वह सुन्दर, प्रकृति-प्रेमी, सहृदय और पराक्रमी व्यक्ति है। उसके अनुपम सौन्दर्य को देख कर सुभद्रा उस पर मुग्ध हो जाती है। रैवतक पर कृष्ण और उसमे जो वार्तालाप होता है, उसमे उसके शील की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। सौन्दर्य और शील के साथ-साथ उसमे अतुलित शक्ति है। श्रीकृष्ण उसकी शक्ति से परिचित है। बलराम से कहे गये उनके ये शब्द अर्जुन की अतुल शक्ति के ज्ञापक है —

हर. पर इवैश्वर्ये शास्त्रे गुरुरिवापर:।
स्मरोऽन्य इव सौन्दर्ये शौर्ये किन्तु स एव स॥[2]

युद्ध-क्षेत्र मे अर्जुन अकेले ही सात्यकि के सेनापतित्व मे आई हुई बलराम की सम्पूर्ण सेना का ध्वस कर देता है।

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ३, श्लोक १४-१५ (२) वही सर्ग १२, श्लोक ७९

अर्जुन के चरित्र मे कुछ दुर्बलताएँ भी हैं। रैवतक पर्वत के क्रीडासरोवर में जलक्रीडा करती हुई सुभद्रा के सौन्दर्य की प्रथम झाँकी उसके हृदय मे कामातुरता उत्पन्न कर देती है और वह सोचने लगता है:—

को धन्यः स्तनसङ्गभङ्गविगलन्मुक्तावलीविन्दुकं।
संरुद्धः परिरम्भदम्भनिभृत प्रेमामृतं पास्यति ॥[1]

सुभद्रा के विरह में वह इस प्रकार उन्मत्तों की भाँति विलाप करता तथा कार्य करता दिखाई देता है:—

शरदिन्दुमुखि प्रसीद मे निगदन्नीदृशमाकुलो मुहुः।
अधिरोपयतिस्म नीरजं दयितापादधिया स मूर्धनि ॥[2]

उसे शान्ति तभी मिलती है जब सुभद्रा द्वारा प्रेषित दूती से उसे ज्ञात होता है कि सुभद्रा भी उसमे अनुरक्त है। दूती द्वारा सन्देश भेज कर सुभद्रा को रैवतक उद्यान मे बुलाना और रथ पर बिठा कर ले जाना, अर्जुन के ये दोनो कार्य मर्यादा की दृष्टि से उचित नही कहे जा सकते, किन्तु एक तो क्षत्रियो मे उस समय स्त्री का अपहरण करना अनुचित नही माना जाता था, दूसरे वह यह कार्य श्रीकृष्ण के संकेत पर करता है, जो सुभद्रा के भाई है। वह तो एक बार श्रीकृष्ण के परामर्श पर स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसके इस रूप का चित्रण इन पक्तियो मे किया गया है :—

रमणीहरणोपदेशिनि स्फुटमित्युवितपरे हरौ गते।
अथ किङ्करणीयताजडश्चिरचिन्तोऽजनि पाण्डुनन्दनः ॥[3]

अर्जुन के चरित्र मे वस्तुपाल ने मानव-सुलभ दुर्बलता और वीरता, चचलता और शीलता एव धीरता-अधीरता का सुन्दर सामजस्य दिखाया है। सच तो यह है कि उसमे जो विशेषताएँ हैं वे उसके स्वभाव का अंग है, किन्तु उसके चरित्र मे जो दुर्बलताएँ परिलक्षित होती है वे उसके चरित्र का अंग नही हैं। उसकी इन दुर्बलताओ का मुख्य कारण सुभद्रा के प्रति उसका प्रेम है।

'नरनारायणानन्द' के दूसरे महत्त्वपूर्ण पात्र श्रीकृष्ण है। वे द्वारवती के अधीश्वर और अर्जुन के घनिष्ठ मित्र हैं। काव्य मे उनका चरित्र परम्परागत न होकर पर्याप्त मौलिकता लिये हुए है। महाभारत मे श्रीकृष्ण का चरित्र मनुष्यत्व की कोटि से उठा हुआ दीख पडता है। उसमे देवत्व की प्रधानता है। वस्तुपाल कृष्ण के ब्रह्म-रूप को एकदम तो नही भुला सके है, किन्तु उनके कृष्ण के चरित्र मे देवत्व की अपेक्षा मनुष्यत्व की प्रधानता है।

श्रीकृष्ण

कृष्ण के चरित्र की प्रथम विशेषता है अर्जुन के प्रति उनका अगाध प्रेम। दूत के मुख से रैवतक पर्वत पर अर्जुन के आगमन का सन्देश सुन कर वे हर्ष मे झूम उठते है और

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १०, श्लोक ५६ (२) वही, सर्ग ११, श्लोक ३
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक २१

दूत से मनवाञ्छित पुरस्कार माँगने को कहते हैं। उसे पुरस्कार देकर वे तत्क्षण ही अर्जुन से मिलने के लिए चल देते है। अर्जुन के प्रति उनका अगाध प्रेम और पक्षपात उस समय पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है जब वे अर्जुन को विरह-व्याकुल देख कर अपनी ही बहिन सुभद्रा के अपहरण का सकेत इन शब्दो मे देते है —

अपि विक्लवतां भवादृशां किमसौ धैर्यमुरीकुरु स्वयम्।
प्रकटं त्रपया वदामि किं तव युक्त. पुनरासुरो विधि ॥[1]

मित्र के दुख को दूर करने के लिए वे लोकापवाद की चिन्ता नही करते, ज्येष्ठ भ्राता बलराम के व्यग्य-बाणो की परवाह नही करते, यही कृष्ण महान् है, महापुरुष है।

श्रीकृष्ण के चरित्र की दूसरी विशेषता है उनकी नीति-निपुणता। अर्जुन जब सुभद्रा-हरण कर लेता है तो बलदेव का क्रोध सीमा पार कर जाता है। इस अवसर पर श्रीकृष्ण की नीतिनिपुणता दर्शनीय है। सर्वप्रथम वे बडी नम्रता से अपनी आज्ञाकारिता प्रकट करते है, उसके बाद आवेश मे आकर सहसा कोई कार्य नही करना चाहिए, इस नीति का प्रतिपादन इन शब्दो मे करते है :—

त्वदादेशविधेयोऽस्मि किमार्य मयि कुप्यसि।
वद कार्ये प्रवर्तन्ते धीमन्त. सहसैव किम् ॥
सहसा महसां दत्तां वीक्ष्य दीपे झलज्झलाम्।
मणिभ्रान्त्या पतन्त: कां लभन्ते शलभा दशाम् ॥[2]

इसके पश्चात् बलदेव के क्रोध को शान्त करने के लिए जिन तर्कों एव युक्तियो का आश्रय लिया गया है वे इस प्रकार हैं :—

द्वेषिपेषेऽपि मुंचन्ति मृदुत्व न कलाभृत।
तप्तो हन्ति रविर्ध्वान्त तदेव शिशिर: शशी ॥
पश्योष्णशीतयो स्फीतमन्तरं तरवो यत।
दवदग्धा: प्ररोहन्ति न सिन्धून्मूलिता: पुन ॥[3]

इन उक्तियो द्वारा जब बलराम का क्रोध कुछ शान्त हो जाता है तो श्रीकृष्ण अर्जुन एव उसके स्वजनो—भीष्म, द्रोणाचार्य, कौरव, कर्ण, घटोत्कच, भीम और युधिष्ठिर—के अतुल शौर्य का वर्णन करके बलराम के मन मे यह बात अच्छी तरह जमा देते है कि यदि अर्जुन से युद्ध छेडा गया तो उसमे अपने समस्त कुल का सर्वनाश अवश्यम्भावी है और उस पर विजय प्राप्त करना भी सशय से रहित नही है —

तेन सार्द्धमिति स्पर्धा युद्धे विजयसशय:।
किन्तु चिन्तय नि शेषकुलापचयनिश्चय ॥[4]

इस प्रकार वे बलराम के हृदय मे भय का बीजवपन करने का सफल प्रयत्न करते

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ११, श्लोक २७ (२) वही, सर्ग १२, श्लोक ६०–६१
(३) वही, सर्ग १२ श्लोक ६६–६७ (४) वही सर्ग १२, श्लोक ७६

हैं। इसके बाद वे अपना अन्तिम अस्त्र छोडते हैं कि अर्जुन का कोई अपराध नहीं है। बहिन (सुभद्रा) तो स्वय ही उसमें अनुरक्त है और स्वयं ही उसके साथ गई है। उसके इस कृत्य का स्मरण करते ही हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। अब तो उसके कृत्य पर आवरण डालने का एकमात्र उपाय यही है कि अर्जुन के साथ ही उसका विवाह कर दिया जाए। उसका विवाह तो कहीं-न-कहीं करना ही है, फिर अर्जुन मे किस गुण की कमी है, उससे अच्छा वर और कहाँ मिलेगा ?[1] बलराम पर इन शब्दो का आश्चर्यजनक प्रभाव पडता है और वे श्रीकृष्ण के मत से सहमत हो जाते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्ण बलराम का क्रोध दूर करने तथा अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह कराने मे हरसम्भव नीति को काम मे लाते हैं। यह कृष्ण की ही नीतिमत्ता है कि बलराम स्वय युद्ध-क्षेत्र मे जाकर अपनी सेना को युद्ध से विरत करते हैं और सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कर देते है।

बलराम

बलराम श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता हैं। उनका प्रथम परिचय अष्टम सर्ग मे मिलता है। वे गौर वर्ण के हैं और नीलाम्बर धारण करते हैं। कृष्ण से उन्हे अत्यन्त प्रेम है। उनसे मिलने के लिए वे सेना और परिवार सहित रैवतक पर जाते हैं। उनके चरित्र मे वीरोचित दर्प की अभिव्यक्ति हुई है। सुभद्रा के रक्षक जब सुभद्रा-हरण की घटना का विवरण सुनाते है तो वे क्रोध से लाल हो जाते है और कृष्ण को उपालम्भ देकर उन्हे इस प्रकार उत्तेजित करते हैं :—

> वध्यः सुहृदपि स्नेहक्षयक्षीबो बलीयसाम्।
> वायुरग्निवयस्योऽपि निर्वापयति दीपकम्॥
> कौन्तेये सहजा मैत्री कृत्रिमत्वेन वर्द्धिता।
> सोऽप्यभूत् कृत्रिमः शत्रुरद्य तत्किमुपेक्ष्यते॥[2]

कृष्ण के प्रति कहे गये बलराम के ये शब्द उनकी नीतिमत्ता पर प्रकाश डालते है। उनकी इन आवेशोक्तियों में भी तर्क और युक्ति का प्राधान्य है। फिर भी बलराम मे स्वपक्षाग्रह बिलकुल नहीं है। जब कृष्ण उन्हे समझाते है और उन्हे अर्जुन मे सुभद्रा की अनुरक्ति का ज्ञान होता है तो वे कृष्ण से सहमत हो जाते हैं और सुभद्रा का परिणय अर्जुन के साथ कर देते है। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, आत्म सम्मान की भावना, शौर्य और नीतिमत्ता बलराम की चरित्रगत विशेषताएँ हैं।

सुभद्रा

सुभद्रा बलराम की बहिन है। वह अतीव सुन्दरी है। दशम सर्ग मे उसका विस्तृत नखशिखवर्णन किया गया है। जलक्रीडा के समय वह अर्जुन के सौन्दर्य को देख कर कामातुर हो जाती है :—

> लावण्यैकनिकेत इन्द्रतनुभूर्दृष्टश्च दर्पोद्धतः।
> कन्दर्पेण हता च सा हृदि तदा कर्णान्तितान्तैः शरैः॥[3]

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १२, श्लोक ७०-८०, (२) वही, सर्ग १२, श्लोक ५६-५७
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक ६०

सुभद्रा एक विदग्ध नायिका है। अपने विरह-निवेदन के लिए वह अर्जुन के पास दूती-प्रेषण करती है जिसके द्वारा वह एक पत्र भी अर्जुन को भेजती है। अर्जुन के सन्देश पर मन्मथ-पूजा के व्याज से वह रैवतकोद्यान मे पहुँचती है और अर्जुन के रथ मे बैठ कर उनके साथ स्वेच्छा से चली जाती है। रथ में ही उसे प्रिय का प्रथम आलिंगन प्राप्त होता है। बाद मे कृष्ण-बलराम उसका विवाह अर्जुन से कर देते हैं और उसकी मनोवाछा पूर्ण होती है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से 'नरनारायणानन्द' एक समृद्ध काव्य है। उसमे परम्परा से प्राप्त विविध शैलियो मे प्रकृति का चित्रण किया गया है। वस्तुपाल मे वैचित्र्य और वक्रोक्ति की प्रवृत्ति अधिक है, प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिविन्दु रूढिवादी रहा है। इस कारण प्रकृति के सहज-स्वाभाविक चित्र उपस्थित करने का उनका प्रयास नहीं रहा है, तथापि 'नरनारायणानन्द' मे कहीं-कहीं प्रकृति के सहज चित्र मिल ही जाते है, जो कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के परिचायक है। ग्रीष्म की दोपहरी मे वृक्षो की छाया वृक्षो के ठीक नीचे आ जाती है। इस दृश्य का चित्रण इन पक्तियो मे अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है:—

स्वैरं विलस्य सकलासु वनस्थलीषु च्छायापि तीव्रतपनातपतापितेव।
भूमीरुहां प्रसवबृन्दमरन्दधारा, सम्पातशीतलतराणि तलानि भेजे॥[1]

ग्रीष्म मे नदियो का जल उष्ण हो जाता है, किन्तु गहरे कुओ का जल शीतल रहता है। ग्रीष्मकालीन प्रकृति की इन विशेपताओ का रम्य उद्घाटन इस प्रकार हुआ है —

समये गभीरहृदयः सलिलं शिशिरीचकार बत कूपगणः।
अजनिष्ट सम्प्रति यत परितः सरितां गणोऽपि तपयातपया॥[2]

अष्टम सर्ग मे पशु-प्रकृति के स्वाभाविक चित्र उपस्थित करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। ऊँट का यह स्वभाव होता है कि भार उतारने के लिए बैठाते समय वह उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगता है। ऊँट की इस सहज प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण इन पक्तियो मे हुआ है—

उष्ट्रा रावं चक्रुरुत्सार्यमाणे भारेऽप्युच्चैर्यत्ततो दुःखितास्ते।[3]

एक अन्य पद्य मे द्राक्षा, जम्बू आदि मधुर फलो को त्याग कर बबूल-भक्षण में निरत उष्ट्रो का सहज चित्र उपस्थित किया गया है।[4] गज-प्रकृति का उद्घाटन करने वाले

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ८, श्लोक ५४ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक २०
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ४६
(४) मुक्तद्राक्षास्तम्बजम्बूरसालो बब्बूलादिग्रासलोलाधरोष्ठः।
उष्ट्रव्यूहोऽहासि रूपानुरूपे सत्याहारे पक्षिरावैर्वनीभिः॥
— नरनारायणानन्द, सर्ग ८, श्लोक ५०

चित्र भी 'नरनारायणानन्द' में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।[1] समुद्र-गर्जन की ध्वनि से उत्तेजित वृषभों का अपने शृंगों द्वारा सिन्धु-रोध को उत्पाटित करने का दृश्य इस पद्य में कितना सहज स्वाभाविक एवं यथार्थ बन पड़ा है :—

मुक्ते भारे सद्य एव प्रमत्ता ध्वानत्रस्तस्पर्द्धिन सौरभेयाः।
शृंगे स्वाङ्कच्छायया युध्यमाना सिन्धोरोधं पातयामासुराशु ॥[2]

'नरनारायणानन्द' में कतिपय स्थलों पर प्रकृति के निर्भर सौन्दर्य के चित्र भी खींचे गये हैं। इन स्थलों पर पात्र-विशेष के सम्मुख प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य उभर आया है और वह उसका वर्णन करता है। प्रमद वन में वन-शोभा का निरीक्षण करते हुए अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं :—

अस्मिंल्लतानां च महीरुहां च मिथः परीरम्भभृतां सकम्पम्।
स्वेदोदबिन्दूनिव पश्य पुष्पव्रजान् हरत्येष शनैः समीरः ॥[3]

प्रकृति के इस वर्णन में परोक्ष-रूप से अर्जुन की मानसिक स्थिति व्यक्त हुई है। प्रकृति का ऐसा उपस्थापन एक ओर जहाँ प्राकृतिक दृश्यों का सजीव सौन्दर्य प्रकट करता है वहाँ दूसरी ओर पात्र के हृदयगत उल्लास को भी व्यक्त करता है।

'नरनारायणानन्द' में उद्दीपन रूप में प्रकृति का प्रयोग भी हुआ है। निम्नलिखित पंक्तियों में शरत्कालीन प्रकृति के उपकरण – नदी के निर्मल जल में अवस्थित कमल, कैरव एवं हंस—पथिकों की भावनाओं को उद्वेलित और उनकी वियोग-वह्नि को दीप्त करते हुए चित्रित किये गये हैं :—

पथिकाः पथि स्मृतवधूमुखदृग्गतिविभ्रमा मुमुहुरत्र मुहुः।
सरितां प्रवाहमवलोक्य सरोरुहकैरवप्रसयहंसवहम् ॥[4]

इसी प्रकार सुभद्रा के विरह में विकल अर्जुन की विरह-व्यथा को मलयानिल, कमल, चन्दन आदि बढ़ा देते हैं :—

पवनः कदलीदलैरयं क्षिपते चन्दनचर्चितैः कुतः।
मलयाचलवायुकारि का परमार्थो यदतीव तापकृत् ॥
व्यथयत्ययमम्बुजव्रजो हृदयं मे व्यथयेव पाटलः।
यदमुष्य विरोधिने प्रियावदनाय स्पृहयत्ययं सदा ॥
किमु चन्दनचर्चनं वृथा विहितं वक्षसि तापशान्तये।
अमुना दयितान्मितप्रभास्मृतिबीजेन हहा हतोऽस्म्यहम् ॥[5]

---

(१) लीलालीलद् वृष्टिमुत्तापमुक्तैरेवाहारैरुन्मदा सादिनोऽपि।
आकूतत्या वा ताडनक्रीडया वा नाश्रु ग्रामं ग्राहयामासिरेऽमी ॥
नरनारायणानन्द, सर्ग ८, श्लोक ४०

(२) वही, सर्ग ७, श्लोक ५१ (३) वही, सर्ग ३, श्लोक ४१

(४) वही, सर्ग ४, श्लोक ३५ (५) वही, सर्ग ११, श्लोक ८, १०, ११

इन स्थलो पर प्रकृति मानव-हृदय को उद्दीप्त करती हुई हमारे समक्ष आती है। वियोग मे जो प्रकृति वियोगी के दु ख को बढाती हुई दीख पडती है सयोग मे वही नायक-नायिकाओ के हर्ष मे वृद्धि करती हुई दृष्टिगत होती है। निम्न पक्तियो मे वसन्तकाल की उद्दीपक प्रकृति मानिनी नायिका को मान-त्याग करके स्वत प्रिय के समीप जाने को विवश करती है —

न्यक्कृतानुनयचाटुरपि प्राक् प्रेयसा स्वयमियाय सम स्त्री।
कामचापकुटिलास्वलिगुञ्जाटकृतासु तरुमंजरिकासु ।।[१]

'नरनारायणानन्द' के पुष्पावचय, दोलान्दोलन, चन्द्रोदय आदि वर्णनो मे प्रकृति बिलकुल परोक्ष मे चली गई है और मानवीय रति-विलास प्रमुख हो गया है। प्रातःकाल की प्रकृति के साथ ऐसे चित्र भी प्रस्तुत किये गये है —

स्वप्ने निरीक्ष्य चरणप्रणत युवान सद्यः प्रसादरभसादुषसि प्रबुद्धा।
अभ्यागतं चकितमेव चिराय काचिदाश्चर्यमग्नमनयत्परिरभ्य तल्पे।[२]

'नरनारायणानन्द' मे ऐसे चित्रो की सख्या बहुत है।

वस्तुपाल ने प्रकृति मे मानवीय भावनाओ का आरोप भी किया है। प्रकृति मे उन्होने सजीवता एव प्राणवत्ता का आरोप कर उसके कार्य-कलापो मे मानवीय कार्यकलापो की झलक दिखलाई है। पूर्व दिशा मे उदय होने के बाद जब चन्द्रमा आकाश मे ऊपर आता है तब वह पूर्व दिशा तथा लालिमा का परित्याग कर देता है और रात्रि हो जाती है। इसका चित्रण कवि ने पूर्व दिशा व चन्द्रमा मे नायकनायिकारोप तथा रजनी मे अपरनायिकारोप द्वारा इस प्रकार किया है —

तिमिरसीधुरसप्रसरारुणे त्वयि मुधाऽजनि रागिमतिभ्रम ।
शठ मया परिरम्भपरोऽपि यद्वितनुषे रजनीमुखचुम्बनम् ।
इति सुरेन्द्रविशेव रुषा हत सितरुचि पतितो वियदङ्गणे।
अथ विकस्वरकोमलकौमुदी परिमलैरवशेषदिशोऽहसन् ।।[३]

यहाँ चन्द्रमा प्राची-दिशा-नायिका का आलिंगन करता हुआ भी अन्य नायिका रजनी का मुख-चुम्बन करता है। अपने प्रिय को परागनारत देख कर क्रोध से प्राची नायिका चन्द्रमा की ताडना करती है जिससे वह वियदगण मे गिर पडता है। चन्द्रमा की इस दुर्दशा को देख कर अन्य दिशाएँ हँस पडती है। यहाँ चन्द्रमा मे शठनायक और प्राची, रजनी तथा अन्य दिशाओ मे नायिकाओ का आरोप किया गया है। इसी प्रकार सूर्यास्त समय का दृश्य-चित्रण करते समय सूर्य को नायक तथा पश्चिम दिशा को अनुरक्त नायिका के रूप मे चित्रित किया गया है जो परस्पर आलिंगनरत दिखाई पडते है —

द्रुतमनुज्झिततापपरम्परो परदिशा विनमन्ननुरक्तया।
रविरसावधिरोप्य नगोन्नतस्तनतटे स्म चिरं परिरम्भते ।।[४]

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ६, श्लोक ४ (२) वही, सर्ग ७, श्लोक ४
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक २६–३० (४) वही, सर्ग ५, श्लोक ३

वस्तुतः ऐसे स्थलो पर उक्तिवैचित्र्य की ओर कवि का आग्रह अधिक रहा है, फिर भी प्रकृति के विस्तृत सौन्दर्य के आकलन मे वह सफल हो सका है, यह उसके लिए गौरव की बात है।

कवि ने कही-कही प्रकृति को मानव की सेविका के रूप मे भी चित्रित किया है। प्रमदवन की प्रकृति दम्पति के लिए प्रसून-शैया का निर्माण करके उनके क्रीडाविलास के लिए घनान्धकार की व्यवस्था करती है :—

छायाभिरन्धतमसानि विधाय मूले, दत्तच्छटामधुरसैस्तरव सृजन्ति ।
शाखाग्रहस्तचलनप्रसृतै प्रसूनै, शय्यामिह प्रियसखा इव दम्पतीनाम् ।।[1]

इस प्रकार 'नरनारायणानन्द' मे कवि ने प्रकृति को अधिकतर मानवीय जीवन और भावनाओ से स्पन्दित चित्रित किया है। मानव अगो के उपमान-रूप मे प्रकृति का चित्रण निम्न पद्यो मे हुआ है -—

वक्षोजशैलान्तरिते मुखेन्दौ सन्ध्यारुणं पादयुगं तदीयम् ।
विष्वग् नखैस्तारकितं सरोजम्लानिक्षमं वीक्ष्य न कः सकामः। [2]
सितरुचिशुचिवासो बिभ्रती सम्भृताङ्गविशदवदनकान्तिः सा वराङ्गी विरेजे ।
कनककमलिनीव स्वच्छगङ्गातरङ्गावलिवलयितमूर्ति स्पष्टदृष्टाम्बुजश्री ।।[3]

यहाँ वक्षोज, मुख आदि शारीरिक अवयवो के लिए उपमान-रूप मे शैल, इन्दु आदि की तथा स्वच्छ व शुभ्र वस्त्रो के परिधान वाली तथा गौरमुखवाली नायिका के लिये उपमान-रूप मे स्वच्छ व शुभ्र गगातरगो से परिवेष्टित कनक-कमलिनी की योजना की गई है।

इस प्रकार 'नरनारायणानन्द' मे प्रकृति-चित्रण की विविध शैलियो का प्रयोग हुआ है। वस्तुपाल प्रकृति का अ कन कविप्रसिद्धियो एव चमत्कृत उक्तियो से करते है। इस कारण उनके प्रकृति-चित्रो मे सजीवता एव मनोहारिता की कमी नही है।

'नरनारायणानन्द' के पात्रो मे कवि ने केवल सुभद्रा का ही सौन्दर्य-वर्णन किया है। अन्य पात्रो का सौन्दर्य-चित्र उपस्थित करने का प्रयास नही किया गया है। सुभद्रा के सौन्दर्यवर्णन मे परम्परागत नखशिखप्रणाली का आश्रय लिया गया है। अ गो के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए अधिकतर नवीन उपमानो का प्रयोग किया गया है, फलस्वरूप उपमान-योजना मे कविकल्पना की उत्कृष्टता दीख पडती है।

सौन्दर्य-चित्रण

इस पद्य मे सुभद्रा की त्रिबलि को अजेय त्रिशूलायुध शिव को पराजित करने के लिए कामदेव द्वारा सचित शल्यत्रय कह कर त्रिवलि के लोकोत्तर सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है '—

जित्वा प्रसूनैरपि विष्टपानि जेतुं त्रिशूलायुधमप्यजेयम् ।
मन्ये यदन्तस्त्रिबलिच्छलेन शल्यत्रय सज्जयते मनोभू ।।[4]

(१ नरनारायणानन्द, सर्ग ३, श्लोक ४० (२) वही, सर्ग १०, श्लोक ४६
(३) वही सर्ग १५, श्लोक ७ (४) वही, सर्ग १०, श्लोक ४३

इसी प्रकार ओष्ठो की प्रभा से पाटल दन्त-पक्ति को सचरण करती हुई वाग्देवता की अलक्तकरजित आर्द्र पदश्रेणी कह कर एक ओर सुभद्रा की धवल दन्त-पक्ति तथा उसके अरुण ओष्ठो के लावण्य की अभिव्यजना की गई है तो दूसरी ओर उसके अगाध वैदुष्य पर प्रकाश डाला गया है —

यस्या मुखे दन्ततर्तिनितान्तमोष्ठप्रभापाटलिता चकास्ति ।
आर्द्रा पदश्रेणिरलक्तकाङ्का वाग्देवताया इव सचरन्त्या ॥[1]

अवयवो के सौन्दर्य-चित्रण मे नवीन कल्पनाएँ जुटाने तथा उक्ति-वैचित्र्य द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की ओर कवि की प्रकृति अधिक परिलक्षित होती है, किन्तु उपमानो की योजना करते समय उसकी दृष्टि उपमेय के सादृश्य की ओर प्राय रही है। इसी कारण 'नरनारायणानन्द' के सौन्दर्य-चित्रो मे दुरूहता एव क्लिष्टता नही आने पाई है।

रस-परिपाक

महाकाव्य मे शृङ्गार, वीर और शान्त इन तीनो रसो मे से कोई एक रस प्रधान रूप से होना चाहिए। 'नरनारायणानन्द' मे शृङ्गार रस की प्रधानता है। सुरापान, सुरत, वनक्रीडा, पुष्पावचय, दोलान्दोलन, और जलक्रीडा के वर्णनो मे शृङ्गार रस की प्रधानता है। सुरत-वर्णन के प्रसग मे शृङ्गार रस का एक चित्र इन पक्तियो मे अङ्कित हुआ है —

जघनमतिघन निरीक्ष्य सद्य श्रमजलस्वेदजलार्द्रचीरदृश्यम् ।
मुहुरपि रतये प्रियोऽधितल्प परिरभ्य प्रमदां मदान्निनाय ॥[2]

यहाँ नायक की नायिकाविषयक रति स्थायी भाव है। प्रमदा आलम्बन विभाव है। स्वेदार्द्र चीर मे से दिखाई देने वाले जघन उद्दीपन विभाव है। नायिका को तल्प पर ले जाना एव आलिगन करना अनुभाव है। उत्सुकता, मद आदि सचारी भाव है। इस प्रकार यहाँ विभाव, अनुभाव और सचारी भावो से परिपुष्ट रति-स्थायी-भाव शृगार रस मे अवतरित हुआ है।

शृगार रस के अन्तर्गत कही-कही अनुभावो की व्यजना पर्याप्त सुन्दर हुई है। एक उदाहरण देखिए —

क्षणमतिकुपिता क्षण प्रसन्ना हसिताश्च क्षणमाकुला क्षण च ।
नवनवरसभङ्गिभिर्मृगाक्ष्यो हृदय नूनमनीनृतन् प्रियाणाम् ।[3]

सयोग शृगार के अतिरिक्त विप्रलम्भ शृगार, रौद्र, वीर आदि अन्य रसो को भी गौण-रूप से स्थान मिला है। ग्यारहवे सर्ग मे सुभद्रा के विरह मे व्याकुल अर्जुन की चित्त-वृत्तियो के वर्णन मे विप्रलम्भ शृगार की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे —

किमु रोदिषि तन्वि नन्वितस्त्यज कोप मुखरागकारणम् ।
इतिभृंगविरावि वारिज दयितावक्त्रधिया चुचुम्ब च ॥[4]

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १०, श्लोक ३५ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ५७
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक १६ (४) वही, सर्ग ११, श्लोक १३

इस प्रसग मे सुभद्रा के विरह में व्याकुल अर्जुन की सुभद्रा-विषयक रति स्थायी भाव है। सुभद्रा आलम्बन विभाव है और सुभद्रा के मुख से साम्य रखने वाला कमल और गूँजते हुए भृंग उद्दीपन विभाव हैं। नायिका-मुख की भ्रान्ति से कमल को चूमना तथा प्रलाप करना अनुभाव है। स्मरण, विषाद, भ्रम आदि सचारी भाव है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव तथा सचारी भावो से यहाँ वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है।

दूत से सुभद्राहरण का समाचार पाकर बलराम अर्जुन पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाते है। इस प्रसंग मे सेनापति कृतवर्मा और सात्यकि के प्रति कही गई बलराम की इन उक्तियो मे वीर-रस का अच्छा निर्वाह हुआ है :—

> **सेनामेनां समादाय गच्छ सत्सत्त्व सत्वरम्।**
> **तथा कुरु यथा नाऽयं जीवन् याति मलिम्लुच ॥**
> **उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युद्धैकमहासात्त्विक सात्यके।**
> **गच्छामीभि समं भूपैगृह्यतां गृह्यतां शठः ॥**
> **हन्त मा स्म विलम्बन्त भवन्तः सन्ततोज्ज्वला।**
> **पृष्ठेऽह प्राप्त एवैष पुरस्कृत्य मुरद्विषम् ॥**[1]

यहाँ अर्जुन आलम्बन विभाव है। बहिन सुभद्रा का हरण उद्दीपन विभाव है। शूरो को सेना लेकर युद्ध के लिए एव अर्जुन को पकड़ने के लिए उभारना आदि अनुभाव है। गर्व, आवेग आदि सचारी भाव है। बलराम के हृदय का उत्साह स्थायी भाव है।

इसी प्रसग मे रौद्र रस का निर्वाह भी अच्छा हुआ है। सुभद्रा-हरण की सूचना पाते ही बलराम क्रोध से प्रज्वलित हो उठते है। इस अवसर पर बलराम के रौद्र-रूप का चित्रण इस प्रकार किया गया है :—

> **इत· पुरः स्फुरत्क्रूरज्यल्लोचनरोचिषा।**
> **दहन्निव दिवं मूर्तकोपपावकलीलया ॥**
> **पादसम्पातसंरंभपीडयामूर्च्छितामिव।**
> **सिचन्नमर्षघर्माम्भःपूरैरुर्वीं पदे पदे ॥**
> **मुखाग्रधृततन्मित्रोपालम्भैरिव मारितम्।**
> **चेपमानं वहन्नोष्ठ ययौ सीरी हरिं प्रति ॥**[2]

यहाँ अर्जुन आलम्बन विभाव है और सुभद्रा-हरण उद्दीपन विभाव है। नेत्रो का लाल-लाल होना, पृथिवी पर पैर पटकना, ओष्ठ-कम्प होना आदि अनुभाव है। उद्वेग, अधृति, अमर्ष आदि सचारी भाव है। बलराम का हृदयगत क्रोध स्थायी भाव है। इस प्रकार यहाँ रौद्र रस की पूरी सामग्री वर्तमान है।

'नरनारायणानन्द' के तेरहवे सर्ग मे सात्यकि की सेना तथा अर्जुन के युद्ध का सजीव वर्णन है। इस स्थल पर वीर रस के सहायक के रूप मे वीभत्स और भयानक रस

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ४, श्लोक ४१–४३ (२) वही, सर्ग १२, श्लोक ४६–४८

के चित्र भी मिलते हैं। निम्न पंक्तियों मे भयानक रस की छटा दीख पडती है :—

नवरक्तविलेपिनोऽन्त्रमालाकृतहाराश्च कुटुम्बिन पिशाचा ।
वशया पिशितं कपालपात्रैरघसन्प्रेतपते महोत्सवेऽस्मिन् ।।
बहुमांसमकीकसं मृतानां मृदुलाहारकृतेऽङ्गकं यदापु ।
तदपि ध्रुवमाहरन् शृगाल्यो व्यथितास्याघनमग्रभल्लशल्यम् ।।
अधिरुह्य मृताङ्गकानि रौद्राः करमोट्टायितनर्तिताऽसिदण्डा ।
परतीरजुषां द्विषां निहन्तु तरलं तेरुरसृग्धुनीषु धीराः ।।[1]

'नरनारायणानन्द' के युद्ध-वर्णन मे ओज-भरे शब्दो की ध्वनि भी वीर, रौद्र और भयानक रस को तीव्रता प्रदान करती है। हास्य, करुण और शान्त रस का 'नरनारायणानन्द' मे अभाव दृष्टिगोचर होता है।

'नरनारायणानन्द' का भाव-पक्ष जितना सबल है, कलापक्ष भी उतना ही परिष्कृत, प्रौढ और भव्य है। भावानुकूल भाषा, रीति, गुण, अलकार और छन्द-योजना काव्य के कलापक्ष का निर्माण करते है। 'नरनारायणानन्द' मे वस्तुपाल की काव्यकला का उत्कृष्ट रूप दीख पडता है। वस्तुपाल का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी

भाषा

भाषा सुसस्कृत, प्रौढ और साहित्यिक है। उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता प्रसग के अनुकूल रूप-परिवर्तन की क्षमता है। भाव और परिस्थिति के अनुसार वह कही कोमल, कही मधुर और कही ओजस्विनी दिखाई देती हैं। उसमे एक ओर जहाँ सुमधुर नाद-सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर चित्रात्मकता भी प्रचुरता से है। भावो के अनुसार तदनुकूल ध्वनियो को सजाने मे वस्तुपाल को बहुत सफलता मिली है। युद्ध-वर्णन-सम्बन्धी प्रसगो मे ओजप्रधान भाषा एव समासबहुला पदावली ने युद्ध के सजीव चित्र उपस्थित किए है। जैसे :—

अग्र्य प्रत्यग्रवल्गत्तरलतरशर नन्वय धन्वदण्डम् ।
चण्ड कर्षन्नमर्षप्रसररसलसद्गर्वसर्वस्ववश्य ।।
वर्षन्हर्षप्रकर्षं गगनतलगतस्वर्गसद्वर्गमन्त ।
प्रत्यक्षत्र्यक्षकल्प प्रबलपरबलध्वसनं स व्यधत्त ।।[2]

नाद और शब्दो के सहारे मार्मिक चित्र उपस्थित करने की कला मे 'नरनारायणानन्द' का कवि बहुत दक्ष है। युद्ध-वर्णन की भाषा जहाँ ओजोगुणव्यजक कठोर वर्णों से एव समासबहुला शैली से युक्त है वहाँ विरह की भाषा माधुर्यगुणव्यजक कोमल वर्णों से एव अल्पसमासवाली रचना से युक्त है। विरह की यह भाषा एक प्रकार की विवशता, दीनता, करुणा और गहन व्यथा को व्यक्त कर रही है —

शरदिन्दुमुखि प्रसीद मे निगदन्नीदृशमाकुलो मुहुः ।
अधिरोपयति स्म नीरज दयितापादधिया स मूर्द्धनि ।

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १३, श्लोक ६१–६३ (२) वही, सर्ग १४, श्लोक ३६

किमु चन्दनचर्चितं वृथा विहितं वक्षसि तापशान्तये ।
अमुना दयितास्मितप्रभास्मृतिबीजेन हहा हतोऽस्म्यहम् ।[1]

सयोग शृंगार की पदावली मे कोमलता, लालित्य और सुषमा है तथा उसमे यौवन की उद्दाम तरगो की तरह विलसित होने की शक्ति है। ऐसे अवसरो पर समासबहुला पदावली का अभाव है। निम्न पक्तियो मे इन सब विशेषताओ का समावेश दीख पडता है —

वसनविनयने करावरोधं परिरम्भे विकृतिं भ्रुवोऽभिमानात् ।
अधररसनसम्भ्रमे तु चक्रुश्चटुवाच सुदृशो रसाय यूनाम् ॥[2]

नीतिकथन की भाषा सबसे सरल है। इस सरलता ने कवि के कथनो को प्रभावोत्पादक बना दिया है। भाषा की उज्ज्वलता, मसृणता, प्रसादगुणता, प्रभावोत्पादकता तथा सरलता को अभिव्यक्त करने वाली नीतिकथन-सम्बन्धी निम्न पक्तियाँ दर्शनीय है —

द्वेषिपेषेऽपि मुंचन्ति मृदुत्वं न कलाभृतः ।
तप्तो हन्ति रविर्ध्वान्तं तदेव शिशिरः शशी ॥
वशीभवन्ति विश्वानि विनमन्ति स्वयं द्विष ।
पुरः स्फुरति दासीव श्रीर्विमृश्यविधायिनाम् ॥[3]

सक्षेप मे प्रसगानुकूल रूपपरिवर्तन की क्षमता, कान्ति और प्रसादगुणता, चित्रात्मकता और प्रभावोत्पादकता 'नरनारायणानन्द' की भाषा की विशेषताएँ है। रसार्द्रता उसकी भाषा का प्राण है। इस प्रकार 'नरनारायणानन्द' मे सस्कृत भाषा का अत्यन्त परिष्कृत और प्रौढ रूप देखने को मिलता है।

'नरनारायणानन्द' मे एक सर्ग ऐसा भी है जहाँ भाषा मे अतिदुरूहता और कृत्रिमता है। यहाँ न प्रभावोत्पादकता है, न रसार्द्रता और न भाषा का स्वाभाविक सौन्दर्य।

पाण्डित्य-प्रदर्शन और शब्द-क्रीड़ा

ये स्थल वे हैं जहाँ वस्तुपाल पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए शब्दो से खिलवाड करने लगते है। भाषा की दुरूहता का क्लिष्टतम रूप तब प्रकट होता है जब कवि एक ही अक्षर का प्रयोग सम्पूर्ण श्लोक मे करता है। 'नरनारायणानन्द' का निम्न श्लोक साधारण पाठक की बात तो जाने दीजिए, विद्वानो की भी सामान्य पहुँच के बाहर है —

लोलालोलं लुलोलेलो लालो लालल्ललोल्लल: ।
लोलं लोलं लुलल्लोलोलोलोलल्ली लाललोलल: ॥[4]

निम्नलिखित श्लोक मे केवल दो अक्षरो 'प' और 'र' का ही प्रयोग किया गया है :—

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ११, श्लोक ३, ११ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ३८
(३) वही, सर्ग १२, श्लोक ६६, ६४ (४) वही, सर्ग १४, श्लोक २३

पूरम्पूरं पुरोऽपार रोपपूरं पर:परम् ।
रूपं पुररिपोराप पारेरिपु परम्परम् ॥[1]

इसी प्रकार इस श्लोक मे केवल 'ल' और 'क' का प्रयोग ही किया गया है :—

लोककीलाल कल्लोलकूले कलकलाकुल ।
लीलालोकी ललालैकः कालकेलिकलः कलः ॥[2]

इन एकाक्षर और द्व्यक्षर श्लोको के अतिरिक्त 'नरनारायणानन्द' मे चतुरक्षर और षडक्षर श्लोक भी मिलते है। चतुरक्षर श्लोक मे न, क, त और र, इन चार अक्षरो का[3] और षडक्षर श्लोक मे श, र, व, य, स, ल, इन छह अक्षरो का[4] प्रयोग हुआ है। एक श्लोक मे केवल अन्त स्थ अक्षरो का ही प्रयोग किया गया है।[5] इसी प्रकार किसी श्लोक मे दन्त्य,[6] किसी मे तालव्य,[7] किसी में ओष्ठ्य,[8] किसी मे मूर्द्धन्य,[9] तो किसी मे सयुक्ताक्षरो[10] का बहिष्कार है। नीचे के श्लोक का प्रणयन कवर्ग, चवर्ग और टवर्ग से इतर अक्षरो द्वारा हुआ है :—

युद्धध्वं मा स्म धीरा हरिहयतनय मामिव ध्यायतामु ।
धीरध्वानैर्निषिध्य स्वबलमिति बहूदस्तहस्तो विहस्तम् ।
दैत्यध्वंसी तवैत्य प्रियसुहृदमसुप्रायमाश्लिष्य हृष्य-
द्रोमस्तोम तमन्त शमनयमनयद्धैर्यधुर्य स्वपुर्याम् ॥[11]

एक दूसरे श्लोक मे पचवर्ग (कचटतप वर्ग) से इतर वर्णो का ही प्रयोग हुआ है। नीचे एक अनुलोमप्रतिलोम श्लोक दिया जा रहा है। इसकी प्रथम पक्ति के वर्णो को विपरीत क्रम से रख कर दूसरी पक्ति का निर्माण किया गया है :—

वीरनन्वकसत्प्रासो बभारेह परो रुचा ।
चारुरोपहरेभाव सोत्प्रासकदन रवी ॥[12]

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग १४/१७ (२) वही, सर्ग १४/१३

(३) नूनं नानेन नुन्नो ना क कोऽङ्क केकिकाकुक ।
तातताततेतितत्तान्तो रंरारोरुरुरोररा ॥ —वही, सर्ग १४/४२

(४) शर्वरीश्वरयशा: स्वय श्रिय सश्रयो वशशर: ससार स: ।
वैरिवीरवलयव्ययाशया वासवि सरसरावलालस: ॥
—षडक्षरश्लोक । वही, सर्ग १४/२९

(५) व्यालावलीविलयवर्यरवालयोऽयं, लोलैरिलावलयवीरवरैरवार्य. ।
वैराविलो रयलयैरविवारवारी, वीर्यं युवा रविरिवाविरल विवव्रे ॥
—अन्त स्थाक्षरश्लोक, वही, सर्ग १४/३३

(६) वही, सर्ग १४/२५ (७) वही, सर्ग १४/५ (८) वही, सर्ग १४/३

(९) वही, सर्ग १४/२८ (१०) वही, सर्ग १४/२० (११) वही, सर्ग १४/२१

(१२) वही, सर्ग १४/२२

रसार्द्रता की दृष्टि से भले ही ऐसी कविता का मूल्य न हो, किन्तु इसमें सन्देह नही कि ऐसी कविता मे वस्तुपाल का अगाध पाण्डित्य और भाषा पर असाधारण अधिकार प्रकट हुआ है। महाकवि माघ की तरह वस्तुपाल ने भी चित्रालंकार का सन्निवेश पूरे एक सर्ग मे किया है। इनमे नशरशरासनबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, मुरजबन्ध, षोडशदलकमलबन्ध, कविनामगर्भाङ्कमष्टारचक्र, सर्वतोभद्रचक्र, कविनामाङ्कशक्तिबन्ध आदि की रचना की गई है। इनमें से कुछ के उदाहरण पादटिप्पणी में दिये जा रहे है।[1]

'नरनारायणानन्द' मे अलकारो का प्रयोग बहुत हुआ है शब्दालकार और अर्थालकार दोनों प्रकार के अलकार प्रस्तुत काव्य मे पाये जाते है। चौदहवे सर्ग मे जहाँ कवि ने चित्रालकारो के द्वारा चमत्कृति लाने एव पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न किया है, वहाँ उसने भाव-व्यजना की बलि देकर शब्दाडम्बर को ही महत्त्व दिया है :—

अलकार-विधान

रिपुनिकरोवलराजीराजी राजीवशोणनयनेन।
चक्रे युधे वै कुन्ती कुन्ती कुन्तीसुतेन रुषा ॥[2]

किन्तु इस सर्ग को छोड कर सर्वत्र अलकारो के प्रयोग मे कवि ने स्वाभाविकता की रक्षा का यथासाध्य ध्यान रखा है। वस्तुपाल ने अलकारो का उपयोग काव्यानुभूति उत्पन्न करने के लिए साधन-रूप मे ही किया है। भावों का गला घोट कर अलकारो का अनुचित प्रयोग प्राय. उन्होने नही किया है। अनुप्रास अलकार का एक स्वाभाविक प्रयोग देखिए :—

साकं सखीभि कुतुकात्तरन्ती प्रेक्ष्य प्रिय शून्यलुलत्करापि।
अम्भ सु नो काचिदचेतनत्वसस्तंभितश्वासतया ममज्ज ॥[3]

---

(१) गोमूत्रिकाबन्ध —देहे परशरीदारहनन कश्चिदुद्धुरः।
सेहे वीरवरो धीरश्रीनखाङ्कमृदुस्थिर ॥
—नरनारायणानन्द सर्ग १४/६

मुरजबन्ध —उवाहासि महानन्यो भ्रुवाहावानिहानघः।
घनहानिमहाशत्रूजनहासिमहाः शरान् ॥ —वही, सर्ग १४/११

षोडशदलकमलबन्ध .—शूर. स्थिरतरः स्फारशरभारः पुरः पुरः।
आरवंरभरस्मेरवीरवारहर परः ॥ —वही, सर्ग १४/१६

खड्गबन्ध —समरे कोपपरममहारित्रासससवरणः।
चरमायो जनोच्छ्रायो जेयो मारचणः क्व सः ॥ —वही, सर्ग १४/१७

सर्वतोभद्र :—मायारात तरायामा या शमाक्ष क्षमाशया।
रामामाददमामारा तक्षदक्ष क्षदक्षत। —वही, सर्ग १४/२७

कविनामाङ्कशक्तिबन्ध वसन्त-कवि, कवितानामाक्षराणि] वभ्रे तेन ततश्रीकविभावि विदितद्युता।
तापदालोककरविकलासंसञ्ज्ञिना रवः ॥
—वही, सर्ग १४ १६

(२) वही, सर्ग १४/३५ (३) वही, सर्ग १०/१४

जलक्रीडा से सम्बन्धित इस श्लोक मे अनुप्रास की रणनात्मक झकृति ने शृंगार के सहज माधुर्य की वृद्धि मे पूर्ण सहयोग दिया है।

अर्थालकारो मे भी अधिकाश अलकारो का प्रयोग भाव को हृदयगम कराने और अनुभूति उत्पन्न करने के लिए किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अर्थान्तिरन्यास, अतिशयोक्ति, परिसख्या आदि अलकारो के सुन्दर उदाहरण 'नरनारायणानन्द' मे विद्यमान है। उत्प्रेक्षा की विशद अवतारणा ऐसे पद्यो मे हुई है .—

> भ्रान्तैरन्तर्दन्तिभि शैललीलैर्वारापूरे पल्वलेषु प्रवृद्धे ।
> सद्यो मूलच्छेदमाशक्य शङ्कृ लब्धातङ्का पंकजिन्यो ममज्जुः ॥[1]

निम्न पक्तियो मे अर्जुन के शौर्य-वर्णन मे अनन्वय अलकार का सफल प्रयोग हुआ है —

> हर. पर इवैश्वर्ये, शास्त्रे गुरुरिवापर ।
> स्मरोऽन्य इव सौन्दर्ये शौर्ये किन्तु स एव सः ॥[2]

प्रथम सर्ग मे द्वारवती के नृप कृष्ण के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मे विरोधाभास का सुन्दर प्रयोग इस प्रकार हुआ है .—

> पुपोष मित्राण्यपि निर्ममोऽसौ गतस्पृहो राज्यमपि प्रतेने ।
> जघान शत्रूनपि शान्तचित्त प्रभु प्रजैकार्थकृतावतार ॥[3]

द्वारवती के भवनो की अत्युच्चता प्रदर्शित करने के लिए कवि की कल्पना अतिशयोक्ति अलकार के रूप मे व्यक्त हुई है —

> यस्या रहस्तु गगृहाग्रभागकृतस्थितीना कवितु कवीनाम् ।
> गुरु. सुराणामपि किंचिदन्तेवासित्वमायाति वियद्विलासी ॥[4]

इसी प्रकार चपलातिशयोक्ति के द्वारा कृष्ण के रथ का वेग प्रदर्शित किया गया है —

> रथपतिरयमेति कोऽतिदूरे निगदति यावदिद हृदैव पार्थ ।
> त्वरितममुमुपेत्य तावदभ्युत्थितिकृतसम्भ्रममालिलिङ्ग विष्णुः ॥[5]

अर्जुन के प्रति बलराम का क्रोध शान्त करने के लिए कृष्ण जिस अप्रस्तुत विधान द्वारा अपने कथन को तर्कसम्मत बनाते है उसमे अर्थान्तरन्यास अलकार का सहयोग लिया गया है :—

> द्वेषिपेषेऽपि मुंचन्ति मृदुत्व न कलाभृत ।
> तप्तो हन्ति रविर्ध्वान्त तदेव शिशिरः शशी ॥[6]

इसी प्रकार अन्यत्र स्मरण, भ्रान्तिमान, परिवृत्ति, ललित आदि अलकारो के समु-

---

(१) नरनारायणानन्द, सर्ग ८, श्लोक २९
(२) वही, सर्ग १२, श्लोक ७९
(३) वही, सर्ग १, श्लोक ४२
(४) वही, सर्ग १, श्लोक २३
(५) वही, सर्ग ३, श्लोक ४
(६) वही, सर्ग १२, श्लोक ६६

चित प्रयोग के द्वारा वस्तुपाल ने अपने काव्य मे विलक्षण सौन्दर्य का सृजन किया है।[1] 'नरनारायणानन्द' के अर्थालकारो मे स्वाभाविकता और भावो को तीव्र करने की क्षमता है।

'नरनारायणानन्द' मे अनेक छन्दो का प्रयोग दीख पडता है। प्रथम सर्ग मे उपजाति छन्द प्रयुक्त हुआ है और अन्त का श्लोक मन्दाक्रान्ता छन्द मे है। द्वितीय सर्ग मे रथोद्धता छन्द को अपनाया गया है और अन्त के दो श्लोक वसन्ततिलका छन्द मे है। तृतीय सर्ग मे

छन्द पुष्पिताग्रा तथा अन्त के छह श्लोको मे वसन्ततिलका, उपजाति और शार्दूलविक्रीडित छन्दो का प्रयोग है। चतुर्थ सर्ग मे प्रमिताक्षरा तथा अन्त के दो श्लोको मे वसन्ततिलका तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए है। पचम सर्ग मे द्रुतविलम्बित तथा सर्गान्त मे शार्दूलविक्रीडित छन्द अपनाया गया है। छठे सर्ग मे (न न र य, स भ र य) इन गणो से युक्त एक अज्ञातनामा अर्धसम वर्णिक छन्द तथा सर्गान्त मे वसन्ततिलका मे एक श्लोक है। सातवे सर्ग मे वसन्ततिलका को व्यवहृत किया गया है और सर्गान्त का श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द मे है। आठवे सर्ग मे शालिनी तथा सर्गान्त के तीन श्लोको मे शार्दूलविक्रीडित एव वसन्ततिलका का प्रयोग किया गया है। नवे सर्ग मे स्वागता और सर्गान्त मे वसन्ततिलका का प्रयोग है। दशवे सर्ग मे इन्द्रवज्रा का प्रयोग है तथा अन्तिम तीन श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द मे है। ग्यारहवाँ सर्ग वैतालीय छन्द मे है। सर्गान्त के बारह श्लोको मे वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी तथा आर्या इन चार छन्दो का प्रयोग है। बारहवाँ सर्ग अनुष्टुप् छन्द मे है। यहाँ अनुष्टुप् का प्रयोग नीति-कथन के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस सर्ग का अन्तिम श्लोक आर्या छन्द मे है। तेरहवे सर्ग मे औपछन्दसिक (स स ज ग ग, स भ र य) छन्द तथा सर्गान्त मे

---

(१) स्मरण —तदमु पवनाशनास्त्रत. पवन सम्प्रति शोषयाम्यहम्।
इति दृष्टिमदत्त कार्मुके दयिताभ्रूस्मरणात् मुमूर्च्छ च ॥

नरनारायणानन्द सर्ग ११/७

युधि कोऽपि ददर्श कुम्भिकुम्भो स्मृतकान्ताकुचविभ्रमच्युतास्त्र ।

—वही, सर्ग १३/२८

भ्रान्तिमान :—किमु रोदिषि तन्वि नन्वितस्त्यज कोपं मुखरागकारणम्।
इति भृङ्गविराविवारिजं दयितावक्त्रधिया चुचुम्ब च ॥

—वही, सर्ग ११/१३

परिवृत्ति .—दन्ती दानैर्गण्डकण्डूयनोत्थैः साक्षाद् वृक्षं सौरभाढ्यं चकार।
दूरोत्क्षिप्तै. सद्य एव प्रसूनैस्तोयै सोऽपि प्रत्युपाकारि तेन ॥

—वही, सर्ग ८/३७

ललित :—पद्मश्रीहरणव्यग्रः प्रत्यूषे पद्मबन्धुना।
वर्द्धितोऽपि स्वय पश्य कां दशा नीयते शशी ॥ —वही सर्ग १२/५४

शार्दूलविक्रीडित को अपनाया गया है। चौदहवाँ सर्ग विविध छन्दो (उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, वशस्थ, मालिनी, रथोद्धता तथा स्रग्धरा) मे निबद्ध है। इस सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग शाब्दिक चमत्कार तथा पाण्डित्य की कलाबाजी के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त ही सिद्ध होता है। पन्द्रहवे सर्ग मे वसन्ततिलका का प्रयोग तथा सर्गान्त के तीन श्लोको मे शार्दूलविक्रीडित एव स्रग्धरा का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार छन्दो पर नरनारायणानन्दकार का पूर्ण अधिकार दृष्टिगोचर होता है। वसन्ततिलका उसका प्रिय छन्द ज्ञात होता है, क्योकि इसका प्रयोग उसने सातवे और सोलहवे दो पूरे सर्गो मे किया है। कुल मिला कर 'नरनारायणानन्द' मे २१ छन्दो का प्रयोग हुआ है जिनमे एक अर्धसम वृत्त (न न र य, स भ र य), का नाम इन पक्तियो के लेखक को ज्ञात नही हो सका। शेष मे वसन्ततिलका, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्द्राक्रान्ता, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, शार्दूलविक्रीडित, प्रमिताक्षरा, द्रुतविलम्बित, शालिनी, स्वागता, वैतालीय, शिखरिणी, आर्या, अनुष्टुप्, वशस्थ, मालिनी, स्रग्धरा और औपच्छन्दसिक, इन बीस छन्दो की गणना है।

(२) श्रेणिकचरित्र (जिनप्रभसूरि)

(रचनाकाल सम्वत् १३५६ वि०)

तेरहवी-चौदहवी शताब्दी के जैन-सस्कृत-महाकाव्यो मे जिनप्रभसूरि-कृत 'श्रेणिकचरित्र' प्रमुख महाकाव्य है। इसका दूसरा नाम 'दुर्गवृत्तिद्व्याश्रय महाकाव्य' है। १८ सर्गो के इस महाकाव्य मे भगवान् महावीर के समकालीन राजा श्रेणिक के जीवनचरित का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम सात सर्ग जैनधमविद्याप्रसारकवर्ग, पालिताना से पुस्तकाकार-रूप मे प्रकाशित हो चुके है, किन्तु अवशिष्ट ग्यारह सर्ग अभी तक अमुद्रित है। 'श्रेणिकचरित' की एक हस्तलिखित कागज की प्रति जैनशालानो भण्डार, खम्भात मे विद्यमान है, जिसकी बस्ता-सख्या १४२ तथा प्रति-सख्या ६०५ है। प्रस्तुत विवेचन मे मे इन्ही दोनो प्रतियो का उपयोग किया गया है।

श्रेणिकचरित्र का महाकाव्यत्व

'श्रेणिकचरित्र' महाकाव्य की दृष्टि से सफल रचना है। महाकाव्य के परम्परागत लक्षणो के अनुसार 'श्रेणिकचरित्र' की रचना एक सर्गबद्ध काव्य के रूप मे हुई है। धीरोदात्त गुणो से युक्त महाराज श्रेणिक इसके नायक हैं। इसमे प्रधान रस शान्त है। शृगार, करुण, रौद्र, वीर आदि अन्य रस भी इसमे वर्तमान है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार 'श्रेणिकचरित्र' का कथानक लोकप्रसिद्ध श्रेणिक के चरित्र से सम्बन्धित है। चतुर्वर्ग मे से 'श्रेणिकचरित्र' का लक्ष्य धर्म एव अर्थ की प्राप्ति है। अर्थ का आशय यहाँ लौकिक अभ्युदय से है। 'श्रेणिकचरित्र' की समाप्ति ही श्रेणिक द्वारा खोये हुए हार की प्राप्ति से होती है। अतः

अर्थ की प्राप्ति भी इसका उद्देश्य है। महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार 'श्रेणिकचरित्र' का प्रारम्भ वृषभनाथ-स्मरण-रूप मगलाचरण से हुआ है :—

सिद्धो वर्णसमाम्नायः सर्वस्योपचिकीर्षता ।
येनादौ जगदे ब्राह्म्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दनः ।।१

'श्रेणिकचरित्र' के प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त मे छन्दपरिवर्तन के नियम का पालन किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे आगामी कथा की सूचना भी दी गई है। महाकाव्य के वर्ण्य-विषयो जैसे देश, नगरी, राजा, वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, वर्षा आदि ऋतु, प्रात., सन्ध्या आदि का समावेश भी इसमे हुआ है। 'श्रेणिकचरित्र' के चरितनायक श्रेणिक है। उनके नाम के आधार पर इसका नाम 'श्रेणिकचरित्र' रखा गया है। श्रेणिक-चरित्र के साथ-साथ इसमे कातन्त्र व्याकरण पर प्राप्त दुर्गसिंह-रचित वृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को भी प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार इसमे व्याकरण-पक्ष और चरित्र-पक्ष दोनो मिश्रित होने के कारण इसका दूसरा नाम 'दुर्गवृत्तिद्व्याश्रय महाकाव्य' भी है। इसमे प्रत्येक सर्ग का नाम सर्ग मे वर्णित घटना के आधार पर रखा गया है। 'श्रेणिकचरित्र' के कथानक मे क्रमिक विकास लक्षित नही होता। कथानक के प्रारम्भिक ग्यारह सर्गो मे जिनेश्वर और उनकी देशनाओ का प्राधान्य है। इन सर्गो का वातावरण धार्मिक है, किन्तु बारहवे सर्ग से कथानक की धारा एकदम मुड गई है। इन सर्गो मे सुर द्वारा प्रदत्त हार के खो जाने और उसकी खोज का वर्णन किया गया है, फलस्वरूप अन्तिम सात सर्गो मे कथानक मे धार्मिक वातावरण का अभाव है और लौकिकता की प्रवृत्ति अधिक है। कथानक के इस अप्रत्याशित मोड ने कथा को दो भागो मे विभक्त कर दिया है जो बहुत ही शिथिल सूत्र मे एक दूसरे से जुडे हुए है। इसी कारण 'श्रेणिकचरित्र' मे पचसन्धियो की योजना का निर्वाह नही दिखाई देता। इस प्रकार 'श्रेणिकचरित्र' मे पचसन्धियो की योजना के अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य सभी शास्त्रीय लक्षणो का निर्वाह हो जाता है। इसके साथ-साथ उदात्त भाषा शैली, प्रौढ कवित्वकला. गम्भीर पाण्डित्य, उच्च आदर्श एव मानव-जीवन की विविधता के दर्शन भी उसमे होते है। इन विशेषताओ के कारण 'श्रेणिकचरित्र' को प्रमुख महाकाव्यो मे स्थान देना तर्कसगत ही प्रतीत होता है। कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त मे पुष्पिका मे 'श्रेणिकचरित्र' के महाकाव्यत्व को स्वय भी स्वीकार किया है।[1]

'श्रेणिकचरित्र' मे शास्त्रीय और पौराणिक दोनो शैलियो के तत्त्व उपलब्ध होते है। एक ओर उसमे काव्यगत प्रौढता तथा व्याकरण के पाडित्य का समावेश है जो इस काव्य को शास्त्रीय महाकाव्य (शास्त्रकाव्य) घोषित करते है, तो दूसरी ओर उसमे

---

(१) उदाहरण के लिए अठारहवें सर्ग की यह पुष्पिका देखिये :—**इतिश्रीजिनप्रभसूरि-विरचिते दुर्गवृत्तिद्व्याश्रयमहाकाव्ये चतुर्मुनिर्धारित्रहारलाभवर्णनो नाम अष्टादशः सर्ग ।**

श्रेणिकचरित्र शास्त्रीय महाकाव्य है

पौराणिक शैली के तत्त्व विद्यमान हैं जो इसके पौराणिक महाकाव्य होने का समर्थन करते हैं। पौराणिक शैली के महाकाव्यो की तरह 'श्रेणिकचरित्र' मे शान्त रस को प्रधान स्थान मिला है। इसमे स्थान-स्थान पर जिनेश्वर की देशनाएँ है जिनमे जैन धर्म के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। देशनाओ मे अवान्तरकथाओ की योजना भी की गयी है। 'श्रेणिकचरित्र' मे भवान्तर-वर्णन भी उपलब्ध होते है और उनमे पूर्वभव के पाप-पुण्यो का फल उत्तर-भव मे मिलता दिखाया गया है। नवम-दशम सर्ग मे सेडुक ब्राह्मण जैनधर्मविरुद्ध कार्य करने के कारण दूसरे भव मे मेढक होता है, किन्तु मेढक-भव मे जिनेश्वर महावीर के प्रति आस्था रखने के कारण तीसरे भव मे वह सुर होता है। 'श्रेणिकचरित्र' मे अनेक अतिप्राकृत घटनाओ के वर्णन है। सुर कुष्ठी का रूप धारण करके श्रेणिक की धार्मिकता की परीक्षा लेता है। सुर के कथन के अनुसार चेल्लणा के हार का सधान करने वाले मणिकार की तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। अठारहवे सर्ग मे एक मुनि की पत्नी के शाकिनी होने का कथन है जो रात्रि मे श्मशान मे जाकर मनुष्यो के मास को खाती है। इसी सर्ग मे एक वैद्य मुनि के घावो को औषधि के लेप से तत्क्षण ठीक कर देता है। जिनेश्वर महावीर भूत-भविष्य की घटनाएँ बता देते है। इसी प्रकार अन्य अनेक अप्राकृत तत्त्वो का समावेश 'श्रेणिकचरित्र' मे है। इन सब पौराणिक विशेषताओ के होते हुए भी 'श्रेणिकचरित्र' को पौराणिक महाकाव्य नही माना जा सकता, क्योकि उसके प्रत्येक श्लोक मे कोई-न-कोई व्याकरण का सिद्ध प्रयोग अवश्य दिखाया गया है। अत शास्त्रीयता की ओर अधिक प्रवृत्ति होने के कारण 'श्रेणिकचरित्र' की गणना शास्त्रीय महाकाव्यो मे करना ही उचित प्रतीत होता है।

'श्रेणिकचरित्र' के रचयिता जिनप्रभसूरि श्रीजिनसिंहसूरि के शिष्य थे। जिनसिंहसूरि लघुखरतरगच्छ के स्थापक तथा चन्द्रगच्छीय जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

जिनप्रभसूरि अनेक ग्रन्थो के रचयिता बताये जाते हैं। वे प्रसिद्ध टीकाकार भी थे। उन्होने 'भयहरस्तोत्र' की तथा आचार्य नन्दिषेण-रचित 'अजितशान्तिस्तव' पर 'सुबोधक' टीका की रचना की। स्तोत्र-काव्य रचने की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक थी। कहा जाता है कि प्रतिदिन एक नवीन स्तोत्र की रचना करके ही भोजन करने का उनका नियम था। उनके द्वारा रचित स्तोत्रो मे पचपरमेष्ठिस्तव, सिद्धान्तागमस्तव, तीर्थकल्प आदि स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध हैं। जिनप्रभसूरि के पास अनेक मुनि विद्याध्ययन करते थे। 'न्यायकन्दलिपजिका' के कर्ता रत्नशेखरसूरि ने उनके समीप ही विद्याभ्यास किया था। तत्कालीन भारत का बादशाह मुहम्मद तुगलक जिनप्रभसूरि का बहुत सम्मान करता था। श्री लालचन्द गान्धी ने अपने ग्रन्थ 'जिनप्रभसूरि अने सुलतान महम्मद' मे जिनप्रभसूरि का विस्तृत जीवनचरित्र दिया है।

जिनप्रभसूरि ने 'श्रेणिकचरित्र' की रचना स० १३५६ वि० मे की, जैसा कि प्रशस्ति के इस श्लोक से स्पष्ट होता है—

स्कन्दास्येषुकृशानुशीतगुमिते संवत्सरे वैक्रमे
बालेन्दुप्रतिपत्तिथौ विषगते सम्पूर्णमेतच्छनौ ।
आदर्शं व्यधितो दयाकरमुनिः काव्यप्रियोऽस्यादिमम्
प्रारम्भेऽस्य निमित्तभावमभजत्तस्यैव चाभ्यर्थनात् ॥

वहाँ एक सरोवर के पानी को पीने से वह आरोग्यलाभ करता है। अब वह पुन कौशाम्बी आकर अपने पुत्रो को कुष्ठपीडित देखता है। जनता उसे अपने पुत्रो को कुष्ठी बनाने के कृत्य पर धिक्कारती है, फलस्वरूप वह (सेडुक) कौशाम्बी को त्याग कर राजगृह चला आता है।

दसवे (सेडुकदर्दु रसुरभूयवचनचतुष्टयाभिप्रायवर्णन) सर्ग मे जिनेश्वर आगे कहते है कि पिपासा के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। मर कर वह दुर्ग की खाई मे दर्दु र होता है। राजगृह मे मेरा (जिनेश्वर का) आगमन सुन कर वह भी समवसरण की ओर चल देता है, किन्तु तुम्हारे (श्रेणिक के) अश्व के पैरो से कुचल कर मर जाता है और सुर होता है। इन्द्रसभा मे इन्द्र के मुख से तुम्हारी (श्रेणिक की) धार्मिकता की प्रशसा सुन कर वह कुष्ठी का रूप धारण करके समवसरण मे आता है। वह मुझसे (जिनेश्वर से) 'म्रियस्व' इसलिए कहता है कि मै अब इस ससार मे क्यो हूँ? तुमसे (श्रेणिक से) 'जीव' इसलिए कहता है कि तुम्हे जीवित रहने पर ही सुख है मरने पर नरक। वह अभयकुमार से 'चाहे जिओ चाहे मरो' इसलिए कहता है कि उसे जीवित रहने पर भी सुख है और मरने पर भी स्वर्गसुख। उसके कालशौकरि (कसाई) से 'न मरो न जिओ' कहने का आशय यह है कि जीव-हिंसा करने के कारण न उसे जीवित रहने मे सुख है और न नरक मे जाने के कारण मरने पर। अपने नरक मे जाने की बात सुन कर श्रेणिक व्याकुल हो जाता है। जिनेश्वर उसे नरक के बाद तुम पद्मनाभ जिन होगे, यह कह कर सान्त्वना प्रदान करते है। इसके बाद श्रेणिक राजभवन लौटता है।

ग्यारहवे (सम्यक्त्वपरीक्षाहारगोलकवर्णन) सर्ग मे राजभवन लौटते समय श्रेणिक एक मछुए को कम्बल देकर मछलियो की प्राणरक्षा करता है। यह मछुआ और कोई नही है, सुर ही है। इस प्रकार सम्यक्त्व की अन्य परीक्षाओ मे भी श्रेणिक के उत्तीर्ण होने पर सुर प्रकट होकर श्रेणिक की भूरि-भूरि प्रशसा करता है और उसे एक गोलक तथा एक अमूल्य हार प्रदान करता है। साथ ही वह यह भी बताता है कि हार के टूटने पर उसके पुन सधान करने वाले व्यक्ति की तत्क्षण मृत्यु हो जाएगी।

बारहवे (सुलसोपाख्यानवर्णन) सर्ग मे कालशौकरि कसाई जीवन भर हिंसा करने के कारण नरक मे जाता है। लोगो के आग्रह करने पर भी उसका पुत्र सुलस अपने पिता का व्यवसाय ग्रहण नही करता। परिजनो के यह कहने पर कि हम तुम्हारी नरकादि विपत्तियो मे भागी होकर दु.ख बाँट लेगे, सुलस अपना पैर काट लेता है और अपनी पीडा को बाँटने के लिए परिजनो से कहता है। सभी व्यक्ति चुप हो जाते है और सुलस धार्मिक जीवन व्यतीत करता है।

तेरहवे (चेल्लणानुनय) सर्ग मे राजा श्रेणिक सुर द्वारा प्राप्त हार चेल्लणा को और गोल्लक नन्दा को देता है। गोल्लक के फूटने पर उनमे से दो सुन्दर कुण्डल निकलते है। चेल्लणा उन कुण्डलो को पाने के लिए राजा से बहुत आग्रह करती है राजा के बहुत अनुनय-विनय करने पर बडी कठिनता से वह शान्त होती है। चौदहवे (राजचर्या-

वर्णन) सर्ग मे राजा श्रेणिक की दिनचर्या का वर्णन है। पन्द्रहवें (हारापहार) सर्ग मे चेल्लणा का हार टूटने पर राजा उसके सधाता को एक लक्ष दीनार देने की घोषणा करता है। अन्त मे एक मणिकार आधा धन पहले लेकर हार-सधान कर देता है। हार-सधान होते ही वह मर जाता है। राजा उसके पुत्रो को शेष अर्ध धन नही देता। इधर वह मणिकार उसी नगर मे वानर होता है। वहाँ अपने पुत्रो को देख कर उसे जाति-स्मरण हो जाता है और वह मूच्छित हो जाता है। सावधान होने पर वह पृथ्वी पर लिख कर अपने को उनका पिता बताता है। पुत्रो से यह जान कर कि राजा ने शेष आधा धन नही दिया वह क्रोध मे भर जाता है और अवसर पाकर हार चुरा लेता है तथा अपने पुत्रो को लाकर दे देता है।

सोलहवे (हारान्वेषण) सर्ग मे हार के खो जाने पर राजा अभयकुमार को एक सप्ताह के भीतर हार खोज कर लाने का आदेश देता है। सत्रहवे (कण्ठहारसचारण) सर्ग मे मणिकार के पुत्र हार को आपत्ति का चिह्न समझ कर उसे वानर को लौटा देते है। वानर उसे नगर के बाह्योद्यान मे कायोत्सर्ग मे स्थित सुस्थिताचार्य के कण्ठ मे डाल देता है। इधर छह दिन बीत जाने पर भी हार के न मिलने पर अभय सातवाँ दिन धर्म-कर्म मे बिताने का निश्चय करके सुस्थित मुनि के समीप आ जाता है।

अठारहवे (चतुर्मुनिचरित्रहारलाभवर्णन) सर्ग मे सुस्थिताचार्य के चार शिष्य गुरु के कण्ठ मे हार देख कर 'भयम्' कहते है। अभय के पूछने पर वे अपने विगत जीवन की कथा कहते है। अब अभय की दृष्टि भी सुस्थिताचार्य के कण्ठ मे पडे हुए हार की ओर जाती है। अभय द्वारा आचार्य सुस्थित से हार लेकर पिता को सौपने के साथ 'श्रेणिकचरित्र' के कथानक की समाप्ति होती है।

'श्रेणिकचरित्र' के कथानक मे व्यवस्था और धारावाहिकता की कमी दृष्टिगत होती है। जैसा कि विगत पृष्ठो मे कहा गया है कि 'श्रेणिकचरित्र' का कथानक स्पष्टतया दो भागो मे विभक्त है। प्रथम ग्यारह सर्गो मे श्रेणिक की धार्मिकता और जिनेश्वर की देशनाओ का वर्णन है। बाद के सर्गो मे हार के खोने और उसकी खोज की कथा प्रारम्भ हो गई है। कथानक के ये दोनो भाग अत्यन्त शिथिल सूत्र मे आबद्ध है। इसके अतिरिक्त 'श्रेणिकचरित्र' के प्रथम पाँच सर्गो मे कथा की गति बहुत मन्द है। बाद के सर्गो मे कथा कुछ द्रुत गति से आगे बढती है। कथानक के कुछ अश बिलकुल अनावश्यक से प्रतीत होते है। उदाहरणार्थ बारहवे सर्ग मे सुलसोपाख्यान है जो कथानक के किसी अन्य प्रसग से कार्य-कारण-शृखला मे बिलकुल बँधा हुआ नही है। यदि इस उपाख्यान को कथा मे रखना ही था तो उसे कार्य-कारण-शृखला से आबद्ध करके ही रखना चाहिए था। इन अवरोधो के होते हुए भी 'श्रेणिकचरित्र' के कथानक को पूर्णत. सदोष नही कहा जा सकता, क्योकि शास्त्रीय महाकाव्यो मे एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो के जीवन की कुछ चुनी हुई घटनाओ का वर्णन रहता है। अत. उनके कथानक मे कार्यान्विति या घटनाओ की सुशृखलता विद्यमान रहती है, जबकि पौराणिक महाकाव्यो मे एक व्यक्ति से

सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाएँ दे दी जाती है, फलस्वरूप उनमे कथानक बिखर जाता है। 'श्रेणिकचरित्र' के बिखरे हुए कथानक का भी यही रहस्य है।

'श्रेणिकचरित्र' मे पात्रो के चरित्राङ्कन मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। वैसे तो काव्य मे श्रेणिक, नन्दा, चेल्लणा, अभयकुमार, कुष्ठी, जिनेश्वर महावीर आदि अनेक पात्र हैं, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से श्रेणिक, अभयकुमार, कुष्ठी और जिनेश्वर ही विशेष महत्त्व रखते है।

चरित्र-चित्रण
श्रेणिक

श्रेणिक मगध के राजा है। यद्यपि काव्यकार ने उन्हे काव्य के नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया है, किन्तु अन्तिम सर्गों मे अभयकुमार के व्यक्तित्व के समक्ष श्रेणिक का व्यक्तित्व दब जाता है। श्रेणिक शोभा और गुणो के आगार हैं। साथ ही वे बडे दानी है। निम्नोद्धृत पक्तियो मे कवि ने उनकी दानशौण्डता के आगे पूर्ववर्ती और परवर्ती राजाओ की दानकीर्ति को मलिन चित्रित करके उनकी दानवीरता का उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किया है—

> पूर्वा पराश्च दातार नृपा पूर्वे परे च ये।
> उभयेऽप्यमुना दानकीर्तिभ्यां ते तिरस्कृता ॥[1]

श्रेणिक मे धर्मभावना का प्रामुख्य है। जब वे द्वारपाल के मुख से वीर जिनेश्वर के आगमन की बात सुनते है तो उनका अ ग-अ ग पुलकित हो जाता है:—

> सोऽङ्गमङ्गमभिव्यजन् पुलकं स्फारतां पुन
> बभार प्रतिचेतो नु नेत्रं परिमनोरथान् ॥
> वर्णं वर्णं प्रति प्रीत सोऽभूत्परिपद पदम्।
> वाक्य वाक्यं चानु तस्य वच सुप्रियशंसिन ॥[2]

श्रेणिक की यह प्रसन्नता उनकी जिनेश्वर के प्रति अतुलित भक्ति की व्यंजना करती है। इस सूचना को सुनते ही वे परिजन-पुरजन-सहित वीरस्वामी के दर्शनो के लिए चल देते है और वहाँ पहुँच कर एकाग्र मन से उनकी वन्दना करते हैं और धर्म-देशना सुनते हैं। जिनेन्द्र के प्रति श्रेणिक के मन मे अतीव श्रद्धा है। जब वे कुष्ठी को समवसरण मे आकर पूय आदि से जिनेन्द्र की पूजा करते देखते है तो वे इसे जिनेन्द्र की अवज्ञा समझ कर क्रुद्ध होकर कुष्ठी को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं, क्योकि उनकी दृष्टि मे जिनेन्द्र की अवज्ञा करने वाला और अवज्ञा को सहन करने वाला, दोनो दोषी है—

> एकस्तीर्थकरेऽवज्ञामाचचार प्रमादत ।
> शक्तोऽप्यसासह्यतान्यस्तौ द्वावप्याटतुर्भवम्।[3]

तीर्थंकर के सामने ही कुष्ठी और अधिक मर्यादा का उल्लघन करने लगता है।

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग १, श्लोक ११३ (२) वही सर्ग ४, श्लोक २–३
(३) वही सर्ग ७, श्लोक १६

यद्यपि देवता उसकी बातों पर ध्यान नही देते, किन्तु श्रेणिक की कर्तव्य-बुद्धि जागृत है। वे कहते है:—

मा प्रश्नयन्तु त चैते निग्रहीतास्मि खल्वमुम् ।
इमे हि सुषुपुर्भक्तौ भर्तुर्नो सुप्यते मया ।।[1]

जिनेश्वर से यह जानने पर कि वह (श्रेणिक) नरक मे जाएगा, श्रेणिक व्याकुल हो जाते हैं। जिनेश्वर की देशना सुनने के बाद वे पक्के जैन बन जाते हैं और अहिंसा मे पूर्ण आस्था रखते है। वे मछली पकडते हुए मछुए को कम्बल आदि देकर मछलियो की प्राण-रक्षा करते है।

श्रेणिक को सघ की प्रतिष्ठा का बडा ध्यान है। एक साध्वी को गर्भवती देख कर वे उसकी प्रसूति की गुप्त व्यवस्था करते है जिससे सघ की बदनामी न हो। उनके इन्ही गुणो के कारण देवसभा मे इन्द्र तक उनकी प्रशसा करते हैं। वे वस्तुत. इसी प्रशसा के अधिकारी है। सुर द्वारा की गई परीक्षा मे भी वे खरे निकलते है।

श्रेणिक के चरित्र मे एक दुर्बलता भी दृष्टिगोचर होती है। हार के टूट जाने पर वे उसके सधाता को एक लक्ष स्वर्णमुद्राएँ देने की घोषणा करते है। एतदर्थ वे मणिकार को आधा धन पूर्व ही दे देते है, किन्तु हार-सधान हो जाने पर वे शेष आधा धन मणिकार के पुत्रो को नही देते। श्रेणिक जैसे धार्मिक के लिए धन के लोभ से अपने वचनो से हट जाना उचित नही कहा जा सकता। इस एक दोष को छोड कर श्रेणिक मे वे सभी गुण विद्यमान है जो एक नायक मे होने चाहिए।

अभयकुमार श्रेणिक और नन्दा का पुत्र है। उसकी बुद्धिमता की कवि ने अत्यन्त प्रशसा की है और उसकी बुद्धि को कामधेनु बताया है—

त्रैलोक्ये यस्य विख्याता बुद्धय कामधेनव ।[2]

अभयकुमार

अभयकुमार के समस्त गुणो का समावेश इन पक्तियो मे हो जाता है.—

त्राता चतुर्णां वर्णानां षण्णां जेतान्तरद्विषाम्
रोद्धाऽतिचतुराश्वानां सोऽष्टानां कर्मणां च वित् ।
कत्यस्य तुल्या धैर्येणाऽनेन सप्ताद्रयो जिता. ।
मुक्तेर्नियां जिनाग्रण्यां रेमिरेऽस्येन्द्रियाणि षट् ।।[3]

उसकी चतुरता के कारण ही, चेल्लणा के हार को खोजने का कार्य उसे सौपा जाता है। वह अपने कार्य मे सफल होता है और हार लाकर पिता को देता है।

अभय धार्मिक है। जब छह दिन तक हार का पता उसे नही लगता तो वह सातवाँ दिन धर्म-कर्म मे बिताने का निश्चय करता है। अपने पिता श्रेणिक के साथ वह जिनेश्वर के दर्शन के लिए भी जाता है।

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ७, श्लोक ७९ (२) वही, सर्ग २, श्लोक १३
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ३०-३२

महावीर

महावीर जैनो के चौबीसवे तीर्थंकर हैं। वे त्रिशला के पुत्र है, अत उन्हे त्रैशलेय कह कर भी पुकारा जाता है। वे अति सुन्दर है। वनपाल राजा से उनके व्यक्तित्व का वर्णन करता हुआ उनके सौन्दर्य पर भी इन शब्दो मे प्रकाश डालता है —

यस्य रूप स्फुटं शक्य चित्रलिग्भिर्न लेखितुम्
दैव्यप्यलं न वाक् स्तोतुमिच्छेद्विद्वत्सु कस्य वाक् ॥[1]

वीर तीर्थंकर षट्भाषाओ मे निपुण है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्यो का वर्ग सदैव उनके पास रहता है —

निपुणः षट्सु भाषासु तत्त्वप्राड्भिरुपास्यते ।
श्रुतोत्फुल्लाब्जमधुलिट् शिष्यौघो यस्य पुण्यसृट् ॥[2]

महावीरस्वामी ने काम, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त कर ली हे और इमी कारण वे मुक्ति का मार्ग दिखाने मे सफल हुए हैः—

अनेन जिग्यिरे भावशत्रवो विश्वदुर्जया ।
अथो एनेन लोकानां मुक्तिमार्ग प्रदर्शित ॥[3]

मुक्ति-मार्ग दिखलाने के कारण ही देव, दैत्य, मानव, किन्नर, विद्याधर आदि उनकी सेवा करते है। उनका प्रभाव देशव्यापी है। जहाँ वे जाते हैं वहाँ के स्त्री-पुरुष उनके दर्शनो के लिए उमड पडते है। राजगृह मे उनके आने पर सम्पूर्ण पुरजन उनकी देशना सुनने के लिए चल पडते हैं।

महावीर प्रभु बडे विद्वान् और कुशल उपदेशक हैं। वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता हैं। वे श्रेणिक की जिज्ञासा पर कुष्ठी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुना देते हैं। वे श्रेणिक के भावी नरक-गमन और बाद मे पद्मनाभ जिन होने की भविष्यवाणी भी करते है।

कुष्ठी

कुष्ठी का चरित्र पेटू और भोजनभट्ट ब्राह्मणो पर तीखा व्यग्य है। प्रथम भव मे वह एक निर्धन ब्राह्मण है जो अपनी ब्राह्मणी के निर्देशो पर चलता है। ब्राह्मणी की बुद्धिमता से वह राज्याश्रय प्राप्त करता है और बाद मे वर्षाकाल मे लौटते हुए चम्पेश पर आक्रमण करने की सलाह देकर वह शतानीक नृप का प्रिय बन जाता है और प्रतिदिन भोजन एव एक स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त करता है।

वह भोजनभट्ट लोभी ब्राह्मण है जो दक्षिणा के लोभ से वमन करके दूसरे स्थानो पर निमन्त्रण मे जाता है। अतिभोजन के कारण उसे कुष्ठ हो जाता है। कुष्ठी होने पर जब वह पुत्रो द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है तो वह पुत्रो से भी प्रतिशोध लेता

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ३, श्लोक ६८ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक ५३
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक ४१

है। यहाँ उसकी नीचता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। नीच ब्राह्मण अपने ही पुत्रों को कुष्ठी बना कर वन मे चला जाता है। वहाँ वह बबूल, हरीतक, विभीतक, निम्ब आदि के वृक्षो से परिपूर्ण तट वाले सर का जल पीकर स्वस्थ हो जाता है। अब वह अपने पुत्रों को उपालम्भ देने कौशाम्बी जाता है, किन्तु लोगो से धिक्कृत होकर पुनः राजगृह आ जाता है जहाँ वह प्यास से तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ता है।

ब्राह्मण-भव के पापों के कारण द्वितीय भव मे वह राजगृह की खाई मे दर्दुर होता है। इस भव मे उसका चरित्र अच्छा है। कुएँ पर जल भरने वाली स्त्रियो के मुख से जिनेश्वर का आगमन सुन कर वह भी जिनेश्वर के समवसरण की ओर चल देता है, किन्तु मार्ग मे श्रेणिक के अश्व के खुर से कुचल कर मर जाता है। क्षण भर के लिए जैनी भावना के उदय होने से तृतीय भव में वह सुर बनता है। इस भव मे वह श्रेणिक की सम्यक्त्व-परीक्षा लेता है और उसे परीक्षा मे सफल देख कर एक हार एव एक गोल्लक देकर चला जाता है।

नन्दा और चेल्लणा दोनों मगधराज की पत्नियाँ हैं और दोनो ही अतीव रूपवती है। दोनों को पति का प्रेम प्राप्त है और दोनों ही मानिनी हैं। सुर द्वारा प्राप्त गोल्लक

नन्दा और चेल्लणा

जब राजा नन्दा को देता है तो वह गोल्लक को भूमि पर फेंक कर कहती है कि क्या आपने मुझे लडकी समझ रखा है जो गोली देकर बहलाते हैं। इसी प्रकार चेल्लणा जब गोल्लक से कर्णाभूषण निकलते देखती है तो उन्हे प्राप्त करने के लिए मान धारण करती है। राजा को उसे मनाने के लिए बडा अनुनय-विनय करना पडता है।

अन्य पात्र

इनके अतिरिक्त आचार्य सुस्थित, चार मुनि तथा वानर, इन पात्रो का समावेश भी काव्य मे हुआ है, किन्तु उनके चरित्र का विकास काव्य मे नही दीख पडता है।

'श्रेणिकचरित्र' मे व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो की ओर अधिक ध्यान रहने से प्रकृतिचित्रण की ओर यद्यपि कवि अपेक्षित ध्यान नही दे सका है, फिर भी उसमे

प्रकृतिचित्रण

प्रकृति को विविध रूपो मे चित्रित किया गया है। प्रकृति के सहज-स्वाभाविक और सजीव चित्र प्रस्तुत करने मे जिनप्रभसूरि बहुत कुशल हैं। उन्होने प्रकृति-वर्णन मे पिटे-पिटाये मार्ग का अनुसरण नही किया, अपितु प्रकृति को नये ढग से और नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न करके अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है। वसन्त ऋतु मे कृषको मे एक नई उमग और स्फूर्ति आ जाती है जो आज भी होली के दिनो मे गाने-बजाने के रूप मे व्यक्त होती है। कवि की दृष्टि इस ओर जाती है और वह किसानो को चर्चरी राग गाने मे तन्मय देखता है:—

> दृढाङ्गो धावितुं शक्तः समेन विषमेण च।
> धान्यं क्रेता द्विद्रोणेन द्रम्मेणाति सुभक्षितः॥

× × × × × × × ×

गातुं ग्रामजनो रम्य प्रवृत्तश्चात्र चर्च्चरी: ।।[१]

इसी प्रकार वर्षा ऋतु मे कवि की दृष्टि वालको को घास छीलते हुए, जामुन के वृक्ष के नीचे पकी जामुन बीनते हुए और पृथ्वी पर उगे हुए विविध घासाकुरो के नाम एक दूसरे से पूछते हुए देखती है:—

प्रजा गा दोग्धि सस्यं वार्याचते चातकोऽम्बुदम् ।
यत्र जम्बूर्जन· पक्वफलान्यवचिनोति च ।।[२]

निम्न पक्तियो मे जल के निर्मल होने, पद्मवन मे हसो के क्रीडा करने, वृषभ और क्रौच पक्षियो के मदमत्त होने, इक्षुदण्डो के मधुर रस से युक्त होने तथा सप्तच्छद के विकसित होने का वर्णन करके शरद् ऋतु का यथातथ्य चित्र उपस्थित किया गया है —

हंसोऽधिशेते यत्पद्मं पयोऽध्यास्ते यदच्छताम् ।
महोक्षैः सह यत् क्रौंचान्मदश्रीरधितिष्ठति ।।
इक्षूनभिनिविष्टा यद्रस काष्ठान्यनूषिवान् ।
सप्तच्छदानध्यवात्सीत्पुष्पश्रीर्यदतर्किता ।।[३]

इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन प्रकृति का स्वाभाविक चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है —

शिरीषे कुरुते पुष्पं या स्मेरयति मल्लिका ।
ग्रीष्मश्रियं साध्वपश्य तां दृशोररति घ्नतीम् ।।
द्रुमूलान्युपसर्पद्भिर्गिरिनिर्भरशीकरै ।
धारागृहसुखं तत्रायत्नसिद्धिमनारतम् ।।[४]

शिशिर ऋतु मे तुषारपात से अधिकाश पुष्प मुरझा जाते है, किन्तु कुन्दपुष्प नही मुरझाता । अत· भ्रमरसमूह उसी के आस-पास मँडराता रहता है । प्रकृति की यह सहज स्थिति इन पक्तियो मे विलसित हो उठी है —

पुष्पान्तराणि सन्त्यज्य हिमक्लिष्टानि षट्पदा ।
मधूनि विकचे कुन्दपात्रे भूधृते भुंजते ।।[५]

इन वर्णनो मे स्वाभाविक सौन्दर्य और सजीवता है । स्वाभाविक सौन्दर्यबोध की यह प्रवृत्ति 'श्रेणिकचरित्र' के कवि की प्रमुख विशेषता है ।

जिनप्रभसूरि ने उद्दीपन-रूप मे भी प्रकृति को उपस्थित किया है । शिशिर ऋतु की यह प्रकृति स्त्री-पुरुषो मे सहज कामभावना का सचार कर रही है·—

रत्यै कुपित्वा विश्लिष्ट इवेदानीं स्मर शरान् ।
रतिप्रियेषु द्वन्द्वेषु मृदुना धनुषाऽक्षिपत् ।।[६]

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ३, श्लोक ९९-१००
(२) वही, सर्ग ३, श्लोक १०४-१०५
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक १०९-११०
(४) वही, सर्ग ३, श्लोक १०२-१०३
(५) वही, सर्ग ३, श्लोक ११५
(६) वही, सर्ग ३, श्लोक ११४

इसी प्रकार वसन्त ऋतु की मादक प्रकृति मृगाक्षियों मे प्रिय-संगम की अभिलाषा उत्पन्न कर देती है और उन्हे मानत्याग करने को बाध्य कर देती है:—

पिकाकूजितमाकर्ण्य त्यक्तमानाग्रहा मधौ ।
मृगाक्षी श्लाघते पत्ये तिष्ठते शपते द्रुते ।।[1]

'श्रेणिकचरित्र' मे यत्र-तत्र प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है। कवि ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं से उद्वेलित चित्रित किया है। शरद् ऋतु के इस वर्णन मे पद्मा (पद्मश्री) को स्त्री, चन्द्र को पुरुष तथा चन्द्रिका को चन्द्रपत्नी के रूप मे चित्रित करके पद्मा और चन्द्र को ईर्ष्या-द्वेष और स्पर्धा की भावना से एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के प्रयत्न मे लीन दिखाया गया है:—

पद्मदण्डितचत्पद्मा यत्प्राक् चन्द्ररुचोऽजयत् ।
युतौ तस्याङ्गनास्यस्य हरते स्वान्तिकं श्रियम् ।।[2]

इसी प्रकार वसन्तवर्णन मे वसन्त को राजा और वन-द्रुमो को प्रजा के रूप मे चित्रित किया गया है:—

नवस्य राज्ञ. सुरभेर्व्यावृतस्य जगज्जये ।
पुष्पवर्षच्छलाद्दण्डं ददतीव वने द्रुमा. ।।[3]

उपमान-रूप मे प्राकृतिक तत्वो की योजना करके आलंकारिक-रूप मे भी प्रकृति को उपस्थित करने की चेष्टा 'श्रेणिकचरित्र' मे की गई है। जैसे:—

संघ एष वृजिनाब्जिवनप्लोषणेऽव्यपरहैमनोऽनिल: ।
पूर्ववार्षिक इवाम्बुदो महान् कस्य नावहति लोचनोत्सवम् ।।[4]

यहाँ सघ को हैमवात तथा पूर्ववार्षिक मेघ प्राकृतिक उपमान प्रदान किये गये हैं। 'श्रेणिकचरित्र' मे जिनप्रभसूरि ने प्रकृति को सूक्ष्म विश्लेषण की दृष्टि से देखा है, फलस्वरूप उसमे स्वाभाविक सौन्दर्य विद्यमान है। साथ-ही-साथ 'श्रेणिकचरित्र' की प्रकृति उद्दीपन की भावना से भी प्रभावित है और उसमे मानव-जीवन के आरोप भी पाये जाते हैं, किन्तु ये स्थल बहुत कम है। 'श्रेणिकचरित्र' में अधिकतर प्रकृति के सहज रंग-रूपों का ही चित्रण हुआ है।

सौन्दर्य-वर्णन

महाकाव्य की परम्परा के अनुसार 'श्रेणिकचरित्र' मे भी जिनप्रभसूरि ने प्रमुख पात्रो का सौन्दर्य-वर्णन किया है। स्त्री-पात्रों मे चेल्लणा और सुनन्दा तथा पुरुष-पात्रो मे श्रेणिक एव अभय के सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत किये गये है। किन्तु, ये चित्र न तो कलात्मक दृष्टि से और न स्वाभाविक सौन्दर्य की दृष्टि से ही सफल हो पाये है। कवि का वैयाकरण-स्वरूप यहाँ इतना प्रबल हो गया है कि उक्त समस्त सौन्दर्य-चित्र रूक्ष, अनाकर्षक और असुन्दर हो गये है।

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ३, श्लोक ६२ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक १०८
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक ६५ (४) वही, सर्ग ५, श्लोक १७२

सुनन्दा के देव्युपम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए अम्ब, भारती, अम्बिका आदि से पूछा जा रहा है कि तुममे से यह (सुनन्दा) कौन है ?

अम्ब भारत्यम्बिके श्रीरवव राज्याधिदेवते ।
अम्बाडेऽद्रिसुतेऽम्बाले शच्येषा कतमा नु व ॥[१]

यहाँ आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के सबोधन के एकवचन के रूपो की झडी लगा दी गई है। इसी प्रकार चेल्लणा के इस सौन्दर्य-वर्णन मे उसके सम्मुख रति को 'कुम्भपदीनिभा' कह कर उसके अतिशय सौन्दर्य की जो अभिव्यक्ति की गई है उसमे सौन्दर्य का पूर्ण अभाव है —

तस्या. सुपद्या पुरतो रति कुम्भपदीनिभा ।
आबभौ परिपूर्णा या गुणै दध्नोऽधिकोज्ज्वलै ॥[२]

पुरुष-सौन्दर्य-वर्णन मे शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण न करके गुणो का वर्णन किया गया है, किन्तु इनमे भी कवि का वैयाकरण-रूप मुखर हो गया है। उदाहरण के लिए अभय के अपरिमित शौर्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है —

स्तृधातोरिव तस्यासीद् वृत्तिराच्छादनार्थिका ।
परकीयापराधानां यशसा चारित्रसहृते· ॥
पुत्रदारादि हित्वारिवारस्तस्योदयेऽनशत् ।
क्रोष्टा, क्रोष्ट्री, शिशुक्रोष्टून् मुक्त्वा ह्यर्कोदये द्रवेत् ॥[३]

यहाँ प्रथम श्लोक मे स्तृ धातु आच्छादनार्थक है, यह बताया गया है और द्वितीय श्लोक मे क्रोष्टु शब्द के रूप प्रदर्शित किये गये है। 'श्रेणिकचरित्र' के सौन्दर्य-वर्णन मे उदात्त कल्पना और चित्रमयता का पूर्णतया अभाव दृष्टिगत होता है जिसका कारण स्पष्ट ही व्याकरण के प्रयोगो का अनिवार्य सन्निवेश है।

'श्रेणिकचरित्र' शास्त्रकाव्य है और उसका ध्येय व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को प्रदर्शित करना है, तथापि उसमे ग्रन्थकार ने अपने धर्म के नियमो और सिद्धान्तो का विवेचन भी किया है। 'श्रेणिकचरित्र' के पाँचवे और छठे सर्ग मे कवि का धार्मिक आग्रह प्रबल हो उठा है। यहाँ उसने उन कवियो की गर्हणा की है जो जिनेश्वर-चरित से सम्बन्धित काव्य की रचना न करके प्राकृतजनगुणगान के लिए काव्य-रचना करते है। महावीर तीर्थंकर की स्तुति करते हुए श्रेणिक कहता है —

धार्मिक तत्त्व एव विविध-ज्ञान

ब्रह्मबन्धुदारिकाया श्रोत्रियो वा महात्मनाम् ।
गर्ह्यो महाकविरपि स्यात्त्वदन्यस्तुतौ रत ॥[४]

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग २, श्लोक १
(२) वही, सर्ग २, श्लोक ६३
(३) वही, सर्ग २, श्लोक १८, २२
(४) वही, सर्ग ५, श्लोक ६३

सम्पूर्ण पाँचवे सर्ग मे तीर्थंकर की स्तुति है। इसमे तीर्थंकर-स्तुति का फल बताया गया है और जैनधर्म के सामने अन्य धर्मों की निकृष्टता सिद्ध की गयी है। जिनेश्वर-सेवा का लौकिक फल इन पक्तियो मे बताया गया है: —

> यो जीवस्तव सेवासु न तीर्थध्वाङ्क्षतां व्रजेत् ।
> तस्य न लुप्यते वीर्यं छाया शुष्कौषधेरिव ॥
> श्रितस्त्वां तेजसात्यर्को वाश्वीयेभचमूवृत. ।
> परियुद्धाद्विष· कर्तुं क्षमो निर्भीर्भवेन्नरः ॥[1]

कवि के अनुसार जो व्यक्ति प्रात काल ही जिनेन्द्र का नामस्मरण करता है वह मोह को जीत लेता है:—

> पूर्वाह्णगेयं सामेव प्रातस्त्वन्नाम यः पठेत् ।
> मासदेयमृण निस्वमिव मोहं स बाधते ॥[2]

जिन-सेवी व्यक्ति निर्भय हो जाता है। ससार की बडी-से-बड़ी शक्ति उसका बाल-बाँका नही कर सकती। उसके सामने गज, अश्व, सिंह और शत्रु-समूह आदि यूका, लिक्षा, बदरीफल, आमलक (आँवला) आदि की तरह नगण्य है·—

> यूकालिक्षं तु हस्त्यश्वं बदरामलकं रिपून् ।
> त्वद्ध्याता मन्यते स्थाम्ना मृगेन्द्रं रुरुरोहितम् ॥[3]

निम्नोद्धृत पक्तियो मे जैन-आगम को सुवर्णकुम्भ और जैनेतर आगमो को लौहकुम्भ बता कर अन्य धर्मो की निकृष्टता और जैन धर्म की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है —

> यावत्कांचनकुम्भायस्कुम्भयोस्तावदन्तरम् ।
> त्वदागमान्यागमयोर्भुवनाम्भोजभास्कर ॥[4]

छठे सर्ग मे जिनार्चा को धन, गुण, यश तथा प्रताप को देने वाली तथा बाह्याभ्यन्तर शत्रुओ को नाश करने वाली बताया गया है —

> स दरिद्राति न क्वापि धारयत्यर्थसम्पदः ।
> गुणान् धारयते धत्ते सन्दधाति यशः शुचि ॥
> पचतेऽरीन् प्रतापेन बाह्यान् पचति चान्तरान् ।
> यो जिनान् यजते द्रव्यैर्यो वा यजति भावत ॥[5]

इसी सर्ग मे महावीर तीर्थंकर समवसरण मे धर्म की व्याख्या करते हुए उसके श्राद्धधर्म तथा साधु-धर्म, इन दोनो भेदो पर प्रकाश डालते है। इसी अवसर पर वे अहिंसा, सूनृत, अस्तेय, शील, अपरिग्रह इन पच-व्रतो का विवेचन करते है। महावीर तीर्थंकर

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ५ श्लोक १३, १७ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक १४
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ४२ (४) वही, सर्ग ५, श्लोक ७७
(५) वही, सर्ग ६, श्लोक १६८-१६९

ने अहिंसा को अभीष्ट फल देने वाला कहा है। अहिंसा पुत्र के इच्छुक व्यक्तियो को पुत्र, भोग के अभिलाषियो को भोग, स्वर्ग की कामना करने वालो को स्वर्ग और मोक्ष की इच्छा करने वालो को मोक्ष प्रदान करती है—

पुत्रीयतां स्यात्पुत्राय भुक्तये भोगमिच्छताम् ।
स्वरिच्छतां स्वर्गकर मुक्तिद मोक्षकाम्यताम् ।
अहिंसाव्रतमासाद्य किमिच्छन्तु विवेकिनः ॥[1]

इसके बाद सूनृत की महिमा बताई गई है। सत्यभाषी मोह को जीत लेता है, इह लोक मे धनसम्पत्ति तथा परलोक मे मोक्ष प्राप्त करता है:—

ब्रूयाद्य सूनृत शश्वन् मोहस्त नाभिषेणयेत् ।
रूपयन्ति श्रिय प्रेम्णोपप्रयाति स सद्गतिम् ॥[2]

इसके बाद अस्तेय, शील और अपरिग्रह की महत्ता प्रदर्शित करके महावीर प्रभु इन शब्दो मे पचाणुव्रत का उपसहार करते हैं:—

आदिदीपिष्ट यस्येदं यमपचतप हृदि ।
सोऽदीपि तपसां पूज्योऽजनिष्टेष्टोऽजनि श्रियाम् ॥
तप्यन्ते यद्विनानेन वनेषु मुनयस्तप ।
गृहिणोऽनुतपन्ते वा तद् भवेन्न भवच्छिदे ॥[3]

जैन-धर्म-सम्बन्धी नियमो के प्रतिपादन के साथ-साथ कवि ने यत्र-तत्र अपने अन्य-विषयक ज्ञान का परिचय भी दिया है। निम्नलिखित पक्तियो मे ज्योतिषज्ञान का परिचय दिया गया है :—

मघाविशाखाभरणीकृत्तिकास्विव यात्रया ।
त्वदन्यसेवयात्रैव सिद्धि नाश्नुवते नरा ॥[4]
अह पौषी निशा पौषी यथा सर्वार्थसिद्धये ।
सम्पन्नोपद्यते पु सा नाममूर्तिश्च ते यथा ॥[5]

फलित ज्योतिष के अनुसार मघा, विशाखा, भरणी तथा कृत्तिका नक्षत्र मे की गई यात्रा शुभफलप्रद नही होती है। इसी प्रकार पुष्य नक्षत्र सब प्रकार की सिद्धियो को देने वाला है। उक्त पद्यो मे ज्योतिष शास्त्र की इस मान्यता को अभिव्यक्त किया गया है।

व्याकरणपक्ष

'श्रेणिकचरित्र' मे कातन्त्र व्याकरण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकरणो के रूप दिखलाये गये हैं। प्रथम सर्ग मे सस्कृत-व्याकरण की पाँचो सन्धियो के रूप प्रस्तुत किये गये है। काव्य के प्रारम्भिक श्लोक मे स्वरो की समान सज्ञा, सवर्ण सज्ञा और ह्रस्व सज्ञा होती है, यह प्रतिपादित किया गया है —

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ६, श्लोक ६३-६४ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ८५
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ७७ (४) वही, सर्ग ५, श्लोक ८९
(५) वही, सर्ग ५, श्लोक ८८

देशोऽस्ति मगधाभिख्यो यत्र मंजुस्वरा नरा ।
समानश्रीसवर्णश्रीयुक्ता ह्रस्वेतराशयः ।।[1]

निम्नलिखित श्लोक मे प्रथम सन्धि के ते + अत्र, सर्वे + अपि, यजन्ते + अत्र, कः + क, भूम्ना + अत्र इन सन्धि-रूपो को दिखलाया गया है ।

ये गुणास्तेऽत्र सर्वेऽपि यजन्तेऽत्र जिनं जना ।
कस्को नाम न भूम्नाऽत्र वैयाकरण उच्चकैः ।।[2]

द्वितीय सन्धि के हल + ईषा, लाङ्गल + ईषा, मनस् + ईषा, ऋण + ऋण, वसन + ऋण, कम्बल + ऋण, दश + ऋण, वत्सतर + ऋण ये सन्धि-रूप इन पक्तियो मे प्रस्तुत किये गये है —

अत्र प्रियहलीषाना लाङ्गलीषे चतुष्टये ।
पुण्यसाधनसामग्री मनीषाशालिनां भवेत् ।।
ऋणार्णं वसनार्णं च कम्बलार्णं दशार्णवत् ।
प्रार्णवत्सतरार्णे वा विद्यन्ते नात्र कस्यचित् ।।[3]

तृतीय सन्धि के एते+उत्पलाभे, बाहू + एतौ, अमी + आदर्श, चतुर्थ सन्धि के पुंस्+चकोरैः, पुंस् + कोकिलै, पुंस्+खेट, पुंस्+छेकै, तथा पचम सन्धि के भोस् + अहस्कर, भोस् + इन्दो, भगोस् + इन्द्र, भगोस् + हर, अघोस् + धनेश, सुधी + वदन्ति इन कतिपय रूपो को इन पक्तियो मे उपस्थित किया गया है .—

दशावेते उत्पलाभे बाहू एतौ विषोपमौ ।
पादाविमौ पद्मकान्ती अमी आदर्शभा नखाः ।।[4]
सूक्तिज्योत्स्ना पुंश्चकोरैस्तथा पुंस्कोकिलस्वरै ।
पुंस्खेटपषद्विमुखैः पुंश्छेकै भात्यद पुरम् ।।
भो अहस्कर, भोयिन्दो, भगो इन्द्र, भगो अज ।
अघो अनन्ताघो अग्ने भो गन्धर्व भगो हर ।।
अघो धनेश ब्रूतायं कतमो वो यदत्र व ।
गुणा दृश्यन्त इत्यत्र सुधीर्व्वदति राजनि ।।[5]

प्रथम सर्ग मे ही लिगपाद प्रकरण के अन्तर्गत पूर्वस्मात्, परस्मात् ये सर्वनाम रूप प्रदर्शित किये गये है :—

पूर्वस्माच्च परस्माच्च राजकादधिको गुणै ।
नृपः श्रीश्रेणिकस्तत्र राजलक्ष्मीमपालयत् ।।[6]

द्वितीय सर्ग मे ऋकारान्त होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ आदि के रूप होतारः, पोतारः, प्रशास्तार, क्षत्तारम्, त्वष्टारम् आदि इन पक्तियो मे प्रस्तुत किये गये है —

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग १/१ (२) वही, सर्ग १/८ (३) वही, सर्ग १/१५, १७
(४) वही, सर्ग १/४१ (५) वही, १/५७,७१,७२ (६) वही, सर्ग १/१०१

भ्रातृत्वष्टारः प्रशस्तारं, क्षत्तार पृष्ठशासने ।
अमु होतारः पोतारो यष्टारश्चाशिषैधयन् ॥[1]

तृतीय सर्ग मे युष्मदादिपाद के अन्तर्गत युष्मत्, अस्मत्, तत् आदि के रूप बताये गये है । उदाहरण के लिए इन शब्दो के तृतीय और सप्तमी के एकवचन के त्वया, मया तथा त्वयि, मयि ये रूप इन पक्तियो मे उपलब्ध हैं :—

रक्षा मयि स्थिता वन्या अवन्याश्च त्वयि प्रभो ।
प्राप्तं त्वया मया चाद्य द्वयोरपि तयो फलम् ॥[2]

इसी सर्ग मे 'कारकपाद' प्रकरण के अन्तर्गत विभिन्न कारको के रूप प्रयुक्त किये गये है । निम्नोद्धृत पक्तियो मे कलि, गुरु और देव के सप्तमी के एकवचन के रूप कलौ, देवे तथा गुरौ उपस्थित किये गये है :—

असाधव कलौ देवे साधवो निपुणा गुरौ ।
सभ्या इक्षूनिवाचर्वन् वाचः शान्तरसा प्रभो ॥[3]

चतुर्थ सर्ग मे 'समासपाद' प्रकरण के अन्तर्गत विविध समासान्त पदो के उदाहरण दिये गये है । क्रयाकयिकया, फलाफलिकया, पुटापुटिकया, मानोन्मानिकया, कृष्णसर्पम्, नीलोत्पलम् इन समासान्त पदो का प्रयोग इन श्लोको मे दीख पडता है —

क्रयाकयिकया नार्थ फलाफलिकया कृतम् ।
किं न पुटापुटिकया मनोन्मानिकयाप्यलम् ॥
इति ब्रुवाणा विपणीर्मुक्त्वान्वीयुर्वणिक्सुता ।
पूतना सज्जना नन्तुं महर्षि परमेश्वरम् ॥[4]

पाँचवे सर्ग मे 'तद्धितपाद' के अन्तर्गत विविध तद्धितप्रत्ययान्त रूप प्रयुक्त हुए हैं । कतिपय उदाहरण देखिए :—

न दाधिक न सार्पिष्क रुच्य मारिचक न च ।
स्यादरोचकिना यद्वद् दुर्धिया त्वद्वचस्तथा ॥
स्यात्काकतालुकी कुष्ठी पिशाचक्यतिसारकी ।
अलीकी वातकी दु खी न सुखी ते द्विषन् ॥[5]

यहाँ दाधिक, सार्पिष्क, मारिचक, अरोचकिनाम्, अलीकी, वातकी, दु खी, सुखी, काकतालुकी, कुष्ठी, पिशाचकी, अतिसारकी आदि तद्धितान्त रूप दिखाये गये है ।

छठे सर्ग मे 'आख्याते प्रथमद्वितीयपाद' प्रकरण के विविध क्रिया-रूप दिखलाये गये है । निम्नोद्धृत श्लोक मे 'स्तु' धातु के लट् लकार के प्रत्येक पुरुष के एक-एक वचन के रूप स्तवीति, स्तवीपि, तथा स्तवीमि प्रदर्शित किये गये है —

स्तवीत्येष स्तवीषि त्व स्तवीम्यहमितीरिणः ।

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग २/२५ (२) वही, सर्ग ३/१९ (३) वही, सर्ग ३/१२१
(४) वही, सर्ग ४/८२,८३ (५) वही, सर्ग ५/९५,११४

मिथो यद् वर्णनैर्धन्यं मन्यन्ते स्वं मनीषिण. ॥[1]

इसी प्रकार निम्न पक्तियो मे 'पत्' तथा 'मृ' धातु के इच्छार्थक सन्नन्त-रूप पिपतिषन् तथा मुमूर्षति प्रयुक्त किये गये हैं :—

ते भाविदु:खा हिंसां ये धर्मायाहुः श्रुतीरिताम् ।
नदीकूलं पिपतिषन्स श्रयेद् यो मुमूर्षति ॥[2]

सप्तम सर्ग मे 'आख्याते तृतीयपादप्रकरण' मे लुङ्लकार के विविध रूप बताए गये है :—

व्यसस्मरत्पूर्वपुंस. क्वचिन्न स्वमतत्वरत् ।
ईतीर्योऽददरन्नामापप्रथद्भाव्यतस्तरत् ॥
सद्धचो हितं योऽचकथन्न्याये लोकानपीपटत् ।
धिया ततक्षत्खलाशा स्वमजीजागरद्धृषे ॥[3]

यहाँ व्यसस्मरत्, अतत्वरत्, अददरत्, अपप्रथत्, अतस्तरत्, अचकथत्, अपीपटत् आदि धातु-रूप प्रदर्शित किये गये है ।

इसी सर्ग मे 'आख्याते चतुर्थपाद प्रकरण' मे लुङ् तथा लिट् के रूप प्रस्तुत किये गये है । यथा :—

यद्गुणैर्दिद्युते रूपेणाजोहूयत मन्मथम् ।
धाम्नाजुहूषतार्क तत् सोऽधाद्दिव्यवपुः कथम् ॥
बव्रश्चु: शुद्धबोध ये बभ्रज्जुर्विदुषां मनः ।
यां पप्रच्छु सशयांस्तास्तत्त्व वा वसतो जना: ॥[4]

यहाँ दिद्युते, अजोहूयत, आजुहूषत, अधात्, बव्रश्चु बभ्रज्जुः पप्रच्छुः ये विभिन्न धातु-रूप दिखाये गये है ।

इसी प्रकार आठवे सर्ग से लेकर ग्यारहवे सर्ग तक आख्यात के पंचम पाद से लेकर अष्टम पाद तक के विविध सिद्ध-रूप प्रयुक्त हुए है । बारहवे सर्ग से अठारहवे सर्ग तक कृत्सूत्रो के प्रथम पाद से लेकर षष्ठ पाद तक के विविध सिद्ध-रूप प्रयुक्त हुए है । इस प्रकार 'श्रेणिकचरित्र' मे कातन्त्र व्याकरण पर उपलब्ध 'दुर्गवृत्ति' के अनुसार व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को प्रदर्शित करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है ।

व्याकरणपक्ष के निर्वाह की ओर कवि की पूरी शक्ति लग जाने के कारण 'श्रेणिक-चरित्र' मे विविध रसो की सुन्दर अभिव्यक्ति बहुत-कम स्थलो पर होने पाई है । कवि के वैयाकरण-रूप ने प्रस्तुत काव्य की मार्मिकता और सरसता को भारी आघात पहुँचाया है । फिर भी काव्य मे यत्र-तत्र कतिपय रसो को चित्रित करने का कवि ने प्रयत्न किया है ।

पाँचवे सर्ग मे महावीर स्वामी की देशनाओ के अन्तर्गत शान्त रस की अच्छी

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ६, श्लोक ६ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ६२
(३) वही, सर्ग ७, श्लोक ६५, ६३ (४) वही, सर्ग ७ श्लोक १००,१०४

रस-परिपाक

झलक दीख पड़ती है। यदि भक्ति को स्वतन्त्र रस माना जाए तो वनपाल के मुख से गुणशील चैत्य मे भगवान् महावीर का आगमन सुन कर श्रेणिक के मन मे जो हर्षोल्लासपूर्ण श्रद्धा उमड पडती है उसके चित्रण मे भक्तिरस का सफल निर्वाह इन पक्तियो मे हुआ है —

इत्थमुद्यानपालस्य महीपालो निशम्य गाम् ।
साधुर्जिनमभिस्वान्तमभिप्रीतिं परामधात् ।।
सोऽङ्गभङ्गमभिव्यंजन् पुलकं स्फारतां पुन ।
बभार प्रतिचेतोनु नेत्रं परिमनोरथान् ।।
वर्णं वर्णं प्रति प्रीत: सोऽभूत्परिपदं पदम् ।
वाक्यं वाक्य चानु तस्य वच: सुप्रियशंसिन: ।।[१]

यहाँ राजा श्रेणिक की जिनेश्वर-विषयक परा प्रीति स्थायी भाव है। आलम्बन महावीर प्रभु और उद्दीपन विभाव वनपाल की उक्तियाँ हैं। प्रत्यग मे पुलक होना, नेत्रों का चमकना आदि अनुभाव है। हर्ष, आवेग आदि सचारी भाव है। इन सब के योग से श्रेणिक की हृदयस्थ जिनेश्वर-विषयक रति भक्ति-रस के रूप मे निष्पन्न हुई है। शृंगार रस की सामान्य झलक तेरहवे सर्ग मे चेल्लणानुनय-प्रसग मे मिलती है।

सप्तम सर्ग मे एक कुष्ठी को अपने पूय-रस से जिनेश्वर की अर्चना करते देख राजा श्रेणिक बहुत क्रुद्ध हो जाता है। इस प्रसग मे रौद्र रस की क्षीण झलक इन पक्तियो मे दीख पडती है :—

देदीप्यमान: कोपेन जिघांसु कुष्ठिन नृप: ।
अचिचिन्तदिदं (यावत्तावन्नाथेन चुक्षुपे) ।।[२]

अपने पूय-रस से जिनेश्वर की अर्चना करने वाले कुष्ठी के इस चित्र मे वीभत्स रस सजीव हो उठा है :—

धर्ममित्थ जगन्नाथेऽभिदधानेऽथ पर्षदि ।
मगधेशो ददर्शक गलत्कुष्ठिनमागतम् ।।
अजिघासदृशो. प्रीतिं स राज्ञोऽप्यजुगुप्सिवो (?)
स्वदेहादाटिटद् दूरे गलत्पूयान्न मक्षिका ।।
× × × ×
विहाय शंकां श्रीखण्डद्रवैरिव नवैर्मवै ।
अचर्चयत्प्रभो पादौ भूय पूयरसैरसौ ।।[३]

कुष्ठी को दिव्य शरीर धारण करके पक्षी की तरह आकाश मे उडता हुआ देखकर श्रेणिक तथा उसकी परिषद् के अन्य लोग स्तब्ध और चकित हो जाते है। यहाँ अद्भुत रस का परिपाक इस प्रकार हुआ है :—

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ४, श्लोक ४१,४३ (२) वही, सर्ग ७, श्लोक २५
(३) वही, सर्ग ७, श्लोक १,२,५

पश्यतामेव पत्तीना कुण्ठिरूपमपास्य सः ।
यत्सुरोऽर्कस्त्विषा जिग्ने दिव्यं जग्राह तद्वपुः ।
कि न जग्रहिथैनं त्वमसौऽयं ग्रह्यतां कथम् ।
न त्वं विव्ययिथोपायैर्ही विव्याथैष एव नः ॥
स्थानेऽर्थाद्विव्यथे नासावीदृग् वा व्यथ्यतां कुतः ।
इत्यन्योन्यं लपत्स्वेव स पक्षीवोत्पपात खम् ॥

× × × ×

विश्वचेकीयितां भक्तिं वीक्ष्यापेपीयितं तदा ।
लुम्पन् रौद्ररसं तस्यापिप्ये्ऽद्भुतरसो हृदि ॥
शेश्वीयमानकुतुको भक्त्या शोशूयमानया ।
पृथ्वीनाथ प्रणमन् श्रीसर्वज्ञं व्यजिज्ञपत् ॥[1]

इस प्रकार 'श्रेणिकचरित्र' मे यद्यपि विविध रसो का समावेश करने का कवि का प्रयत्न रहा है, किन्तु वह कम ही स्थलो पर अनुकूल रस का उद्रेक करने मे सफल हुआ है। वस्तुत मार्मिक स्थलो की दृष्टि से 'श्रेणिकचरित्र' समृद्ध काव्य नही कहा जा सकता।

'श्रेणिकचरित्र' की भाषा अन्य महाकाव्यो की भाषा से भिन्न प्रकार की है। इसमे सन्देह नही कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, किन्तु व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को काव्य मे, वह भी एक प्रबन्ध-काव्य मे, जिसमे पद-पद पर कथा की भाषा अविच्छिन्नता के निर्वाह का ध्यान रखना पडता है, प्रयुक्त करने से 'श्रेणिकचरित्र' की भाषा पर बहुत दबाव पडा है जिसके कारण भाषा की स्वाभाविकता अक्षुण्ण नही रह सकी है। अधिकाश स्थलो पर अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया गया है जिसके कारण भाषागत क्लिष्टता और दुर्बोधता बढ गयी है। उदाहरणार्थ :—

दिशोऽश्वदृश्वयोद् व्योमाभ्रोचीदब्धि स्वरभ्रुचत् ।
पातालमम्लुचद्धन्यामम्लोचीदग्लुचद् गिरीन् ॥
अग्लोचीत्स्वर्नदीगवमग्लुचीत्कुन्दविभ्रमम् ।
क्वाद्योत्तिष्ठ न तत्कीर्तिर्नैग्रन्थ्य प्रत्यपादि य ॥[2]

ऐसे पद्यो के अर्थबोध मे स्वभावत ही कठिनता होती है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इनमे अनुप्रास का समावेश हो गया है, किन्तु इस अनुप्रास-योजना से अनुप्रास की रणनात्मक झकृति तथा सहज माधुर्य उत्पन्न नही हुआ जिससे जिह्वा एक शब्द से दूसरे शब्द की ओर सरलता से सरकती चली जाए। एक उदाहरण देखिए :—

स्तभ्नाति वारि स्तभ्नोति वह्नि स्तुभ्नोति कुंजरान् ।
स्तुभ्नाति तस्करान् स्कभ्नात्यरीन् स्कभ्नोत्यरेर्मुखम् ।
स्कुभ्नाति पंचास्यमपि स्कुभ्नोति च रुजां चयम् ॥[3]

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ७/८६-८८, ९४-९५ (२) वही, सर्ग ६/१४०-१४१
(३) वही, सर्ग ६/१५८

इन पद्यो मे भाषा का लालित्य, सौष्ठव, साहित्यिक पदविन्यास, रोचकता और मनोहरता नही है। यहाँ अनुप्रास ने सौन्दर्य बढाने के स्थान पर उसे घटाया है। 'श्रेणिक-चरित्र' मे सैकड़ो की सख्या मे ऐसे श्लोक मिलेंगे जिनमे इसी प्रकार की अप्रचलित, क्लिष्ट और रूक्ष भाषा का प्रयोग हुआ है। यह भाषा प्रयत्नसाध्य है। समस्यापूर्ति की भाँति व्याकरण के विविध प्रयोगो की पूर्ति कथावस्तु को ध्यान मे रख कर की गई है, इसलिए इस अस्वाभाविक भाषा के लिए हम कवि को विशेष दोष नही दे सकते।

'श्रेणिकचरित्र' मे ऐसे पद्यो की भी कमी नही है जहाँ भाषा-सौष्ठव, लालित्य एव मनोहर पदविन्यास के दर्शन होते है। भाषा के प्रसाद गुण की दृष्टि से निम्नोद्धृत श्लोक द्रष्टव्य है --

असेविष्यन्त चेद्धर्म नृतिर्यग्नारकाः पुरा।
नाभविष्यन्नमी नाम नानानर्थनिकेतनम्॥[1]
स जीयात् स भवं भेत्ता स त्रिलोक्या महिष्यते।
श्रुतोपदेश आर्याणामधर्मं यो न सेवते॥[2]

कही-कही अनुप्रास के प्रयोग ने भाषा मे प्राजलता ला दी है। यथा --

सुषमं तस्य विषम दुषम निषम तथा।
प्रदक्षिणं य. प्रकुरुते त्वन्मूर्ति सर्वकामदाम्॥
समां भूमि पदन्यासै कुर्वती करिणा घटाः।
सम पदाति विभ्राणस्त्वत्पुरो लभते नर॥[3]

'श्रेणिकचरित्र' मे कतिपय मुहावरो एव लोकोक्तियो का प्रयोग भी हुआ है। जहाँ ये प्रयोग किये गये है वहाँ भाषा मे चलतापन और व्यावहारिकता आ गयी है, किन्तु ऐसे स्थल समस्त काव्य मे गिने-चुने ही है --

न विष्योऽसौ गुडेनैव यो म्रियेतेति नीतिमान्।[4]
दग्धस्योपरि गण्डेनोत्तस्थे तत्पाप्मनामुना॥[5]
तच्छ्रुत्वाऽचिन्तयद् राजाप्येष रोगो यथा यथा।
उपेक्ष्यते हन्त वरीवृद्धयतेऽस्य तथा तथा।[6]
वार्तामपि न पृच्छन्ति सुरा अप्यस्य चागसाम्।[7]

'श्रेणिकचरित्र' के जिन श्लोको मे व्याकरण का एक ही सिद्ध-प्रयोग प्रयुक्त किया गया है वहाँ कवि की कविता उन्मुक्त होकर विचरी है। फलस्वरूप वहाँ भाषागत लालित्य भी है। जैसे --

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ६/२० (२) वही, सर्ग ६/२१ (३) वही, सर्ग ५/३४-३५
(४) वही, सर्ग ५/१०२ (५) वही, सर्ग ७/३५ (६) वही, सर्ग ७/५६
(७) वही, सर्ग ७/७८

चम्पकैः किं परिक्रीता सहस्रेणायुताय वा ।
न त्यजन्तेऽलिनः सेवां तेषां यत्क्षणमप्यमी ॥[1]
लताः पश्य त्वदग्रेऽमूर्गन्धं पुष्पेष्वयं शुभं ।
त्वन्मनः प्रीयतामत्र गंगायामिव गोकुलम् ॥[2]

यहाँ प्रथम पद्य मे केवल 'अयुताय' और दूसरे पद्य मे केवल 'गगायाम्' का प्रयोग है ।

इस प्रकार 'श्रेणिकचरित्र' मे सरल और कठिन दोनो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है । यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि कवि ने समयानुकूल भाषा का प्रयोग किया है, फिर भी जहाँ तक सभव हो सका है कवि ने भाषा को बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है । तथ्य यह है कि शब्द-धातु-रूपो ने उसकी भाषा को नचाया है, कवि भाषा को नही नचा सका है । दूसरे शब्दो मे व्याकरण के सिद्ध-प्रयोगो को दिखलाने के बन्धन मे पड़ कर 'श्रेणिकचरित्र' का कवि अपनी भाषा-स्वतन्त्रता खो बैठा है । उसे उन्ही के सकेतो पर चलना पडा है । इस बन्धन मे चल कर भी जो वह कथा का निर्वाह कर सका, इससे उसका भाषा पर विलक्षण अधिकार सिद्ध होता है ।

अलकारयोजना

'श्रेणिकचरित्र' का कलापक्ष अत्यन्त समृद्ध है । उसमे विविध अलकारो का प्रयोग किया गया है । चित्रालकारो मे यद्यपि कवि-रुचि का रमण नही हुआ है, तथापि प्रशस्ति मे एक चित्रकाव्य दीख पडता है जिसमे कवि ने अपना नाम 'जिनप्रभ' ग्रथित किया है । वह चित्रकाव्य इस प्रकार है :—

तत्तत्कर्मपरा जितिक्षमगिर भव्याम्बुजाहस्करम् ।
वन्दे विष्टपमाननीयमचिरासूनुं सतां कामदम् ॥
सच्चारित्रनिधि प्रभावमथितारिष्ट जिन व्येनसम् ।
संसारेभहरिं वरेण्यसमतारंगं विदम्भौजसम् ॥[3]

शब्दालकारो मे अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है जिसके उदाहरण भाषा की विवेचना करते समय दिये जा चुके है । अर्थालकारो मे उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक हुआ है । यथा :—

उपराजमिवोपगम्यभव्य श्रयते नाविनय समीपमस्य ।
हरवत् त्रिपुरीं दहन् त्रिलोकी शमितोऽनेन शमाम्बुभि स्मराग्निः ।[4]

यहाँ सघ की तुलना राजा से तथा स्मराग्नि की हर से किये जाने के कारण उपमालकार तथा शम मे जल एव स्मर मे अग्नि का अभेदारोप होने से रूपकालकार भी है ।

निम्नलिखित श्लोक मे उत्प्रेक्षा की सुन्दर अवतारणा हुई है :—

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग ३/१०१ (२) वही, सर्ग ३/९६
(३) वही, प्रशस्ति, श्लोक १ (४) वही, सर्ग ५/१६७

दृष्ट्वौदार्यं नृणामत्र शाखिनस्ते दिवौकसाम् ।
प्रेलिता त्रपया मन्ये प्रोखन्ति स्मान्यदृश्यताम् ॥[1]

'श्रेणिकचरित्र' मे अर्थावृत्ति (आवृत्तिदीपक), भ्रान्तिमान, उल्लेख और स्मरण अलकारो का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । जैसे —

स्तौत्यमून्न मघवा कतिकृत्वः श्लाघते फणपतिर्गणकृत्वः ।
कीर्तयन्ति खचरा बहुकृत्वो वर्णयन्ति बहुधा च मुनीन्द्रा ॥[2]

यहाँ कतिकृत्व , गणकृत्वः, बहुकृत्व और बहुधा शब्द पृथक्-पृथक् हैं किन्तु उनका अर्थ एक ही है । अत अर्थ की आवृत्ति होने से यहाँ अर्थावृत्ति अलकार है ।

यत्र दुन्दुभिनिर्ह्रादिष्वब्दगर्जिभ्रभोन्मुदाम् ।
पौर्य सौधादासनाच्च नृत्य पश्यन्ति बर्हिणाम् ॥[3]

यहाँ दुन्दुभि की ध्वनि को मेघगर्जन समझ कर भ्रान्ति से मयूरो के नाच उठने से भ्रान्तिमान् अलकार है ।

धाम्नाऽर्जुन कार्तवीर्य. एष ज्ञानमुदाश्रय ।
स्थाम्ना रामो जामदग्न्य इति पौरास्तमस्तुवन् ॥[4]

यहाँ एक ही राजा श्रेणिक का अनेक रूपो मे—अर्जुन, कार्तवीर्य और परशुराम के रूपो मे—वर्णन होने के कारण उल्लेख अलकार है ।

वीक्ष्य स्फटिकवैडूर्यज्योतींष्यत्राढ्यवेश्मसु ।
पृक्ते स्मरति स्त्रैणानि गाङ्गयामुनवारिणी ॥[5]

यहाँ स्फटिक-वैदूर्य की श्वेतनील कान्ति को देख कर उनके समान कान्ति वाले गगा-यमुना के प्रवाह की स्मृति आ जाने से स्मरण अलकार है ।

इन अलकारो के अतिरिक्त निदर्शना, उदाहरण, सम्बन्धातिशयोक्ति तथा परिसख्या आदि अलकारो का प्रयोग भी 'श्रेणिकचरित्र' मे हुआ है ।[6]

---

(१) श्रेणिकचरित्र, सर्ग १/२२ (२) वही, सर्ग ५/१५१ (३) वही, सर्ग ४/८६
(४) वही, सर्ग ४/७१ (५) वही, सर्ग १/८६
(६) निदर्शना —सिद्धो वर्णसमाम्नाय. सर्वस्योपचिकीर्षता ।
येनादौ जगदे ब्राह्म्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दन. ॥ —वही, सर्ग १/१
उदाहरण —राध्यं गव्यं वचो मेध्यं सुगव्यो वृषकेतन ।
राज्ञा चमव्यश्च यथा साधव्यस्त्वं प्रभो यथा । —वही, सर्ग ५/१०४
सम्बन्धातिशयोक्ति :—यस्य रूप स्फुट शक्य चित्रलिग्भिर्न लेखितुम् ।
देव्यप्यलं न वाक् स्तोतुमिच्छेद्विद्वत्सु कस्य वाक् ॥
—वही, सर्ग ४/६८
परिसख्या —इहैव नूनं धर्मोऽस्याद्यन्नार्योऽत्र पतिव्रताः ।
कीर्तिरेव सतां त्वेका स्वैरिणी स्वैरचारतः ॥ —वही, सर्ग १/२१

पंचम अध्याय

प्रमुख महाकाव्य

(ख) ऐतिहासिक महाकाव्य

(१) वसन्तविलास (बालचन्द्रसूरि)

(रचनाकाल वि० स० १२९६-१३३४ के मध्य)

'वसन्तविलास' चौदह सर्गों का एक महाकाव्य है जिसकी रचना बालचन्द्रसूरि ने की है। इसमे धौलका (गुजरात) के राजा वीरधवल के प्रसिद्ध अमात्य वस्तुपाल के जीवनचरित का, उसके मन्त्रित्वकाल से लेकर स्वर्गवास तक का वर्णन किया गया है।

'वसन्तविलास' के महाकाव्यत्व मे किसी प्रकार का सन्देह नही हो सकता। आचार्यो ने महाकाव्य के जो नियम निर्धारित किये है उनके आधार पर 'वसन्तविलास' एक सफल महाकाव्य है। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार 'वसन्तविलास' का

वसन्तविलास का महाकाव्यत्व

वस्तुपाल-सम्बन्धी कथानक ऐतिहासिक है। धीरोदात्त गुणो से युक्त सद्वंशोद्भूत वस्तुपाल इसके नायक है। वीर रस इसमे प्रधान रस है और शृगार हास्य, रौद्र आदि रसो का इसमे यथास्थान समावेश हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से धर्म की प्राप्ति इसका मुख्य उद्देश्य है। काव्य का प्रारम्भ श्रीवृषभदेव तथा सरस्वती-स्तुति-रूप मगलाचरण से हुआ है। इसके पश्चात् सज्जनप्रशसा और खलनिन्दा की रूढि का पालन भी किया गया है। 'वसन्तविलास' के कथानक मे पचसन्धियो की सामान्य योजना भी हुई है। तृतीय सर्ग मे गुर्जरराज्यलक्ष्मी द्वारा वीरधवल को स्वप्न मे वस्तुपाल-तेजपाल को मन्त्री बनाने का आदेश दिये जाने तथा चतुर्थ सर्ग मे वस्तुपाल-तेजपाल के गुणो के वर्णन मे मुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है। नवम सर्ग मे स्वप्न मे वस्तुपाल के समीप एक पैर से लँगडाते हुए धर्म के आने, अपनी दुर्दशा वर्णन करने और उस दुर्दशा को दूर करने का वस्तुपाल को आदेश देने के वर्णन मे प्रतिमुख सन्धि का निर्वाह हुआ है। दशवे से तेरहवे सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्रा के वर्णन मे गर्भ सन्धि विद्यमान है। चौदहवे सर्ग मे धर्म के सन्देशवाहक वृद्धावस्था के वस्तुपाल के समीप आने और धर्मपुत्री सद्गति के उसकी (वस्तुपाल की) ओर आकर्षित होने की सूचना देने के वर्णन मे विमर्श सन्धि की सफल योजना हुई है। इसी सर्ग के अन्त मे शत्रु जय पर्वत पर आदिनाथ के बिम्ब के समक्ष वस्तुपाल के धर्मपुत्री सद्गति से विवाह करने और उसके साथ स्वर्ग जाने के वर्णन मे निर्वहण सन्धि है। 'वसन्तविलास' मे महाकाव्य के परम्परागत नियमो के अनुसार

प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द का ही प्रयोग किया गया है और सर्ग के अन्त मे छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन भी किया गया है। इसके पाँचवे, नवे और बारहवे सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी महाकाव्य के नियमो के अनुसार ही हुआ है। 'वसन्तविलास' के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे आगामी सर्ग की कथा की सूचना दे दी गई है। उदाहरणार्थ पचम सर्ग मे शखनृपति और वस्तुपाल के युद्ध का वर्णन है जिसमे वस्तुपाल की विजय होती है। इसकी सूचना चतुर्थ सर्ग के अन्त मे इस श्लोक के द्वारा दी गई है:—

असिनभसि कृतोदयःप्रतापद्युमणिरुदग्रशिरोमणेरमुष्य ।
रिपुनृपतियशोहिमाद्रिमभ्रङ्कषनो मंक्षु विलाययांचकार ।।[1]

'वसन्तविलास' मे नगर, दुर्ग, परिखा, सर, उपवन, ऋतु, जलक्रीडा, वनक्रीडा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, विवाह, युद्ध आदि महाकाव्यीय वर्ण्यविषयो के सजीव और मनोहर वर्णन विद्यमान है। वस्तुपाल का दूसरा नाम वसन्तपाल भी था। महाकाव्य के चरितनायक वसन्तपाल के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत काव्य का नाम 'वसन्तविलास' रखा गया है। इसके सर्गो के नाम भी वर्ण्यविषय के आधार पर रखे गये है। इस प्रकार 'वसन्तविलास' मे महाकाव्य के प्राय समस्त शास्त्रीय नियमो का पालन हुआ है। यद्यपि इसके कथानक मे महाकाव्योचित विस्तार की कमी है, फिर भी उसमे धारावाहिकता विद्यमान है। उसमे भारत की धर्मप्रधान सस्कृति मुखरित हुई है। 'वसन्तविलास' की चरित्र-योजना महाकाव्योचित गरिमा से युक्त है और उसकी भाषा-शैली प्रौढ तथा हृदयग्राही है। इन विशेषताओ के कारण 'वसन्तविलास' आलोच्य युग का प्रमुख महाकाव्य सिद्ध होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे पुष्पिका मे कवि ने इसे महाकाव्य सज्ञा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त प्रथम सर्ग के इस श्लोक मे भी उसने 'वसन्तविलास' के महाकाव्यत्व को स्वीकार किया है —

श्रीवस्तुपालाङ्गभुवो नवोक्तिप्रियस्य विद्वज्जनमज्जनस्य ।
श्रीजैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्यमुदीर्यतेऽहो ।।[2]

'वसन्तविलास' ऐतिहासिक महाकाव्य है। उसमे ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो की समस्त विशेषताएँ उपलब्ध होती है। वस्तुपाल कवि (बालचन्द्रसूरि) का समसामयिक था, इसलिए प्रस्तुत काव्य मे जिन घटनाओ का वर्णन है उनकी यथार्थता मे सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है। तत्कालीन गुजरात के इतिहास पर 'वसन्तविलास' निश्चय ही पर्याप्त प्रकाश डालता है। 'वसन्तविलास' से इन ऐतिहासिक तथ्यो की जानकारी होती है :—

वसन्तविलास की ऐतिहासिकता

(१) चालुक्य वश का आदिपुरुष चौलुक्य था जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक-जल से हुई थी। चौलुक्य ने प्रतिपक्षियो का सहार करके राज्य की स्थापना की।

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ४, श्लोक ५३ (२) वही, सर्ग १, श्लोक ७५

(२) इस वंश मे मूलराज नामक प्रसिद्ध शासक हुआ। मूलराज के उपरान्त उसका पुत्र चामुण्डराज राजा बना। चामुण्डराज के पश्चात् क्रमश दुर्लभराज और भीम ने गुजरात पर शासन किया। भीम ने अवन्ती-नरेश भोज को युद्ध मे परास्त किया था। भीम के बाद क्रमश कर्ण और जयसिह सिद्धराज गुजरात के अधीश्वर हुए। सिद्धराज जयसिंह ने धारा के राजा को युद्ध मे परास्त किया था।

(३) सिद्धराज के अनन्तर कुमारपाल अणहिल्लपत्तन के सिंहासन पर बैठा। वह बडा न्यायपरायण था। उसने केदार और सोमेश्वर के देवस्थानो का जीर्णोद्धार कराया था। वह बडा पराक्रमी शासक था। उसने रणभूमि मे जागल, कोकण एव बल्लाल देश के राजाओ को पराजित किया था।

(४) कुमारपाल के बाद क्रमश अजयपाल, मूलराज एव भीम हुए। भीम निर्बल था, अत उसकी रक्षा का भार चौलुक्यवशी अर्णोराज ने लिया। अर्णोराज ने प्रतिपक्षियो का विनाश करके राज्य की रक्षा की। अर्णोराज का पुत्र लवणप्रसाद हुआ जिसका प्रताप चर्तुदिक् छाया था।

(५) लवणप्रसाद का पुत्र वीरधवल हुआ। राज्य की रक्षा के लिए वीरधवल एक सुयोग्य मन्त्री की खोज मे था। गुर्जरराज्यलक्ष्मी ने स्वप्न मे उसे आदेश दिया कि वह वस्तुपाल-तेजपाल को मन्त्रिपद पर नियुक्त करे। वीरधवल ने उन दोनो वीरो को बुलाया और स्वप्न मे प्राप्त आदेश के अनुसार उन्हे मन्त्रि-पद पर नियुक्त कर दिया।

(६) वस्तुपाल प्राग्वाटवशीय था। इस वश मे चण्डप नाम का प्रसिद्ध वीर हुआ जिसके पुत्र का नाम चण्डप्रसाद था। चण्डप्रसाद के पुत्र का नाम सोम था जो सिद्धराज जयसिंह का सामन्त था। सोम ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। सोम की पत्नी का नाम सीता था जिसके गर्भ से अश्वराज का जन्म हुआ। अश्वराज ने अपनी माता को साथ लेकर गिरनार और शत्रु जय की सात यात्राएँ की थी। उसकी पत्नी का नाम कुमारदेवी था जिसके गर्भ से मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

(७) वस्तुपाल की मन्त्रिपद पर की गई नियुक्ति से वीरधवल के राज्य की दिन-प्रतिदिन उन्नति होने लगी। वीरधवल ने लाट देश के राजा पर आक्रमण करके खम्भात का बन्दरगाह उससे छीन लिया और वस्तुपाल को खम्भात का गवर्नर बना कर भेजा। वस्तुपाल ने वहाँ की शासन-व्यवस्था मे सुधार कर खम्भात की खोई प्रतिष्ठा को पुन स्थापित किया। अपने धर्म पर अचल निष्ठा रखते हुए भी वस्तुपाल सम्पूर्ण धर्मो को समान दृष्टि से देखता था। वस्तुपाल काव्य-प्रेमी था। उसने कवियो को इतना धन एव सम्मान दिया कि लोग मुज और भोज को भूल गये थे।

(८) वस्तुपाल के मन्त्रित्वकाल मे एक बार मारवाड देश के राजाओ और लूणसाक नृपति मे युद्ध छिड गया। मारवाड देश के राजाओ के निमन्त्रण पर वीरधवल भी ससैन्य उनकी सहायता के लिए गया। इस समय राज्य को अरक्षित पाकर भृगुकच्छ

के शासक शख ने आक्रमण कर दिया। वस्तुपाल ने साहस और वीरता से शख का सामना किया और उसे परास्त कर राज्य की रक्षा की।

(९) वस्तुपाल ने मन्त्री बन कर ससघ शत्रुजय और गिरिनार की यात्रा की थी। उसकी मृत्यु माघ-कृष्णा पचमी, स० १२९६ सोमवार को शत्रुजय पर हुई।[1]

इस प्रकार 'वसन्तविलास' मे गुजरात के इतिहास से सम्बन्धित मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है। इसीलिए, शास्त्रीय शैली का काव्य होने पर भी यहाँ हमने 'वसन्तविलास' को ऐतिहासिक महाकाव्यो के अन्तर्गत रखा है।

'वसन्तविलास' के रचयिता बालचन्द्रसूरि चन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि के शिष्य थे। 'वसन्तविलास' के प्रथम सर्ग मे कवि ने अपना वृत्तान्त दिया है जिसके अनुसार गुजरात के मोढेरक ग्राम मे धरादेव नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे। वे जैन धर्म के सिद्धान्तो से परिचित थे और जैन साधुओ का सम्मान करते थे। उनकी पत्नी विद्युत के गर्भ से उनके मुंजाल नामक पुत्र था। मुंजाल बाल्यावस्था से ही विरक्त था। माता-पिता की आज्ञा से उसने हरिभद्रसूरि से जैनी दीक्षा ग्रहण की। हरिभद्रसूरि ने उसका नाम बालचन्द्र रखा और अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे उसे अपने स्थान पर प्रतिष्ठित किया। यही बालचन्द्र 'वसन्तविलास' के रचयिता बालचन्द्रसूरि है। प्रसिद्ध विद्वान् पद्मादित्य, जिन्हे चालुक्य-नरेश भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, बालचन्द्रसूरि के शिक्षा-गुरु थे। कवि ने किन्ही श्री उदयसूरि से सारस्वत मन्त्र प्राप्त किया था जिसके फलस्वरूप एक बार योगनिद्रा मे मग्न एव सरस्वती के ध्यान मे तल्लीन बालचन्द्रसूरि को सरस्वती ने दर्शन दिये और उन्हे कालिदासप्रभृति महाकवियो की समकक्षता का महाकवि बनने का वरदान दिया।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

'प्रबन्धचिन्तामणि' मे कहा गया है कि वस्तुपाल ने बालचन्द्र की कवित्व-शक्ति से प्रसन्न होकर उनके आचार्यपदमहोत्सव मे एक सहस्र द्रम्म का व्यय किया था।[2] 'वसन्तविलास' के अतिरिक्त बालचन्द्र ने 'करुणावज्रायुध' नामक पाँच अको का एक नाटक भी लिखा है। वस्तुपाल की समघ यात्रा मे बृहत् संघ के मनोविनोद के लिए इस

---

(१) राजशेखरसूरि ने अपने 'प्रबन्धकोष' में वस्तुपाल-प्रबन्ध के अन्तर्गत वस्तुपाल की मृत्यु सं० १२९८ मे होना लिखा है—अथ विक्रमादित्यात् १२९८ वर्षं प्राप्तं। श्रीवस्तुपालो ज्वररुग्लेशेन पीडित तेजपाल सपुत्रपौत्रं स्वपुत्रं च जयन्तसिंहमभाषत। वत्सा ! श्रीनरचन्द्रसूरिभिर्मलधारिभि १२८७ वर्षे भाद्रपदवदि १० दिने दिवगमनसमये वयमुक्ता मन्त्रिन् ! भवतां १२९८ वर्षे स्वर्गारोहो भविष्यति। तेषां च वचांसि न चलन्ति, गी सम्पन्नसिद्धित्वात्। ततो वयं श्रीशत्रुंजये गमिष्याम एव। —राजशेखरसूरि, वस्तुपाल-प्रबन्ध।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० २६३

नाटक का अभिनय शत्रुंजय पर ऋषभदेव के यात्रामहोत्सव के समय हुआ था। इसके अतिरिक्त बालचन्द्र ने आसडकवि-कृत 'विवेकमजरी' तथा 'उपदेशकदली' नामक ग्रन्थो पर टीकाएँ भी लिखी हैं।

'वसन्तविलास' की रचना कब हुई, इसका उल्लेख कवि ने प्रस्तुत काव्य मे नही किया, किन्तु यह निश्चित है कि इसकी रचना वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् हुई, क्योकि इसमे वस्तुपाल के स्वर्गगमन का वर्णन है। वस्तुपाल की मृत्यु स० १२९६ में हुई थी।[1] 'वसन्तविलास' के रचयिता बालचन्द्रसूरि वस्तुपाल के समकालीन थे। उन्होने 'वसन्तविलास' की रचना वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के मनोविनोद के लिए की थी।[2] शिलालेखो के अनुसार स० १२७९ मे वीरधवल ने जैत्रसिंह को खम्भात का शासक (गवर्नर) नियुक्त किया था।[3] इस समय उसकी आयु २५ वर्ष के आसपास अवश्य रही होगी। इसका अर्थ यह है कि वस्तुपाल की मृत्यु के समय उसकी अवस्था कम-से-कम ४२-४३ वर्ष की रही होगी। यदि जैत्रसिंह की कुल आयु ८० वर्ष की मानी जाए तो उसकी मृत्यु स० १३३३-३४ के लगभग हुई, यह स्वीकार करना पडेगा। 'वसन्तविलास' की रचना जैत्रसिंह के जीवनकाल मे ही हो गई थी, जैसा कि 'वसन्तविलास' के इस अन्तिम पद्य मे जैत्रसिंह के लिए 'अस्तु स्वस्ति' इस वर्तमानकालीन क्रियापद के प्रयोग से स्पष्ट ज्ञात होता है —

अस्तु स्वस्ति स्वगोत्रार्णवनवशशिने दुर्नयध्वान्तजृम्भा-
विष्कम्भाय स्वभावप्रसृमरमहसे जैत्रसिंहाय तस्मै।
येन क्षोणीधुरायां सहकिरिकमठाहीश्वरैरुद्धृतायाम्
निश्चिन्तोऽयं वसन्त सुरपुरमसुरानुद्धुनान पुनाति।[4]

इस विवेचन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि 'वसन्तविलास' की रचना स० १२९६ से स० १३३४ के मध्यवर्ती काल मे हुई।

---

(१) वस्तुपाल का स्वर्गवास माघ-कृष्णा पंचमी स० १२९६ मे हुआ जैसा कि कवि ने 'वसन्तविलास' मे लिखा है —

वर्षे हर्षनिषण्णषण्णवतिके श्रीविक्रमोर्वीभृत
कालाद् द्वादशसंख्यहायनशतात् मासेऽत्र माघाह्वये।
पंचम्यां च तिथौ दिनादिसमये वारे च भानोस्तवो-
द्वोढु सद्गतिमस्ति लग्नभसम तत्त्वर्यताम् त्वर्यताम्॥

—वसन्तविलास, सर्ग १४।३७

(२) श्रीवस्तुपालाङ्गभुवो नवोक्तिप्रियस्य विद्वज्जनमज्जनस्य।
श्रीजैत्रसिहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्यमुदीर्यतेऽहो॥

—वही, सर्ग, १, श्लोक ७५

(३) देखिए, वसन्तविलास, सैन्टरल लाइब्रेरी, बड़ौदा की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १२

(४) वसन्तविलास, सर्ग १४, श्लोक ५५

अनुष्टुप्-गणना से 'वसन्तविलास' के कुल पद्यो की सख्या १५१६ है। 'वसन्तविलास' की कथावस्तु १४ सर्गो मे विभाजित है। पहले (प्रस्तावना) सर्ग मे कवि ने काव्य की महत्ता पर प्रकाश डाल कर अपना परिचय दिया है। दूसरे (राजधानी-वर्णन) सर्ग मे अणहिल्लपत्तन, उसके दिव्य भवन, दुर्ग, परिखा एव दुर्लभराज-निर्मित सरोवर का वर्णन किया गया है। तीसरे (श्रीकरणपदलाभ) सर्ग मे मूलराज से लेकर भीमदेव द्वितीय तक के गुजरात के राजाओ का वर्णन किया गया है और यह बताया गया है कि किस प्रकार वीरधवल एवं उसके पूर्वजो ने गुजरात को छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया। इसी सर्ग मे वीरधवल द्वारा वस्तुपाल-तेजपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति का वर्णन हुआ है। चौथे (मन्त्रिगुणवर्णन) सर्ग मे वस्तुपाल के गुणो का वर्णन करके वीरधवल द्वारा उसको खम्भात का शासक नियुक्त किये जाने का विवरण दिया गया है। पाँचवे (शखयुद्धवर्णन) सर्ग मे लूणसाकनृपति के साथ मारवाड़-नरेश का युद्ध छिडने और उस युद्ध मे वीरधवल के ससैन्य जाने का वर्णन है। इसी सर्ग मे आगे वीरधवल की अनुपस्थिति मे अवसर पाकर लाटदेशनरेश शंख के धवलक्कक पर आक्रमण करने और वस्तुपाल का उसे पराजित करके भगाने का वर्णन है। छठे

कथानक

चन्द्रप्रभ की पूजा करके वे गिरिनार की ओर चल देते है। यहाँ वे आदिनाथ की पूजा करते है। तेरहवें (रैवतकयात्रावर्णन) सर्ग मे सघ रैवतक गिरि पर चढ कर नेमिनाथ की पूजा करता है। इसके पश्चात् सघ के धवलक्कक वापिस आने और वस्तुपाल द्वारा सहयात्रियो को ससम्मान विदा करने का वर्णन किया गया है। चौदहवे (सद्गतिपाणि-ग्रहण) सर्ग मे वस्तुपाल द्वारा किये गये अनेक धर्मकार्यो का विवरण दिया गया है। वस्तुपाल के वृद्ध होने पर धर्म का सन्देशवाहक उसके पास आता है और स्वर्ग मे उसकी (वस्तुपाल की) कीर्ति सुन कर धर्मपुत्री सद्गति का उसे (वस्तुपाल को) वरण करने का निश्चय बताता है। सद्गति के स्मरण से वस्तुपाल को विरह-ज्वर हो जाता है। धर्म का सेवक आयुर्बन्ध वस्तुपाल के निर्णय की सूचना धर्म को देता है। धर्म यह सुन कर बडे प्रसन्न होते है और अपने दूत सुबोध को भेज कर सद्गति-वस्तुपाल के परिणय का शुभ मुहूर्त माघकृष्णा पचमी सोमवार स० १२९६ प्रात काल बताते हैं। वे परिणय के लिए वस्तुपाल को शत्रु जय गिरि पर बुलाते है। पत्नी, पुत्र एव भाई को आवश्यक निर्देश देकर वस्तुपाल शत्रु जय पर जाते है। वहाँ निर्दिष्ट मुहूर्त मे धर्म आदिनाथ की साक्षी मे अपनी पुत्री सद्गति वस्तुपाल को सौंप देते है और उन्हे अपने साथ स्वर्ग ले जाते हैं। यही कथानक की समाप्ति होती है।

'वसन्तविलास' की कथावस्तु बहुत सीमित है, किन्तु कवि ने उसे महाकाव्योचित रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। प्रारम्भिक चार सर्ग कथानक की भूमिकामात्र प्रस्तुत करते है, वस्तुत: कथा को गति पाँचवे सर्ग से मिलती है जहाँ वस्तुपाल का शख से युद्ध होता है। इसके बाद छठे से आठवे सर्ग तक ऋतु, जलक्रीडा, चन्द्रोदय आदि पारम्परिक वर्ण्यविषयो का वर्णन हुआ है। कवि-कर्म की दृष्टि से ये वर्णन मौलिक होते हुए भी कथानक की धारावाहिकता को अवरुद्ध करते है। नवे सर्ग से कथानक का टूटा हुआ सूत्र कवि फिर पकडता है। यहाँ से कथानक तीव्र गति से आगे बढता है और अन्तिम सर्ग तक उसमे श्रृ खलाबद्धता एव धारावाहिकता विद्यमान है। नवे सर्ग मे वस्तुपाल के स्वप्न का वर्णन कदाचित् कवि की मौलिक उद्भावना है। इससे कथानक मे रोचकता बढ गई है। कवि इस घटना का सामजस्य कथानक के साथ करने मे पूर्ण सफल हुआ है। चौदहवें सर्ग मे वस्तुपाल की मृत्यु के वर्णन मे रूपक-तत्त्व का भी सफल निर्वाह हुआ है। वस्तुपाल-सद्गति का परिणय करा कर एक ओर कवि ने महाकाव्य को सुखान्त बनाने का प्रयत्न किया है दूसरी ओर कथावस्तु मे नाटकीयता का समावेश कर उसे सरस बनाया है। वस्तुत कथानक मे शिथिलता होने पर भी उसमे अविच्छिन्नता, विविधता और रोचकता विद्यमान है।

'वसन्तविलास' मे कवि ने चरित्रचित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है।

चरित्रचित्रण

वैसे तो 'वसन्तविलास' मे वस्तुपाल, तेजपाल, वीरधवल, शख आदि अनेक पात्र हमारे समक्ष आते है, किन्तु चरित्रचित्रण की दृष्टि से वस्तुपाल का चरित्र ही विशेष महत्त्व रखता है।

वस्तुपाल अश्वराज का पुत्र है जिसे वीरधवल का मन्त्री बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। वस्तुपाल मे नायकोचित सभी गुण विद्यमान है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। राजा वीरधवल उसके व्यक्तित्व से बडा प्रभावित होता है। उसके द्वारा कहे गये इन शब्दो मे वस्तुपाल (और तेजपाल) के भव्य व्यक्तित्व का उद्घाटन हुआ है —

वस्तुपाल

मूर्तिर्गुणान् शंसति वो गरिष्ठान् कुलप्रतिष्ठां विनयक्रमश्च ।
शास्त्रज्ञता गीरवगीतवीतं वयो वय तु स्तुमहे महेच्छौ ॥
न यौवनेऽपि स्मरघस्मरत्व न वैभवेऽपि ववचनाचिवेकः ।
न दुर्जनेऽप्यार्जवविप्लवो यत्तन्निर्मितौ वा विधिना नवेन ॥[1]

वस्तुपाल स्पष्टवक्ता और निर्भीक है। लोभ तो उसे छू ही नही गया है। वीरधवल जब उससे मन्त्रिपद सँभालने के लिए कहते है तो वह स्पष्ट शब्दो मे वीरधवल से कह देता है कि वह उसी दशा मे मन्त्रिपद ग्रहण कर सकता है जब कि वे (वीरधवल) न्याय्य पथ पर चले, लोभ को पूर्णतया त्याग दे, चापलूस पिशुनो की सगति त्याग दे और शान्ति का दृष्टिकोण अपनाएँ —

न्याय यदि स्पृशसि लोभमपाकरोषि,
कर्णेजपानपधिनोषि शम तनोषि ।
सुस्वामिनस्तव धृत शिरसा निदेश-
स्तन्नूनमेष मयकाऽपरथाऽस्तु भद्रम् ॥[2]

वीरधवल जैसे प्रतापी शासक के कहे गये वस्तुपाल के ये शब्द उसकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता के प्रमाण है।

वस्तुपाल जाति स वणिक् है, किन्तु स्वभाव और कर्म से क्षत्रिय है। उसमे क्षत्रियोचित वीरता एव स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा है। वीरधवल के मारवाड-युद्ध मे चले जाने पर शख जब वीरधवल के राज्य पर आक्रमण करता है तो वह उसका वीरतापूर्वक सामना करता है। वस्तुपाल को अपने स्वामी वीरधवल के गौरव का ध्यान है। शख-दूत वस्तुपाल से शख की अधीनता स्वीकर करने और शख से युद्ध न करने की बात करता है तो वस्तुपाल उसके प्रस्ताव को इन शब्दो मे ठुकरा देता है:—

अद्य वीरधवल क्षितिपेन्द्रो लज्जते स भुवि केशवमूर्ति.
आगते त्वयि यदि प्रधनान्तादङ्घ्रिकर्षणमह वितनोमि ।[3]

वस्तुपाल के इस कथन म उसकी स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायणता एव क्षत्रियोचित वीरता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

वस्तुपाल कुशल शासक है। प्रजा का हित करना वह अपना सर्वप्रथम कर्तव्य

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ३, श्लोक ७०-७१ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक ८०
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ४६

समझता है। वीरधवल जब उसे स्तभतीर्थ का प्रबन्धक नियुक्त करता है उस समय स्तभतीर्थ मे अव्यवस्था और भ्रष्टाचार फैला हुआ था। वस्तुपाल वहाँ की अव्यवस्था को दूर करता है और व्यवस्था स्थापित करता है। वह शासन से भ्रष्टाचार को दूर करता है, फलस्वरूप प्रजा की समृद्धि दिन-पर-दिन बढती जाती है। निम्नोद्धृत पक्तियो से वस्तुपाल की शासनकुशलता का परिचय मिलता है —

श्री वसन्तसमयेन समन्तादेव काननमिवाहितशोभम् ।
स्तभतीर्थनगर तदशेष दिद्युते भृतपुनर्नवसम्पत् ॥
पापिभिर्यदधिकारिभिरन्यैस्तामसैरिव हतश्रि बभूव ।
भास्वतेव भुवन वसुभाजा सम्भृतश्रि तदनन जजृम्भे ॥
यत्कुकर्ममलिनीकृतमासीत्कूटधीभिरधिकारिभिरग्रे ।
शासनेन सुधियोऽस्य विशुद्धि प्राप गाङ्गपयसेव पुरं तत् ॥[1]

वस्तुपाल धर्म-कर्म-परायण है। वह अपना समस्त धन तीर्थयात्रा एव जनहित मे व्यय करता है। लोकहित के लिए वह अनेक कूप, तडाग एव मन्दिरो का निर्माण एव जीर्णोद्धार कराता है। उसके धर्मानुराग को देख कर कवि उसकी प्रशसा इन शब्दो मे करता है:—

किं ब्रूम श्रमनिस्सहा वयममी श्रीवस्तुपालोऽवनौ
धर्मस्थानपरम्परा व्यधित यामुज्जासितारिव्रज ।
तामाख्यातुमपि क्षमा न कवयो व्योम्नीव तारावली
मेकेनैव दिनेन ये कवयितुं शक्ता प्रबन्धानपि ॥[2]

वस्तुपाल काव्यरसिक और कवियो का आश्रयदाता है। उसके विद्यानुराग ने मुंज और भोज की कीर्ति को भी फीका कर दिया था —

काव्यकेलिरसिक कविवृन्दावर्जन समतनिष्ट तथाऽसौ ।
मुंजभोजयशसां ध्रुवमोज सचयो भुवि यथा स वृथाऽभूत् ॥[3]

इस प्रकार 'वसन्तविलास' मे वस्तुपाल, शूरवीर, स्पष्टवादी, प्रशासनिक कार्यो मे निपुण, धार्मिक, काव्यकलामर्मज्ञ एव कवियो के आश्रयदाता के रूप मे आता है।

अन्य पात्रो मे तेजपाल, वीरधवल एव शख का नाम उल्लेखनीय है। काव्य मे तेजपाल आदर्श लघुभ्राता के रूप मे चित्रित किया गया है। ज्येष्ठ भ्राता वस्तुपाल मे उसकी अनन्य श्रद्धा एव प्रीति है। तेजपाल के भ्रातृ-प्रेम एव उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे सुन्दर बन पडी है —

अन्य पात्र

इन्द्रोपेन्द्राविव स्वर्गं चन्द्रादित्याविवाम्बरम् ।
तावलचक्रतुरुभौ राज्यं चौलुक्यभूपते ॥

---

(१) वही, सर्ग ५, श्लोक ७-९ (२) वसन्तविलास, सर्ग ४, श्लोक ५४
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक १४

रामलक्ष्मणयो. प्रीति नीति य गुरुशुक्रयो: ।
सूर्यचन्द्रमसोस्तेजस्तौ सारमिदमारतु: ।।
तेजांसि पालयंल्लक्ष्मीहर्म्ययोरसिधर्मयो: ।
तेजपाल: स्वनामैतच्चरितार्थमसूत्रयत् ।।
निरस्तदूषणे ज्येष्ठे यस्य भक्तिं वितन्वत. ।
अजातशक्तिभेदस्य कथ स्याल्लक्ष्मण' सम ।।[1]

वीरधवल आदर्श क्षत्रिय नृप है। वस्तुपाल के ये शब्द उसके चरित्र की निर्मलता पर अच्छा प्रकाश डालते है —

क्षत्रिया: कलियुगेन दूषिता. सर्वतोऽपि न मामक: प्रभु: ।
कालतोऽप्यखिलधातुजित्वरी श्यामिका न कनकस्य जायते ।।
पापकालकलिकालसंगतोऽप्येति नैव विकृतिं कृती जन ।
उत्कठोररवकाकपोषित: क्वापि कूजति कटूनि कोकिल: ।।[2]

शख वीर प्रतिनायक के रूप मे चित्रित किया गया है। वह अवसर पाकर धवलक्कक पर आक्रमण करता है और वस्तुपाल को लालच देकर अपनी ओर मिलाना चाहता है। कूटनीति मे असफल होने पर वह वस्तुपाल से युद्ध करता है, किन्तु हार कर भागता है।

'वसन्तविलास' मे अन्य वर्णनो के साथ प्रकृति-वर्णन को विशेष स्थान मिला है। आदि से लेकर अन्त तक 'वसन्तविलास' मे प्राकृतिक दृश्यो के विविध चित्र मिलते है। इन प्रकृति-चित्रो मे अनेकरूपता और विविधता पाई जाती है। 'वसन्तविलास' मे यथातथ्य-रूप मे प्रकृति का वर्णन वहुत कम स्थलो पर पाया जाता है, किन्तु जहाँ प्रकृति का यह रूप प्रस्तुत किया गया है वहाँ सहज-स्वाभाविक वातावरण के निर्माण करने मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सन्ध्या का आगमन होते ही कौए अपने नीडो मे लौट आते है और अपने परुष स्वर से काँव-काँव कर वातावरण को कोलाहलमय बना देते है। प्रकृति का यह सहज-स्वाभाविक रूप इन पक्तियो मे मुखरित हो उठा है —

प्रकृतिचित्रण

अस्तमेति भवतामयं रिपुर्गृह्यतां जगदितीव भाषिण ।
कोटरस्थतमसामिव स्पशावायसा प्रतिदिशं ववासिरे ।।[3]

वस्तुपाल के प्रभासतीर्थ की ओर प्रयाण करते समय कवि ने पशु-प्रकृति के स्वाभाविक चित्र उपस्थित किये है। निम्नोद्धृत पक्तियो मे सवार के पृष्ठदेश पर आरूढ होते ही ऊँट के उत्क्रोश करने और शीघ्रता से उठ कर लम्बे डग भरते हुए चल पडने का स्वाभाविक चित्रण हुआ है —

क्रमेलकानां निवहेषु शीघ्रमुत्थाय दीर्घक्रममुद्विरावी ।

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ४, श्लोक २, ५, ८, ६ (२) वही सर्ग १०, श्लोक ७-८
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ८

आरूढमात्रैष्ववधिपृष्ठदेशेष्वथोष्ट्रपालेषु पलायते स्म ॥[1]

इस प्रकार बबूल की पत्तियो को ओठ हिला-हिला कर आनन्दपूर्वक चबाते हुए ऊँट का यह चित्र भी अत्यन्त स्वाभाविक बन पडा है —

बब्बूलचूला मृदुलोपशाखा' सुखं लिहन्तो लुलदोष्ठमुष्ट्राः ।
स्वैरं विचेरु परितो महाद्रिमुत्त्रासयन्तो वनसैरभाणि ॥[2]

एक अन्य चित्र मे भार उतारने के लिए ऊँट को विठाते समय उसके उच्च स्वर से चिल्लाने का स्वाभाविक दृश्य प्रस्तुत किया गया है ।[3] ऐसा ही स्वाभाविक वर्णन वृषभो का हुआ है । निम्न पक्तियो मे वृक्षो की छाया मे बँधे हुए बैल सुखपूर्वक जुगाली करते हुए चित्रित किये गये है —

निपाय्य तोयानि महीरुहाणां छायासु बद्धा परितो महोक्षाः ।
पूत्कारिघोणाः परिवृत्य घासमुद्गालयन्ति स्म सुख निषण्णा ॥[4]

'वसन्तविलास' मे यत्र-तत्र नामपरिगणनात्मक शैली को भी अपनाया गया है । आदिनाथ-पूजन-प्रसग में विविध पुष्पो की नामावली गिनाई गई है —

मल्लिकावकुलजातियूथिकाकेतकाब्जशतपत्रचम्पकै. ।
आदिनाथमथ सैष पूजयामास वासव इवावनीगत ॥[5]

वसन्तविलासकार ने अनुकूल वातावरण के निर्माण के लिए आदर्श और अलौकिक प्रकृति की योजना भी की है । इन स्थलो पर प्रकृति स्वाभाविकता के विरुद्ध आचरण करती हुई दृष्टिगत होती है । रैवतक पर्वत के इस दृश्य मे सर्प-नकुल, हस्ती-सिंह तथा मूषक-मार्जार अपने प्राकृतिक वैर-भाव को त्याग कर परस्पर क्रीडा करते हुए चित्रित किये गये है —

जिनपतिर्महिमप्रशान्तवैरव्यसनतया चिरमेणचित्रकेण ।
विषधरनकुलेन हस्तिसिंहेन च कृतसौहृदमुन्दिरौतुना च ॥[6]

प्रकृति का यह अलौकिक एव आदर्श रूप एक ओर जिनपति की अद्भुत महिमा को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर धार्मिक प्रशान्त वातावरण की सृष्टि करता है ।

'वसन्तविलास' मे प्रकृति की उद्दीपन-रूप मे योजना अनेक स्थलो पर हुई है । वसन्तकाल की उद्दीपक प्रकृति मानिनी स्त्रियो को मान छोडने के लिए विवश कर रही है .—

मनस्विनीभिर्जगिरे प्रियाणामुपासितानामपि कोपिताभि ।
वाच शुचौघाः स्वगिरा विलासमुपासितानामपि कोऽपि ताभि. ॥[7]

बालचन्द्रसूरि ने अपने काव्य मे प्रकृति का मानवीकरण भी किया है । निम्नोद्धृत

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ११, श्लोक १८
(२) वही, सर्ग ११, श्लोक ८३
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक ८२
(४) वही, सर्ग ११, श्लोक ८४
(५) वही, सर्ग १२, श्लोक ९
(६) वही, सर्ग ६, श्लोक ६५
(७) वही, सर्ग ६, श्लोक ६६

पक्तियो मे वर्षाकालीन पृथ्वी को नायिका के रूप मे चित्रित किया गया है :—

समददर्दुरकूजितपूजिता हरितरोमविकारनिरन्तरा ।
जलदकान्तगृहीतगिरिस्तनी भृतरसा तरसा रुरुचे रसा ॥[1]

इसी प्रकार इस पद्य मे समुद्र मे सजीवता का आरोप कर उसे एक मित्र के रूप मे देखा गया है जो प्रमोद से हँसता हुआ अपनी भुजाओ को फैला कर मन्त्रीश्वर वस्तुपाल का आलिगन कर रहा है .—

गम्भीरगम्भीरनिधि: प्रमोदशालीव गर्जन्विहसंश्च फेनै ।
कल्लोलहस्तैरविलोलचित्तं मन्त्रीश्वरं मित्रमिवालिलिग ॥[2]

'वसन्तविलास' मे यत्र-तत्र प्रकृति का प्रयोग अलकारो के रूप मे भी हुआ है, जैसे:—

तस्मिन्नसौ संघयुतो जिनेश्वर श्रीनेमिनामानममानमानसः ।
विलोक्य केकीव पुरो नवाम्बुदं भेजे मुदं वाष्पकदम्बितेक्षणः ॥[3]

यहाँ प्रस्तुत को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत के रूप मे प्राकृतिक उपमानो का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार 'वसन्तविलास' मे प्रकृति का चित्रण विविध रूपो मे हुआ है ।

'वसन्तविलास' मे परम्परागत नखशिखवर्णन को स्थान नही मिला है और न उसमे पात्र-विशेष के सौन्दर्य का चित्रण करने का प्रयास किया गया है । चतुर्थ सर्ग मे वस्तुपाल के गुणो पर प्रकाश डाला गया है । इसके अन्तर्गत वस्तुपाल के

सौन्दर्यवर्णन

आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है जिसमे कही-कही बाह्य सौन्दर्य की झलक भी मिल जाती है । उदाहरणार्थ वस्तुपाल के वक्षस्थल की विशालता एव मुख की कमलोपम सुन्दरता की व्यजना इन शब्दो मे की गई है —

वीक्ष्य वक्षसि सानन्दमिन्दिरां कृतमन्दिराम् ।
स्पर्द्धयेव मुखाम्भोज भेजे यस्य सरस्वती ॥[4]

'वसन्तविलास' मे तत्कालीन समाज के स्वरूप को व्यक्त करने वाली सामग्री भी अधिक नही मिलती है, यत्र-तत्र उसका निर्देशमात्र हुआ है । उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति अच्छी नही थी । राजा अपने कर्त्तव्यो से च्युत हो गये थे । वे

समाज-चित्रण

सदैव इसी प्रयत्न मे लगे रहते थे कि प्रजा से अधिकाधिक धन वसूल किया जाए । अधिकारीवर्ग भी राजाओ की चापलूसी मे लगा रहता था और वह भी उन्हे प्रसन्न करने के लिए प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार करके प्रचुर धन वसूल करता था । तत्कालीन राजवर्ग की धनलिप्सा तथा उसके प्रजापीडक एव शोषक स्वरूप की अभिव्यक्ति वस्तुपाल के इन शब्दो मे हुई है .—

भूभुजो द्रविणदृष्टयोऽधुना सेवकास्तदनुवृत्तिवृत्तयः ।
तेऽपि तेऽपि कृतदुष्करोदया ही परत्र निपतन्ति रौरवे ।[5]

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ६, श्लोक २० (२) वही, सर्ग ११, श्लोक ४१
(३) वही, सर्ग १३, श्लोक ४ (४) वही, सर्ग ४, श्लोक ४४
(५) वही सर्ग ३, श्लोक ७८

राज्य की सुव्यवस्था की ओर राजाओ का ध्यान कम था। मार्ग सुरक्षित नही थे और यात्रियो को चोर लूट लेते थे। वन और बीहडो की अधिकता थी। मार्ग इन वन-बीहडो मे होकर ही जाते थे, फलस्वरूप यात्रियो को वन-बीहडो मे विचरने वाले जगली जानवरो से भी भय रहता था। इसी कारण वस्तुपाल के सघ की रक्षा के लिए एक विशाल सेना भी संघ के साथ गयी थी। वस्तुपाल से कहे गये वीरधवल के इन शब्दो मे मार्गो की असुरक्षा एव शासनतन्त्र की अव्यवस्था की गूढ अभिव्यक्ति हो रही है —

अयि क्वचिद्वर्त्मनि तीर्थभूभृतामयं न चौरैश्चरटैरुपद्रुत ।
न श्वापदै सिद्धिपदैषिणस्तव श्रीसघसघातजनो महामते ॥[1]

वस्तुपाल की तीर्थयात्राओ से तत्कालीन धार्मिक अवस्था पर भी कुछ प्रकाश पडता है। गुजरात मे उस समय जैन धर्म का प्रचार अधिक था। लोगो मे तीर्थयात्रा के प्रति बड़ा उत्साह था। सम्पन्न लोग सघपति बन कर ससघ तीर्थयात्रा करते थे।

कवि ने अपने धार्मिक (जैनधर्म के) विचारो की अभिव्यक्ति कही नही की है। वस्तुपाल की सघयात्रा एवं विविध तीर्थकरो की उपासना के प्रसग मे धर्म के जिन सामान्य सिद्धान्तो का प्रकाशन हुआ है उनमे धार्मिक कट्टरता की गन्ध भी नही आती। निम्नोद्धृत पक्तियो मे लक्ष्मी की वृद्धि धर्म से और धर्म की वृद्धि तीर्थयात्रा से होती है, यह बताया गया है :—

धार्मिक विचार

राज्यमेतदुपचीयते श्रिया जायते जगति सापि धर्मत ।
जृम्भते स तु सुतीर्थयात्रया सा तु देव भवति त्वदाज्ञया ॥[2]

धर्म की महत्ता प्रतिपादित करने वाले कतिपय सामान्य कथन 'वसन्तविलास' मे और भी मिल सकते है, किन्तु उनमे धार्मिक कट्टरता का अभाव है। वस्तुतः कवि ने न तो किसी मत-विशेप का खण्डन-मण्डन किया है और न उसका यह लक्ष्य रहा है। उसकी इस सम्प्रदाय-निरपेक्षता ने 'वसन्तविलास' के साहित्यिक और ऐतिहासिक मूल्य मे पर्याप्त वृद्धि की है।

'वसन्तविलास' मे भावो और रसो की समुचित व्यजना हुई है। यह वीररसप्रधान महाकाव्य है। पचम सर्ग मे वीररस की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है। शख और वस्तुपाल के युद्ध के वर्णन मे वीररस का एक चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :—

रस-परिपाक

वस्तुपालसुभटाः पृथुलाभप्रेंखितभ्रुकुटिभङ्गतरङ्गाः ।
चुक्षुभुः प्रलयकाल इवाम्भो राशयोऽधरदल दलयन्त ॥
केऽपि मङ्क्षु नमितोन्नमितासा पाणिभि प्रहतवक्रितदोषा ।
उत्सृतैर्विदलिताङ्गदरत्नैः कोपपावककणैरिव भेजुः ॥
केऽपि कोपपरतन्त्रतयाग्रे स्तंभयष्टिमवहस्तनिपातैः ।

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग १३, श्लोक ५२ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक ११

खण्डशो व्यधुरुदग्रबलादालानदण्डमिव मत्तकरीन्द्राः ।।
उद्धतैरपि च केऽपि शिरोजैर्लोचनैरपि च शोणमहोभि ।
कोपपावकभवैरिव धूमैर्विस्फुलिगशकलैरिव रेजुः ।।
आलिलिगुरसियष्टिमिहैके निश्चुचुम्बुरसिधेनुमथान्ये ।
अस्तवंश्च भुजयुग्ममपि स्वं केऽपि सङ्गरमधित्वरमाणा ।।[1]

इन पक्तियो मे वस्तुपाल के सैनिको के उत्साह का सुन्दर चित्र अकित है। उनके उत्साह का आलम्बन विभाव शख है। युद्ध के नगाडे बजना एव युद्ध का उत्साह-वर्धक वातावरण उद्दीपन विभाव है। सैनिको का क्रुद्ध होना, सिर के केशो का खडा हो जाना, आँखो का लाल होना, असियष्टि का आलिगन करना तथा अपने भुजयुग्म की प्रशसा करना अनुभाव है। हर्ष, मद, उत्सुकता आदि सचारी भाव है। यहाँ वीर रस के सहायक के रूप मे रौद्र रस की छटा भी दीख पडती है। दसवे से लेकर तेरहवे सर्ग तक विविध तीर्थयात्राओ के करने, वापीकूपतडागादि के निर्माण कराने, तुलादान आदि करने के वर्णनो मे भी वस्तुपाल के उत्साह की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ वस्तुपाल की धर्मवीरता एव दान-वीरता का अकन हुआ है।

'वसन्तविलास' के छठे, सातवे एव आठवे सर्गों मे ऋतु, सूर्योदय आदि के पारम्परिक वर्णनो मे सयोग शृगार का परिपाक हुआ है। चन्द्रोदय-वर्णन की इन पक्तियो मे नायक-नायिका की रति का वर्णन अच्छा बन पडा है —

सुभ्रुवा दयितया च चुम्बनालिङ्गनैर्विकसदङ्गसम्पदा ।
अन्तरीयमगलन्नितम्बतः कंचुकस्य गृहकाणि तुत्रुटुः ।।
स्वस्तिकीकृतभुजा कुचग्रहे मीलितोरुयुगलांशुकाहृतौ ।
वल्लभेन न न नेति वादिनी पर्यरम्भि दशताधरं वधूः ।।[2]

दसवे-ग्यारहवे सर्ग मे तीर्थ-यात्रा-प्रसगो मे यत्र-तत्र देवता-विषयक रति का चित्रण हुआ है। जैसे:—

भाविनोऽत्र ननृतुः स्फुरत्करा. केऽपि केऽपि लुठदङ्गकान्यदु ।
आदिनाथमवलोक्य केचन व्याहरन् जयजिनेति भारतीम् ।।
संघराट् समभिक्रुत्य भूतलन्यस्तभालफलकः कृतानति ।
आदिनाथपदयोः प्रसारितोदारबाहुरुपगूहनं व्यधात् ।।[3]

यहाँ वस्तुपाल एव उनके सहयात्रियो के हृदय मे अवस्थित आदिनाथ-विषयक रति स्थायी भाव है। आदिनाथ आलम्बन विभाव है। मन्दिर का शान्त वातावरण उद्दीपन विभाव है। भक्तो का हाथ उठा-उठा कर नृत्य करना, जिनेश्वर की जयजयकार करना, भूतल पर भाल रख कर आदिनाथ के पदो का स्पर्श करना आदि अनुभाव है। हर्ष,

(१) वसन्तविलास, सर्ग ५, श्लोक ५०–५३, ५५ (२) वही, सर्ग ८, श्लोक ५७–५८
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक ६२–६३

उत्साह आदि सचारी भाव है। विभाव, अनुभाव और सचारी भावो के सयोग से यहाँ देवता-विषयक रति-स्थायी-भाव की परिणति भक्ति-रस मे हुई है।

श्रृ गार रस के सहायक के रूप मे कही-कही हास्य रस के छीटे भी 'वसन्तविलास' मे दीख पडते है। जघन-स्थल पर नायक द्वारा किये गये नखक्षत की वेदना से नायिका बार-बार सीत्कार कर रही है। नायिका की यह चेष्टा नायक को हास्य रस की सामग्री प्रदान कर रही है—

विकूणयन्ती वदने पदे पदे नखव्रणार्त्या जघनस्य काचित्।
विबाधते ते किमिति प्रहासिनं जघान लीलाकमलेन कामिनम्॥[1]

युद्ध-प्रसगो मे वीभत्स रस की झाँकी भी दृष्टिगत होती है। निम्नोद्धृत पक्तियो मे वीभत्स रस की अभिव्यक्ति हुई है—

वस्तुपालसुभटेषुभिरुच्चैरातपत्रनिवहेषु समन्तात्।
पातितेषुरिपुराजकबन्धैः श्येनमण्डलमवाप तदाभाम्॥
श्रृ गकैरिव विहस्य गृहीतैः रिक्तवाणघिभिरेव पिशाचैः।
रौधिरेषु विदधुर्जलकेलिं निम्नभूतलगतेषु नदेषु॥[2]

यहाँ श्येनगृद्धादि द्वारा शवो के खाये जाने एव पिशाचो द्वारा रुधिरनद मे जल-केलि किये जाने के वर्णन मे वीभत्स रस का निर्वाह हुआ है।

'वसन्तविलास' मे बालचन्द्रसूरि ने प्रौढ और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। उनके काव्य की भाषा सरल, कोमल और स्वाभाविक है, किन्तु कही-कही उसमे दीर्घ-समासयुक्त पदावली का प्रयोग भी हुआ है। ऐसे स्थलो पर भाषा अस्वाभाविक भाषा एव क्लिष्ट हो गई है। जैसे:—

वाजिराजिखुरखातमेदिनीधूलिधूसरितभानुमण्डल।
वाद्यमानघनमंगलानकध्वानडम्बरकरम्बिताम्बर॥
सचरच्छकटसकटीभवन्मार्गपद्धतिरनुद्धताकृति।
सघपकजमुखीमुखोच्चरच्चर्चरीरवपरीतदिङ्मुख॥[3]

फिर भी ऐसी कृत्रिम भाषा का प्रयोग 'वसन्तविलास' मे अधिक नही हुआ है। साधारणतया उसकी भाषा प्रसादगुणमयी, परिमार्जित और सुव्यवस्थित है। पदविन्यास प्रसग और भावो के अनुकूल है। वसन्तक्रीडा के इस वर्णन मे भाषा की मृदुलता, सरलता एव सजीवता द्रष्टव्य है—

प्रतिदिश लवलीलवलीधुताऽद्भुततमालतमालतरूत्तर।
अभिससार ससारसकूजितो धृतलवङ्गलवङ्गलताध्वज॥[4]

श्रृ गार-सम्बन्धी प्रसगो मे कवि की भाषा सर्वत्र सरल, मधुर एव दीर्घ-समासमान्त

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ७, श्लोक ७ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक ९०–९१
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक २९–३० (४) वही, सर्ग ६, श्लोक ४५

पदावली से रहित है। अनुप्रास के मजुल प्रयोग से उसमे श्रुतिमधुरता आ गई है। पुष्पा-वचयप्रसग की शृ गारोपयुक्त भाषा के कतिपय उदाहरण देखिए:—

विकूणयन्ती वदनं पदे पदे नखव्रणार्त्या जघनस्य काचित् ।
विबाधते ते किमिति प्रहासिन जघान लीलाकमलेन कामिनम् ॥
तवान्तिकं साम्प्रतमानयामि तामिति प्रतिज्ञां कृतपूर्विणी पथि ।
सखि स्पृशेर्मामिति धाविता मनस्विनीमहो कापि निनाय कामुकम् ॥[1]

वीर रस के प्रसगो मे कवि की भाषा अवसर के अनुकूल श्रुतिकटु, सयुक्तवर्णो एव समस्त पदावली से युक्त हो गई है। जैसे.—

वीरगर्वगदितैर्हयहेषाडम्बरै: करटिबृंहितवृन्दै ।
स्यन्दनप्रकरचीत्कृतिजातै. काहलायमलशंखनिनादै. ॥
आहतस्फुरफटत्कृतिखड्गाखड्गिझकृतिधनुर्ध्वनिभिश्च ।
भट्टलोकतुमुलै शरमालासूत्कृतैर्भुवनमेतदपूरि ॥[2]

'वसन्तविलास' मे अनुप्रास और यमक के सुन्दर प्रयोग से भाषा मे प्रवाह और गति आ गई है। कही-कही कवि ने पशुपक्षियो की ध्वनियो का सफल अनुकरण किया है। निम्नाकित पद्य मे अश्वो की हेषाध्वनि का अनुकरण हुआ है:—

रेभा सुरेभान्तिकमुत्प्रयातान् व्यधुस्तदेभास्तुरगान् विलोक्य ।
तुरंगमा अप्यगमा भयेषु सरोषहेषं हिहिहीति चक्रु: ॥[3]

यत्र-तत्र सूक्तियो के प्रयोग से 'वसन्तविलास' की भाषा अधिक प्रभावशाली बन गई है। जैसे:—

विधीयमानेऽपि हिते नितान्त कान्तं वचो हि ब्रुवते न मूढा: ।[4]
काललोऽप्यखिलधातुजित्वरी श्यामिका न कनकस्य जायते ।[5]
पश्य कोमलकरो निषेव्यते तारकैरपि शशी न भानुमान् ।[6]
प्रणेयमिष्ट सदृशां हि संगम: ।[7]

'वसन्तविलास' की भाषा पर एक दो स्थान पर देशी भाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिए निम्नोद्धृत पद्य मे 'कलाचिका' शब्द का प्रयोग हुआ है :—

ताटंकमाधाय कलाचिकायां कर्णे पुन ककणमुच्चकार ।[8]

यह कलाचिका शब्द अपभ्र श कलाइअ (हिन्दी कलाई) शब्द से प्रभावित ज्ञात होता है। इस प्रकार 'वसन्तविलास' की भाषा सामान्यतया भावानुकूल, प्रौढ और परि-मार्जित दिखाई देती है। कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार है और उसने 'वसन्तविलास' की भाषा को प्रवाहयुक्त एव व्यावहारिक बनाने की सफल चेष्टा की है।

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ७, श्लोक८, १५ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक ७६-७७
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक १२ (४) वही, सर्ग ११, श्लोक ८२
(५) वही, सर्ग १०, श्लोक ७ (६) वही, सर्ग १०, श्लोक १७
(७) वही, सर्ग १०, श्लोक २३ (८) वही, सर्ग ११, श्लोक ४६

अपने युग के कतिपय अन्य कवियो की तरह बालचन्द्रसूरि ने भी 'वसन्तविलास' मे अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए शब्दो के साथ क्रीडा की है। ऐसे स्थलो पर सरलता और

शब्दक्रीड़ा एव पाण्डित्य-प्रदर्शन

सरसता कवि का साथ छोड गई है और पाठको के पल्ले दुरूहता ही पडती है। इस पद्य मे द्वितीय और चतुर्थ चरण का निर्माण क्रमश प्रथम एव तृतीय चरण की पदावली की पुनरावृत्ति करके किया गया है --

श्रीवस्तुपालो जगदेकवीर, श्रीवस्तुपालो जगदे कवीर ।
वैतालिकेनाचल संस्तवेन, वैतालिकेनाचलसस्तवेन ।।[1]

निम्नोद्धृत पद्य मे द्वितीय और चतुर्थ चरणो की पदावली समान दीख पडती है —

अचल एष चुलुक्यसभामणे ! सकलभ सहरि कटकोत्कट ।
सचिवभूप ! भवानिव भासते, स कलभ सहरि कटकोत्कट ।।[2]

कुछ पद्यो मे प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध की पदावली की पुनरावृत्ति द्वितीय चरण के उत्तरार्द्ध मे तथा तृतीय चरण के उत्तरार्द्ध की पदावली की पुनरावृत्ति चतुर्थ चरण के उत्तरार्द्ध मे करके कवि ने अपने भाषाधिकार का प्रदर्शन किया है। जैसे --

अयमुदर्चति सिन्धुरसंगतैर्विदुलकैरधिसिन्धुरसं गतै ।
वनचरै सुखसारसखजनैरधिरतोऽपि च सारसखजनै ।।[3]

निम्नाकित पद्य मे प्रत्येक चरण के उत्तरार्द्ध की पदावली का प्रयोग आगामी चरण के पूर्वार्द्ध मे किया गया है --

अस्मिन्घना श्यामलतासु कान्ता, लतासुकान्ता सहिता सुरेभा ।
हितासु रेभासु समीरयन्त समीरयन्त सततं गतानि ।।[4]

एक पद्य मे तो प्रथम-द्वितीय चरणो की समस्त पदावली की पुनरावृत्ति तृतीय-चतुर्थ चरणो मे करके कवि ने अपना असाधारण कौशल दिखाया है —

भ्रमरहितविकचसुमनोमुनिभिर्विनिकाममयभितोऽनूनम् ।
भ्रमरहितविकचसुमनोमुनिभिर्विनिकाममयभितोऽनूनम् ।।[5]

ऐसे प्रयोगो द्वारा कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार तो अवश्य परिलक्षित होता है, किन्तु सरसता, जो काव्य का प्राण है, का उसमे कही पता नही चलता।

'वसन्तविलास' मे कवि ने अपने भावो को मूर्त रूप देने एव भाषा को सजाने के

अलंकार

लिए विविध अलकारो का प्रयोग किया है। अलकारो मे शब्दालकार और अर्थालकार दोनो का प्रयोग हुआ है। शब्दालकारो मे अनुप्रास, यमक एव वीप्सा का प्रयोग बहुत हुआ है। इस पद्य मे अनुप्रास की योजना भावोद्रेक मे सहायक हुई है —

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग १२, श्लोक १३　　(२) वही, सर्ग १२, श्लोक १४
(३) वही, सर्ग १२, श्लोक १६　　(४) वही, सर्ग १२, श्लोक २५
(५) वही, सर्ग १२, श्लोक २८

हर्तु मन श्री सचिवेश्वरस्य यदैव काचिच्चकमे तदासौ ।
स्मरेण कोदण्डकरेण रोपै रोमांचरूपैरभिकीलितेव ।।[1]

यमक और वीप्सा अलकार की योजना ऐसे पद्यो मे हुई है.—

यमक — अस्मिन्घना श्यामलतासु कान्ता लतासु कान्तासहिता सुरेभा ।
हितासु रेभासु समीरयन्त समीरयन्तः सततं गतानि ।।[2]

वीप्सा:— देवे सत्यपि जागरूकमहसि श्रीवस्तुपाले पुरी—
मेतां भड्क्तुमहं पुरत्र सहसा यः साहसादागमत् ।
भो भोः शंखनृप क्व स क्व स इति व्याहारघोरः पुरः
स्तम्भ सैष जघान शंखनृपति सोऽस्मीति यो योऽवदत् ।।[3]

अर्थालकारो मे उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अधिक किया गया है । उपमा का एक सुन्दर प्रयोग इन पक्तियो मे हुआ है :—

गर्जन्त उच्चैः सुचिरं किरन्तो मदाम्बुजम्बालितधूलिजालम् ।
गुरूदराद्रि परित करीन्द्रा बभु पयोदा इव नीलभासः ।।[4]

यहाँ हाथियो के लिए पयोद उपमान प्रस्तुत किया गया है । उत्प्रेक्षा की विशद अवतारणा ऐसे पद्यो मे हुई है:—

नार्यो बभु स्फाटिककुट्टिमाग्रसुवर्णवातायनसन्निविष्टाः ।
आकाशमार्गेण वसन्तवीक्षागता इव स्वर्वनिता विमानैः ।।[5]

अन्य अलकारो मे कैतवापह्नुति, असगति, विरोध, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, सन्देह आदि अलकारो का प्रयोग भी हुआ है । इन अलकारो का एक-एक उदाहरण पादटिप्पणी मे दिया जाता है ।[6]

---

(१) वसन्तविलास, सर्ग ११, श्लोक ५३
(२) वही, सर्ग १२, श्लोक २५
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ६६
(४) वही, सर्ग ११, श्लोक ६१
(५) वही, सर्ग ११, श्लोक ५८
(६) कैतवापह्नुति .—कालपाशपतितेऽथ भास्वति पूर्वदिक्कुलवधूर्विलापिनी ।
यच्छति स्म निजकौमुदीमिषादन्धकारतिलमिश्रितं पयः ।।
—वही, सर्ग ८ श्लोक १८

असगति :—औत्सुक्यतो हारलता नितम्बे निवेश्य कण्ठे रसनां च काचित् ।
ताटंकमाधाय कलाचिकायां कर्णे पुनः कंकणमुच्चकार ।।
—वही, सर्ग ११, श्लोक ४६

विरोध —एकोऽपि शंखनिशितासिलताप्रहाराज्जातो द्विधा समरसीमनि भूमिपालः ।
पंचत्वमाप्य सहसा जगतां समक्षं भेजे ततस्त्रिदशतामिति कौतुकेन ।।
—वही, सर्ग ५, श्लोक १०४

महाकाव्य के परम्परागत नियमो के अनुसार 'वसन्तविलास' के प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द के प्रयोग और सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन हुआ है। कतिपय सर्गों मे विविध छन्दो की योजना भी हुई है। प्रथम सर्ग मे उपजाति, द्वितीय मे प्रमिताक्षरा,

छन्द

तृतीय मे उपजाति, चतुर्थ मे अनुष्टुप्, छठे मे द्रुतविलम्बित, सातवे मे वशस्थ, आठवे और दशवे मे रथोद्धता, ग्यारहवें मे उपजाति, तेरहवे मे इन्द्रवशा एव चौदहवे सर्ग मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। पहले और दूसरे सर्ग के अन्त मे शार्दूलविक्रीडित, तीसरे के अन्त मे रथोद्धता, वसन्ततिलका और मालिनी, चौथे के अन्त मे पुष्पिताग्रा एव शार्दूलविक्रीडित, छठे के अन्त मे वसन्ततिलका, सातवे के अन्त मे वसन्ततिलका और मालिनी, आठवें, ग्यारहवे और तेरहवे सर्ग के अन्त मे शार्दूलविक्रीडित एव चौदहवे सर्ग के अन्त मे स्रग्धरा का प्रयोग किया गया है। पाँचवे, नवे और बारहवे सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग हुआ है। पाँचवे सर्ग मे अधिकतर स्वागता का प्रयोग हुआ है, किन्तु सर्ग के अन्तिम भाग मे मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, शालिनी प्रहर्षिणी, पुष्पिताग्रा, तथा एक अर्ध-सम वर्णिक वृत्त (स स स ग ग, स भ र य) का प्रयोग हुआ है। नवे सर्ग मे उपजाति, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा और स्रग्धरा का एव बारहवे सर्ग मे पुष्पिताग्रा, उपजाति, द्रुतविलम्बित, वशस्थ, प्रमिताक्षरा, तोटक, स्रग्विणी, विजया, वसन्ततिलका, इन्द्रवशा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, माधव, शालिनी, मालिनी, रथोद्धता, प्रहर्षिणी, मत्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा तथा तीन प्रकार के वर्णार्द्धसम वृत्तो[1] का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार 'वसन्तविलास' मे उपजाति, प्रमिताक्षरा

अर्थान्तरन्यास :—उत्तार्यमाणेऽपि भरातिरेके चक्रन्दुरुच्चै करभास्तदानीम्।
विधीयमानेऽपि हिते नितान्तं कान्त वचो हि ब्रुवते न मूढा ॥
—वही सर्ग ११, श्लोक ८२

अतिशयोक्ति —किं ब्रूम· श्रमनि सहा वयममी श्रीवस्तुपालोऽवनौ
धर्मस्थानपरम्परां व्यधित यामुज्जासितारिव्रज ।
तामाख्यातुमपि क्षमा न कवयो व्योम्नीव तारावली
मेकेनैव दिनेन ये कवयितु शक्ता प्रबन्धानपि ॥
—वही, सर्ग १४, श्लोक १०

सन्देह —अय किमिन्द्रः किमु वा दिवाकरो निशाकरो वा कुसुमाकरोऽपि वा।
वसन्तपालं कृतविस्मया इति व्यलोकयन्वर्त्मनि वन्यदेवताः ॥
—वही, सर्ग १३, श्लोक ३८

(१) वे वर्णार्द्धसम वृत्त इस प्रकार हैं :—
(क) न य न ल ग, न न भ ग ल
(ख) भ त न ग ग, न ज ज य
(ग) न न न ज ल ग, स न य ग

अनुष्टुप्, द्रुतविलम्बित, वशस्थ, रथोद्धता, इन्द्रवशा, शार्दूलविक्रीडित, स्वागता, वसन्ततिलका, मालिनी, पुष्पिताग्रा, स्रग्धरा, शालिनी, प्रहर्षिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, तोटक, स्रग्विणी, विजया, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, माधव, मत्ता तथा चार प्रकार के वर्णार्द्धसमवृत्त—कुल उन्तीस छन्द प्रयुक्त हुए है। इनमे उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इसके बाद रथोद्धता, स्वागता, द्रुतविलम्बित, इन्द्रवशा, वशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप्, पृथ्वी और पुष्पिताग्रा का प्रयोग क्रमश कम हुआ है। शेष छन्दो का प्रयोग केवल सर्गान्त मे ही हुआ है और उनकी सख्या बहुत कम है।

(२) हम्मीरमहाकाव्य (नयचन्द्रसूरि)

(रचनाकाल सम्वत् १४५० के लगभग)

चौदह सर्गो का वीराङ्कित 'हम्मीरमहाकाव्य' नयचन्द्रसूरि की रचना है। सस्कृत के ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। नयचन्द्रसूरि ने हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी मे हुए युद्ध की ऐतिहासिक घटना को लेकर इस काव्य की रचना की है। इसमे महाकाव्य के अनुरूप उच्चकोटि की काव्यात्मकता भी दिखाई देती है।

हम्मीरमहाकाव्य का महाकाव्यत्व

'हम्मीरमहाकाव्य' एक सफल महाकाव्य है। महाकाव्य के परम्परागत सभी नियमों का पालन 'हम्मीरमहाकाव्य' मे हुआ है। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार 'हम्मीरमहाकाव्य' सर्गबद्ध रचना है और उसमे आठ से अधिक चौदह सर्ग है। इसका कथानक ऐतिहासिक है। धीरोदात्त गुणो से युक्त हम्मीर इसके नायक है। शृङ्गार, वीर और शान्त, इन तीनो मे से वीर रस की इसमे प्रधानता है। शृङ्गार, करुण, रौद्र आदि रसो का इसमे यथास्थान समावेश है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से किसी एक की सिद्धि महाकाव्य मे लक्ष्य-रूप से होती है। वस्तुत स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर हँसते-हँसते बलि हो जाने और देश, जाति तथा अपने गौरव की रक्षा के लिए प्रतिक्षण प्राण उत्सर्ग करने के लिए सन्नद्ध रहना ही इस महाकाव्य का प्रधान लक्ष्य है। 'हम्मीरमहाकाव्य' मे पाँच सन्धियों की योजना भी मिलती है। आठवे सर्ग से लेकर नवे सर्ग तक हम्मीर के सिंहासन पर बैठने और अलाउद्दीन को कर देना बन्द कर उसे (अलाउद्दीन को) रुष्ट कर देने के वर्णन मे मुखसन्धि है। दशम सर्ग मे हम्मीर का भोज को अपमानित करने, भोज का रुष्ट होकर अलाउद्दीन के पास दिल्ली जाने तथा वहाँ उससे हम्मीर को जीतने का उपाय पूछ कर

अलाउद्दीन का हम्मीर पर आक्रमण करने के लिए अलपखान को भेजने के वर्णन मे प्रतिमुख सन्धि है। ग्यारहवे सर्ग मे निसुरत्तखान तथा उल्लूखान सन्धि करने के व्याज से राजपूतो को धोखा देकर अपनी सेना को पर्वत-घाटियो मे सुरक्षित स्थान पर स्थित कर देते हैं। इस प्रकार यहाँ नायक के मार्ग मे विघ्न-बाधाओ का समावेश करके गर्भ-सन्धि की सफल योजना की गई है। तेरहवे सर्ग मे हम्मीर मे एक ओर रतिपाल, रणमल्ल, मोल्हण, जाहड आदि प्रधान वीरो के विश्वासघात के कारण निराशा उत्पन्न होती है तो दूसरी ओर जाज एव महिमासाहि की अपूर्व स्वामिभक्ति के कारण आशा का उदय होता है। आशा-निराशा के द्वन्द्व मे यहाँ नाटकीयता का जो सुन्दर विकास हुआ है उसमे विमर्श-सन्धि का निर्वाह हुआ है। शास्त्रीय नियम के अनुसार ही इस सन्धि मे महाकाव्य के नायक हम्मीर का शौर्य और भी अधिक उज्ज्वल रूप मे प्रकट हुआ है। तेरहवे सर्ग के अन्त मे शत्रु के हाथ मे पडने की आशका से हम्मीर द्वारा अपना सिर काट लेने तथा चौदहवे सर्ग मे हम्मीर के गुणो के वर्णन मे उपसहृति या निर्वहण सन्धि स्वीकार की जा सकती है। किन्तु, इस अवसर पर एक प्रश्न भी उठता है। भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से उपसहृति या निर्वहण सन्धि मे फलागम अर्थात् नायक का अभ्युदय या उसकी विजय दिखाई जानी चाहिए। उदाहरण के लिए रामायण मे रावणवध फलागम है। किन्तु, 'हम्मीरमहाकाव्य' मे तो हम्मीर स्वय पराजित होता है और पकडे जाने की आशका से अपना वध स्वय कर लेता है। भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार नायक की पराजय और उसकी मृत्यु दिखाना उचित नही है, क्योकि इससे नायक को फलप्राप्ति नही होती। फिर 'हम्मीरमहाकाव्य' का फलागम किसे माना जाए? वस्तुत 'हम्मीरमहाकाव्य' एक दु खान्त महाकाव्य है जिसका अन्त नायक की पराजय एव मृत्यु से हुआ है। काव्य मे इस ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा नही की जा मकती थी। दु खान्त काव्यो (या नाटको) की तरह हम्मीर की वीरतापूर्ण पराजय पाठको मे निराशा की भावना का सचार नही करती, अपितु महती प्रेरणा-शक्ति के रूप मे उनमे आशा और अपरिमित उत्साह का सचार करती है। अत. हमारी दृष्टि मे शरणागत के प्रतिपालन, अपने और अपनी जाति के गौरव की रक्षा तथा मातृभूमि की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध मे वीर गति प्राप्त करना ही हम्मीर जैसे वीर के लिए सच्चा फलागम है। महाकाव्य के नियमो के अनुसार 'हम्मीरमहाकाव्य' के एक सर्ग मे एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है और सर्गान्त मे वृत्तपरिवर्तन के नियम का पालन हुआ है। दसवे सर्ग मे विविध छन्दो का प्रयोग भी महाकाव्यीय नियमो के अनुसार हुआ है। 'हम्मीरमहाकाव्य' के प्रारम्भ मे नमस्कारात्मक मगलाचरण का विधान कर परम्परागत रूढि का पालन किया गया है। नगर, वन, ऋतु, सागर, प्रातः, सन्ध्या, चन्द्रोदय, सुरत-क्रीडा, पुत्रोत्पत्ति, युद्ध, सैन्य-प्रयाण आदि विविध विषयो के सजीव और मनोहर वर्णन इसमे वर्तमान है। इस काव्य का नामकरण काव्य के चरितनायक हम्मीर के नाम पर हुआ है। इसमे सर्गों के नाम भी सर्गों मे वर्णित घटना के आधार पर रखे गये है। महा-काव्य के इन शास्त्रीय नियमो के सफल निर्वाह के साथ-साथ 'हम्मीरमहाकाव्य' मे जातीय

जीवन की महनीय अभिव्यक्ति, अर्थगौरव एव विचारगाम्भीर्य की बहुलता, भाषाशैलीगत प्रौढता, व्यापक कथानक, युग-जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति एव सरसता होने के कारण उसमे महाकाव्योचित गरिमा भी दृष्टिगत होती है। इन विशेषताओ के कारण 'हम्मीर-महाकाव्य' को प्रमुख महाकाव्यो मे स्थान देना न्यायसंगत ही है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे, पुष्पिका मे कवि ने अपने काव्य को महाकाव्य अभिधा से अभिहित किया है। उदाहरण के लिए चौदहवे सर्ग की पुष्पिका यहाँ उद्धृत की जाती है:—

इति श्रीजयसिंहसूरिशिष्यमहाकविश्रीनयचन्द्रसूरिविरचिते श्रीहम्मीरमहाकाव्ये वीराङ्के कविवाक्यवर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः।

इसके अतिरिक्त इस श्लोक मे भी 'हम्मीरमहाकाव्य' के महाकाव्यत्व को स्वीकार किया गया है:—

भवन्ति काव्येषु महाकवीनां यत्येव भावा अशुभा शुभा वा।
प्रदर्शितास्ते कतिचित् ततीह न चेन्महाकाव्यमिदं कथं तत् ॥[1]

'हम्मीरमहाकाव्य' शास्त्रीय महाकाव्य है। उसमे वस्तुव्यापारवर्णन, अलकृतशैली, रसमग्न करने की क्षमता, प्रौढ भाषा-शैली आदि सभी शास्त्रीय महाकाव्योचित तत्त्व विद्यमान हैं, फिर भी यहाँ उसे ऐतिहासिक महाकाव्यो के अन्तर्गत रखा गया है। इसका कारण यह है कि इसका कथानक इतिहास से लिया गया है और इसका घटनाक्रम भी इतिहास-सम्मत है। तत्कालीन इतिहास की जानकारी के लिए निश्चय ही 'हम्मीरकाव्य' का बहुत महत्त्व है। इससे निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्यो की जानकारी हमे प्राप्त होती है:—

हम्मीरकाव्य की ऐतिहासिकता

(१) हम्मीर चाहमानवशीय क्षत्रिय था। इस वंश का आदिपुरुष 'चाहमान' था जिसके नाम पर इस वश का नाम चाहमान पडा। इस वश मे क्रमशः वासुदेव, नरदेव, चन्द्रराज तथा अजयपाल राजा हुए। अजयपाल ने अजयमेरु (अजमेर) दुर्ग की स्थापना की। अजयपाल के पश्चात् क्रमशः जयराज, सामन्तसिंह, गूयक, नन्दन तथा वप्रराज नरेश हुए। वप्रराज ने शाकम्भरी देवी की उपासना करके शाकम्भरी (साँभर) को चौहानो की राजधानी बनाया। वप्रराज के बाद हरिराज चौहान राजा हुआ जिसने शकाधिराज को परास्त करके मुग्धपुर पर अपना अधिकार कर लिया था। हरिराज के बाद क्रमश. सिंहराज, भीमदेव, विग्रहराज (जिसने गुजरात के शासक मूलराज को मार डाला था), गुन्ददेव, वल्लभराज, राम, चामुण्डराय (जिसने हेजिमदीन शकाधिराज को परास्त किया), दुर्लभराज (जिसने सहाबदीन को जीत कर पकड लिया था), दु शलदेव (जिसने गुजरात के शासक कर्णदेव को पराजित किया था), श्रीविश्वल (जिसने सहाबदीन तथा मालवनरेश को जीता था), पृथ्वीराज, आल्हणदेव, आनल्लदेव, जगद्देव, विश्वलदेव अजयपाल, गगदेव तथा सोमेश्वर राजा हुए। सोमेश्वर की पत्नी का नाम कर्पूरदेवी था जिसके गर्भ से प्रतापी पृथ्वीराज उत्पन्न हुआ।

---

(१) **हम्मीरमहाकाव्य**, सर्ग १४, श्लोक ४१

(२) सहाबदीन शकराज (शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी) से हार कर पश्चिमी भारत के राजा लोग चन्द्रराज को अग्रगामी बना कर पृथ्वीराज की शरण में आये। पृथ्वीराज ने उन्हें अभयदान दिया और अपनी सेना लेकर वह आगे बढ़ा। युद्ध में पृथ्वीराज की जीत हुई और सहाबदीन शक पकड़ा गया, किन्तु पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया। इसी प्रकार सहाबदीन ने पृथ्वीराज पर सात बार आक्रमण किया, किन्तु सातों बार उसकी हार हुई। आठवीं बार सहाबदीन ने खर्प्परेश की सहायता से पुनः दिल्ली पर आक्रमण किया और उसे घेर लिया। पृथ्वीराज सेना-सहित रणस्थल में आया, किन्तु इस बार युद्ध करते समय पीठ पीछे से किसी शक ने उसके कण्ठ में धनुष डाल कर गिरा दिया। तब शकों ने उसे बाँध लिया। बन्दीगृह मे पृथ्वीराज ने स्वर्गलाभ किया।

(३) पृथ्वीराज के बन्दी हो जाने पर उसके भट उदयराज गौड़ ने दो दिन तक सहाबदीन से युद्ध किया, किन्तु अन्त में वह भी युद्ध करते हुए मारा गया।

(४) पृथ्वीराज के बाद हरिराज गद्दी पर बैठा। वह विलासी शासक था और राजकाज से उदासीन रहता था। यह जान कर सहाबदीन ने उस पर आक्रमण कर दिया। पराजित हरिराज पत्नियों सहित अग्नि में जल मरा। अजयमेरु के सहाबदीन के अधिकार में चले जाने पर हरिराज के परिजन रणस्तंभपुर (रणथंभोर) चले गये। वहाँ पृथ्वीराज का पौत्र गोविन्दराज, जिसे उसके पिता ने घर से निकाल दिया था, स्वभुजबल से अर्जित राज्य का उपभोग कर रहा था।

(५) रणस्तंभपुर के शासक गोविन्दराज की मृत्यु के बाद बाल्लण भूपति हुआ। उसके दो पुत्र थे, ज्येष्ठ प्रह्लादन और कनिष्ठ वाग्भट। दोनों भाइयों में बड़ी प्रीति थी। बाल्लण के बाद प्रह्लादन राजा और वाग्भट प्रधान बना। आखेट करते समय प्रह्लादन वाराह द्वारा मार डाला गया। उसके बाद उसका पुत्र वीरनारायण राजा बना। वीर नारायण जब कत्सवाह (कछवाहा) की कन्या से विवाह करने के लिए आम्रपुरी (आमेर) गया तो वहाँ जलालदीन शकराज (जलालुद्दीन खिलजी) ने उस पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसे जीतने में असमर्थ रहा। बाद में जलालदीन ने मैत्री का सन्देश भेज कर छल से उसे योगिनीपुर (दिल्ली) बुला कर विष-प्रयोग से मरवा डाला। वाग्भट राज्य छोड़ कर मालवा भाग गया। कुछ दिन बाद वाग्भट ने रणस्तंभपुर के दुर्ग को घेर लिया और तीन मास के घेरे के बाद रणस्तंभपुर को पुनः अपने अधिकार में कर लिया। वाग्भट ने बारह वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र जैत्रसिंह गद्दी पर बैठा।

(६) जैत्रसिंह ने सं० १३३९ में अपने पुत्र हम्मीर को राज्याभिषिक्त कर दिया। हम्मीर प्रतापी शासक था। उसने भीमरसपुर, मण्डलदुर्ग, धारा, अवन्ती, चित्रकूट, मेदपाट, वर्धनपुर, चंगा, अजयमेरु, शाकम्भरी आदि प्रदेशों के शासकों में से कुछ को परास्त किया और कुछ से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये।

(७) हम्मीर और अलाउद्दीन (अल्लावदीन) की सेनाओं की प्रथम मुठभेड़ में अल्लावदीन के भाई उल्लूखान ने धोखे से हम्मीर के सेनापति भीमसिंह को मार डाला।

इस युद्ध में हम्मीर की हार हुई।

(८) दूसरी बार उल्लूखान बुरी तरह पराजित हुआ और हम्मीर की विजय हुई। तीसरे युद्ध में अल्लावदीन का सुयोग्य सेनापति निसुरत्तखान मारा गया और हम्मीर की विजय हुई। निसुरतखान का वध सुन कर अल्लावदीन स्वयं रणस्तम्भपुर आया और हम्मीर के प्रधान रतिपाल को प्रभूत धन के लोभ से अपनी ओर मिला लिया। फलस्वरूप इस युद्ध में हम्मीर की हार हुई और उसने शत्रु के हाथ में पड़ने के भय से आत्महत्या कर ली।

(९) हम्मीर ने शकवीर महिमासाहि को अपने यहाँ शरण दी थी।

इस प्रकार 'हम्मीरमहाकाव्य' में इतिहास की प्रभूत सामग्री उपस्थित है। अतः शास्त्रीय शैली का महाकाव्य होते हुए भी यहाँ इसकी गणना ऐतिहासिक महाकाव्यों के अन्तर्गत की गई है।

'हम्मीरमहाकाव्य' के चौदहवें सर्ग में नयचन्द्रसूरि ने जो प्रशस्ति दी है उसमें उन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। प्रशस्ति के अनुसार नयचन्द्रसूरि कृष्णगच्छीय थे। इस गच्छ में जयसिंहसूरि नामक प्रसिद्ध विद्वान् हुए जिन्होंने 'न्यायसार टीका', 'कुमारपाल चरित्र' महाकाव्य आदि ग्रन्थ बनाये। जयसिंहसूरि के बाद प्रसन्नचन्द्रसूरि गच्छपति हुए। 'हम्मीरमहाकाव्य' के रचयिता इन्हीं प्रसन्नचन्द्रसूरि के शिष्य थे। नयचन्द्रसूरि को 'हम्मीरमहाकाव्य' रचने की प्रेरणा दो सूत्रों से मिली। एक तो हम्मीर की दिवंगत आत्मा ने उन्हें स्वप्न में हम्मीरचरित ग्रथित करने का आदेश दिया, दूसरे ग्वालियर के तत्कालीन शासक वीरमदेव तोमर की इस उक्ति 'कि प्राचीन कवियों के सदृश मनोहर काव्य की रचना अब कौन कर सकता है' ने उन्हें सरस काव्य रचने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप उनकी कवि-प्रतिभा ने 'हम्मीरमहाकाव्य' जैसा प्रौढ़ महाकाव्य हमें प्रदान किया। इन दोनों प्रेरणा-सूत्रों का उल्लेख कवि ने इन शब्दों में किया है :—

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

× × × ×

सूरीन्दुः श्रीनयेन्दुर्जयति कविकुलोदन्वदुल्लासनेन्दु।
तेने तेनैव राज्ञा स्वचरिततनने स्वप्नतुन्नेन कामं
चक्राणं काव्यमेतन्नृपलिततिमुदे चारुवीराङ्करम्यम्॥[1]

काव्यं पूर्वकवेर्न काव्यसदृशं कश्चिद् विधाताऽधुने–
त्युक्ते तोमरवीरमक्षितिपतेः सामाजिकैः संसदि।
तद्भ्रूचापलकेलिदोलितमनाः शृंगारवीराद्भुतं
चक्रे काव्यमिदं हमीरनृपतेर्नव्यं नयेन्दुः कविः॥[2]

'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना कब हुई ? कवि ने इस सम्बन्ध में कुछ भी स्पष्ट रूप

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १४, श्लोक २६
(२) वही, सर्ग १४, श्लोक ४३

से नहीं लिखा । श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में इसका रचनाकाल सं० १४४० वि० के लगभग माना है ।[1] किन्तु, उन्होंने अपनी इस मान्यता का कोई आधार नहीं बताया । एक दूसरे विद्वान् रुद्रकाशिकेय ने 'छिताई वार्ता' की सम्पादकीय भूमिका में 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना सं० १५४२ वि० में हुई, यह लिखा है ।[2] उनके इस कथन का आधार क्या है ? यह हमें नहीं मालूम । कदाचित् मुनिजिन-विजय द्वारा सम्पादित 'हम्मीरमहाकाव्य' के अन्त में लिखी गई इन पंक्तियों ने उन्हें भ्रम में डाल दिया हो :—

सं० १५४२ वर्षे श्रावणे मासि श्रीकृष्णर्षिगच्छेश्रीजयसिंहसूरिशिष्येण नयहंसेनात्मपठनार्थं श्रीपेरोजपुरे हम्मीरमहाकाव्यं लिलिखे । ग्रन्थाग्रं १५६४ ।

किन्तु यहाँ दिया गया सं० १५४२ रचनाकाल नहीं, अपितु प्रतिलिपि-काल है । अतः इस संवत् को किसी प्रकार भी 'हम्मीरकाव्य' का रचनाकाल स्वीकार नहीं किया जा सकता । जैन साहित्य के सुप्रसिद्ध अन्वेषक श्री अगरचन्द नाहटा ने 'हम्मीरमहाकाव्य' के रचनाकाल पर विचार करते हुए लिखा है—'हम्मीरमहाकाव्य' की एक हस्तलिखित प्रति मुझे कोटा के जैन भंडार में सं० १४८६ वि० की लिखी हुई मिली है, अतः इसकी रचना इसके पूर्व तो अवश्य हो चुकी थी ।[3] नाहटाजी के इस लेख से रुद्रकाशिकेय जी के कथन का पूर्णरूप से खण्डन हो जाता है । नाहटाजी के अनुमान से 'हम्मीरमहाकाव्य' का रचनाकाल सं० १४५० के आसपास होना चाहिए । इसका आशय यह है कि वे भी एक प्रकार से मोहनलाल दलीचन्द देसाई के मत का समर्थक करते हैं ।

इतिहासज्ञ विद्वान् डॉ० दशरथ शर्मा ने तर्कपुष्ट अनुमानों के द्वारा श्रीमोहनलाल दलीचंद देसाई द्वारा दिये गये सं० १४४० के लगभग 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना होना स्वीकार किया है । उन्होंने लिखा है, 'हम्मीरमहाकाव्य' में समय निर्दिष्ट नहीं है, किन्तु अनुमानतः हम उसका कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । श्रीनयचन्द्रसूरि ने अपने गुरु के गुरु जयसिंहसूरि के 'कुमारपालचरित' का प्रथम आदर्श सं० १४२२ में लिखा था । जयसिंहसूरि ने उनको 'अवधानसावधानः प्रमाणनिष्ठः कवित्वनिष्णातः' के विशेषणों से अभिहित किया है ।[4] इन विशेषणों को ध्यान में रखते हुए उनकी आयु संभवतः ३० वर्ष के रही होगी । 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना उस समय हुई जब नयचन्द्र पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर

---

(१) जैन साहित्यनो इतिहास, मोहनलाल दलीचंद देसाई पृ० ४४४

(२) छिताई वार्ता, सम्पादक रुद्रकाशिकेय, पृ० २६

(३) राघवचेतन की ऐतिहासिकता, श्रीअगरचन्द नाहटा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० ६७, वर्ष ६४ सं० २०१६

(४) अवधानसावधानः प्रमाणनिष्ठः कवित्वनिष्णातः ।
अलिखन्मुनि नयचन्द्रो गुरुभक्त्याऽस्याद्यमादर्शम् ॥
—कुमारपालचरित्र, जयसिंहसूरि, प्रशस्ति, श्लोक ६

चुके थे। इसलिए सं० १४२२ के कुछ समय बाद अर्थात् सं० १४४० के लगभग इस रचना को रखना कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता।[1]

डॉ० शर्मा आगे लिखते हैं, "दूसरा प्रश्न वीरमदेव के समय का है जिसके दरबार में यह रचना हुई थी। हमें शिलालेखों से ज्ञात है कि इसके पौत्र डूँगरेन्द्र ने कम से कम सं० १४९७ से सं० १५१० तक शासन किया। यदि सं० १४९७ को हम डूँगरेन्द्र का प्रथम राज्य-वर्ष मानें तो वीरम का प्रथम राज्य-वर्ष उससे पचास वर्ष पूर्व अर्थात् १४४० के आसपास ले जाया जा सकता है। इससे पूर्व वीरम का समय रखना ठीक नहीं है, क्योंकि जयपुर भण्डार के एक ग्रन्थ से अब हमें ज्ञात है कि वीरम सं० १४७९ तक राज्य कर रहा था। उसके पुत्र ने अधिक समय तक राज्य नहीं किया। इससे यही अनुमान किया जा सकता है कि वीरमदेव का देहान्त वृद्धावस्था में हुआ और उसने संभवतः ४० वर्ष से कम राज्य नहीं किया। नयचन्द्रसूरि शायद वीरम के दरबार में उसके राज्य के आरम्भ में ही पहुँचे थे। राजा को उस समय काव्य का शौक था, नयचन्द्र भी उस समय लगभग ५० वर्ष के थे, अतः उस समय (सं० १४४० के आसपास) इस काव्य की रचना भी संभव है।"[2]

इस प्रकार मोहनलाल दलीचन्द देसाई, अगरचन्द नाहटा तथा डॉ० दशरथ शर्मा के लेखों के आधार पर 'हम्मीरमहाकाव्य' का रचनाकाल सं० १४५० के लगभग स्वीकार किया जा सकता है।

'हम्मीरमहाकाव्य' की कुल श्लोक-संख्या १५६४ है।

कथानक

'हम्मीरमहाकाव्य' का कथानक चौदह सर्गों में विभाजित है। प्रथम (तदीयपूर्वज-वर्णन) सर्ग में चाहमान कुल की उत्पत्ति तथा वासुदेव से लेकर सिंहराज तक हम्मीर के पूर्वज चौहान राजाओं का वर्णन है। द्वितीय (भीमदेवप्रभृतिपूर्वजवर्णन) सर्ग में सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज द्वारा सहाबदीन से पराजित पश्चिमी भारत के राजाओं को शरण देने, उसके सात बार सहाबदीन को पराजित करने, आठवीं बार स्वयं पराजित होने एवं बन्दीगृह में उसकी मृत्यु होने का वर्णन है। चतुर्थ (हम्मीर-जन्मवर्णन) सर्ग में पृथ्वीराज के पौत्र गोविन्दराज द्वारा रणस्तंभपुर में नवीन राज्य स्थापित करने, उसके पुत्र प्रह्लादन की मृत्यु के बाद प्रह्लादन-पुत्र वीरनारायण के राजा बनने, अलाउद्दीन शकपति द्वारा छल से वीरनारायण के मारे जाने, वीरनारायण के बाद प्रह्लादन के कनिष्ठ भ्राता वाग्भट के रणस्तंभपुर को अधिकार में करने, उसके बाद उसके पुत्र जैत्रसिंह के गद्दी पर बैठने एवं उसकी पत्नी हीरादेवी के गर्भ से हम्मीर के उत्पन्न होने का वर्णन है। पंचम (वसन्त-वर्णन) सर्ग में वसन्तऋतु के आने पर युवक हम्मीर के उद्यान में जाने और वहाँ पौर-पौराङ्गनाओं की वनक्रीडा का वर्णन हुआ है। षष्ठ (जल-क्रीडावर्णन) सर्ग में जैत्रसागर में उनकी जलक्रीडा का वर्णन है। सप्तम (सुरतवर्णनशृंगार-

(१-२) लेखक को लिखे गये डॉ० दशरथ शर्मा के एक पत्र से उद्धृत

संजीवन) सर्ग में सन्ध्या और चन्द्रोदय का वर्णन हुआ है। रात्रिवर्णन-प्रसंग में पुर-नर-नारियों की सुरत-केलि का विस्तृत वर्णन हुआ है। अष्टम (हम्मीरदेवराज्याप्तिवर्णन) सर्ग में स्वप्न में विष्णु का आदेश पाकर जैत्रसिंह हम्मीर को राजा बना देते हैं। इसी सर्ग में हम्मीर के पिता की मृत्यु होती है। नवम (हम्मीरदिग्विजयवर्णन) सर्ग में हम्मीर की दिग्विजय का वर्णन है। हम्मीर के कर न देने पर दिल्लीपति अल्लावदीन अपने भाई उल्लूखान को हम्मीर पर आक्रमण करने भेजता है। हम्मीर इस समय कोटि यज्ञ कर रहा है, अतः त्रिशुद्धिव्रत लेने के कारण स्वयं युद्धक्षेत्र में न जाकर अपने सेनापति भीमसिंह और धर्मसिंह को युद्ध के लिए भेजता है। धर्मसिंह की मूर्खता से चौहान सेना जीत कर भी हार जाती है और भीमसिंह मारा जाता है। हम्मीर क्रुद्ध होकर धर्मसिंह की दोनों आँखें निकलवा देता है और उसे देश से निकाल कर अपने सजातीय भोज को दण्डनायक बना देता है। धर्मसिंह अपनी कूटनीति के द्वारा पुनः अपना पुराना पद प्राप्त कर लेता है। प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर वह भोजदेव के विरुद्ध हम्मीर के कान भरता है और अपनी कूटनीति से भोज का सर्वस्व छीन लेता है। राजा से अपमानित होकर भोज दिल्ली पहुँच कर अल्लावदीन की सेवा स्वीकार कर लेता है। अल्लावदीन उसे जगरा की जागीर प्रदान करता है। इधर हम्मीर भोज के पद पर रतिपाल को प्रतिष्ठित कर देता है।

दशम (अल्लावदीनमर्षण) सर्ग में भोज के परामर्श से अल्लावदीन अपने भाई उल्लूखान को हम्मीर पर आक्रमण करने भेजता है, किन्तु उल्लूखान बुरी तरह पराजित होकर भागता है। इधर महिमासाहि जगरा पर आक्रमण कर भोजदेव के भाई पिथम को सपरिच्छद बन्दी बना लेता है और जगरा को जीत लेता है। भोज अपनी दुर्दशा का वर्णन अल्लावदीन से करता है जिसे सुन कर अल्लावदीन आगबबूला हो जाता है और हम्मीर का मानमर्दन करने की प्रतिज्ञा करता है। एकादश (निसुरत्तखानवधवर्णन) सर्ग में अल्लावदीन निसुरत्तखान और उल्लूखान को विशाल सेना के साथ भेजता है। युद्ध में निसुरत्तखान मारा जाता है।

द्वादश (दिनद्वयसंग्रामवर्णन) सर्ग में निसुरत्तखान की मृत्यु का समाचार पाकर अल्लावदीन स्वयं दिल्ली से रणस्तंभपुर आता है। यहाँ हम्मीर और उसकी सेना में दो दिन तक भयंकर संग्राम होता है। इस युद्ध में अल्लावदीन की बहुत सी सेना मारी जाती है। त्रयोदश (हम्मीरस्वर्गगमनवर्णन) सर्ग में दुर्ग को अपने बल से जीतना असम्भव समझ कर अल्लावदीन उत्कोच द्वारा रतिपाल को अपनी ओर मिला लेता है। रतिपाल अपनी कूटनीति के द्वारा रणमल्ल तथा कोष्ठागारिक जाहड़ को भी अल्लावदीन के पक्ष में कर लेता है। अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को शत्रुपक्ष की ओर मिलते देख कर हम्मीर को जय की आशा नहीं रहती, फलस्वरूप उसके अन्तःपुर की स्त्रियाँ जौहर की आग में जल मरती हैं और हम्मीर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। युद्ध में अपनी हार होते देख कर वह शत्रु के हाथ में पड़ने की आशंका से अपना वध स्वयं कर लेता है। इस सर्ग में महिमासाहि तथा जाज की स्वामिभक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। वे हम्मीर के लिए अपने सारे परिवार

पिता उसे राजा बनाना चाहते हैं तो वह इसे नीतिविरुद्ध समझ कर इस प्रकार अस्वीकार कर देता है:—

ज्येष्ठे तनूजे सति राज्यलक्ष्मीर्देया कदाचिन्न किलेतरस्मै ।
जानन्नपीत्थं नयवर्त्मसंस्थां मह्यं कथं दित्सति तामधीशः ॥[1]

वह राज्य को तभी स्वीकार करता है जब उसके पिता उसे स्वप्न में दिये गये विष्णु के आदेश से अवगत कराते हैं। हम्मीर कुशल शासक है। कवि ने उसके आदर्श राज्य का चित्रण इन पंक्तियों में किया है:—

धर्मो जगर्जेव दरिद्रमुद्रा क्वचिन्ननाशेव बभाविव श्रीः ।
समुल्लासेव नयद्रुमोऽपि शुभं ननर्तेव तदीय राज्ये ॥[2]

हम्मीर धार्मिक है और धार्मिक क्रियाओं में पूर्ण विश्वास करता है। दिग्विजय करते समय मार्ग में जो भी तीर्थ या मन्दिर आते हैं, वह वहाँ जाकर वहाँ के प्रमुख देवताओं की अर्चना करता है। वह अवन्ती में महाकाल, अर्बुद पर अचलेश्वर तथा पुष्कर में आदिवाराह की पूजा करता है। धार्मिक सहिष्णुता हम्मीर का प्रधान गुण है। अन्य धर्मों के प्रति उसके मन में आदर ही नहीं, श्रद्धा भाव भी है जिससे प्रेरित होकर वह अर्बुदाचल पर ऋषभदेव की भी वन्दना करता है। कवि ने उसकी धार्मिक सहिष्णुता की प्रशंसा 'नोत्तमानां हि चित्ते स्वपरकल्पना' कह कर की है। दिग्विजय से लौटने पर हम्मीर यज्ञ करता है और इस अवसर पर अतुल दान देकर एक मास का मुनिव्रत ग्रहण कर लेता है।

हम्मीर वीर है। दिग्विजय में उसकी वीरता स्पष्ट है। रुष्ट भोजदेव भी अलाउद्दीन से उसकी प्रशंसा 'स श्रीहम्मीरदेवः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव' इन शब्दों में करता है। उसकी क्षत्रियोचित वीरता से प्रसन्न होकर जब अल्लावदीन उससे मनोवांच्छित वर माँगने को कहता है तो वह दो दिन के युद्ध की ही याचना करता है:—

क्षत्रोत्तमोऽथ निजगाद यद्यदस्तर्हि प्रयच्छ समरं दिनद्वयीम् ।
आयोधनादपरमत्रदोष्मतां नो वांच्छितं किमपि वल्गु वल्गति ॥[3]

हम्मीर स्वयं तो वीर है ही, वीरों का आदर करना भी जानता है। युद्ध में रतिपाल के शौर्य पर मुग्ध होकर वह उसके पैरों में सोना डालने का सम्मान प्रदान करता है। इसी तरह वह जाज को भी जागीर प्रदान करता है। हम्मीर शरणागतवत्सल है। शरणागत की रक्षा का ध्यान वह आपत्ति के समय भी रखता है। अन्तिम युद्ध के समय जब उसे विजय की बिलकुल आशा नहीं रहती है, उस समय वह अपने आश्रित महिमासाहि को किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए कहता है:—

यूयं वैदेशिकास्तद् वः स्थातुं युक्तं न सापदि ।
यियासा यत्र कुत्रापि ब्रूत तत्र नयामि यत् ॥[4]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ५३ (२) वही, सर्ग ८, श्लोक ६८
(३) वही, सर्ग १२, श्लोक ६ (४) वही, सर्ग १३, श्लोक १०९

शरणागत महिमासाहि की रक्षा के लिए हम्मीर अपना सब-कुछ स्त्री, पुत्र, परिजन आदि होम कर देता है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में उसके चरित्र का यह उज्ज्वल पक्ष अत्यन्त सुन्दरता से व्यक्त हुआ है:—

राधेयः कवचं ददौ शिविरहो मांसं बलिर्मेदिनीं
जीमूतोऽर्धवपुस्तथापि न समा हम्मीरदेवेन ते।
येनोच्चैः शरणागतस्य महिमासाहेर्निमित्ते क्षणा-
दात्मापुत्रकलत्रभृत्यनिवहो नीतः कथाशेषताम् ॥[1]

हम्मीर की मृत्यु भी क्षत्रियोचित है। शत्रुओं द्वारा जीवित पकड़े जाने के भय से वह अपना वध स्वयं कर लेता है।

हम्मीर के चरित्र में कतिपय दुर्बलताएँ भी हैं। युद्ध में साधारण सी भूल पर वह धर्मसिंह पर बेहद क्रुद्ध हो जाता है और उसे अपमानित करके उसकी दोनों आँखे निकलवा लेता है; किन्तु कुछ समय बाद उसी धर्मसिंह को लोभवश पुनः उसके पुराने पद पर प्रतिष्ठित कर देता है। यह हम्मीर की बहुत बड़ी राजनीतिक भूल है। लोभ के वश में पड़ कर हम्मीर यह भी नहीं देखता कि धर्मसिंह न्याय से धन एकत्रित कर रहा है या अन्याय से। लोभ हम्मीर को अन्धा बना देता है जिसके कारण वह अपने प्रच्छन्न शत्रु धर्मसिंह के पूर्ण वश में हो जाता है। वस्तुतः हम्मीर के कार्यों में कभी-कभी अविवेक और सनक की गन्ध आती है। अपने स्वामिभक्त सरदार भोजदेव की शिकायत पर ध्यान न देना, अपितु उलटे उसी को दबाना हम्मीर की पहली बड़ी त्रुटि है, और फिर उसे काक की तरह नीच कहना दूसरी अक्षम्य त्रुटि है जिसे अविवेक के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। भोज के काशी-यात्रा के लिए आज्ञा लेने आने पर वह इन शब्दों में अपनी अव्यावहारिकता और अशिष्टाचार का परिचय देता है:—

जगाद भूपतिर्यासि परतः परतो न किम्।
विना भवन्तमप्येवं पुरं संशोभते पुरा ॥[2]

हम्मीर न तो राजनीति में ही कुशल है और न मानव-प्रकृति का ही उसे परिचय है। उसके इसी भोलेपन से लाभ उठा कर रतिपाल उसे विश्वास दिला देता है कि रणमल्ल उससे (हम्मीर से) रुष्ट है। वह हम्मीर को रणमल्ल के पास भेजने में सफल हो जाता है। अपने छोटे भाई वीरम के द्वारा सावधान किये जाने पर भी, कि रतिपाल शत्रु से मिला हुआ है उसे तलवार के घाट उतार देना चाहिए, वह उसकी बात पर अधिक ध्यान नहीं देता और—

विरम्यतां तदेतस्मात् भाव्यमस्ति यदस्तु वा।
रावणादिभिरप्युग्रैर्न भाव्यं रुरुधे यतः ॥[3]

—यह कह कर उसे शान्त कर देता है। पर पाठक जानते हैं कि हम्मीर न भोज को

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ६, श्लोक ११२ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक १८६
(३) वही, सर्ग १३, श्लोक १०४

पहिचान सका और न धर्मसिंह, रतिपाल, रणमल्ल तथा जाहड़ को। इन सबको पहिचानने में उसने भूल की और जब उसे उसकी भूल से परिचित कराया गया तो उसने उपेक्षा की। हाँ, यदि उसमें गुण है तो यही कि क्षत्रियत्व उसमें कूट-कूट कर भरा है। रानियों के उकसाने पर जब उसकी पुत्री देवल्लदेवी स्वयं (देवल्लदेवी) को शकेन्द्र को देकर राज्य की रक्षा करने की बात कहती है तो हम्मीर इन शब्दों में उबल पड़ता है:—

शिक्षयित्वेति पापिन्या त्वमिह प्रेषिता यया।
छिनद्मि रसनां तस्या बिभेमि स्त्रीवधान्न चेत्॥[1]

इस प्रकार हम्मीर के चरित्र में एक ओर शूरवीरता, स्वाभिमान, शरणागतवत्सलता, निर्भीकता, सरलहृदयता आदि क्षत्रियोचित गुण हैं तो दूसरी ओर उसमें राजनीति और कूटनीति से अनभिज्ञता, अविवेक आदि अवगुण भी विद्यमान हैं। उसे हम राजनीति के कुटिल दाव-पेचों से अनभिज्ञ राजपूती शौर्य का प्रतीक मान सकते हैं।

अल्लावदीन (अलाउद्दीन) प्रस्तुत काव्य का प्रतिनायक है। वह दिल्ली का शक-सम्राट् है और अत्यन्त शूरवीर है। उसके चण्ड पराक्रम से हम्मीर का पिता जैत्रसिंह भी उसे कर देता है। किन्तु, जब हम्मीर कर देना बन्द कर देता है तो अल्लावदीन उसे अपने वश में करने का उपाय सोचता है। अल्लावदीन अवसरवादी है। शत्रु की दुर्बलता का लाभ उठाने में वह निपुण है। वह यह जानता है कि यज्ञ में व्रत ग्रहण करने के कारण हम्मीर युद्ध के लिए बाहर नहीं आएगा, उसके देश को ध्वस्त करने का यह अवसर अच्छा है, क्योंकि देश के ध्वस्त होने पर राज्य स्वतः ही दुर्बल हो जाएगा। इसी कारण वह अपने भाई उल्लूखान को रणस्तंभपुर पर आक्रमण करने का आदेश देते समय कहता है:—

अल्लावदीन

स महोजस्तया शक्यो जेतुं नाभूदियच्चिरम्।
व्रते स्थितधीतयेदानीं लीलयैव विजीयते॥
तद्गत्वाऽस्य रणस्तंभतलं देशं विनाशय।
ध्वस्ते देशे स संस्थातु सासहि कति वासरान्॥[2]

अल्लावदीन धूर्त और कूटनीतिज्ञ है। शत्रु के सरदारों को अपनी ओर मिलाने की कला में वह अति निपुण है। भोज के आगमन की सूचना से वह प्रफुल्लित हो उठता है। वह उसे जगरा नगरी प्रदान करके उसका बहुविध आदर करता है और उसे अपनी ओर मिला लेता है। हम्मीर के दण्डनायक रतिपाल को वश में करने के लिए तो वह उससे यहाँ तक कह देता है:—

एतद् राज्यं तवैवास्तु जयेच्छुः केवलं त्वहम्॥[3]

यही नहीं, वह तो रतिपाल को अपने अन्तःपुर में ले जाकर सम्मानपूर्वक भोजन

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक ११७ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक १०४–१०५
(३) वही, सर्ग १३, श्लोक ७७

कराता है और विश्वास उत्पन्न करने के लिए अपनी बहिन को उसे मदिरा पिलाने के लिए भी भेजता है और इस प्रकार वह रतिपाल को पूर्णतया अपने वश में कर लेता है:—

अन्तरन्तःपुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत् ।
अपीप्यत तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि ॥[1]

रतिपाल के द्वारा वह रणमल्ल और जाहड़ को भी अपनी ओर मिलाने में सफल हो जाता है। किन्तु, वह जानता है कि जो अपने स्वामी के साथ विश्वासघात कर सकता है वह दूसरे के प्रति स्वामिभक्त कैसे हो सकता है, अतः वह कार्य सिद्ध हो जाने के बाद रतिपाल के मुख में खल्ल देकर उसे निकाल देता है । संक्षेप में अल्लावदीन वीर, किन्तु धूर्त कूटनीतिज्ञ है जो साध्य की सफलता देखता है. साधन चाहे अच्छे हों या बुरे, इसकी चिन्ता नहीं करता ।

भीमसिंह

भीमसिंह हम्मीर का वीर सेनापति है। उल्लूखान के सेनापतित्व में आने वाली शकसेना को वह अपने शौर्य से छिन्न-भिन्न कर देता है । किन्तु, वह एक अविवेकपूर्ण कार्य यह करता है कि शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न करके पर्वत-घाटी में आकर विजय के स्मृति-चिह्न के रूप में शकों से छीने हुए वाद्यों को बजाता है । इसका परिणाम यह होता है कि उन वाद्यों की ध्वनि सुन कर, शक अपनी जीत समझ कर पुनः एकत्रित हो जाते हैं । उल्लूखान पुनः युद्ध आरम्भ करता है । इस युद्ध में भीमसिंह मारा जाता है ।

धर्मसिंह

धर्मसिंह हम्मीर का प्रधानामात्य है । उल्लूखान से हुए प्रथम युद्ध में, जिसमें भीमसिंह की मृत्यु हुई, चौहानों की पराजय का कलंक भीमसिंह और धर्मसिंह के अविवेकपूर्ण कार्य को है । इन दोनों सेनापतियों में भीमसिंह तो युद्धक्षेत्र में मर ही जाता है, किन्तु धर्मसिंह पराजित होकर लौटता है । हम्मीर उसके प्रमाद को क्षमा नहीं करता और उपालम्भ देकर उसकी आँखें निकलवा लेता है। धर्मसिंह का पद भी छिन जाता है । धर्मसिंह अपने इस अपमान को कभी नहीं भूलता । वह बड़ा कूटनीतिज्ञ है । नर्तकी धारादेवी को नृत्यछल से प्रतिदिन राजपरिषद् में भेज कर वह राजगृह की प्रत्येक घटना की जानकारी रखता है । नर्तकी के मुख से वेधरोग से मृत अश्वों के कारण राजा को चिन्तातुर जान कर वह इसे बदला लेने का उपयुक्त अवसर समझता है और धारादेवी द्वारा नृप से प्रार्थना करवाता है कि यदि धर्मसिंह को पुनः उसके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाए तो वह मृत अश्वों से भी दूने अश्व प्रस्तुत कर देगा । फलस्वरूप वह पुनः अपने पद पर नियुक्त हो जाता है ।

प्रधानामात्य के पद पर रह कर वह अपने बैर का पूरा बदला लेता है, राज्य के उच्छेद के लिए वह प्रजा पर विविध कर लगा कर उसे पीड़ित करता है, किन्तु कोष में अतुल द्रव्य संचित करने के कारण वह राजा का अति प्रिय बन जाता है । भोज जैसे

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक ८१

स्वामिभक्त व्यक्ति को उसी के कारण देश छोड़ कर शत्रु के पास जाना पड़ता है। वह भोज से भी विगत वर्ष की आयशुद्धि माँगता है। धर्मसिंह का राजा पर इतना प्रभाव है कि जब भोज राजा से उसकी शिकायत करता है तो राजा उसी को उलटा डाँटते हुए कहता है:—

(निजगाद नृपो) यस्य मयि भक्तिरनीश्वरी।
न लुप्यतेऽत्र केनापि धर्मसिंहस्य शासनम् ॥[1]

अन्ध धर्मसिंह ने हम्मीर को जनता की सहानुभूति से वंचित कर दिया, हम्मीर की अजेयता को हिला दिया और उसके मित्रों को शत्रु बना दिया। भोज द्वारा अल्लावदीन से कहे गये इन शब्दों में धर्मसिंह का समस्त चरित्र सन्निहित है:—

दीपस्येव समीरणः सरसिजश्रेणेरिवाम्भोधरः
सूर्यस्येव दिनात्ययो यतिवरस्येवैणदृक्संगमः।
देहस्येव गदोदयो गुणगणस्येवातिलोभाश्रय-
स्तद्राज्यस्य विनाशहेतुरधुनैकोऽन्धः परं दीव्यति ॥[2]

भोजदेव

भोजदेव हम्मीर का जाति-भाई और दण्डनायक है। कवि ने उसे हम्मीर का शुभचिन्तक भाई बताया है। वह बड़ा दयालु है। हम्मीर धर्मसिंह से क्रुद्ध होकर जब उसे देशनिर्वासन का दण्ड देते हैं तो भोज ही हम्मीर को इस कार्य से विरत करता है:—

तं च निर्वासयन् देशादमुनैव न्यषिध्यत।[3]

कालान्तर में उसका पद छीन कर रतिपाल को दे दिया जाता है तो भी उसे बुरा नहीं लगता, किन्तु जब धर्मसिंह उससे वैरवश भुक्ताब्दव्यय से आयशुद्धि माँगता है तो उससे सहन नहीं होता। वह नम्रतापूर्वक नृप से कहता है:—

देवस्य यदि मे प्राणैः कार्यं गृह्णातु तर्हि तान्।
न सेहे परमन्धस्य वाक्यतोऽथ कदर्थनाम् ॥[4]

किन्तु, राजा द्वारा धर्मसिंह का ही पक्ष लेने पर वह अपना सर्वस्व धर्मसिंह को दे देता है। और कोई होता तो राजा का शत्रु बन जाता, किन्तु वह फिर भी भूप की सेवा तन-मन से करता है:—

तथाप्येषोऽभिजातत्वादजहत् स्वामिभक्तिताम्।
योगीव परमं ब्रह्म भोजो भूपमसेवत ॥[5]

किन्तु जब उसे हम्मीर द्वारा काक कहा जाता है और—

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ६, श्लोक १७४ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक २८
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक १५५ (४) वही, सर्ग ६, श्लोक १७३
(५) वही, सर्ग ६, श्लोक १७८

सन्त्येवात्र पदे पदेऽपि बहवः क्षुद्राः निकामं खगाः
नो कुत्रापि समोऽस्ति गर्ह्य इतरः काकात् वराकात् परम् ।
क्रोधाविष्टपटिष्ठघूकनिकरास्याग्रोत्थकोटिक्षतै
स्त्रुट्यत्पक्षचयोऽपि यस्तरुतटं नापत्रपः प्रोज्झति ।।[1]

—इस प्रकार की अन्योक्तियों द्वारा छेदा जाता है तो उसका क्षत्रियत्व अधिक नहीं सहन कर पाता । वह अपने भाई की राय से देश छोड़ने का निश्चय करता है, किसी बुरी नियत से नहीं, अपितु अपने दुर्भाग्य के दिनों को बिताने के लिए:—

यात्राव्याजेन तद् यामो दिनानि कतिचिद्बहिः ।
कालक्षेपोऽशुभे श्रेयान् नीतिविद्भिर्जगे यतः ।।[2]

नृप से प्रयाण की आज्ञा लेते समय नृप का व्यवहार उसके साथ बहुत बुरा रहता है । हम्मीर सामान्य शिष्टाचार का पालन भी नहीं करता और व्यंग्य करता हुआ कहता है:—

(जगाद भूपति) यासि परतः परतो न किम् ।
विना भवन्तमप्येवं पुरं संशोभते पुरा ।।[3]

हम्मीर द्वारा किये गये इन अपमानों से उसके हृदय में राजद्रोह के जो ये विचार उत्पन्न होते हैं उनके लिए हम उसे दोष नहीं दे सकते :—

अपमानपरेऽपि यो नरे शममेव प्रयतोऽवलम्बते ।
अपि शूकशिखा ततो वरं व्ययत्यंघ्रिमसौ तदाऽहता ।।[4]

वह अल्लावदीन के पास जाता है । अल्लावदीन उसका सत्कार करता है और उसे जगरा की जागीर प्रदान करता है । अब वह अल्लावदीन की सेवा करने लगता । महाकाव्यकार ने इसके लिए भोज को कोई दोष नहीं दिया, क्योंकि यह तो एक मनोवैज्ञानिक अवश्यंभावी परिवर्तन था । कवि के शब्दों में:—

तादृक्कुलीनोऽपि स भोजदेवोऽधुना ही कृतवान् यदेवम् ।
तन्म्लेच्छभूजृम्भितमेव तस्मात् सतां न तद्भूरपि वासयोग्या ।।[5]

हम्मीर द्वारा बारम्बार तिरस्कृत होने पर भी वह हम्मीर से क्रुद्ध नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि अन्ध धर्मसिंह ने ही उसे पथभ्रष्ट कर दिया है । इसी कारण वह अल्लावदीन के सम्मुख भी सदैव हम्मीर की प्रशंसा इन शब्दों में करता है:—

सर्वैः श्रेष्ठगुणैरधिष्ठिततनुर्हम्मीरवीरः परम् ।
स श्रीहम्मीरवीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव ।।[6]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ६, श्लोक १८० (२) वही, सर्ग ६, श्लोक १८४
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक १८६ (४) वही, सर्ग १०, श्लोक ४
(५) वही, सर्ग १०, श्लोक ६ (६) वही, सर्ग १०, श्लोक २५

फिर भी अल्लावदीन को तत्क्षण हम्मीर पर आक्रमण करने का परामर्श देना उसके उदात्त चरित्र के अनुकूल नहीं है। महिमासाहि द्वारा जगरा के जीत लेने पर अल्लावदीन के सम्मुख कायरों की तरह भूमि पर लोटना और विलाप करना भी उसके क्षत्रियोचित शौर्य के उपयुक्त नहीं है। निम्नलिखित पंक्तियों में उसका क्षत्रियत्व नष्ट हुआ सा दीख पड़ता है:—

विस्तार्य सिचयमग्रेऽग्रतः सरस्तत्तदद्रु तमतीनाम् ।
कटुकं विरटस्तदुपरि सुतरां विलुलोठ भूतचान्त इव ।।
तत्किं करोमि कं वा श्रयामि यामि क्व वा किमु वदामि ।
हृदयं वातान्दोलिततूलतुलां कलयतीदमनुवेलम् ।।[1]

रतिपाल भोजदेव के स्थान पर दण्डनायक पद पर नियुक्त किया जाता है। वह बड़ा वीर है। उल्लूखान के दुवारा रणस्तंभपुर पर आक्रमण करने के समय रतिपाल को दुर्ग के आग्नेय भाग की रक्षा का भार सौंपा जाता है। रतिपाल इस युद्ध में

रतिपाल

बड़ी वीरता दिखाता है, परिणामस्वरूप हम्मीर उसके पैरों में सोने के कंकण पहनाते हैं। रतिपाल हम्मीर का विश्वासपात्र व्यक्ति है, किन्तु रतिपाल का स्वरूप उस समय पूर्णतः बदल जाता है जब अल्लावदीन उसे 'एतद्राज्यं तवैवास्तु जयेच्छुः केवलन्त्वहम्' कह कर राज्य का लोभ देता है। लोभ में पड़ कर और अल्लावदीन की भगिनी के साथ मदिरा पीकर वह शकेश से मिल जाता है और कूटनीति के द्वारा रणमल्ल को भी हम्मीरद्रोही बना लेता है।

विश्वासघाती रतिपाल युद्धस्थल में अल्लावदीन को हम्मीर का सिर पादतल से बताता है। उसकी स्वामिद्रोहिता का फल उसे मिलता है। अल्लावदीन उसके मुख में खल्ल बाँध कर निकलवा देता है। उसकी इस दुर्दशा पर काव्यकार ने अपने हर्ष की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है :—

आजौ पादतलेन दर्शितवतो हम्मीरभूभृच्छिरः
पृष्टस्तेन तदर्पितांश्च गदतस्तांस्तान् प्रसादानपि ।
खल्लं ते रतिपाल यच्छकपतिर्निष्कासयामासिवान्
तद्युक्तं त्वमिवान्यथा कति पुनर्द्रुह्यन्ति न स्वामिने ।।[2]

रणमल्ल प्रारम्भ में हम्मीर का विश्वासपात्र वीर है। उसकी वीरता इसी से सिद्ध है कि स्वयं हम्मीर उसे रुष्ट जान कर मनाने के लिए जाते हैं। उसके चरित्र

रणमल्ल

में कोई दोष नहीं है, किन्तु वह रतिपाल की कूटनीति का शिकार बन कर अल्लावदीन से मिल जाता है। कवि ने उसके देशद्रोह से अप्रसन्न होकर उसे घोर पापी कहा है :—

द्राक् वक्त्रं रणमल्ल ! कृष्णय निजं पापिस्त्वमत्युच्चकैः ।[3]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १०, श्लोक ७२, ७६ (२) वही, सर्ग १४, श्लोक २१
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक १६

जाज और महिमासाहि जाज और महिमासाहि दोनों स्वामिभक्त वीर हैं। अन्तिम युद्ध के अवसर पर जाज अपनी आठों पत्नियों और एक पुत्र का सिर काट कर हम्मीर के सम्मुख लाता है और स्वयं भी उसके लिए बलिदान हो जाने की इच्छा व्यक्त करता हुआ कहता है :—

× × × **राजन् यथा पुरा।**
रावणः शम्भुमानर्च तथा त्वामर्चयाम्यहम् ॥
तच्छिरांसि नवैतानि रक्षो हस्तपदे पुनः ।
शिरो ममेदमित्युक्त्वा स स्वं शीर्षमदीदृशत् ॥[1]

महिमासाहि कम्बोजकुलावतंस वीर है। जाज की तरह उसका चरित्र भी उच्च-कोटि का है। वह विदेशी है जो हम्मीर के यहाँ शरण लेता है। हम्मीर उस पर बहुत विश्वास करता है। रणस्तंभपुर पर दूसरी बार शकेश का आक्रमण होने पर उसे दुर्ग के पश्चिमी भाग की रक्षा का दायित्व सौंपा जाता है। वह बड़ा वीर है। हम्मीर की आज्ञा से वह जगरा पर आक्रमण करके भोज के भाई पिथम को सपरिच्छद बाँध लेता है। वह कुशल धनुर्धर भी है। दुर्ग से ही वह अल्लावदीन के धनुर्धर उड्डान को बाण द्वारा मार डालता है।

महिमासाहि की स्वामिभक्ति का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन उस समय मिलता है जब हम्मीर उसके विदेशी होने के कारण उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने को कहते हैं। हम्मीर के इस कथन से उसके हृदय को आघात पहुँचता है। वह घर जाकर अपने सारे कुटुम्ब को तल-वार से मार कर अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित करता है। जिसके आश्रय में रह कर सुख के दिन व्यतीत किये उसे विपत्ति में कैसे छोड़ा जाय। हम्मीर के प्रति उसकी अविचल भक्ति है। हम्मीर की मृत्यु के पश्चात् युद्ध में जब वह जीवित पकड़ कर लाया जाता है तो वह अल्लावदीन को पादतल ही दिखाता है। अल्लावदीन के यह पूछने पर कि यदि उसे जीवित छोड़ दिया जाए तो वह (महिमासाहि) क्या करेगा, वह निर्भीक होकर उत्तर देता है, 'जो तुमने हम्मीर के साथ किया वही मैं तुम्हारे साथ करूँगा।'[2] इस उत्तर में महिमासाहि की शूरता, निर्भीकता और स्वामिभक्ति प्रकट हुई है।

अन्य पात्रों में उल्लूखान, निसुरत्तखान, जैत्रसिंह और वीरम हैं। उल्लूखान अल्ला-वदीन का अनुज एवं सेनापति है। वह बड़ा चाणाक्ष है। निसुरत्तखान भी

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक १८८–१८९

(२) नैव स्वं स्वेन हन्यादिति कुलचरितं पालयन् यो गृहीतो।
जीवन् म्लेच्छाधिपाग्रे सदसि पदतलं दर्शयंश्च प्रविष्टः॥
कर्ता त्वं जीवितः किं मयि च तदुदितः प्रोक्तवान् यद्धमीरे।
कार्षीस्त्वं तेन साम्यं कलयति महिमासाहिना कोऽत्र वीरः॥
—वही, सर्ग १४, श्लोक २०

अन्य पात्र दिल्लीपति का भाई है। जैत्रसिंह हम्मीर का पिता और वीरम हम्मीर का भाई है। इनके चरित्र का विकास नहीं हो पाया है।

'हम्मीरमहाकाव्य' में प्रकृति को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। पंचम सर्ग से लेकर नवम सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में प्रकृति का चित्रण ही कवि का लक्ष्य रहा है। इन सर्गों में उसने वसन्त, वर्षा, उद्यानक्रीडा, सर, जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय,

प्रकृति-चित्रण सुरत, प्रातः आदि के विस्तृत वर्णन उपस्थित किये हैं। 'हम्मीरमहाकाव्य' में प्रकृति के चित्रांकन की विविध शैलियों का प्रयोग किया गया है, किन्तु उसमें वाल्मीकि-रामायण एवं कालिदास के काव्यों में उपलब्ध होने वाली प्रकृति की सहज-स्वाभाविकता बहुत-कम दिखाई देती है। उसमें या तो कलात्मक सौन्दर्यमयी चित्रणशैली का प्रयोग हुआ है अथवा हर्ष और माघ की आलंकारिक और ऊहात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। फिर भी प्रकृति की सहज-संश्लिष्ट-योजना कतिपय स्थानों पर मिल जाती है। वर्षा के इस दृश्य में पर्याप्त सजीवता है :—

बर्हिणो व्यदधन् केका उन्नीयोन्नीय कन्धराम्।
आह्वयन्त इवाम्भोदं मिलितुं चिरमागतम्॥[१]

वर्षाकाल में चतुर्दिक् जल के व्याप्त हो जाने से छोटे-छोटे सरोवर भी समुद्र जैसा विस्तृत रूप धारण कर लेते हैं। इस दृश्य का बिम्बग्राही वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

दधत्यम्बुनिधेः स्पर्धां सरांसीव रराजिरे।
त्रुटित्वा वारिभारेणाभ्राणीव पतितान्यधः॥[२]

किन्तु 'हम्मीरमहाकाव्य' में अलंकारों से मुक्त संश्लिष्ट चित्र अधिक नहीं पाये जाते। वास्तव में 'हम्मीरमहाकाव्य' में स्वभावोक्ति को बहुत-कम स्थान मिल सका है। उसके प्रकृति-चित्रों में कलात्मक संश्लिष्टता ही अधिक पाई जाती है। वसन्तवर्णन के अन्तर्गत तिलक वृक्ष पर मँडराते हुए भ्रमरों के इस चित्र में कलात्मक स्वाभाविकता वर्तमान है :—

परिलोभयन् मधुकरप्रकरान् मधुसङ्गमेन मधुरैर्मधुभिः।
तिलकद्रुमस्तिलकवन्निखिलेष्वपि भूरुहेषु लभते स्म रुचिम्॥[3]

प्रकृति के ऐसे संश्लिष्ट चित्र, जिनमें कलात्मक सौन्दर्य मिल कर एक हो गया है, 'हम्मीरमहाकाव्य' में बहुत पाये जाते हैं।

'हम्मीरमहाकाव्य' में प्रकृति को उद्दीपन-रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। वर्षाकालीन मेघगर्जन विधवा शकप्रियाओं की विरह-व्यथा को उद्दीप्त कर रहा है :—

यथा यथा जगर्जाऽयं स्तनयित्नुस्तथा तथा।
प्रियाः शकानां चक्रन्दुर्बाहुजैः विधवीकृताः॥[४]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक ५२ (२) वही, सर्ग १३, श्लोक ५६
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक २३ (४) वही, सर्ग १३, श्लोक ६५

'हम्मीरमहाकाव्य' में प्रकृति का सर्वाधिक वर्णन मानवीकरण के रूप में हुआ है। नयचन्द्रसूरि जब प्रकृति पर मानवीय आकार-प्रकार और भावनाओं का आरोप करते हैं तो उनकी प्रकृति मानवीय जीवन से स्पन्दित जान पड़ती है। वर्षा-वर्णन के इस चित्र में तडित् को नर्तकी के रूप में चित्रित किया गया है :—

उद्गीते केकिभिर्गीते तूर्यिते घनगर्जिते।
ननर्त नर्तकीवोच्चैस्तडिद्गगनमण्डले ।।[1]

इसी प्रकार वर्षाकालीन हरिततृणपूर्ण पृथ्वी में ऐसी नायिका का आरोप किया गया है जिसने मेघप्रियागमजन्य उत्फुल्लता से हरितकंचुकी पहन ली है:—

सान्द्रोद्गमोल्लसन्नीलतृणश्रेणिच्छलात् क्षितिः।
मेघप्रियागमप्रीता पर्यधादिव कंचुकम् ।।[2]

प्रातःकाल के इस वर्णन में विभावरी को रजस्वला नारी के रूप में चित्रित किया गया है:—

विच्छायमिन्दुं मुखमावहन्ती विनिम्नताराकलुषाम्बरैषा।
विभावरी याति रजस्वलेव स्नातुं पयोधौ दिशि पश्चिमायाम् ।।[3]

रात्रिवर्णन के अन्तर्गत निशासुन्दरी शृंगार करके हिमकरदयित के पास जाती हुई दृष्टिगोचर होती है:—

हिमकरं दयितं मिलितुं निशा विवसिताद्भुतभूषणया दधे।
अविरलोदिततारकपेटकच्छलमयी नवमौक्तिकजालिका ।।[4]

यहाँ निशा में नायिका एवं हिमकर में नायक का आरोप किया गया है। इसी प्रसंग में सूर्य को दीर्घमार्गसंचरण से परिश्रान्त पथिक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अपनी थकान को दूर करने के लिए जलक्रीडा करने की इच्छा से पश्चिमाब्धि में प्रवेश कर रहा है।[5]

नयचन्द्रसूरि ने प्रकृति को मानव के दुःख में दुखी और सुख में सुखी चित्रित किया है। उनकी प्रकृति संवेदनाशील है। वसन्तकालीन रात्रि में विरहिणी स्त्रियों के प्रति व्यापक सहानुभूति है जिससे प्रेरित होकर वह उनके दुख को घटाने के लिए स्वयं को कृश कर लेती है :—

अतिदुःसहप्रियसुहृद्विरहैः प्रमदाजनैः कथमिवैष स नः।
महिमा सहिष्यत इतीव निशाः कृशतामधुर्मधुरिता कृपया ।।[6]

अप्रस्तुत के रूप में प्राकृतिक उपमानों की योजना करके कवि ने 'हम्मीरकाव्य' में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन भी किया है। जैसे:—

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक ५४
(२) वही, सर्ग १३, श्लोक ५५
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक २
(४) वही, सर्ग ७, श्लोक २५
(५) वही, सर्ग ७, श्लोक ४
(६) वही, सर्ग ५, श्लोक ४

पित्रा प्रदत्तं समवाप्य काले राज्यं स भूभृन्नितरां चकासे ।
ग्रहर्मु खेऽहर्पतिनोदयाद्रिर्यथा तमोव्रातविनाशि रोचिः ।।[1]

यहाँ पृथ्वीराज के लिए उगते हुए सूर्य उपमान की योजना की गई है । इस प्रकार 'हम्मीरमहाकाव्य' में प्रकृति को विभिन्न रूपों में चित्रित करने में कवि को अच्छी सफलता मिली है । कवि का हृदय प्रकृति में रम गया है, फलस्वरूप उसके इन प्रकृति-चित्रों में मन को मुग्ध करने की शक्ति दीख पड़ती है ।

सौन्दर्य-वर्णन

'हम्मीरमहाकाव्य' के पात्रों के सौन्दर्य-चित्रण में कवि-रुचि का रमण अधिक नहीं हुआ है । सम्पूर्ण काव्य में एक दो स्थान पर ही संक्षिप्त सौन्दर्य-चित्र उपस्थित किये गये हैं । पुरुष-पात्रों में केवल हम्मीर का सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत किया गया है जो बहुत संक्षिप्त है । हम्मीर के विविध अंगों की सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए परम्परागत उपमान जुटाए गये हैं । केश मुख, कण्ठ, वक्ष, बाहु और पदों के लिए क्रमशः केकिकलाप, शशि, कम्बु, कपाट, परिघ और कमल, इन प्राकृतिक उपमानों की योजना करके परम्परा का पालन किया गया है:—

केशाः केकिकलापकान्तिजयिनो वक्त्रं शशिप्रीतिभित् ।
कण्ठः कम्बुरिपुः कपाटपटुताविक्षेपि वक्षस्थलम् ।।
दोर्दण्डौ परिघापघातनिबिडौ पादौ कृताब्जा पदौ ।
किं किं रम्यतरं न यौवनपदं प्राप्तस्य तस्याऽभवत् ।।[2]

कहीं-कहीं कवि ने मौलिक कल्पनाओं की उद्भावना भी की है । हम्मीर की श्मश्रुओं को नासिका-विवरद्वय से निकलने वाली शृंगार की दो धाराएँ बता कर कवि ने अपनी मौलिक सूझ का परिचय दिया है:—

अकृत्रिमालंकृतिराननस्य तस्योत्थिते श्मश्रुलते व्यभाताम् ।
आधिक्यतो घ्राणयुगाध्वनिर्यच्छृंगारधारे इव नेत्रपेये ।।[3]

स्त्री-पात्रों में जैत्रसिंह की पत्नी (हम्मीर की माता) हीरादेवी का सौन्दर्य-वर्णन केवल एक श्लोक में अत्यन्त साधारण रीति से किया गया है:—

सौन्दर्येण जिता यस्या रतिस्तामेव भेजुषी ।
जगदे बह्निदग्धस्य शरणं बह्निरेव हि ।।[4]

नृत्य करती हुई नर्तकी धारादेवी के सौन्दर्यवर्णन में कवि ने अपेक्षाकृत अधिक रुचि प्रदर्शित की है । निम्न अवतरणों में धारादेवी के सौन्दर्य के साथ-साथ उसकी नृत्यकालीन मुद्राओं और भंगिमाओं की झलक भी मिलती है:—

अङ्गुल्यग्रभ्रमच्चक्रदम्भेन युवतीजने ।
रूपलावण्यसौन्दर्यैः सा दधौ चक्रितामिव ।।

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग २, श्लोक ७८ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक १५५
(४) वही, सर्ग ४, श्लोक १५४ (५) वही, सर्ग ४, श्लोक १३६

कर्णोपान्तभ्रमच्चक्रव्याजात् स्माहेव तां शशी ।
ममोपमा तवास्यस्य भ्रम एव विपश्चिताम् ।।
कर्पूरपरमाणूनां व्याजाल्लग्नानि पादयोः ।
भ्रमिभिर्भ्रामयन्तीव रेजे यूनां मनांसि सा ।।[1]

इन वर्णनों में सौन्दर्य का आकर्षण और रसानुभूति पर्याप्त है। कला की दृष्टि से निःसन्देह ये वर्णन उच्चकोटि के हैं, किन्तु 'हम्मीरमहाकाव्य' में ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं।

समाजचित्रण

'हम्मीरमहाकाव्य' के ऐतिहासिक कथानक में तत्कालीन समाज की छुट-पुट झलक भी दृष्टिगोचर होती है। नयचन्द्रसूरि के समय में दैवज्ञ और गणकों का समाज में उच्च स्थान दीख पड़ता है। सामान्य जन ही नहीं, राजा-महाराजा भी उनका आदर करते हैं और उनके द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में मंगल-कार्यों का प्रारम्भ करते हैं। मुहूर्त और शुभलग्न में जनता की अपूर्व आस्था है। पृथ्वीराज शुभ लग्न और शुभ योग में युद्ध के लिए प्रयाण करता है:—

ततस्ततश्री शुभकारिसर्वग्रहे विलग्ने विजये च योगे ।
चचाल चंचत्प्रतिपन्थिमाथ चिकीर्षया व्याकुलचित्तवृत्ति ।।[2]

इसी प्रकार हम्मीर भी शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता है:—

ततो दैवज्ञविज्ञातलग्ने लग्नेद्धरुग्ग्रहे ।
वन्ध्याभिर्गोत्रवृद्धाभिः कृतयात्रिकमंगलः ।।[3]

मंगलकार्य के लिए प्रस्थान करते समय दूर्वा और अक्षतों का फेंका जाना भी शुभ माना जाता है। पृथ्वीराज के युद्धार्थ प्रयाण करते समय पौरांगनाएँ उस पर दूर्वाक्षत फेंकती हैं।

हिन्दू राजाओं में यज्ञ करने की परम्परा है। दिग्विजय से लौट कर हम्मीर कोटि यज्ञ करता है और त्रिशुद्धिव्रत ग्रहण करता है।

तत्कालीन राजनीति में छल-कपट का समावेश दीख पड़ता है। मुसलमान शासक उचित-अनुचित सभी उपायों से साम्राज्य-वृद्धि में लिप्त थे। मुस्लिम राजनीति में शत्रु को धोखा देना अनुचित नहीं माना जाता था। निसुरत्तखान और उल्लूखान हम्मीर से सन्धि-चर्चा चला कर राजपूतों को धोखा देने में सफल हो जाते हैं और अपनी सेना को अद्रिघट्ट में सुरक्षित स्थान पर स्थित कर देते हैं। अल्लावदीन शत्रुपक्षीय वीर रतिपाल को राज्य-लोभ देकर वश में कर लेता है और अपनी इस भेदनीति से विजय प्राप्त करता है। राजपूत वीर अवश्य हैं, किन्तु वे सरल स्वभाव के तथा राजनीति के दाव-पेच से अज्ञ दीख पड़ते हैं।

'हम्मीरमहाकाव्य' में कवि ने अपने धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति में उदासीनता

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १३, श्लोक २०–२२ (२) वही सर्ग ३, श्लोक १६
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक २

दिखलाई है। समग्र काव्य में केवल दो स्थलों पर ही कवि की धार्मिक भावना अप्रत्यक्ष-रूप में व्यक्त हुई है। काव्य के आरम्भ में उसने ऐसे मंगलाचरण के श्लोक रखे हैं जिनसे एक ओर ब्राह्मण धर्म के देवताओं की स्तुति का बोधक अर्थ निकलता है तो दूसरी ओर कवि के इष्टदेव जैन तीर्थंकरों का स्तवनमूलक अर्थ व्यक्त होता है। उदाहरणार्थ निम्न अवतरणों में नाभिभू (ऋषभनाथ, ब्रह्मा) तथा पुरुषोत्तम श्रीपार्श्व (पार्श्वनाथ, लक्ष्मीपति विष्णु) की स्तुति की गई है जिनसे जैन और ब्राह्मण दोनों धर्मों के अनुयायी अपने धर्म के अनुसार अर्थ निकाल सकते हैं:—

धार्मिक तत्त्व

तज्ज्ञानविज्ञानकृतावधानाः सन्तः परब्रह्ममयं यमाहुः।
पद्माश्रयः क्लृप्तभवावसानः स नाभिभूर्वस्त्वरतां शिवाय॥
यशोदयास्फीतशुभप्रवृत्तिर्गोपालमालार्चितपादपद्मः।
श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषोत्तमश्रीपार्श्वः श्रियं वस्तनुतादतन्वीम्॥[1]

दूसरे स्थल पर कवि की धार्मिक भावना वहाँ व्यक्त हुई है जब दिग्विजय से लौट कर हम्मीर कोटियज्ञ करता है। इस अवसर पर कवि ने ब्राह्मणधर्मानुयायी हम्मीर द्वारा समस्त राज्य में मारि-निवारण तथा सप्त व्यसनों के वर्जन की घोषणा कराई है, जो कदाचित् कवि के धार्मिक मस्तिष्क की उपज-मात्र है।

विविध रसों के परिपाक की दृष्टि से 'हम्मीरमहाकाव्य' का स्थान आलोच्य युग के काव्यों में बहुत ऊँचा है। इसमें शृंगार और वीर रस को प्रमुख स्थान मिला है। कवि ने स्वयं इसे शृंगारवीराद्भुत काव्य कहा है:—

रस-परिपाक

तद्भ्रूचापलकेलिदोलितमनाः शृंगारवीराद्भुतम्।
चक्रे काव्यमिदं हमीरनृपतेर्नव्यं नयेन्दुः कविः॥[2]

'हम्मीरमहाकाव्य' में वीर रस का परिपाक अनेक स्थलों पर हुआ है। तृतीय सर्ग में पृथ्वीराज-सहाबदीन युद्ध में, नवम सर्ग में हम्मीर की दिग्विजयवर्णन में तथा उल्लूखान और भीमसिंह के मध्य हुए युद्ध के प्रसंग में, दशम सर्ग में उल्लूखान-हम्मीर युद्ध में तथा बाद में एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश सर्गों के युद्ध-प्रसंगों में सर्वत्र वीररस की सफल अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः 'हम्मीरकाव्य' वीररसप्रधान महाकाव्य है। शृंगाररस का समावेश तो महाकाव्य के परम्परागत नियमों के अनुरोध पर हुआ है जिसके कारण कवि को वसन्त, जलक्रीडा, सुरत आदि के वर्णनों को अपने काव्य में स्थान देना पड़ा है, अन्यथा मूलकथा में इसका कोई महत्त्व नहीं है।

आक्रमणकारी अल्लावदीन को पराजित करने के लिए प्रयाण करती हुई हम्मीर-सेना के इस वर्णन में वीररस का सुन्दर परिपाक हुआ है:—

इत्थं यथायुक्तिकृतप्रतिज्ञा वीरा रणोत्साहलसच्छरीराः।
हम्मीर हम्मीर इति ब्रुवाणाः शकाधिपीये शिविरे निपेतुः॥

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १, श्लोक २–३ (२) वही, सर्ग १४, श्लोक ४३

द्रुतमेव केऽपि परिखामपूपुरन्नदहन् परे दलिकदुर्गमुच्छ्रितम् ।
न्यविशन्त चान्तरितरेऽतिवेगतः पटवासरज्जुनिचयान् परेऽलुनन् ।।[1]

यहाँ अल्लावदीन और उसकी सेना आलम्बन विभाव है। रणस्तंभपुर से शत्रु को मार भगाने की भावना उद्दीपन विभाव है। हम्मीर के सैनिकों द्वारा युद्ध में अल्लावदीन को पराजित करने की प्रतिज्ञा करना, 'हम्मीर की जय' यह उद्‌घोष करते हुए शकाधिप के शिविर की ओर प्रयाण करना, परिखा को जल से पूर्ण करना, रज्जु बाँध कर उसके सहारे दुर्ग पर चढ़ने का प्रयत्न करने वाले शत्रु-सैनिकों को मारना एवं रज्जु को काट देना अनुभाव हैं। आवेग, उग्रता, गर्व, अमर्ष, मति आदि संचारी भाव हैं। यहाँ हम्मीर के सैनिकों के हृदय का उत्साह स्थायी भाव है, जिसकी परिणति वीररस में हुई है।

'हम्मीरमहाकाव्य' में रौद्र रस का वर्णन भी बहुत सजीव हुआ है। दशम सर्ग में महिमासाहि जगरा पर आक्रमण करके भोज के भाई पिथम को सपरिच्छद बन्दी बना कर रणस्तंभपुर ले जाता है। भोज के मुख से उसकी दुर्दशा का यह विवरण सुन कर अल्लावदीन क्रोध से काँपने लगता है और हम्मीर को पराजित करने की प्रतिज्ञा करता है। इस प्रसंग में रौद्र रस का भव्य परिपाक हुआ है :—

तद्वाक्यश्रवणादथ प्रसृमरक्रोधप्रकम्पाधरो
बाहुष्टम्भनमासनं प्रतिलवं सव्यापसव्ये नयन् ।
प्रत्युत्क्षिप्य शिरोवतंसमवनीपीठे तथाऽस्फालयन्
चक्रे काव्यपरम्परामिति तदा म्लेच्छावनीवल्लभः ।।
रे रे भोज विमुंच शोकमखिलं लज्जाकरं दोष्मताम्
हे भ्रातस्तव कीर्तिकेलिसदनं स्थैर्यं स्वमप्याश्रय ।
दुःखेनैव सह क्षणेन युवयोरेतस्य सोऽहं बली
हम्मीरस्य समूलकाषमधुना मानं कषाम्युच्चकैः ।।[2]

यहाँ हम्मीर आलम्बन विभाव है। भोज के परिवार की दुर्दशा का सुनना उद्दीपन विभाव है। अल्लावदीन के अधरों का काँपना, उसका प्रतिक्षण सव्य-अपसव्य होकर आसन बदलना, मुकुट को ऊपर फेंकना, अवनीपीठ पर मुष्टि-प्रहार करना, हम्मीर को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना आदि अनुभाव हैं। गर्व, आवेश, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा अल्लावदीन के हृदयगत क्रोध की परिणति रौद्र रस में हुई है।

वसन्तवर्णन एवं सुरतवर्णन-प्रसंगों में शृंगार रस की सुन्दर व्यंजना हुई है। एक नायिका वृक्षाधिरूढ़ नायक के पैरों को पल्लव की भ्रान्ति से पकड़ कर पुलकित हो रही है तो दूसरी ओर एक नायक नायिका के उरोजों को कुसुमस्तवक बता कर उन्हें अपने करों से पकड़ रहा है :—

---

(१) **हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ११, श्लोक ४०–४१** (२) **वही, सर्ग १०, श्लोक ७९–८०**

दयितस्य वृक्षमधिरूढ़वतः पदमाशु पल्लवधिया विधृतम् ।
न चकर्ष नैव च मुमोच परा तदवाप्तिजातपुलकप्रसरा ।।
अयि पश्यतोऽपि कुसुमस्तवकः क्व गतो मयेति कितवोक्तिपरम् ।
करसात् विधाय दयितोरसिजं निजगाद लब्धमिति कोऽपि हसन् ।।[1]

संभोग शृंगार के सहायक के रूप में हास्य रस की छटा भी यत्र-तत्र दीख पड़ती है । यथा :—

सुमकन्दुकौ निजकरग्रथितौ सहसं प्रदर्श्य किल केनचन ।
त्वदुरोजकौ ध्रुवमियत्प्रमितौ वदतेत्यहासि कुपिताऽपि सुदृक् ।।[2]

यहाँ हास स्थायी-भाव है और क्रोध भाव का प्रशम है ।

अपने पिता जैत्रसिंह की मृत्यु पर हम्मीर के इस विलाप में करुण रस सजीव हो उठा है :—

अथाभिषिंचन् नवशोकभूपं नवावतारं हृदि वाष्पपूरैः ।
चकार मोहग्रहिलीकृतात्मा हम्मीरदेवः परिदेवनानि ।।
तातेति तातेतिवचःप्रघोषशुष्यद्गलस्यापि ममावनीश ।
यद्दर्शनं न प्रददासि तत्का तवौचिती सङ्गतिमङ्गतीयम् ।।
कण्ठस्य हाहेति वचांसि दृष्ट्योरस्रं कपोलस्य कराब्जकोशः ।
चित्तस्य शोकः शरणं हमीरदेवस्य तत्राहनि जायते स्म ।।[3]

अपनी पुत्री देवल्लदेवी के जौहर करने के लिए अग्नि में प्रविष्ट होते समय हम्मीर का हृदय भर आता है और वे उसे अपने हृदय से लगा लेते हैं । इस अवसर पर वात्सल्य की अभिव्यक्ति बड़ी मर्मस्पर्शी हुई है :—

पुत्रीं देवल्लदेवीं च दोर्भ्यामालिंग्य निर्भरम् ।
नितरां निःश्वसन् क्रन्दन् कष्टेन महता जहौ ।।
ऊचे च चेत् भवेत्पुत्री भूयास्तर्हि भवादृशी ।
परां कोटिं ययाऽनायि गौर्येव जनको निजः ।।[4]

बारहवें सर्ग में अल्लावदीन के आक्रमण के समय हम्मीर दुर्ग में चारों ओर शूर्प लटकवा देता है । इस दृश्य को देख कर अल्लावदीन चकित रह जाता है । इस प्रसंग में अद्भुत रस का चित्रण भी अच्छा बन पड़ा है ।[5]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक ५७ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक ५४
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक १७, १८, २३
(४) वही, सर्ग, १३, श्लोक १८२-१८३
(५) अल्लावदीननृपतिं समागतं श्रुत्वाऽथ जैत्रिरवनीवनीधनः ।
दुर्गोपरि प्रतिपदं मदादसौ शूर्पाण्यबीबधदुदारधीधनः ।।

'हम्मीरमहाकाव्य' की भाषा महाकाव्योचित गरिमा और प्रौढ़ता लिये हुए है। नयचन्द्रसूरि की भाषा अपने पदलालित्य के लिए पण्डितों में प्रसिद्ध रही है। उनकी भाषा में विद्वानों ने लोकोत्तर लालित्य और वक्रिमा के दर्शन किये हैं जैसा कि किसी कवि का कथन है:—

भाषा

लालित्यममरस्येह श्रीहर्षस्येह वक्रिमा ।
नयचन्द्रकवेः काव्ये दृष्टं लोकोत्तरं द्वयम् ।।

यह कथन सत्य के बहुत निकट है। 'हम्मीरमहाकाव्य' में रस और प्रसंग के अनुकूल पदावली के प्रयोग में कवि को आशातीत सफलता मिली है। उसकी भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुण यथास्थान स्थित हैं। श्रृंगार रस के प्रसंगों में श्रुतिमधुर तथा कोमलकान्तपदावली का प्रयोग किया गया है जिसे पढ़ कर पाठक का हृदय आह्लाद से झूम उठता है। सुरतवर्णनसम्बन्धी इन पद्यों की भाषा में श्रुतिमाधुर्य उल्लसित हो उठा है:—

जहिहि लाक्षणिकीं रुषमुत्तमे नहि न वेद्मि मनस्तव यन्मयि ।
अहह पश्य तवाधरपल्लवः स्फुरति मामिव चुम्बितुमुत्सुकः ।।
अधरपातविधौ स्तनमर्दने नखरदोल्लिखने परिरम्भणे ।
क्वचिदपि स्खलति स्म न कामिनां मतिरिहाप्यवधानभृतामिव ।।[1]

टवर्ग श्रुतिकटु है, अतः उसे माधुर्य का विघातक माना गया है। उपर्युद्धृत पद्यों में टवर्ग का नितान्त बहिष्कार करके कवि ने श्रुतिमधुर भाषा के प्रयोग में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। अनुकूल छन्द के प्रयोग ने माधुर्य-गुण में और अधिक वृद्धि की है।

करुण रस में भी माधुर्यगुणयुक्त भाषा के प्रयोग का विधान है। कवि ने ऐसे प्रसंगों में मधुर भाषा का ही प्रयोग किया है। किन्तु, श्रृंगार की मधुमय पदावली एवं करुण प्रसंगों की मधुर पदावली में विषय और परिस्थिति के अनुकूल बहुत अन्तर है जो कवि के भाषाधिकार को व्यक्त करता है। संयोग-श्रृंगार की भाषा जहाँ मृदुल, मंजुल और रतिभावना को उद्दीप्त करने वाली है वहाँ करुण-प्रसंगों की भाषा विवशता, दीनता और गहन व्यथा को व्यक्त करने वाली है। समस्त परिवार को महिमासाहि द्वारा बन्दी बना लिये जाने पर भोज के हृदय का हाहाकार अनुकूल भाषा में इस प्रकार व्यक्त हुआ है:—

तत्किं करोमि कं वा श्रयामि यामि क्व वा किमु वदामि ।
हृदयं वातान्दोलिततूलतुलां कलयतीदमनुवेलम् ।।[2]

दृष्ट्वा तदद्भुतमसौ शकेश्वरो विस्मेरविस्मयविकासिलोचनः ।
पप्रच्छ पाणितलचालसंज्ञयेत्येतत् किमङ्ग वरुणोपरिस्थितान् ।।

—हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १२, श्लोक १-२

(१) वही, सर्ग ७, श्लोक ८७, ९५
(२) वही, सर्ग १०, श्लोक ७६

ओज गुण चित्त का उद्दीपन करता है। वीर और रौद्र जैसे रसों में इसकी स्थिति होती है। वीर, रौद्र आदि रसों का प्रसंग आते ही नयचन्द्रसूरि की भाषा में भी स्वाभाविक रूप से ओज आ गया है। भोज की दुर्दशा सुन कर क्रुद्ध हुए अल्लावदीन की यह पदावली अमर्षव्यंजिका है:—

तावद्गर्जन्तु जाग्रन्मदभरतरलाश्चंचला वीरमाद्याः
वीराः प्रत्यर्थिवीरावलिवलनकलाकेलिकण्डूलहस्ताः।
ज्यारावैर्विस्फुरद्भिर्जगदखिलमपि प्रापयन्नेडभावम्
यावन्नाल्लावदीनः किरति शरभरं प्रावृषेण्यच्छटावत् ॥[1]

यहाँ संयुक्त वर्ण, अर्धरेफ, टवर्ग, और लम्बे समासों ने ओज गुण की व्यंजना में सहायता की है।

जिन रचनाओं का अर्थ पढ़ते ही हृदयंगम हो जाता है वहाँ प्रसादगुण माना जाता है। भाषा की दृष्टि से 'हम्मीरकाव्य' की अधिकांश रचना प्रसादगुण से युक्त है। प्रसादगुण से युक्त कतिपय पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

सर्वस्वनाशेऽपि कुले विरोधोद्बोधं सुधीर्नो विदधीत कश्चित्।
कुले विरोधो रचितो निनाय सुयोधनं किं निधनं न सद्यः ॥
विराद्धपूर्वः पुरुषः प्रधानपदे कदाचिन्न पुनर्विधेयः।
तादृक्छलं प्राप्य तथाविधा हि द्रुह्यन्ति नूनं धृतगुप्तवैराः ॥
यथा न पीडा भवति प्रजानां ग्राह्यस्तथा धीघनतस्करोऽपि।
किं नाम पुष्पाणि चिनोति पुष्पलावीलतानां जनयन् विबाधाम् ॥[2]

'हम्मीरमहाकाव्य' में कवि ने विविध सूक्तियों और सुभाषितों का यथास्थान प्रयोग किया है जिससे भाषा में मोहनगुण आ गया है। कतिपय सूक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

मूलाद्विनष्टे कार्ये हि किं कुर्याद् बलवानपि।[3]
अवाप्यकृत्यं प्रकुर्वन्तो पापाः मुह्यन्ति हन्त ! किम्।[4]
स्वभावः खलु दुस्त्यजः।[5]
उपकारकारि सुचिरोपनतं सहसैव हेयमिति वस्तु कथम्।[6]
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरा हा ! हाऽधमाः सर्वतः।[7]
वामे विधौ वाममशेषमेव।[8]

'हम्मीरमहाकाव्य' की भाषा प्रौढ़ है और उसके शब्दों में मनोभाव प्रकट करने

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १०, श्लोक ८४
(२) वही, सर्ग ८, श्लोक ४०, १०१
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक १७७
(४) वही, सर्ग ४, श्लोक १०४
(५) वही, सर्ग ४, श्लोक ६३
(६) वही, सर्ग ५, श्लोक ३५
(७) वही, सर्ग ३, श्लोक ७१
(८) वही, सर्ग २, श्लोक ७०

की प्रभूत शक्ति है। लेखक की यह दृढ़ धारणा है कि 'हम्मीरमहाकाव्य' की भाषा ने संस्कृत को गौरव प्रदान किया है।

नयचन्द्रसूरि ने विविध अलंकारों की योजना करके 'हम्मीरमहाकाव्य' के काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि की है। 'हम्मीरमहाकाव्य' में अलंकार केवल बाह्य सौन्दर्य की ही वृद्धि नहीं करते, अपितु भावाभिव्यक्ति में भी सहायता पहुँचाते हैं।

अलंकार

शब्दालंकारों में यमक और अनुप्रास का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। यथाः—

नाम्नि धाम्नि च संक्षेपं विधित्सन् यो विरोधिनाम्।
अवनीपालतां हित्वा द्राक् वनोपालतां ददौ ॥[1]

गुरुप्रसादाद्यदि वास्मि शक्तस्तदीयवृत्तस्तवनं विधातुम्।
सुधाकरोत्सङ्गसरङ्गयोगान्मृगो न खे खेलति किं सखेलम् ॥[2]

ऐसे स्थलों पर यमक और अनुप्रास का प्रयोग स्वाभाविकता लिये हुए है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना अधिक हुई है। इन अलंकारों ने भाव-व्यंजना में सहायता पहुँचाई है। नयचन्द्रसूरि की उपमाएँ बड़ी अनूठी हैं। पृथ्वीराज-वर्णन-प्रसंग में राज्याधिरूढ़ पृथ्वीराज को उदयाद्रि पर स्थित प्रातःकालीन सूर्य की उपमा कितनी सटीक हैः—

पित्रा प्रदत्तं समवाप्य काले राज्यं स भूभृन्नितरां चकासे।
अहर्मुखेऽहर्पतिनोदयाद्रिर्यथा तमोव्रातविनाशिरोचिः ॥[3]

उत्प्रेक्षा का प्रयोग काव्य में अनेक स्थलों पर हुआ है। वसन्त-वर्णन-सम्बन्धी इस पद्य में उत्प्रेक्षा की सुन्दर योजना बन पड़ी हैः—

हृदयेश्वरं भजत मानममुं त्यजताऽऽशु नैति समयो हि गतः।
इति बोधयन्निव कुरङ्गदृशो रुचिरं चुकूज परपुष्टयुवा ॥[4]

रूपक की भव्य योजना ऐसी पंक्तियों में दीख पड़ती हैः—

ततो वाग्भटभूपालसूर्येण परिवर्जितम्
रणस्तंभपुरव्योम व्यानशे शकतारकैः ॥[5]

यहाँ उपमेय वाग्भट और शकों पर क्रमशः उपमान सूर्य और ताराओं का आरोप किये जाने से रूपक अलंकार है।

सहाबदीन और पृथ्वीराज के युद्धवर्णन में उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग इस प्रकार हुआ हैः—

अथोद्भटैश्चारभटैस्तुरुष्काश्चण्डासिदण्डैरभिताड्यमानाः।
नेशुः समन्ताल्लगुडप्रपातैर्यथा कुलाम्येकविलोचनानाम् ॥[6]

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ४, श्लोक ३६ (२) वही, सर्ग १, श्लोक १२
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ७८ (४) वही, सर्ग ५, श्लोक ३०
(५) वही, सर्ग ४, श्लोक १०६ (६) वही, सर्ग ३, श्लोक ३७

इन अलंकारों के अतिरिक्त 'हम्मीरमहाकाव्य' में अर्थान्तरन्यास, तुल्ययोगिता, भ्रान्तिमान, सन्देह, विशेषक आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है यथा:—

अधिकाधिकं तनुविलेपनविधौ प्रमदाभिराद्रियत बह्निशिखम् ।
उपकारकारि सुचिरोपनतं सहसैव हेयमिव वस्तु कथम् ॥[1]

यहाँ पूर्वार्द्ध में विशेष बात कह कर उत्तरार्द्ध में सामान्य सिद्धान्त से उसका समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास है।

प्राग् रेणुजालानि ततः करेणुकुम्भभ्रमत्षट्पदझंकृतानि ।
ततो भटानां स्फुटसिंहनादाः सैन्यद्वयस्याप्यमिलंस्तदानीम् ॥[2]

यहाँ रेणुजाल, भ्रमरझंकृति और वीरों का सिंहनाद इन अनेक उपमेयों का क्रिया 'अमिलन्' द्वारा एक ही धर्म निर्दिष्ट किये जाने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

दयितस्य वृक्षमधिरूढवतः पदमाशु पल्लवधिया विधृतम् ।
न चकर्ष नैव च मुमोच परा तदवाप्तिजातपुलकप्रसरा ॥[3]

यहाँ भ्रम से पद को पल्लव समझने के कारण भ्रान्तिमान अलंकार है।

यः संगरे संगररंगवेदी क्षात्रं क्षणात् वेश्म नयन् यमस्य ।
किं भार्गवोऽयं पुनरेव जात इत्याकुलैर्वीरकुलैर्व्यतर्कि ॥[4]

यहाँ रण में सहावदीन की क्षत्रविनाशकारी प्रचण्ड वीरता को देख कर वीरों में 'क्या यह पुनः उत्पन्न हुए परशुराम हैं' यह संशय उत्पन्न होने से सन्देह अलंकार है।

किमेष कामो न यतोऽननंगः, किमेष दस्रो न यदद्वितीयः ।
किमेष विष्णुर्न यतो द्विबाहुः, किमेष वज्री न यतो द्विनेत्रः ॥[5]

यहाँ सौन्दर्य-समानता के कारण हम्मीर काम, अश्विनीकुमार, विष्णु और इन्द्र के रूप और आकार के ही हैं, किन्तु अन्य कारणों से हम्मीर की उनसे भिन्नता प्रदर्शित की गयी है। अतः यहाँ विशेषक अलंकार है।

निम्नोद्धृत श्लोक में अनमेल वस्तुओं के वर्णन के कारण विषम अलंकार है:—

क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं क्वैषा पुनर्मे धिषणाणुरूपा ।
ततोऽतिमोहाद्डुजयैकयैव मुग्धस्तितिर्षामि महासमुद्रम् ॥[6]

'हम्मीरकाव्य' में अतिशयोक्ति, विरोध, हेतु, यथासंख्य आदि अलंकारों की भी भव्य योजना यत्र-तत्र दीख पड़ती है। प्रत्येक का एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है:—

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक ३५ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक २५
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ५७ (४) वही, सर्ग ३, श्लोक १०
(५) वही, सर्ग १, श्लोक ५८ (६) वही, सर्ग १, श्लोक ११

अतिशयोक्तिः— जेगीयमानं निजकामिनीभिराकर्ण्य यं शेष इति प्रदध्यौ ।
कोऽप्यस्ति धत्ते वसुधां क्षणं यो गत्वा यथैनं प्रविलोकयामि ।।[1]

विरोधः— यस्य प्रतापज्वलनस्य किंचिदपूर्वमेवाजनि वस्तुरूपम् ।
जज्वाल रात्रौ सरसे प्रकामं यन्नीरसेऽस्मिन् प्रशशाम सद्यः ।।[2]

यथासंख्यः— गुरवो यदि वा सन्तो हितवाक्योपदेशिनः ।
हेयोपादेयतां तस्याऽभव्यभव्यौ चिकीर्षतः ।।[3]

हेतुः— विरुद्धवासादिह मां न कोऽपि वेत्तीति विभ्यत्किल यत्प्रतापात् ।
दारूणि वह्नि प्रविवेश नो चेत्तद्घर्षणात्तत् प्रभवः कुतः स्यात् ।।[4]

कहीं-कहीं एक ही श्लोक में कई अलंकारों की एक साथ योजना से संकरालंकार के सुन्दर उदाहरण भी 'हम्मीरकाव्य' में पाये जाते हैं ।[5] 'हम्मीरमहाकाव्य' के अलंकारों में रमणीयता, मार्मिकता और सहजता वर्तमान है । काव्य के सौन्दर्य को आकर्षक और प्रभावशाली बनाने में 'हम्मीरमहाकाव्य' के अलंकार पूर्णतया समर्थ प्रतीत होते हैं ।

'हम्मीरमहाकाव्य' में महाकाव्य के छन्दोविधान-सम्बन्धी नियमों का प्रायः पालन हुआ है । प्रारम्भिक तीन सर्गों में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है । प्रथम सर्ग के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, शिखरिणी, द्वितीय सर्ग के अन्त में शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा और तृतीय सर्ग के अन्त में मालिनी, तोटक, इन्द्रवंशा, मन्दाक्रान्ता, ललिता, शार्दूलविक्रीडित तथा प्रमिताक्षरा छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

छन्द

चतुर्थ सर्ग में अनुष्टुप् और सर्गान्त में उपजाति और शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त किये गये हैं । पाँचवें से नवें सर्ग तक क्रमशः प्रमिताक्षरा, स्वागता, द्रुतविलम्बित, उपजाति और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग हुआ है । पाँचवें के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, मालिनी तथा द्रुतविलम्बित, छठे के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, स्रग्धरा, उपजाति और वसन्ततिलका, सातवें के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, वसन्ततिलका, शिखरिणी, भुजंगप्रयात और उपेन्द्रवज्रा, आठवें के अन्त में वसन्ततिलका, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता और शार्दूलविक्रीडित तथा नवें सर्ग के अन्त में वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है । आठवें और नवें सर्ग के बीच में केवल एक-एक श्लोक में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग भी हुआ है । दसवें सर्ग में उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, कलहंस, शालिनी, मंजुभाषिणी, वसन्ततिलका, इन्द्रवंशा, स्रग्धरा, उपेन्द्रवज्रा, एक अर्धसम वृत्त

---

(१) हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग २, श्लोक ४६ (२) वही, सर्ग १, श्लोक ३८
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ६७ (४) वही, सर्ग १, श्लोक ५०
(५) उपमाश्लेष-हेतूनां संकरः } ततश्चतुर्वक्त्रभवात् प्रसादात् साम्राज्यमासाद्य स चाहमानः ।
चक्रेऽर्कवद्भूभृत आशु पादाक्रान्तान् गुरूनप्य यमस्य वप्ता ।।
—वही, सर्ग १, श्लोक १८

(स स ज ग, स भ र ल ग) तथा कई विषम वृत्तों का प्रयोग हुआ है। इस सर्ग में छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। ग्यारहवें सर्ग में उपजाति तथा अन्त में द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता तथा स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग हुआ है। बारहवें सर्ग में ललिता तथा अन्त में वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलम्बित तथा एक प्रहर्षिणी से मिलते-जुलते छन्द (म स ज र ग) का प्रयोग हुआ है। तेरहवें सर्ग में अनुष्टुप् तथा अन्त में स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। चौदहवें सर्ग के पूर्वार्द्ध में शार्दूलविक्रीडित और उत्तरार्द्ध में स्रग्धरा, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, आर्या, मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, तथा इन्द्रवज्रा छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार 'हम्मीरमहाकाव्य' में कुल २६ छन्दों का प्रयोग हुआ है। वे छन्द इस प्रकार हैं—उपजाति, अनुष्टुप्, द्रुतविलम्बित, ललिता, प्रमिताक्षरा, स्वागता, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवंशा, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, शिखरिणी, मालिनी, तोटक, मन्दाक्रान्ता, भुजंगप्रयात, कलहंस, शालिनी, आर्या, मंजुभाषिणी, प्रहर्षिणी से मिलता-जुलता एक छन्द (म स ज र ग), एक अर्धसम वृत्त (स स ज ग, स भ र ल ग) तथा तीन प्रकार के विषम वृत्त। इनमें उपजाति का प्रयोग सर्वाधिक एवं उसके बाद अनुष्टुप्, द्रुतविलम्बित, ललिता, प्रमिताक्षरा तथा स्वागता का प्रयोग उत्तरोत्तर कम है। शेष छन्दों का प्रयोग बहुत-कम हुआ है।

षष्ठ अध्याय

प्रमुख महाकाव्य

(ग) पौराणिक महाकाव्य

(१) धर्मशर्माभ्युदय (हरिचन्द्र)

(रचनाकाल वि० सं० १२५७ से १२८५ के मध्य)

जैन-संस्कृत-साहित्य में 'धर्मशर्माभ्युदय' का वही स्थान है जो इतर संस्कृत-साहित्य में महाकवि माघ-कृत 'शिशुपालवध' का है। बीस सर्गों के इस काव्य की रचना हरिचन्द्र ने की है। इसमें पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित्र प्रौढ़ और मनोहर शैली में ग्रथित किया गया है।

धर्मशर्माभ्युदय का महाकाव्यत्व

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनके आधार पर 'धर्मशर्माभ्युदय' सफल महाकाव्य है। यह एक सर्गबद्ध रचना है जिसके नायक धर्मनाथ धीरप्रशान्त हैं। इसमें शान्तरस प्रधान है और आनुषंगिक-रूप से शृंगार, वीर, रौद्र आदि रस भी इसमें वर्तमान हैं। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध होना चाहिए। 'धर्मशर्माभ्युदय' का कथानक भी जैन-लोक में प्रसिद्ध पन्द्रहवें तीर्थंकर श्रीधर्मनाथ के चरित्र से सम्बन्धित है जिसका आधार जैन पुराण हैं। शास्त्रीय नियमों के अनुसार ही 'धर्मशर्माभ्युदय' के प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन भी किया गया है। महाकाव्य में छन्द-प्रयोग-सम्बन्धी नियम के अनुसार ही 'धर्मशर्माभ्युदय' के दशम सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग दीख पड़ता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा की सूचना भी दे दी गयी है उदाहरण के लिए छठे सर्ग में सुव्रता के गर्भ से जिनेश्वर धर्मनाथ के उत्पन्न होने का वर्णन है। इसकी सूचना कवि पाँचवें सर्ग के अन्त में सुव्रता से कहे गये राजा महासेन के इन शब्दों में देता है :—

वारणेन्द्रमिव दानवन्धुरं सौरमेयमिव धर्मधूर्धरम्।
केशरीशमिव विक्रमोदितं श्रीस्वरूपमिव सर्वसेवितम्॥

×× ×× ×× ××

लप्स्यसे सपदि भूत्रयाधिपं तीर्थनाथमधुना त्वमात्मजम्॥[1]

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग ५, श्लोक ८३, ८६

महाकाव्य की परम्परागत परिपाटी के अनुसार 'धर्मशर्माभ्युदय' में प्रातः, सन्ध्या, रात्रि, वन, उपवन, जलक्रीडा, मद्यपान, सुरतकेलि, पुत्रोत्पत्ति, षड्ऋतुओं आदि के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं। महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से होना चाहिए और उसमें सज्जन-प्रशंसा तथा खल-निन्दा का समावेश भी होना चाहिए। 'धर्मशर्माभ्युदय' का प्रारम्भ भी नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है। इसका प्रारम्भिक श्लोक जिनेश्वर ऋषभनाथ की वन्दना से सम्बन्धित है। इसके बाद चन्द्रप्रभ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ आदि तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। सज्जन-प्रशंसा और खल-निन्दा का समावेश भी 'धर्मशर्माभ्युदय' में हुआ है। प्रस्तुत काव्य का उद्देश्य धर्म-शर्म (धर्म के सुख) का अभ्युदय है। अतः काव्यगत उद्देश्य के आधार पर इसका नाम 'धर्मशर्माभ्युदय' रखा गया है। इस नामकरण में काव्य के नायक धर्मनाथ का नाम भी निहित है। इस दृष्टि से भी 'धर्मशर्माभ्युदय' परम्परागत शास्त्रीय नियम का पालन करता है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार महाकाव्य में पंच कथानक-सन्धियों का निर्वाह होना चाहिए। 'धर्मशर्माभ्युदय' में इन सन्धियों की सफल योजना नहीं दीख पड़ती। द्वितीय सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक महासेन की पुत्राभावजन्य चिन्ता और उस चिन्ता को चारणमुनि से निवेदन करने के वर्णन में मुखसन्धि की योजना स्वीकार की जा सकती है। पाँचवें से आठवें सर्ग तक रानी सुव्रता द्वारा सोलह स्वप्न देखने, इन्द्र द्वारा पुंसवनादि संस्कार होने एवं जिनेश्वर के उत्पन्न होने के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि वर्तमान है, यह स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु, इसके आगे धर्मनाथ की सफलताओं का ही वर्णन है, उन सफलताओं में नाममात्र का विघ्न-व्याघात भी नहीं आया है। कवि की भक्ति-भावना जिनेश्वर के मार्ग में बाधाएँ ला भी कैसे सकती थी ? विघ्न-बाधाओं के नितान्त अभाव के कारण यहाँ नाटकीय द्वन्द्व का भी पूर्ण अभाव है। फलस्वरूप गर्भ और विमर्श सन्धि का निर्वाह 'धर्मशर्माभ्युदय' में नहीं दिखाई देता। बीसवें सर्ग में मोक्षप्राप्ति के रूप में निर्वहण सन्धि अवश्य विद्यमान है। पंचसन्धियों की तरह पाँच कार्यावस्थाओं—प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम—का सफल निर्वाह भी इस काव्य में नहीं हो सका है। इस प्रकार सन्धि-योजना को छोड़ कर महाकाव्य के अन्य सभी शास्त्रीय नियमों का निर्वाह इस कृति में हुआ है। इन तत्त्वों के साथ-साथ 'धर्मशर्माभ्युदय' में उदात्त भाषा-शैली, उत्कृष्ट कवित्व, उच्च कल्पनाशक्ति तथा गंभीर रस-व्यंजना भी विद्यमान है। उच्चकोटि के महाकाव्य के लिए जिस गुरुत्व, गांभीर्य और महत्ता की आवश्यकता है वह 'धर्मशर्माभ्युदय' में पूर्ण-रूप से उपलब्ध है। इसी कारण यहाँ 'धर्मशर्माभ्युदय' की गणना प्रमुख महाकाव्यों में की गयी है। कवि ने अपने को महाकवि और अपने काव्य को प्रत्येक सर्ग के अन्त में पुष्पिका में महाकाव्य कहा है। उदाहरण के लिए प्रथम सर्ग की यह पुष्पिका देखिए :—

इति महाकविहरिचन्द्रविरचिते धर्मशर्माभ्युदये महाकाव्ये प्रथमः सर्गः ।

'धर्मशर्माभ्युदय' में शास्त्रीय और पौराणिक शैलियों का समन्वित-रूप दिखाई पड़ता है। पौराणिक महाकाव्यों की भाँति 'धर्मशर्माभ्युदय' में तीर्थंकर धर्मनाथ के

भवान्तर का वर्णन किया गया है। इसमे जैन धर्म के सैद्धान्तिक विवेचनों एवं प्रचारात्मक उपदेशों की योजना भी हुई है। चतुर्थ सर्ग में राजा दशरथ का मन्त्री जीव के अस्तित्व में सन्देह प्रकट करता है जिसका निराकरण करके दशरथ जैन-मतानुसार जीव के अस्तित्व की सिद्धि करते हैं। बीसवें सर्ग में जिनेश्वर अपनी देशना में जीव-अजीव, सप्त-व्यसन आदि का सैद्धान्तिक विवेचन करते हैं। पौराणिक शैली के महाकाव्यों में स्तोत्रों की योजना भी रहती है। 'धर्मशर्माभ्युदय' में जिन-जन्म के समय देवताओं द्वारा जिनस्तुति की गयी है। पौराणिक शैली के चरितकाव्यों की तरह 'धर्मशर्माभ्युदय' में भी अनेक अलौकिक और अतिप्राकृत घटनाओं का समावेश हुआ है। तृतीय सर्ग में चारण मुनि महासेन के पुत्र-रूप में जिनेश्वर के उत्पन्न होने की भविष्यवाणी करते हैं। वे जिनेश्वर के पूर्वभव का विवरण भी बता देते हैं। सुव्रता की सेवा के लिए देवियाँ आती हैं। सुव्रता के गर्भ में जिनेश्वर के आने पर इन्द्र आदि देव पुंसवनादि कर्म करते हैं और कुबेर पन्द्रह मास तक रत्नवृष्टि करते हैं। धर्मनाथ का जन्ममहोत्सव देवताओं द्वारा मनाया जाता है। इसी प्रकार के अन्य अनेक अतिशय प्रस्तुत काव्य में मिलते हैं। इसका कथानक भी पौराणिक ढंग का है। इन पौराणिक विशेषताओं के कारण इस काव्य को पौराणिक महाकाव्य कहना ही ठीक प्रतीत होता है। यद्यपि इसमें शास्त्रीय रूढ़ियाँ—अत्यधिक अलंकृति, पाण्डित्य-प्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पनातिरेक, कथावस्तु की उपेक्षा तथा वस्तुव्यापार के अप्रासंगिक और अत्यधिक अलंकृत वर्णन आदि—भी पर्याप्त हैं जिनके कारण यह 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध जैसे शास्त्रीय महाकाव्यों की पंक्ति में रखा जा सकता है, किन्तु पौराणिकता की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण यहाँ इसे पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत ही रखा जाता है।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

ईसा की छठी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक हरिचन्द्र नाम के अनेक विद्वान् हुए हैं। इनमें सबसे पहले वे हैं जिनका उल्लेख बाणभट्ट (सातवीं शताब्दी) ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में 'भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते' लिख कर किया है। महाकवि राजशेखर (दसवीं शताब्दी) ने 'काव्य-मीमांसा' और 'कर्पूरमंजरी' में हरिचन्द्र का उल्लेख किया है।[1] 'माधवनिदान' की मधुकोशी व्याख्या में अनेक स्थलों पर हरिचन्द्र और भट्टार हरिचन्द्र के नाम का उल्लेख हुआ है।[2] पं० अमृतलाल जैन के अनुसार "ईसा की दसवीं शती तक

---

(१) हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय १०, पृ० १३५

विदूषक –(सक्रोधम्) ऋज्वेव तत्किं न भण्यते, अस्माकं चेटिका हरिचन्द्रकोटिशहाल-प्रभृतीनामपि सुकविरिति।.........
—कर्पूरमंजरी, अंक १

(२) अत्र केचित् हरिचन्द्रादिभिर्व्याख्यान्तरं पाठान्तरं पठन्ति।

(मधुकोशी व्याख्या, माधवनिदान, पृ० [illegible])

उत्पन्न हुए इन सब हरिचन्द्र नामक विद्वानों से प्रस्तुत हरिचन्द्र अलग हैं, जिन्होंने 'जीवन्धरचम्पू' और 'धर्मशर्माभ्युदय' इन दो काव्यों की रचना की है।[१]

संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्राध्यापक पं० अमृतलाल जैन शास्त्री ने महाकवि हरिचन्द्र का जीवन-परिचय देने और उनके समय के निर्धारण में बहुत श्रम किया है। उनके अनुसार प्रस्तुत कवि का उपनाम चन्द्र है और जैनधर्मावलम्बी होने से जैनेतर विद्वान् इन्हें सूरि समझते थे। यह भी हो सकता है कि इनकी उपाधि सूरि हो।[२] शास्त्रीजी के इस कथन का आधार तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया जल्हण-कृत 'सूक्तिमुक्तावली' ग्रन्थ है जिसमें हरिचन्द्र के 'धर्मशर्माभ्युदय' का एक श्लोक चन्द्रसूरि के नाम से उद्धृत किया गया है।[३]

हरिचन्द्र एक सम्पन्न घराने में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम आर्द्रदेव था जो कायस्थ जाति के थे।[४] प्रशस्ति के अनुसार हरिचन्द्र की माता का नाम रथ्या था।[५] हरिचन्द्र ने जैन धर्म अपना लिया था। निम्नोद्धृत श्लोक में उन्होंने अपने को अर्हत् भगवान् के चरणकमलों का भ्रमर लिखा है :—

अर्हत्पदाम्भोरुहचंचरीकस्तयोः सुतः श्रीहरिचन्द्र आसीत्।[६]

किन्तु, इस श्लोक से यह स्पष्ट नहीं होता कि वे दिगम्बर थे या श्वेताम्बर। श्रीअमृतलाल शास्त्री ने अन्तःसाक्ष्य पर आधारित अकाट्य प्रमाणों के द्वारा हरिचन्द्र को दिगम्बर जैन सिद्ध किया है। वे लिखते हैं—"धर्मशर्माभ्युदय के दूसरे सर्ग का ७७ वाँ पद्य देखिए। इसके प्रथम चरण 'राकाकामुकवद्दिगम्बर यथाऽलंकारभूतोऽधुना' से ही उनके दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुराग का पता चल जाता है। इसी तरह 'दिगम्बरपदप्रान्तं

यदाह चरकः—सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तान् सुरान् प्रभुः।
वाणं क्रोधाग्निसन्तप्तमसृजत्सत्रनाशनाम्॥—इति
एषा च ज्वरोत्पत्तिकथा—चरकचिकित्सिते सविशेषश्रोतव्या—इति
भट्टार हरिचन्द्रः। (मधुकोशी व्याख्या, माधवनिदान, पृ० २०)

(१) महाकवि हरिचन्द्र, ले० पं० अमृतलालशास्त्री, जैनसंदेश, शोधाङ्क ७, पृ० २५०

(२) वही, पृ० २५१

(३) चन्द्रसूरे :—सुहृत्तमावेकत उन्नतौ स्तनौ गुरुर्नितम्बोऽप्ययमन्यतः स्थितः।
कथं भजे कान्तिमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीवतानवम्॥
—सूक्तिमुक्तावली, पृ० १८
(यह पद्य 'धर्मशर्माभ्युदय' के दूसरे सर्ग में ४० वें नम्बर पर है)

(४) मुक्ताफलस्थितिरलंकृतिषु प्रसिद्धस्तत्रार्द्रदेव इति निर्मलमूर्तिरासीत्।
कायस्थ एष निरवद्यगुणग्रहः सन् एकोऽपि यः कुलमशेषमलंचकार॥
—धर्मशर्माभ्युदय, प्रशस्ति, श्लोक २

(५-६) वही, प्रशस्ति, श्लोक ३

राजापि सह कान्तया' इस तीसरे सर्ग के आठवें पद्य को भी देखिए। अलंकारशास्त्र के अनुसार महाकाव्य में कहीं-न-कहीं साधु-समागम का वर्णन होना चाहिए। कवि चाहे जिस सम्प्रदाय के साधु का वर्णन कर सकता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, पर देखा यही जाता है कि कवि अपने सम्प्रदाय के साधु का वर्णन करता है। उक्त श्लोक में दिगम्बर साधु के वर्णन से कवि का दिगम्बर जैन होना निश्चित सा है।[1] कवि के दिगम्बर होने के सम्बन्ध में शास्त्रीजी का तीसरा तर्क है कि श्वेताम्बर धर्म में जिनेश्वर की माता १४ स्वप्न देखती है, किन्तु 'धर्मशर्माभ्युदय' के पाँचवें सर्ग में दिगम्बरों की मान्यता के अनुसार १६ स्वप्नों का वर्णन है, इससे भी कवि का दिगम्बर धर्म के प्रति अनुराग व्यक्त होता है।[2] उनका अन्तिम तर्क यह है कि उन्होंने (हरिचन्द्र ने) दिगम्बर आचार्य गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' को ही मुख्यतः अपने ग्रन्थों का आधार बनाया है।[3] इन तर्कों के आधार पर हरिचन्द्र का दिगम्बर धर्म का अनुयायी होना असंदिग्ध है।

'धर्मशर्माभ्युदय' की प्रशस्ति में या अन्यत्र कहीं 'धर्मशर्माभ्युदय' का रचनाकाल नहीं प्राप्त होता है, किन्तु विद्वानों ने उनके समय का अनुमान लगाया है। स्वर्गीय श्रीनाथूराम प्रेमी ने अपने इतिहास में पाटन भंडार की एक हस्तलिखित 'धर्मशर्माभ्युदय' की प्रति का उल्लेख किया है जिसका प्रतिलिपि-काल सम्वत् १२८७ वि० है। इससे यह तो निश्चित है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' की रचना इस सम्वत् से पूर्व हुई है।

कुछ विद्वान् राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' में निर्दिष्ट हरिचन्द्र को 'धर्मशर्माभ्युदय' का कर्ता मान कर हरिचन्द्र को राजशेखर का पूर्ववर्ती अर्थात् ईसा की आठवीं शताब्दी का मानते हैं। कीथ महाशय ने इनका समय सन् ९०० के बाद बताया है। श्रीनाथूराम प्रेमी एवं पंडित बलदेव उपाध्याय ने इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी बताया, किन्तु पं० अमृतलाल शास्त्री ने इन सब मतों का खण्डन करके 'धर्मशर्माभ्युदय' का रचनाकाल ईसा की तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है।

वे (श्रीअमृतलाल शास्त्री) 'धर्मशर्माभ्युदय' के रचनाकाल पर विचार करते हुए लिखते हैं, "'धर्मशर्माभ्युदय' के इक्कीसवें सर्ग में खरकर्मों का उल्लेख है जो हेमचन्द्र के योगशास्त्र पर अवलम्बित है। ×× ×× ×× यों हरिभद्राचार्य ने भी अपने 'सावयपण्णत्ती' (श्रावकप्रज्ञप्ति) में खरकर्मों का उल्लेख किया है, किन्तु वह प्राकृत में है और दूसरी बात यह है कि हरिचन्द्र के शब्द हरिभद्र से मिलते-जुलते नहीं है, हेमचन्द्र से मिलते-जुलते हैं। मिलान कीजिए :—

(१) अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या
(योगशास्त्र, द्वितीय प्रकाश, पृ० १६६)

---

(१) महाकवि हरिचन्द्र, पं० अमृतलाल शास्त्री, जैन संदेश, शोधाङ्क ७, पृ० २५२
(२) वही, पृ० २५२ (३) वही, पृ० २५२

अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या ।

(धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक १३१)

(२) **आमगोरससंपृक्तद्विदलादिषु जन्तवः ।**

(हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश, पृ० ४६३)

आमगोरससंपृक्तं द्विदलं चाद्यान्न शुद्धधीः ।

(धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक १३६)

(३) **अंगारवनशकटभाटकस्फोटजीविका ।**

(हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश, पृ० ५६६)

अंगारशकटारामभाटकस्फोटजीवनम् ।

(धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक १४५)

(४) **दन्तकेशनखास्थित्वग्रोम्णो ग्रहणमाकरे ।**

(हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश, पृ० ५६६)

दन्तकेशनखास्थित्वग्रोम्णां निन्द्यरसस्य च ।

(धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक १४६)

शब्दों की इतनी अधिक समानता विना देखे नहीं हो सकती । अतः यह बिलकुल निश्चित है कि हरिचन्द्र, हेमचन्द्र के बाद हुए । × × × × × × उनका (हेमचन्द्र का) समय बारहवीं शताब्दी का उत्तरभाग और तेरहवीं शताब्दी का पूर्व भाग है । हरिचन्द्र बहुत बाद के हैं ।[1] शास्त्रीजी के इस कथन से हरिचन्द्र का समय तेरहवीं शताब्दी (विक्रम) का उत्तरार्द्ध रखा जा सकता है । इन पंक्तियों के लेखक को लिखे गये दिनांक १९-१२-५९ के एक पत्र में शास्त्रीजी ने स्पष्ट मत व्यक्त किया है—"अतः यह निश्चित है कि हरिचन्द्र ने ईसा की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'धर्मशर्माभ्युदय' की रचना की थी। × × अनुमान है कि पाटन में उपलब्ध वि० सं० १२८७ की प्रति 'धर्मशर्माभ्युदय' की सर्वप्रथम प्रति है और 'धर्मशर्माभ्युदय' की रचना इस सम्वत् के निकटपूर्व में हुई है ।" उन्होंने अन्य विद्वानों के मत का खण्डन करते हुए लिखा है, "अतः हम हरिचन्द्र को केवल 'धर्मशर्माभ्युदय' का कर्ता मान कर उन्हें बाण या राजशेखर से पूर्ववर्ती नहीं मान सकते, जैसा कि कुछ विद्वानों का खयाल है ।"[2]

जैन विद्वान् पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ भी श्री अमृतलाल शास्त्री के मत से सहमत हैं । इन पंक्तियों के लेखक को लिखे गये एक पत्र में उन्होंने भी 'धर्मशर्माभ्युदय' को सं० १२५७ के बाद की रचना माना है । उक्त दोनों विद्वानों की तर्कपुष्ट मान्यताओं के आधार पर 'धर्मशर्माभ्युदय' का रचनाकाल सं० १२५७ से सं० १२८७ के मध्य का काल स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है ।

'धर्मशर्माभ्युदय' को अनेक विद्वानों ने काव्य की कसौटी पर कसा और उसे सफल

(१–२) महाकवि हरिचन्द्र, पं० अमृतलाल शास्त्री, जैनसंदेश, शोधाङ्क ७, पृ० २५१–२५४

एवं परिष्कृत पाया था । कवि ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

दक्षैः साधु परीक्षितं नवनवोल्लेखार्पणेनादरात् ।[1]

'धर्मशर्माभ्युदय' का कुल रचना-परिमाण १७६५ श्लोक है ।

कथानक

'धर्मशर्माभ्युदय' का कथानक २१ सर्गों में विभक्त है । पहले सर्ग में उत्तरकोशल की राजधानी रत्नपुर नगर का वर्णन है । दूसरे सर्ग में वहाँ के राजा महासेन और रानी सुव्रता की पुत्राभावजन्य चिन्ता का तथा वनपाल द्वारा उद्यान में चारणमुनि के आगमन की सूचना पाने का वर्णन है । तीसरे सर्ग में राजा पुरजन-परिजन-समेत उद्यान में जाते हैं और वहाँ मुनि उन्हें तीर्थंकर के पिता होने की भविष्यवाणी करते हैं । चौथे सर्ग में राजा के आग्रह पर चारण मुनि तीर्थंकर धर्मनाथ के पूर्वभव का वृतान्त बताते हुए कहते हैं कि सुसीमा नगरी के राजा दशरथ ने दीक्षा ग्रहण करके उग्र तपश्चर्या की, फलस्वरूप वे सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए । दशरथ-जीव अहमिन्द्र ही तीर्थंकर के रूप में सुव्रता (महासेन की पत्नी) के गर्भ से उत्पन्न होंगे । यह सुन कर राजा महासेन घर लौटते हैं । पाँचवें सर्ग में स्वर्ग से देवियाँ आकर सुव्रता की परिचर्या करती हैं । सुव्रता रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखती है जो उसके गर्भ में जिनेश्वर के अवतरण के सूचक हैं । अहमिन्द्र-जीव के गर्भ में आने पर देवता गर्भकल्याणक की पूजा करते हैं ।

छठे सर्ग में जिनेश्वर की उत्पत्ति होती है और यह जान कर देवता उनके जन्म-कल्याणक को सम्पन्न करने के लिए चल देते हैं । सातवें सर्ग में इन्द्राणी प्रसूतिगृह में से बालक को लाकर इन्द्र की गोद में देती है जो जन्ममहोत्सव मनाने के लिए जिनेन्द्र को सुमेरु पर्वत पर लाते हैं । आठवें सर्ग में पाण्डुक शिला पर स्थित जिनेन्द्र को लिटा कर इन्द्रादि देव उनका जन्माभिषेक करते हैं और उनकी स्तुति करके उन्हें वापिस आकर सुव्रता के पार्श्व में लिटा देते हैं । नवें सर्ग में धर्मनाथ बाल्यकाल को व्यतीत करके युवा होते हैं और विदर्भ-नरेश प्रतापराज की पुत्री के स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए चल देते हैं । दसवें सर्ग में मार्ग में किन्नरेन्द्र की प्रार्थना पर वे विन्ध्यगिरि की उपत्यका में विश्राम करते हैं । उनके विश्राम के लिए कुबेर नगरी की रचना करते हैं । ग्यारहवें सर्ग में षड्-ऋतुएँ धर्मनाथ की सेवा में उपस्थित होती हैं । यहाँ षड्-ऋतुओं का वर्णन है । बारहवें सर्ग में धर्मनाथ के वनसुषमा देखने जाने के प्रसंग में वनवर्णन है । तेरहवें सर्ग में नर्मदा में जल-क्रीडा एवं स्त्रियों के शृंगार का वर्णन है । चौदहवें सर्ग में पर्वतीय प्राकृतिक शोभा का चित्रण, रात्रि, चन्द्रोदय, स्त्रियों की वेशभूषा आदि का वर्णन है । पन्द्रहवें सर्ग में मद्य-पान एवं संभोग-शृंगार का वर्णन है । सोलहवें सर्ग में प्रभात होने पर वैतालिक धर्मनाथ को जगाते हैं । वहाँ से धर्मनाथ विदर्भ की ओर चल देते हैं और कुण्डिनपुर जाते हैं । वहाँ का राजा प्रतापराज उनकी अगवानी के लिए आता है । धर्मनाथ की सेना वरदा नदी के तट पर पड़ाव डालती है ।

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, पृ० १९८

सत्रहवें सर्ग में धर्मनाथ स्वयंवर-मण्डप में पधारते हैं। इस अवसर पर कन्या इन्दुमती को देख कर राजा लोग विविध चेष्टाएँ करते हैं। इन्दुमती धर्मनाथ के कण्ठ में वरमाला डाल देती है। धर्मनाथ उससे विवाह कर अपने नगर रत्नपुर लौट आते हैं। अठारहवें सर्ग में धर्मनाथ के प्रवेशोत्सव, राजा महासेन की दीक्षा तथा धर्मनाथ के राज्याभिषेक का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में धर्मनाथ के सेनापति सुषेण का विदर्भ में अन्य राजाओं के साथ युद्ध और उसकी विजय का वर्णन है। बीसवें सर्ग में धर्मनाथ उल्कापात देख कर विरक्त हो उठते हैं। लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर धर्मनाथ अपने पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न होने पर कुबेर समवसरण की रचना करते हैं और वे (धर्मनाथ) देशना देते हैं। अपनी उग्र तपस्या से वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। यहीं कथानक की समाप्ति होती है।

'धर्मशर्माभ्युदय' का कथानक बहुत छोटा है, किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर उसे विस्तृत-रूप प्रदान किया है। दूसरे से लेकर छठे सर्ग तक परम्परागत कथा की प्रमुखता है, किन्तु बाद के सर्गों में कथावस्तु गौण और अलंकृत वर्णन प्रमुख हो गये हैं। दसवें से लगा कर सोलहवें सर्ग तक लगातार छह-सात सर्गों में सेनासन्निवेश, षड्-ऋतु-वर्णन, वनविहार, जलक्रीडा आदि महाकाव्यीय वर्ण्यविषयों का वर्णन हुआ है। यह वर्णन मार्मिक होने पर भी कथावस्तु के विकास में शिथिलता उत्पन्न करता है, फिर भी कथानक में सामान्य-रूप से मन्थर गति मिलती है जिसने 'धर्मशर्माभ्युदय' को सरस और सुन्दर बनाने में योग दिया है।

चरित्र-चित्रण

'धर्मशर्माभ्युदय' में विषय की व्यापकता का अभाव होने पर भी कवि को अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में सफलता मिली है। प्रस्तुत काव्य में पात्रों की संख्या बहुत-कम है। धर्मनाथ के अतिरिक्त महासेन, सुव्रता, चारणमुनि और सुषेण ये चार पात्र ही दृष्टिगत होते हैं।

धर्मनाथ जन्मजात तेजस्वी और अतिशयों के धारक हैं। उनके तेज से प्रसूतिगृह का समस्त अन्धकार दूर हो जाता है :—

> **बालस्य तस्य महसा सहसोदितेन**
> **प्रध्वंसितान्धतमसे सदने तदानीम्।**
> **सेवागताम्बरमुनीनिव सप्त काश्चिद्**
> **दीपान् व्यबोधयत केवलमङ्गलार्थम् ॥**[1]

इन्द्रादि देवता उनके अनुचर हैं। उनका जन्मकल्याणक महोत्सव देवों द्वारा मनाया जाता है। इन्द्रादि समस्त देवता उनके चरणों की वन्दना करते हैं। उनका राज्याभिषेक, दीक्षाभिषेक और अन्त में मोक्षकल्याणक महोत्सव भी देवताओं द्वारा सम्पन्न होते हैं। इन्दुमती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए विदर्भ की ओर प्रयाण करते समय मार्ग में

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग ६, श्लोक २०

विन्ध्यगिरि की उपत्यका में उनके विश्राम के लिए कुबेर नगरी की रचना करते हैं। इसी प्रकार केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् कुबेर उनके लिए समवसरण की रचना करते हैं।

धर्मनाथ स्वयंबुद्ध हैं। उन्हें सम्पूर्ण शस्त्र-शास्त्रों और कलाओं का ज्ञान है। बड़े-बड़े विद्वानों का गर्व उनके ज्ञान के समक्ष चूर-चूर हो जाता है। वे सौन्दर्य के आगार भी हैं। उनके सौन्दर्य को देख कर ही इन्दुमती अन्य राजाओं को छोड़ कर उनके कण्ठ में वरमाला डाल देती है। उनके शारीरिक सौन्दर्य की व्यंजना इन पंक्तियों में अच्छी बन पड़ी है :—

निर्व्याजपीयूषसहोदरोऽपि तदङ्गलावण्यरसप्रवाहः।
नेत्रार्धभागेन निपीयमानो न तृप्तयेऽभून्नगराङ्गनानाम् ॥[1]

धर्मनाथ पिता के आज्ञाकारी पुत्र हैं। इच्छा न होते हुए भी वे पिता की आज्ञा से शासनसूत्र सँभाल लेते हैं। पिता के दीक्षा ग्रहण करके वन में चले जाने पर वे उनके वियोग में बहुत दुखी होते हैं।

राजा बनने पर धर्मनाथ आदर्श राजा सिद्ध होते हैं। उनके शासन में अपमृत्यु, रोग, दुर्भिक्ष तथा ऋतुव्यतिक्रम का नाम मिट जाता है, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन प्राणियों को सुख देता है, सर्दी-गर्मी से किसी को भय नहीं होता है और मेघ इच्छानुसार वर्षा करते हैं :—

न चापमृत्युर्न च रोगसंचयो बभूव दुर्भिक्षभयं न च क्वचित्।
महोदये शासति तत्र मेदिनीम् ननन्दुरानन्दजुषश्चिरं प्रजाः ॥[2]
ववौ समीरः सुखहेतुरङ्गिनां हिमादिवोष्णादपि नाभवद् भयम्।
प्रभोः प्रभावात्सकलेऽपि भूतले स कामवर्षी जलदोऽप्यजायत ॥[3]

धर्मनाथ में वैराग्य की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही है, किन्तु उत्कापात को देख कर उनकी यह वृत्ति उभर आती है और वे लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। धर्मनाथ तत्त्वज्ञानी हैं। समवसरण में वे तत्त्वोपदेश देकर सारी सभा को प्रसन्न कर देते हैं। वे अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए, सूर्य की तरह, सभी देशों में विहार करते हैं और अन्त में अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

महासेन

महासेन रत्नपुर के राजा तथा धर्मनाथ के पिता हैं। उनमें वीरता और सौन्दर्य का समावेश है। उन्हें देखते ही शत्रुओं का अहंकार चूर्ण हो जाता है और स्त्रियाँ कामविह्वल हो जाती हैं :—

गतेऽपि दृग्गोचरमत्र शत्रवः स्त्रियोऽपि कन्दर्पमपत्रपा दधुः।
किमद्भुतं तद्धृतपंचसायके यदद्रवन् संगरसंगता क्षणात् ॥[4]

उन्हें सभी प्रकार के सांसारिक सुख प्राप्त हैं, किन्तु पुत्र के बिना उन्हें सब कुछ सूना दिखाई पड़ता है :—

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १७, श्लोक ६६ (२) वही, सर्ग १८, श्लोक ५९
(३) वही, सर्ग १८, श्लोक ६० (४) वही, सर्ग २, श्लोक २

नभो दिनेशेन नयेन विक्रमो वनं मृगेन्द्रेण निशीथमिन्दुना ।
प्रतापलक्ष्मीबलकान्तिशालिना विना न पुत्रेण च भाति नः कुलम् ।।[१]

महासेन के मन में मुनियों के प्रति बड़ा आदर है। वनपाल के मुख से प्रचेतस मुनि का आगमन सुन कर वे प्रफुल्लित हो उठते हैं और मुनि-दर्शन के लिए परिजन-पुरजन-समेत जाते हैं। वे उपवन के समीप पहुँचते ही रथ का त्याग कर पदाति ही भक्ति-भाव से हाथ जोड़ कर वन में प्रवेश करते हैं। वे मुनिराज की प्रदक्षिणा करके पृथ्वी पर मस्तक टेक कर भूमि पर बैठ जाते हैं और मुनि की स्तुति करते हैं।

महासेन पुत्रवत्सल पिता हैं। पुत्र की बालक्रीडाएँ उनके हृदय में वात्सल्य का संचार कर देती हैं। पुत्र को हृदय से लगा कर वे अपने नेत्र बन्द कर लेते हैं :—

पुत्रस्य तस्याङ्गसमागमक्षणे निमीलयन्नेत्रयुगं नृपो बभौ ।
अन्तः कियद्गाढनिपीडनाद्वपुः प्रविष्टमस्येति निरूपयन्निव ।।[२]

धर्मनाथ के विवाह के बाद उनके रत्नपुर में प्रवेश करने के अवसर पर वे समारोह के साथ महोत्सव मनाते हैं। यहाँ भी उनकी पुत्रवत्सलता प्रकट हुई है। महासेन नीतिज्ञ और धार्मिक हैं। पुत्र को राज्याभिषिक्त करते समय वे जो नीतिशिक्षा देते हैं वह उनकी नीतिज्ञता की परिचायक है। पुत्र को राज्य प्रदान करके वे तप की इच्छा से वन में चले जाते हैं और अपने मनुष्य-जीवन को सफल करते हैं।

सुव्रता राजा महासेन की पत्नी है। वह अतीव सुन्दरी है। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कवि उसे ब्रह्मा की घुणाक्षरन्याय से बनाई हुई कृति मानता है। ब्रह्मा में इतनी सामर्थ्य कहाँ, जो ऐसी सुन्दरी की रचना कर सके :—

समग्रसौन्दर्यविधिद्विषो विधेर्घुणाक्षरन्यायवशादसावभूत् ।
तदास्य जाने निपुणत्वमीदृशीमनन्यरूपां कुरुते यदापराम् ।।[३]

सुव्रता पतिव्रता पत्नी है जो प्रत्येक कार्य में पति का अनुगमन करती है। पति के साथ वह भी चारण मुनि के दर्शनों को जाती है और मुनिराज की अर्चना करती है। वह बड़ी भाग्यशालिनी है। उसी के गर्भ से धर्मनाथ जिनेश्वर उत्पन्न होते हैं। जिनेश्वर के गर्भ में आने पर उसकी यह इच्छा रहती है कि समस्त पंजरस्थ शुक-सारिका आदि पक्षी मुक्त कर दिए जाएँ।

अन्य पात्र

अन्य पात्रों में चारणमुनि, इन्दुमती, सुषेण आदि पात्र हैं। चारणमुनि भूत-भविष्य के ज्ञाता हैं। वे महासेन के यहाँ तीर्थंकर के उत्पन्न होने की भविष्यवाणी करते हैं और धर्मनाथ के पूर्वभवों का वृत्तान्त बताते हैं। इन्दुमती धर्मनाथ की पत्नी है। वह अतीव सुन्दरी है। विवाह के पूर्व उसके चित्र को देख कर धर्मनाथ भी मुग्ध हो जाते हैं। सुषेण धर्मनाथ का वीर सेनापति है। युद्धों में सर्वत्र उसकी विजय होती है।

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २, श्लोक ७३ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक १०
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ६१

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से हरिचन्द्र का क्षेत्र बहुत व्यापक है। वे देश, काल, स्थिति और वातावरण को ध्यान में रख कर प्रकृति का वर्णन करते हैं। देश का चित्र उसकी प्रमुख विशेषताओं के साथ उभारने में उन्होंने अच्छा कौशल दिखाया है। इन्दुमती के स्वयंवर में सुभद्रा अनेक राजाओं का वर्णन करते समय दक्षिण देश के राजा का वर्णन उसके देश की पार्श्वभूमि के चित्रण के साथ कलापूर्ण ढंग से करती है:—

प्रकृति-वर्णन

कङ्कोलकैलालवलीलवङ्गरम्येषु वेलाद्रितटेषु सिन्धोः।
कुरु स्पृहां नागरखण्डवल्लीलीलावलम्बिक्रमुकेषु रन्तुम् ॥[1]

यहाँ समुद्रतट पर सुशोभित कंकोल (कबाबचीनी), एला, लवली, लवंग आदि के वर्णन तथा पर्वत की उपत्यकाओं में सुशोभित सुपारी के वृक्षों एवं ताम्बूललताओं के वर्णन से दक्षिण देश की मनोहर प्रकृति का भव्य चित्र अंकित किया गया है।

इसी प्रकार इन्दुमती-स्वयंवर में विदर्भ की ओर प्रयाण करते समय कवि की दृष्टि खेतों में फैले हुए कुम्हड़े, कचरिया, बैंगन एवं गुच्छों से नम्रीभूत बथुए के शाक पर पड़ती है :—

कूष्माण्डीफलभरगर्भचिर्भटेभ्यो वृन्ताकस्तवकविनम्रवास्तुकेभ्यः।
संकीर्णे मिथ इव दृष्टिरस्य लग्ना निष्क्रान्ता कथमपि शाकवाटकेभ्यः।[2]

यहाँ विदर्भ देश की उन्मुक्त प्रकृति का सहज-स्वाभाविक रूप अत्यन्त रमणीय बन पड़ा है।

प्रकृति को उद्दीपन-रूप में चित्रित करने की परिपाटी संस्कृत-काव्यों में प्रारम्भ से ही रही है। पात्र की मनःस्थिति को उत्तेजित करने और उसमें योग देने के लिए इस प्रकार का प्रयोग अत्यन्त शक्तिशाली सिद्ध होता है। जिनेन्द्र धर्मनाथ फूलों में छिपी हुई भ्रमरपंक्ति को देख कर वृक्ष-समुदाय के बीच क्रीड़ा करने को समुत्सुक हो जाते हैं:—

इति वचनमुदारं भाषमाणे मुदारं
प्रशमितवृजिनस्य स्वर्गिनाथे जिनस्य।
मतिरिह घनगानां रन्तुमासीन्नगानाम्
ततिषु कुसुमलीनां वीक्ष्य पालीमलीनाम् ॥[3]

निम्नोद्धृत पंक्तियों में पर्वत के शिखर पर लतागृहों से सुशोभित पृथ्वी में स्थित हस्तिनी-सहित हस्ती को देख कर मुनिराज को भी काम के खेद से अपनी प्रिया को स्मरण करते चित्रित किया गया है:—

प्रियायुतं सानुनि कुञ्जरं गां निकुञ्जरङ्गां गतमीक्षमाणः।
मुनीश्वरोऽपि स्मरति प्रियायाः रतिप्रियायासवशेन यत्र ॥[4]

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १७, श्लोक ६२ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ७२
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक ७२ (४) वही, सर्ग १०, श्लोक ६

यहाँ पर्वत का यह रूप भावनाओंको उद्वेलित करने वाला और उद्दीपक बन कर आया है। इन वर्णनों में प्रकृति की प्रभावशीलता व्यक्त की गयी है।

कभी-कभी प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के लिए नहीं, अपितु मानव-हृदय के अव्यक्त उल्लास को प्रकट करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार की प्रकृति का चित्रण काव्यों में कम ही हुआ है। ऐसी प्रकृति पात्र की मनःस्थिति को उत्तेजित नहीं करती, अपितु व्यक्त करती है। सुचेता मुनि के दर्शनों के लिए वन में जाते हुए महासेन अपनी पत्नी से वनभूमि का वर्णन करते हैं। इसमें उन्हें प्रकृति उनका स्वागत करती हुई प्रतीत होती है:—

तन्वाना चन्दनोद्दामतिलकं वदने किल।
करोत्यक्षतदूर्वाभिर्मङ्गलं मे वनस्थली ॥[1]
एताः प्रवालहारिण्यो मुदा भ्रमरसङ्गताः।
मरुन्नर्तकतालेन नृत्यन्तीव वने लताः ॥[2]

यहाँ प्रकृति की सुषमा के वर्णन में महासेन के मन की प्रेम और उल्लास की भावना ही उल्लसित होकर व्यक्त हुई है।

कथानक की विविध घटनाएँ कभी-कभी आदर्श प्रकृति का निर्माण भी करती हैं। जिनजन्म के समय प्रकृति आदर्श-रूप में उपस्थित होती है। आकाश स्वच्छ हो जाता है, पृथ्वी कण्टकरहित हो जाती है, सूर्य मानों भक्ति से सेवनीय किरणों से युक्त हो जाता है और दिशाएँ रज के अभाव से निर्मल हो जाती हैं:—

शुभ्रं नभोऽभवदभूदपकण्टका भूर्भक्त्येव भानुरभिगम्यरुचिर्बभूव।
आरोग्यवानजनि जानपदोऽपि लोकस्तत्किं न यत्सुखनिमित्तमभूत्तदानीम् ॥[3]
स्नाता इवातिशयशालिनि पुण्यतीर्थे तस्मिन् रजोव्यपगमात्सहसा प्रसन्नाः।
एष्यन्निजप्रणयिनां त्रिदिवात्तदानीम् संयोगयोग्यसमयाः ककुभो बभूवुः ॥[4]

प्रचेता मुनि के आगमन के समय प्रकृति में अलौकिकता आ जाती है। उनके उपवन में आते ही वृक्ष असमय ही पुष्प और अंकुरों के व्याज से रोमांचित हो उठते हैं:—

यत्पादप्रणयोत्सवात्किमपरं पुष्पांकुरच्छद्मना।
वृक्षैरप्यनपेक्षितात्मसमयैः क्षमापाल रोमांचितम् ॥[5]

'धर्मशर्माभ्युदय' में पशु-प्रकृति के भी सुन्दर चित्र खींचे गये हैं। स्वयंवर में धर्मनाथ के प्रयाण करते समय दूसरे गज को देख कर किसी गज ने दूनी मदजल की धारा छोड़ते हुए आलानद्रुम को हठपूर्वक तोड़ डाला। इस चित्र में गज-प्रकृति का स्वाभाविक वर्णन हुआ है:—

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग ३, श्लोक ३३ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक ३४
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक २७ (४) वही, सर्ग ३, श्लोक २६
(५) वही, सर्ग २, श्लोक ७७

मेण्ठेन द्विपमपनीतबन्धमन्यं प्रेक्ष्यैतत्प्रमथनमांसलाभिलाषः ।
प्रश्चोतद्द्विगुणमदाम्बुधारमुच्चैरालानद्रुवरमिभो हठादभांक्षीत् ॥[1]

ऐसा ही स्वाभाविक वर्णन ऊँट का हुआ है जो गज के भय से दाँत ऊपर करता हुआ तथा मुख से घर्घर ध्वनि करता हुआ कूद रहा है:—

प्राग्भागं द्विरदभयादुदग्रदन्तः प्रोत्सृज्य प्रकटितघर्घरोरुनादः ।
उत्कूर्दन्विकटपदैरितस्ततोऽग्रे दासेरः पटुनटकौतुकं चकार ॥[2]

'धर्मशर्माभ्युदय' में कवि ने प्रकृति में जीवन का आरोप भी किया है। मानवीकरण के अनेक सुन्दर उदाहरण उसमें प्राप्त होते हैं। निम्नोद्धृत पंक्तियों में सूर्य में धीवर का आरोप किया गया है जो अस्ताचल पर आरूढ़ होकर अपनी किरण-रूपी जाल को डाल कर, जैसे ही उसमें कर्क, मकर, मीन आदि फँसते हैं वैसे ही उन्हें क्रम-क्रम से आकाश में उछाल देता है:—

अस्ताद्रिमारुह्य रविः पयोधौ कैवर्तवत्क्षिप्तकराग्रजालः ।
आकृष्य चिक्षेप नभस्तटेऽसौ क्रमात्कुलीरं मकरं च मीनम् ॥[3]

जिस प्रकार कवि ने प्रकृति पर मानवीय व्यापारों का आरोप किया है, उसी प्रकार उसने प्रकृति में मानव-भावनाओं का आरोप किया है। उसकी प्रकृति मानव के दुख में दुखी और सुख में सुखी हो जाती है। यद्यपि ऐसे वर्णनों में अलंकारों का प्रयोग होने से ये भावारोप कल्पनाप्रधान हो गये हैं, तथापि उनमें सहज सौन्दर्य निहित है। रात्रि में अन्धकार-रूपी पिशाच के वश में पड़े हुए मानवों को देख कर दया से द्रवित होकर दिशाएँ आँसू बहाती हैं और पक्षियों के कलरव के बहाने उनके दुख-दर्द की कथा पूछती हैं:—

पर्यस्ते दिवसमणौ न काचिदासीद्बाधा वस्तिमिरपिशाचगोचराणाम् ।
इत्याशाः पतितहिमद्रवाश्रु लोकान्वात्सल्याद्विहगरुतैरिवालपन्ति ॥[4]

मानव के दुख पर ही नहीं, अन्य चेतन प्राणियों के दुख पर भी जड़ प्रकृति द्रवित हो उठती है। पति के विरह में दुखी चकवी पर दया आ जाने से कमलिनी रात भर रोती रहती है जिससे उसके कमल-रूपी नेत्र प्रातःकाल के समय जलकणों से चिन्हित एवं रक्तवर्ण दिखायी देते हैं:—

तन्नूनं प्रियविरहार्तचक्रवाक्याः
कारुण्यान्निशि रुदितं घनं नलिन्याः ।
यत्प्रातर्जललवलांच्छितारुणानि
प्रेक्ष्यन्ते कमलविलोचनानि ॥[5]

यही प्रकृति मानव के हर्ष और उल्लास के क्षणों में स्वयं भी उल्लसित और सुखी

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १६, श्लोक ४५ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ४६
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक ८ (४) वही, सर्ग १६, श्लोक १८
(५) वही, सर्ग १६, श्लोक २०

हो उठती है। चौदहवें सर्ग में मानवों को सुरत-केलि में लिप्त देख कर प्रकृति स्वयं भी रतिकेलि में लिप्त हो जाती है। निम्न पंक्तियों में चन्द्रमा-रूपी चतुर पति ज्यों ही रात्रि-रूपी युवती के मुख का रागपूर्वक चुम्बन करता है त्यों ही उसकी अन्धकार-रूपी नीली साड़ी की गाँठ खुल जाती है और वह स्वयं चन्द्रकान्तमणि के छल से द्रवित हो जाती है:-

मुखे निमीलन्नयनारविन्दं कलानिधौ चुम्बति राज्ञि रागात् ।
गलत्तमोनीलदुकूलबन्धा श्यामाऽद्रवच्चन्द्रमणिच्छलेन ॥[1]

कवि ने प्रकृति को मानव की सेविका के रूप में भी चित्रित किया है। बारहवें सर्ग में संभोग के बाद लतागृह से बाहर निकलती हुई स्वेदयुक्त कपोलों वाली स्त्रियों पर वृक्ष वायु से कम्पित पल्लव-रूपी पंखों के द्वारा हवा कर रहे थे,[2] इस चित्र में प्रकृति का यही रूप अंकित हुआ है।

प्रकृतिवर्णन के साथ-साथ मानवीय रतिविलास के वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है। इन वर्णनों में प्रकृति बिलकुल परोक्ष में चली जाती है और शुद्ध दाम्पत्य-केलि का चित्रण रहता है, फिर भी इन वर्णनों को प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत ही माना जाता है। 'धर्मशर्माभ्युदय' में ऐसे चित्र बहुत पाये जाते हैं।

इस प्रकार प्रकृति के नानाविध अनूठे चित्र उपस्थित करने में 'धर्मशर्माभ्युदय' के कवि को बहुत सफलता मिली है। वह प्रकृति का चतुर चितेरा है। यद्यपि उसके प्रकृति-चित्रण की शैली में सहज-स्वाभाविकता की कमी है, किन्तु कल्पना-वैचित्र्य में उसकी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

'धर्मशर्माभ्युदय' में हरिचन्द्र ने अपने पात्रों के सौन्दर्य-चित्र भी यथास्थान प्रस्तुत किये हैं। स्त्री-पात्रों में सुव्रता और पुरुष-पात्रों में धर्मनाथ के सौन्दर्य-चित्रण में कवि की

सौन्दर्य-चित्रण

वृत्ति अधिक रमी है। सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने परम्परागत नख-शिख-वर्णन की प्रणाली को अपनाया है। इन वर्णनों में पैर से लेकर सिर तक शरीर के समस्त अवयवों के सौन्दर्य का उद्घाटन विविध उपमानों की योजना के द्वारा किया गया है। उपमानों में परम्पराप्रसिद्ध उपमान ही लिये गये हैं। उदाहरणार्थ मुख के लिए कमल और कृष्ण केशों के लिए भ्रमरसमूह परम्परामुक्त उपमान हैं। रानी सुव्रता के मुख के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए इन्हीं उपमानों का प्रयोग किया गया है:—

मूर्ध्नि रत्नपुरनाथयोषितः सा कयाऽपि रचिताऽलकावलिः ।
या मुमोष मुखपद्मसन्निधौ गन्धलुब्धमधुपावलिश्रियम् ॥[3]

इसी प्रकार अधरोष्ठ की लालिमा व्यक्त करने के लिए प्रवाल, बिम्बाफल और

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १४, श्लोक ३९ (२) वही, सर्ग १२, श्लोक ५३
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ५०

विद्रुम इन परम्पराप्रथित उपमानों की योजना की गयी है। अधररस की अनिर्वचनीयता की अभिव्यक्ति के लिए पीयूष उपमान भी प्राचीन ही है:—

प्रवालबिम्बाफलविद्रुमादयः समा बभूवुः प्रभयैव केवलम्।
रसेन तस्यास्त्वधरस्य निश्चितं जगाम पीयूषरसोऽपि शिष्यताम्॥[1]

गर्भिणी सुव्रता के सौन्दर्य-चित्रण में स्वाभाविकता को अधिक प्रश्रय मिला है। गर्भिणी के उदर के बढ़ जाने से उदरस्थित बलित्रय स्वभावतः ही नष्ट हो जाता है और स्तन स्थूल हो जाते हैं। गर्भिणी सुव्रता की भी यही अवस्था है:—

एकेन तेन बलिना स्वबलेन तस्या भङ्क्त्वा बलित्रयमवर्धत मध्यदेशः।
तेनैव संमदरसेन सुहृत्तदाभूदत्यन्तपीवरतरः कुचकुम्भभारः॥[2]

जिनेन्द्र धर्मनाथ के रूपवर्णन में भी परम्पराप्रथित उपमानों की अधिकता है। धर्मनाथ के कण्ठ के सौन्दर्य को देख कर शंख के लज्जा से समुद्र में डूबने की कल्पना द्वारा कण्ठ के अतिशय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गई है:—

रेखात्रयेणेव जगत्त्रयाधिकं निरूपयन्तं निजरूपसंपदम्।
तत्कण्ठमालोक्य ममज्ज लज्जया विशीर्यमाणः किल कम्बुरम्बुधौ॥[3]

निम्नोद्धृत पंक्तियों में धर्मनाथ के मुख के लिए फुल्ल अम्भोरुह तथा श्यामल केशों के लिए भ्रमर-समूह उपमान देकर परम्पराप्रथित कल्पनाओं का ही उपयोग किया गया है:—

स्निग्धाः बभुर्मूर्द्धनि तस्य कुन्तलाः कलिन्दकन्याम्बुतरङ्गभंगुराः।
फुल्लाननाम्भोरुहि सारसौरभे निलीननिःशब्दमधुव्रता इव॥[4]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि 'धर्मशर्माभ्युदय' के रूप-चित्र उपस्थित करते समय कवि ने विभिन्न शारीरिक अवयवों के लिए कविसमयसिद्ध उपमानों का ही प्रयोग किया है। यद्यपि ये उपमान प्राचीन ही हैं, तथापि उनके प्रयोग में कवि की मौलिकता यत्र-तत्र परिलक्षित होती है।

समाज-चित्रण

'धमशर्माभ्युदय' में प्रत्यक्ष-रूप से कवि ने अपने समय की सामाजिक परम्पराओं का उल्लेख कहीं नहीं किया है, फिर भी दो-एक स्थलों पर तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाले संकेत मिल ही जाते हैं। द्वितीय सर्ग में राजा महासेन के शौर्य का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है:—

निपीतमातङ्गघटाग्रशोणिता हर्षावगूढा सुरतार्थिभिर्भटैः।
किल प्रतापानलमासदत्समित्समृद्धमस्यातिलतात्मशुद्धये॥[5]

इस पद्य से राजा के प्रचण्ड शौर्य की अभिव्यक्ति के साथ-साथ यह भी ज्ञात होता

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २, श्लोक ५१ (२) वही, सर्ग १७, श्लोक ७
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक २५ (४) वही, सर्ग ४, श्लोक १०
(५) वही, सर्ग २, श्लोक १५

है कि कवि के समय में चाण्डाल शोणितपान करते थे। चाण्डाल के घट मे रुधिरपान करना तथा स्त्री का परपुरुषगमन करना, ये दोनों कृत्य जघन्य पाप समझे जाते थे और इनके प्रायश्चित के लिए अपराधी को प्रदीप्त अग्नि में प्रवेश करना पड़ता था।

इसी सर्ग में कवि ने चन्द्रग्रहण के समय जनता द्वारा किये जाने वाले आचार-विचारों का उल्लेख भी इस प्रकार किया है :—

तदीयनिस्त्रिंशलसद्विधुन्तुदे बलाद्‌गिलत्युद्यतराजमण्डलम् ।
निमज्ज्य धारासलिले स्वमुच्चकैर्ददुर्द्विजेभ्यः प्रविभज्य विद्विषः ॥[1]

इससे ज्ञात होता है कि चन्द्रग्रहण के अवसर पर नदी आदि के जल में स्नान करके ब्राह्मणों को दान देने की परिपाटी समाज में प्रचलित थी।

चतुर्थ सर्ग में दशरथ-नृप के शौर्य-वर्णन-सम्बन्धी एक पद्य से यह भी ध्वनित होता है कि समाज में स्वगोत्रीय कन्या के साथ विवाह करना गर्हित समझा जाता था।[2]

यों तो धर्मनाथ के पौराणिक चरित्र से सम्बन्धित होने के कारण 'धर्मशर्माभ्युदय' के कथानक में धार्मिक तत्त्व अन्यत्र भी मिल सकते हैं, किन्तु इक्कीसवें सर्ग में कवि की धर्म और दर्शन-सम्बन्धी विचारधारा अधिक स्पष्ट-रूप से व्यक्त हुई है।

धर्म और दर्शन

समवसरण में देशना करते हुए धर्मनाथ जिन-शासन में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सात तत्त्वों का उल्लेख करते हैं।[3] कवि के अनुसार जीव-तत्त्व अमूर्तिक, चेतनालक्षण से रहित, कर्ता, भोक्ता, शरीर-प्रमाण, ऊर्ध्वगामी तथा स्थिति-उत्पत्ति-व्ययात्मक है।[4] सिद्ध और संसारी भेद से जीव दो प्रकार के हैं तथा नरकादि गतियों के भेद से संसारी चार प्रकार के बताये गये हैं।[5] आगे नरक की सात भूमियाँ बता कर नरक-भूमि के प्राणियों के शरीर तथा आयु-प्रमाण पर प्रकाश डाला गया है। इस अवसर पर नरक के दुःखों का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

पाययन्ति च निस्त्रिंशाः प्रतप्तकललं मुहुः ।
घ्नन्ति बध्नन्ति मथ्नन्ति क्रकचैर्दारयन्ति च ॥

---

(१) वही, सर्ग २, श्लोक १९

(२) **अन्ये भियोपात्तपयोधिगोत्राः क्षोणीभुजो जग्मुरगम्यभावम् ।**
लक्ष्मीस्ततोवारिधिराजकन्या तमेकमेवात्मपतिं चकार ॥ —वही, सर्ग ४, श्लोक २८

(३) **जीवाजीवास्रवाः बन्धसंवरावपि निर्जराः ।**
मोक्षश्चेतीह तत्त्वानि सप्त स्युर्जिनशासने ॥ —वही, सर्ग २१, श्लोक ८

(४) **अमूर्तश्चेतनाचिह्नः कर्ता भोक्ता तनुप्रमः ।**
ऊर्ध्वगामी स्मृतो जीवः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥ —वही, सर्ग, २१ श्लोक १०

(५) **सिद्धसंसारिभेदेन द्विप्रकारः स कीर्तितः ।**
नरकादिगतेर्भेदात् संसारी स्याच्चतुर्विधः ॥ —वही सर्ग २१, श्लोक ११

खण्डनं ताडनं तत्रोत्कर्तनं यन्त्रपीडनम् ।
किं किं दुष्कर्मणः पाकात्सहन्ते ते न दुःसहम् ।।[१]

जीव के अन्य प्रकार से भी भेद किये गये हैं और फिर उनके भेदोपभेदों पर विस्तार से विचार किया गया है।

जीव-विवेचन के पश्चात् धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल के भेद से पाँच अजीव-तत्त्वों के स्वरूप और उनके भेदोपभेदों का वर्णन किया गया है।[२] इसके बाद आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष के स्वरूप एवं भेदों का विस्तृत परिचय दिया गया है। काय, वचन और मन का क्रिया-रूप-योग ही आस्रव माना गया है। पुण्य और पाप के योग से उसके शुभ और अशुभ दो भेद होते हैं।[3] शुभ आस्रव के योग से उत्तम गति और अशुभ आस्रव से अधम गति मिलती है। कवि के शब्दों में "बहुत आरम्भ और अधिक परिग्रह रखना नरकायु के निमित्त हैं, माया और आर्तध्यान तिर्यक् योनि का कारण है तथा अल्पारम्भ और अल्प परिग्रह मनुष्यायु का कारण है एवं सराग संयम आदि देवायु का आस्रव है :—

श्वभ्रायुषो निमित्तानि बह्वारम्भपरिग्रहाः ।
मायार्तध्यानतामूलं तिर्यग्योनिभवायुषः ।।
नरायुषोऽपि हेतुः स्यादल्पारम्भपरिग्रहः ।
सरागसंयमत्वादि निदानं त्रिदशायुषः ।।[४]

बन्ध का विवेचन करते हुए कवि ने लिखा है कि मिथ्या-दर्शन, प्रमाद, अविरति, कषाय और योग, ये जीव के कर्मबन्ध के पाँच कारण हैं।[५] जिसके द्वारा आस्रव का द्वार रुक जाने से शुभ-अशुभ कर्मों का आना बन्द हो जाता है वह संवर कहलाता है।[६] कवि ने आस्रव को संसार का और संवर को मोक्ष का मूल कारण बताया है :—

किमन्यैर्विस्तरैरेतद् रहस्यं जिनशासने ।
आस्रवः संसृतेर्मूलं मोक्षमूलं तु संवरः ।।[७]

संवर के पश्चात् निर्जरा के स्वरूप और उसके भेदों पर इन पंक्तियों में प्रकाश डाला गया है :—

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक ३०-३१ (२) वही, सर्ग २१, श्लोक ८१-९२

(३) शरीरवाङ्मनः कर्म्मयोग एवाश्रवो मतः ।
शुभाशुभविकल्पोऽसौ पुण्यपापानुषङ्गतः ।। —वही, सर्ग २१, श्लोक ९४

(४) वही, सर्ग २१, श्लोक १००-१०१

(५) मिथ्यादृक् च प्रमादाश्च योग्याश्चाविरतिस्तथा ।
कषायाश्च स्मृताः जन्तो पंचबन्धस्य हेतवः ।। —वही, सर्ग २१, श्लोक १०७

(६) आस्रवद्वाररोधेन शुभाशुभविशेषतः ।
कर्म संव्रियते येन संवरः स निगद्यते ।। —वही, सर्ग २१, श्लोक ११८

(७) वही, सर्ग २१, श्लोक १२०

दुर्जरं निर्जरत्यात्मा यया कर्म शुभाशुभम् ।
निर्जरा सा द्विधा ज्ञेया सकामाकामभेदतः ॥[1]

इसके बाद सागार और अनागार के भेद से व्रत दो प्रकार के बताये गये हैं। सागारव्रत में अणुव्रतों की और अनागार व्रत में महाव्रत की गणना की गयी है। गृहस्थों के लिए पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का निर्देश किया गया है। पुनः सात व्यसनों में जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, आखेट, स्तेयवृत्ति और परदारासंग की गणना की गयी है और इनके त्याग पर बल दिया गया है।[2]

निर्जरा के वर्णन के अनन्तर मोक्ष का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। बन्ध के कारणों का अभाव तथा निर्जरा से उत्पन्न समस्त कर्मों का क्षय ही मोक्ष है। यह मोक्ष ज्ञान, दर्शन और चारित्र के द्वारा ही प्राप्त होता है।[3]

चतुर्थ सर्ग में जीव के अस्तित्व की सिद्धि की गयी है। मन्त्री सुमन्त्री जीव के अस्तित्व में शंका प्रकट करता हुआ[4] कहता है, "इस शरीर के सिवाय कोई भी आत्मा भिन्न अवयवों में न तो जन्म के पहले प्रवेश करता ही दिखाई देता है और न मरने के बाद निकलता है। वास्तव में जिस प्रकार गुड़, अन्नचूर्ण, जल और वायु के संयोग से एक उन्माद उत्पन्न करने वाली वस्तु (मदिरा) उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथिवी, अग्नि जल और वायु के संयोग से कोई इस शरीर-रूपी यन्त्र का संचालक उत्पन्न हो जाता है। इसलिए हे राजन् ! प्रत्यक्ष को छोड़ कर परोक्ष के लिए ही यत्न न करो। भला ऐसा कौन बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो गाय के स्तनों को छोड़ कर सींगों से दूध दुहेगा ?"[5]

इस शंका का उत्तर राजा दशरथ इन शब्दों में देते हैं, "यह जीव अपने शरीर में सुखादि की तरह स्वसंवेदन से जाना जाता है, क्योंकि उसके स्वसंविदित होने में कोई भी बाधक कारण नहीं है। अतः बुद्धि-व्यापार-दृष्टि से जिस प्रकार अपने शरीर में जीव है

---

(१) वही, सर्ग २१, श्लोक १२२

(२) सागारमनगारं च जैनैरुक्तं व्रतं द्विधा ।
अणुमहाव्रतभेदेन तयोः सागारमुच्यते ॥
अणुव्रतानि पंच स्युस्त्रिप्रकारं गुणव्रतम् ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि सागाराणां जिनागमे ॥
द्यूतं मासं सुरा वेश्या पापर्द्धिः स्तेयवृत्तिता ।
परदाराभियोगश्च त्याज्यो धर्मधुरन्धरैः ॥
—धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २१, श्लोक १२४, १२५, १३३

(३) वही, सर्ग २१, श्लोक १६०–१६१

(४) जीवाख्यया तत्त्वमपीह नास्ति कुतस्तनी तत्परलोकवार्ता ।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ६२

(५) वही, सर्ग ४, श्लोक ६४–६६

उसी प्रकार दूसरे के शरीर में भी है, यह अनुमान से जाना जाता है। सद्योजात बालक, जो माता का स्तन पीने लगता है उसे पूर्वभव के संस्कार को छोड़ कर अन्य कोई भी सिखाने वाला नहीं है। इसलिए यह जीव नया ही उत्पन्न होता है—ऐसा आत्मज्ञ पुरुष को नहीं कहना चाहिए। यह आत्मा अमूर्तिक है और एक ज्ञान के द्वारा ही ज्ञेय है, अतः उसे मूर्तिक दृष्टि नहीं जान पाती। क्या कभी दक्ष पुरुषों की तलवार भी आकाश का भेदन कर सकती है।"[1]

दशरथ नृप आगे मन्त्री से कहते हैं, "भूतचतुष्टय के संयोग से जीव उत्पन्न होता है यह जो तुमने कहा है उसका वायु से प्रज्वलित, अग्नि के द्वारा सन्तापित, जल से युक्त स्थाली (बटलोई) में स्पष्ट व्यभिचार है, क्योंकि भूतचतुष्टय के रहते हुए भी उसमें चेतन उत्पन्न नहीं होता, और गुड़ आदि के सम्बन्ध से होने वाली जिस उन्मादिका शक्ति का तुमने उदाहरण दिया है वह चेतन के विषय में उदाहरण कैसे हो सकती है।"[2] इन तर्कों के आधार पर राजा दशरथ ने सिद्ध किया है कि जीव अमूर्तिक, निरत्यय, कर्ता, भोक्ता, चेतन, कथंचित् एक, कथंचित् अनेक है और विपरीत स्वभाव वाले शरीर से पृथक् ही है।[3]

इस प्रकार 'धर्मशर्माभ्युदय' के चौथे और इक्कीसवें सर्ग में कवि ने जैनधर्म और दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन किया है जिससे उसके धार्मिक मूल्य में वृद्धि हुई है।

'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य रमणीय भावों का अक्षय भण्डार है। उसमें भावनाओं की तीव्रता और अनुभूति की सचाई वर्तमान है। इस कारण उसमें विविध रसों, विशेष कर शान्त और शृंगार का परिपाक बहुत सुन्दर बन पड़ा है। 'धर्मशर्माभ्युदय'

---

(१) जीवः स्वसंवेद्य इहात्मदेहे सुखादिवद् बाधकविप्रयोगात्।
काये परस्यापि स बुद्धिपूर्वव्यापारदृष्टे स्व इवानुमेयः॥
तत्कालजातस्य शिशोरपास्य प्राग्जन्मसंस्कारमुरोजपाने।
नान्योऽस्ति शास्ता तदपूर्वजन्मा जीवोऽयमित्यात्मविदा न वाच्यम्॥
ज्ञानैकसंवेद्यममूर्तमेनं मूर्ता परिच्छेत्तुमलं न दृष्टिः।
व्यापार्यमाणापि कृताभियोगैर्भिनत्ति न व्योम शितासियष्टिः॥
—धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग ४, श्लोक ६८–७०

(२) संयोगतो भूतचतुष्टयस्य यज्जायते चेतन इत्यवादि।
मरुज्ज्वलत्पावकतापिताम्भः स्थाल्यामनेकान्त इहास्तु तस्य॥
उन्मादिकाशक्तिरचेतना या गुडादिसम्बन्धभवा न्यदर्शि।
सा चेतने ब्रूहि कथं विशिष्टदृष्टान्तकक्षामधिरोहतीति।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ७१–७२

(३) तस्मादमूर्तश्च निरत्ययश्च कर्ता व भोक्ता च सचेतनश्च।
एकः कथंचिद्विपरीतरूपादवेहि देहात्पृथगेव जीवः॥ —वही, सर्ग ४, श्लोक ७३

रस-परिपाक शान्तरसपर्यवसायी काव्य है। उसमें शान्त रस का परिपाक अनेक स्थलों पर हुआ है। बीसवें सर्ग में उल्कापात को देख कर धर्मनाथ का हृदय वैराग्य की भावनाओं से भर जाता है। इस अवसर पर शान्त रस की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है :—

> **तामालोक्याकाशदेशादुदंचज्ज्योतिर्ज्वालां दीपिताशां पतन्तीम् ।**
> **इत्थं चित्ते प्राप्तनिर्वेदखेदो मीलच्चक्षुश्चिन्तयामास देवः ॥**
> **देवः कश्चिज्ज्योतिषां मध्यवर्ती दुर्गे तिष्ठन्नित्यमेषोऽन्तरिक्षे ।**
> **यातो दैवादीदृशीं चेदवस्थां कः स्याल्लोके निर्व्यपायस्तदन्यः ॥**
> **आयुः कर्मालानभङ्गे प्रसर्पन्नापद्वीथीदीर्घदोर्दण्डचण्डः ।**
> **प्राणायामाराममूले निभिन्दन्कैरुत्सिक्तः सह्यते कालदन्ती ॥**
> **प्रत्यावृत्तिर्न व्यतीतस्य नूनं सौख्यस्यास्ति भ्रान्तिरागामिनोऽपि ।**
> **तत्तत्कालोपस्थितस्यैव हेतोर्बध्नात्यास्थां संसृतौ को विदग्धः ॥**
> **छेत्तुं मूलात्कर्मपाशानशेषान्सद्यस्तीक्ष्णैस्तद्यतिष्ये तपोभिः ।**
> **को वा कारागाररुद्धं प्रबुद्धः शुद्धात्मानं वीक्ष्य कुर्यादुपेक्षाम् ॥**[1]

यहाँ धर्मनाथ का हृदयगत निर्वेद स्थायी भाव है। उल्कापात आलम्बन विभाव और संसार की अनित्यता, बीते हुए सुख का लौट कर न आना आदि विचार उद्दीपन विभाव हैं। नेत्र बन्द करना, चिन्तन करना, उग्र तपश्चर्या के द्वारा कर्मपाश को छिन्न-भिन्न करने का संकल्प करना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, वितर्क, उद्वेग, शोक आदि संचारी भाव हैं। विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से पुष्ट होकर यहाँ धर्मनाथ के हृदय का निर्वेद शान्त-रस में परिणत होता है।

इन्दुमती-स्वयंवर में इन्दुमती की देह में उत्पन्न धर्मनाथदर्शनोद्भूत सात्त्विक भावों के चित्रण में शृंगार रस की मार्मिक व्यंजना इस प्रकार हुई है:—

> **इत्थं तयोक्ते द्विगुणीभवन्तं रोमांचमालोकनमात्रभिन्नम् ।**
> **सा दर्शयामास तनौ कुमारी जिनेश्वरे मूर्तमिवाभिलाषम् ॥**
> **भावं विदित्वाऽपि तथा करेणुं सख्याः सहासं पुरतः क्षिपन्त्याः ।**
> **चेलांचलं सा चलपाणिपद्मा प्रोत्सृज्य लज्जां द्रुतमाचकर्ष ॥**
> **श्रीधर्मनाथस्य मनोज्ञमूर्तेः प्रवेपमानाग्रकरारविन्दा ।**
> **संवाहितां वेत्रभृता कराभ्यां चिक्षेप कण्ठे वरणस्रजं सा ॥**[2]

यहाँ इन्दुमती के हृदय की धर्मनाथ-विषयक रति स्थायी भाव है। धर्मनाथ आलम्बन विभाव हैं। उनका अतुल सौन्दर्य तथा सुभद्रा प्रतिहारिणी द्वारा वर्णित उनकी गुणावली उद्दीपन विभाव है। शरीर का रोमांचित होना, लज्जा छोड़ कर सखी का चेलांचल

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २०, श्लोक ९-११, १३, २३

(२) वही, सर्ग १७, श्लोक ७८-८०

खींच कर हस्तिनी को रुकवाना, कर-कमलों का काँपना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, अभिलाषा, उत्सुकता, उद्वेग आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ शृंगार रस की पूरी सामग्री विद्यमान है।

शृंगाररस के अन्तर्गत अंग-रूप में यत्र-तत्र हास्य के छींटे भी दीख पड़ते हैं। काम-विह्वल नायिका पुष्परहित वृक्ष की ओर भी पुष्पों की इच्छा से अपना हाथ बढ़ाने की क्रिया द्वारा सखियों को हास्य रस की सामग्री प्रदान कर रही है:—

प्रसूनशून्येऽपि तदर्थिनी तरौ नियोजयन्ती करपल्लवं मुहुः।
निरीक्षणात्पत्युरनङ्गविह्वला स्मितं सखीनां विदधे सुलोचना ॥[1]

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में ऐरावत गज द्वारा सूर्यबिम्ब को आकाश गंगा के तटवर्ती रक्तोत्पल की भ्रान्ति से पकड़ लेने और बाद में शुण्डा के दग्ध हो जाने पर तत्क्षण उसे छोड़ देने की क्रिया देवी-देवताओं में हास्य उत्पन्न कर रही है:—

रक्तोत्पलं हरित्पत्रविलम्बि तीरे, त्रिस्रोतसः स्फुटमिति त्रिदशद्विपेन्द्रः।
बिम्बं विकृष्य सहसा तपनस्य मुंचन्धुन्वन्करं दिवि चकार न कस्य हास्यम् ॥[2]

नवम सर्ग में धर्मनाथ की बालक्रीडाएँ और उनकी सुन्दरता माता-पिता के हृदय में आनन्दातिरेक उत्पन्न करती हैं, इस प्रसंग में वात्सल्य का मनोहारी चित्रण हुआ है। कतिपय पंक्तियाँ देखिए:—

पुत्रस्य तस्याङ्गसमागमक्षणे निमीलयन्नेत्रयुगं नृपो बभौ।
अन्तःकियद्गाढनिपीडनाद्वपुः प्रविष्टमस्येति निरूपयन्निव ॥
उत्सङ्गमारोप्य तमङ्गजं नृपः परिष्वजन्मीलितलोचनो बभौ।
अन्तर्विनिक्षिप्य सुखं वपुर्गृहे कपाटयोः संघटयन्निव द्वयम् ॥[3]

यहाँ महासेन नृप की पुत्र (धर्मनाथ) विषयक रति स्थायी भाव है। आलम्बन शिशु धर्मनाथ और उनका दर्शन-स्पर्शन उद्दीपन विभाव हैं। पुत्र को गोद में लेना, उसे हृदय से लगाना, नेत्र बन्द करना, आनन्दित होना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, उत्साह, अभिलाषा आदि संचारी भाव हैं।

उन्नीसवें सर्ग में, युद्ध-वर्णन-प्रसंग में वीररस की भी अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे:—

सुषेणस्तद्बलव्यूहं सन्नाहवपुषं ततः।
हर्षेण वीक्ष्य सौवर्णसंनाहवपुषं ततः ॥
चतुरङ्गबले तत्र परिसर्पति शात्रवे।
सैन्यमाश्वासयामास व्याकुलं स्वं चमूपतिः ॥
स बाजिसिन्धुरग्रामान् संभ्रमादभिधावितः।
जवादसि स्फुरद्धामा विभ्रन्नादमधात्ततः ॥[4]

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १३, श्लोक ५६ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ४४
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक १०–११ (४) वही, सर्ग १६, श्लोक ७६–७८

यहाँ शत्रु-दमन-विषयक सेनापति सुषेण का उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु-सेना आलम्बन और अपनी सेना को घबड़ाते हुए देखना उद्दीपन विभाव है। शत्रुसेना को हर्षपूर्वक देखना, तलवार लेकर बड़े वेग से शत्रु के गज-वाजि-समूह के सम्मुख आना तथा सिंहनाद करना अनुभाव हैं। धैर्य, गर्व, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

वीररस के अन्तर्गत रौद्ररस की झलक भी कहीं-कहीं 'धर्मशर्माभ्युदय' में पायी जाती है।[1] इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में शान्त और शृंगार रस की प्रधानता होते हुए भी अन्य रसों का निर्वाह यथास्थान अच्छा हुआ है।

भाषा

'धर्मशर्माभ्युदय' की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और परिमार्जित है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार दिखाई देता है। अधिकतर उसमें स्वाभाविकता और सजीवता है। वाक्यों में शब्द यथास्थान जड़े हुए प्रतीत होते हैं। यों तो उसमें माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों का प्रयोग यथास्थान हुआ है, किन्तु माधुर्य गुण तो सम्पूर्ण काव्य में दृष्टिगोचर होता है। अधिकांश स्थलों पर अनुप्रास और यमक की सहज योजना ने भाषा के माधुर्यगुण की वृद्धि की है। जैसे:—

कलविराजिविराजितकानने नवरसालरसालसषट्पदः।
सुरभिकेसरकेसरशोभितः प्रविससार स सारवलो मधुः॥[2]

इति वचनमुदारं भाषमाणे मुदारं
प्रशमितवृजिनस्य स्वर्गिनाथे जिनस्य।
मतिरिहघनगानां रन्तुमासीन्नगानां
ततिषु कुसुमलीनां वीक्ष्य पालीमलीनाम्॥[3]

कहीं-कहीं दीर्घसमासमयी तथा सन्धियुक्त भाषा के कारण 'धर्मशर्माभ्युदय' की भाषा में क्लिष्टता और दुर्बोधता आ गयी है। ऐसे स्थलों पर भाषा की स्वाभाविकता तथा सरलता को आघात पहुँचा है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को लीजिए:—

निपीतमातङ्गघटाग्रशोणिता हठावगूढा सुरतार्थिभिर्भटैः।
किलप्रतापानलमासदत्समित्समृद्धमस्यातिलतात्मशुद्धये॥
तदीय निर्स्त्रिशलसद्विधुन्तुदे बलाद्गिलत्युद्यतराजमण्डलम्।
निमज्ज्य धारासलिले स्वमुच्चकैर्ददुर्द्विजेभ्यःप्रविभज्य विद्विषः।[4]

---

(१) मम चापलतां वीक्ष्य नवचापलतां दधत्। अयमाजिरसाद् गन्तुं किं यमाजिरमिच्छति॥
सौजन्यसेतुमुद्भिन्दन्यत्त्वया नैव वारितः। तन्नः क्रोधार्णवौघेन प्लावनीयो नृपव्रजः॥
विपद्विधास्यतेऽत्राहंकारिभिः कारिभिर्मम।
एकाकिनाऽपि रुध्यन्ते हरिणा हरिणा न किम्॥
—धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १९, श्लोक ४१-४३

(२) वही, सर्ग ११, श्लोक १० (३) वही, सर्ग ११, श्लोक ७२

(४) वही, सर्ग २, श्लोक १५, १६

इस प्रकार की समासबहुला क्लिष्ट पदावली के होते हुए भी 'धर्मशर्माभ्युदय' में ऐसे स्थलों की कमी नहीं है जहाँ भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और प्रसादगुण पाया जाता है। जैसे:—

धनुर्लताभ्रू रिषवः कटाक्षाः स्तनौ च सर्वस्वनिधानकुम्भौ।
सिंहासनं श्रोणिरतुल्यमस्याः किं किं न योग्यं स्मरपार्थिवस्य ॥[1]

धार्मिक देशना के अन्तर्गत भी भाषा प्रसादगुण से युक्त दीख पड़ती है:—

अणुव्रतानि पंच स्युस्त्रिप्रकारं गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि सागाराणां जिनागमे ॥
द्यूतं मासं सुरा वेश्या पापर्द्धिः स्तेयवृत्तिता।
परदाराभियोगश्च त्याज्यो धर्मधुरन्धरैः ॥[2]

कहीं-कहीं दुरूह और कृत्रिम भाषा अपनाने पर भी 'धर्मशर्माभ्युदय की भाषा विविध भावों एवं प्रसंगों के अनुकूल है। शृंगार और शान्त रस के प्रसंगों में कवि की भाषा कोमलता और माधुर्य लिए हुए है। मानमोचन-प्रसंग के अन्तर्गत भाषा भी युवक के हृदयगत कोमल भावों के अनुसार कोमल दिखाई देती है:—

लावण्यमंगे भवती बिभर्ति दाहश्च मेऽभूद् व्यवधानतोऽपि।
तद् ब्रूहि शृंगारिणि साम्प्रतीदं कुतस्त्वया शिक्षितमिन्द्रजालम् ॥
जाड्यं यदि प्राप्यमुरोजयोस्ते तद्वेपथुर्मानिनि मे कुतस्त्यः।
इत्युच्चरंश्चाटुवचांसि कश्चित्प्रियामकार्षीच्च्युतमानवेगम् ॥[3]

रात्रि की विकरालता के वर्णन में कवि ने तदनुकूल ओजस्विनी भाषा का प्रयोग किया है:—

अथास्तसन्ध्यारुधिराणि पातुं विस्तारितताराभरदन्तुरास्य।
वेतालवत्कालकरालमूर्तिः समुज्जिजृंभे सहसान्धकारः ॥[4]

इस प्रकार सामूहिक-रूप में 'धर्मशर्माभ्युदय' की भाषा प्रौढ़, परिष्कृत तथा भावानुसारिणी है। विविध मनोभावों तथा परिस्थितियों के चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा शब्दक्रीडा

किन्तु 'धर्मशर्माभ्युदय' के उन्नीसवें सर्ग में भाषा का अत्यन्त क्लिष्ट एवं दुरूह रूप दिखाई देता है। यहाँ कवि ने पाण्डित्य-प्रदर्शन और चमत्कार के मोह में पड़ कर भाषा को कृत्रिम और कुरूप बना दिया है। फलस्वरूप यह भाषा विद्वद्वर्ग की भी सामान्य पहुँच के बाहर है। कहीं-कहीं तो केवल एक अक्षर के द्वारा ही समस्त श्लोक की रचना की गयी है:—

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १७, श्लोक १६
(२) वही, सर्ग २१, श्लोक १२५, १३३
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक ८०-८१
(४) वही, सर्ग १४, श्लोक २१

कङ्कः किं कोककेकाली किं काकः केकिकोऽककम् ।
कौकः कुकैककः कैकः कः केकाकाकु काङ्कम् ॥[1]

यहाँ केवल एक अक्षर 'क' का प्रयोग हुआ है । निम्नोद्धृत पद्यों के कलेवर का निर्माण केवल दो-दो अक्षरों द्वारा ही किया गया है:—

गङ्गोरगगुरुप्राङ्गगौरगोगुरुरुग्रगुः ।
रागागारिगरैरङ्गैरग्रेऽग्रं गुरुगीरगात् ॥[2]

काननाः कानने नुन्नाः नाकेऽनीकाङ्ककानिनः ।
के के नानीकिनीनेन नाकीनैकाकिना ननु ॥[3]

यहाँ प्रथम श्लोक में 'ग' 'र' और द्वितीय श्लोक में केवल 'क' 'न' इन दो अक्षरों का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार इस श्लोक की रचना केवल चार अक्षरों के द्वारा हुई है और उसके प्रत्येक चरण में केवल एक अक्षर का ही उपयोग किया गया है:—

रैरोऽरीरोरुररुरत्काकुकं केकिकंकिकः ।
चंचच्चंचूच्चचिच्चोचे तततातीतिं तंततः ॥[4]

कहीं कवि ने ओष्ठ्य अक्षरों का बहिष्कार करके श्लोक-निर्माण किया है[5], तो कहीं तालव्य अक्षरों का बहिष्कार करके श्लोक-रचना की गयी है ।[6] कहीं-कहीं श्लोक के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को एक जैसा निर्मित कर चमत्कार उत्पन्न करने की चेष्टा की गयी है । जैसे:—

अतस्तमानसे सेना सदाना सारवा रणे ।
अतस्तमानसे सेना सदानासारवारणे ॥[7]

कहीं-कहीं एक श्लोक के वर्णों को विपरीत-क्रम से रख कर दूसरे श्लोक का निर्माण किया गया है । उदाहरणार्थ:—

निजदोरदनोदीर्णश्रीरता घनताविभा ।
तरसारवलं चेरुरिभाभूतहतो भृशम् ॥[8]

इस श्लोक के वर्णों को विपरीत-क्रम से रख कर यह श्लोक बनाया गया है:—

संभृतो हतभूभारि रुचेऽलंवरसारतः ।

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १९, श्लोक ५४ (२) वही, सर्ग १९, श्लोक ९२
(३) वही, सर्ग १९, श्लोक ३२ (४) वही, सर्ग १९, श्लोक ३३
(५) निरोष्ठ्यः—निस्त्रिंशदारितारातिहृदयाचलनिर्गता ।
न करिस्कंधदध्नासृङ्नदी दीनैरतीर्यत । —वही, सर्ग १९, श्लोक ५८
(६) अतालव्यः—मूर्धानं दुधुवुस्तत्र कङ्कपत्रक्षता भटाः ।
प्रभोरर्थसमाप्तौ वा प्राणानां रोद्धुमुत्क्रमम् ॥
—वही, सर्ग १९, श्लोक ६८
(७) वही, सर्ग १९, श्लोक ५६ (८) वही, सर्ग १९, श्लोक ४९

भाविताननघतारश्रीनं दीनो दरदोऽर्जनि ॥[1]

इसी प्रकार एक दूसरे अनुलोम-प्रतिलोम श्लोक की रचना श्लोक के पूर्वार्द्ध के वर्णों को उत्तरार्द्ध में ठीक विपरीत-क्रम से रख कर की गयी है।[2] कहीं-कहीं प्रथम चरण के वर्णों का क्रम विपरीत करके द्वितीय चरण का और तृतीय चरण के वर्णों को विपरीत-क्रम से रख कर चतुर्थ चरण का निर्माण भी किया गया है।[3]

'धर्मशर्माभ्युदय' में विविध चित्रकाव्यों की योजना भी दीख पड़ती है। इसमें गोमूत्रिक, अर्धभ्रम, मुरजबन्ध, सर्वतोभद्र, षोडशदलकमल तथा चक्रबन्ध काव्यों की योजना करके चमत्कार उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न किया गया है।[4] एक षोडशदलकमल चित्र में 'हरिचन्द्र-कृत धर्मजिनपतिचरितम्' यह वाक्य तथा दूसरे चक्रचित्र में यह श्लोक गर्भित है :—

---

(१) वही, सर्ग १६, श्लोक ५०

(२) अनुलोमप्रतिलोमार्थ :—रागिताजिवरा कापि नेतेनाततताम‌सा ।
सामताततना तेने पिकारावजिता गिरा ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ४५

(३) प्रतिलोमानुलोमपाद :—सारसारसमाकारा राकामासरसा रमा ।
सा गता हृसना तेन न तेनासहतागसा ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ११

(४) गोमूत्रिक :— स वाजिसिन्धुरग्रामान्संभ्रमादभिधावितः ।
जवादसिं स्फुरद्धामा विभ्रन्नादमधात्ततः ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ७८

अर्धभ्रम :— जघान करवालीयघातेनारेर्बलं बली ।
न नाप्ता ते निरालम्बा करे तेनावनिर्वरः ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ८४

मुरजबन्ध :— स प्रसादेन देवस्य रसादेकपदे बलम् ।
सम्पदेऽजयदेव द्विट्कम्पदेन सदेवनम् ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ९०

सर्वतोभद्र :— तेन संग्राममधीरेण तव नाथ पदातिना ।
एकहेलमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो निशितासिना ॥
भरं याममयारम्भरंजिता ददताजिरम् ।
याता क्षमा माक्षता या मदमाररमादम ॥युग्मम्॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ८५–८६

षोडशदलकमल :— चक्रेऽरिसंततिमिहाजिषु नष्टपद्मा-
तिख्यातिमेकचकिताकृतिधारिणीं यः ।

आर्द्रदेवसुतेनेदं काव्यं धर्मजिनोदयं।
रचितं हरिचन्द्रेण परमं रसमन्दिरम् ।।

यद्यपि रस में व्याघात उपस्थित करने के कारण रसार्द्रता की दृष्टि से इस सर्ग का कोई महत्त्व नहीं है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये स्थल कवि का अगाध पाण्डित्य और उसका भाषा पर असाधारण अधिकार सिद्ध करते हैं।

तिग्मासिरिष्टमतवत्स तवावति क्ष्मां
किं तत्परं धरणिमित्र कृतिन् ब्रवीमि ।।
कः शर्मदं वृजिनभीतिहरं जितात्मा
हर्षाय न स्मरति तेऽभिनवं चरित्रम् ।
सम्पद्गुणातिशयपस्त्य एवं तवैति
कः कान्तिमानतिसुधाद्रवरोचमानाम् ।।

(इति श्लोकद्वयनिर्वर्तितषोडशदलकमलचित्रे कविकाव्यनामाङ्कः। यथा कर्णि-काक्षरेण सह प्रथमदलाग्रदलाग्रेषु हरिचन्द्रकृतधर्मजिनपतिचरितमिति)

चक्रबन्ध :— आतङ्कार्तिहरस्तपद्युमणिसद्भूरिप्रभाजिद्वसु
दृष्टव्यं हृदि चिह्नरत्नमसमं शौचं च पीनोन्नते।
देहेऽधत्त हितं त्वमन्दमहृदि क्षुद्रेऽप्यतो दर्शने
वल्गुर्मद्रमहस्य रम्यमपरं क्षीणव्यवायं पदम् ।।
दम्भलोभभ्रमा आदि रुद्धा गुणै
र्द्रष्टुमप्यक्षमादेव वक्त्रं तव।
वञ्चयित्वा ययुः सुश्रुत त्वां यथा
ते भजन्ते यथा नेश भक्तानपि ।।

—धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १९, श्लोक १०१–१०२

अत्र श्लोकद्वयविनिर्मिते चक्रचित्रे प्रथमतृतीयषष्ठाष्टमक्षररेखाभ्रमणे कविनामाङ्कः श्लोकः यथा :—

आर्द्रदेवसुतेनेदं काव्यं धर्मजिनोदयम् ।
रचितं हरिचन्द्रेण परमं रसमन्दिरम् ।।

चक्रबन्ध :—नीचे के चक्रबन्ध-चित्र में तृतीयषष्ठाक्षररेखाभ्रमण से कविनामाङ्कित ये शब्द—श्रीधर्माभ्युदयः, हरिचन्द्रकाव्यम्—निकलते हैं :—

लब्ध्वा श्रीर्विनिहत्यसङ्गरभुवि क्षुद्रद्विषोऽभ्युन्नता
धिक्तां धर्मपरिच्युतामरमिति स्वीकारमन्दस्पृहः।
तद्भद्राभिरुचं दधद्वरमरिदृव्यं सदा यो ददे
देवोऽस्तालसमाधिभित्कृतिधियां ताम्यन्महस्वीमुदे ।।

—वही, सर्ग १९, श्लोक १०७

कवि ने 'धर्मशर्माभ्युदय' के कलापक्ष को अधिक प्रौढ़ एवं सुन्दर बनाने के लिए विविध अलंकारों की योजना की है। उपरिनिर्दिष्ट चित्रालंकारों को छोड़ कर अन्य अलंकारों के प्रयोग में कवि ने स्वाभाविकता का ध्यान रखा है।

अलंकार-योजना

'धर्मशर्माभ्युदय' में शब्दालंकार और अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकार में अनुप्रास और यमक का प्रयोग बहुत हुआ है जिनके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग काव्य में बहुत हुआ है। जैसे :—

वारणेन्द्रमिव दानबन्धुरं सौरमेयमिव धर्मधूर्धरम्।
केशरीशमिव विक्रमोदितं श्रीस्वरूपमिव सर्वसेवितम्॥
माल्यवत्प्रथितकीर्तिसौरभं, चन्द्रवन्नयनवल्लभप्रभम्।
भानुवद् भुवनबोधकोविदं, मीनयुग्मवदमन्दसंमदम्॥

×× ×× ×× ××

लप्स्यसे सपदि भूत्रयाधिपं तीर्थनाथमधुना त्वमात्मजम्॥[1]

यहाँ तीर्थनाथ की समता वारणेन्द्र, सोरमेय आदि के साथ किये जाने से उपमा अलंकार है।

निम्नोद्धृत पद्यों में उत्प्रेक्षा की भव्य अवतारणा हुई है :—

असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेर्नष्टं क्व मे यौवनरत्नमेतत्।
इतीव वृद्धो नतपूर्वकायः पश्यन्नधोधो भुवि बम्भ्रमीति॥[2]
श्लिष्यतापि जघनस्तनमुच्चैरन्तरे प्रणयिना हृमपास्तम्।
सुभ्रुवो बलिमिषादिह मध्यं भ्रूविभङ्गमतनिष्ट रुषेव॥[3]

कवि की ये उत्प्रेक्षाएँ बड़ी अनूठी हैं। वे उसके सूक्ष्म कल्पनाकौशल का परिचय देती हैं। निम्नोद्धृत पद्यों में अर्थान्तरन्यास का प्रयोग भावोद्रेक में सहायक सिद्ध हुआ है :—

अव्येऽपि काव्ये रचिते विपश्चित्कश्चित्सचेताः परितोषमेति।
उत्कोरकः स्यात्तिलकश्चलाक्ष्याः कटाक्षभावैरपरे न वृक्षाः॥[4]
उच्चासनस्थोऽपि सतां न किंचिन्नीचः स चित्तेषु चमत्करोति।
स्वर्णाद्रिशृङ्गाग्रमधिष्ठितोऽपि काको वराकः खलु काक एव॥[5]

इन उदाहरणों में सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

इन अलंकारों के अतिरिक्त असंगति, उल्लेख, सन्देह, तद्गुण, व्यतिरेक, विरोध

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग ५, श्लोक ८२–८३, ८६
(२) वही, सर्ग ४, श्लोक ५९
(३) वही, सर्ग १५, श्लोक ३६
(४) वही, सर्ग १, श्लोक १७
(५) वही, सर्ग १, श्लोक ३०

आदि अलंकारों का प्रयोग भी कवि ने भावों को प्रभावशाली बनाने के लिए किया है। जैसे :—

करेऽन्दुकं कङ्कणमग्रभागे मुखे च लाक्षारसमायताक्षी ।
तमुत्सुका वीक्षितुमीक्षणे च संचारयामास कुरङ्गनाभिम् ॥[1]

चरणों में धारण करने योग्य नूपुरों को करों में तथा करों में पहनने योग्य कंकणों को चरणों में पहनने, पैरों में लगाने योग्य लाक्षारस को मुख में तथा भाल में लगाने योग्य कस्तूरी को नेत्रों में लगाने से यहाँ असंगति अलंकार है ।

सा वागुरा नेत्रकुरङ्गकाणामनङ्गमृत्युंजयमन्त्रशक्तिः ।
शृङ्गारभूवल्लभराजधानी जगन्मनः कार्मणमेकमेव ॥
लावण्यपीयूषपयोधिवेला संसारसर्वस्वमुदारकान्तिः ।
स काप्यनेकैर्जितनाकनारी नृपैः सकामं ददृशे कुमारी ॥[2]

यहाँ एक ही कुमारी को भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से देखे जाने के कारण उल्लेख अलंकार है ।

किं सीधुना स्फाटिकपानपात्रमिदं रजन्याः परिपूर्यमाणम् ।
चलत् द्विरेफोच्चयचुम्ब्यमानमाकाशगङ्गास्फुटकैरवं वा ।
ऐरावणस्याथ करात्कथंचिच्च्युतः सपङ्को विसकन्द एषः ।
किं व्योम्नि नीलोपलदर्पणाभे सश्मश्रुवक्त्रं प्रतिबिम्बितं मे ॥[3]

यहाँ राहुग्रस्त चन्द्र को देख कर राजा दशरथ के मन में अनेक वितर्क उत्पन्न होते हैं । कभी वह चन्द्र को मदिरापूर्ण स्फटिकमणि का पात्र, कभी चंचल भौंरों से चुम्बित आकाशगंगा का विकसित कमल, कभी ऐरावत गज की शुण्डा से च्युत पंकयुक्त मृणालकन्द, तो कभी नीलमणि दर्पण की आभा से युक्त आकाश में प्रतिबिम्बित अपना ही श्मश्रुसहित मुख समझता है। उसके इन वितर्कों में निश्चय का अभाव होने से यहाँ सन्देह अलंकार है ।

मुहुर्मुहुः स्फाटिकहर्म्यभित्तौ निरीक्ष्य रागापनिनीषयास्ये ।
स्वच्छामपि क्रान्तरदच्छदाभां दन्तच्छविं यत्र वधूः प्रमार्ष्टि ॥[4]

यहाँ धवल दन्तपंक्ति के अपने स्वाभाविक रंग को त्याग कर ओष्ठों के रंग (लालिमा) को ग्रहण करने से तद्गुण अलंकार है ।

तदाननेन्दोरधिरोहता तुलां मृगाङ्क चित्तेऽपि न लज्जितं त्वया ।
यतोऽसि कस्तत्र पयोधरोन्नतौ स मूढ यत्राभ्यधिकं व्यराज्यत ॥[5]

यहाँ उपमेय (सुव्रता के मुख) की अपेक्षा उपमान (चन्द्रमा) में हीनता दिखायी जाने से व्यतिरेक अलंकार है ।

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १७, श्लोक ८७
(२) वही, सर्ग ४, श्लोक ४२-४३
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक २०
(४) वही, सर्ग ४, श्लोक २२
(५) वही, सर्ग २, श्लोक ६०

अङ्गोऽप्यनङ्गो हरिणेक्षणानां राजाऽप्यसौ चण्डरुचिः परेषाम् ।
भोगैरहीनोऽपि हतद्विजिह्वः को वा चरित्रं महतामवैति ।।[1]

यहाँ धर्मनाथ में विरोधी गुणों का वर्णन किया गया है । वे अंगयुक्त होते हुए भी अनंग हैं । चन्द्रमा (राजा) होते हुए भी सूर्य (चण्डरुचि) हैं । सर्पराज होते हुए भी सर्पों को मारने वाले हैं । विरोध का परिहार अनंग का अर्थ कामदेव, चण्डरुचि का प्रतापी, 'भोगैरहीनोऽपि' का अर्थ भोगों से युक्त तथा द्विजिह्व का अर्थ पिशुन करने से हो जाता है । अतः यहाँ विरोधी की तरह भासित होने वाले पदार्थों के वर्णन के कारण विरोधाभास अलंकार है ।

'धर्मशर्माभ्युदय' में श्लेष, परिसंख्या, कैतवापह्नुति आदि अलंकारों का प्रयोग यत्र-तत्र उपलब्ध होता है ।[2] इस प्रकार 'धर्मशर्माभ्युदय' में विविध अलंकारों का प्रयोग करके कवि ने काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि की है । 'धर्मशर्माभ्युदय' के अलंकारों में प्रयत्नसाध्यता कहीं नहीं दीख पड़ती है । उनमें स्वाभाविकता है और वे भावानुभूति उत्पन्न करने में सफल हुए हैं ।

महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार 'धर्मशर्माभ्युदय' के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन-सम्बन्धी नियम का पालन भी हुआ है । दसवें सर्ग में शास्त्रीय नियमों के अनुसार ही विविध छन्दों का प्रयोग दिखाई देता है । प्रथम सर्ग में उपजाति तथा अन्त में मालिनी और वसन्ततिलका,

छन्द

दूसरे में वंशस्थ एवं अन्त में शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलम्बित, और शालिनी, तीसरे में अनुष्टुप् और अन्त में द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडित तथा शिखरिणी, चौथे में उपेन्द्रवज्रा एवं अन्त में द्रुतविलम्बित और पृथ्वी, पाँचवें में रथोद्धता और अन्त में वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा मालिनी, छठे में

---

(१) धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग १७, श्लोक ४५

(२) श्लेष :— लब्धात्मलाभा बहुधान्यवृद्धचै निर्मूलयन्ती घननीरसत्वम् ।
सा मेघसंघातमपेतपङ्का शरत्सतां संसदपि क्षिणोति ।
—वही, सर्ग १, श्लोक १०

परिसंख्या :— निशासु नूनं मलिनाम्बरस्थितिः प्रगल्भकान्तासुरते द्विजक्षतिः ।
यदि क्विपः सर्वविनाशसंस्तवः प्रमाणशास्त्रे परमोहसंभवः ।।
धनुर्धराणां करवालशून्यता हिरण्यरेतस्य विनीतता स्थिता ।
अभूज्जगद्बिभ्रति तत्र केवलं गुणच्युतिर्मार्गण एव निश्चलम् ।।
युग्मम् । धर्मशर्माभ्युदय, सर्ग २, श्लोक ३०–३१

कैतवापह्नुति :—सरागमुर्व्याः मृगनाभिदम्भादपारकर्पूरपदेन कीर्त्या ।
रत्यापि दन्तच्छदरुक्छलेन स एकहेलं सुभगोऽवगूढः ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ३६

वसन्ततिलका तथा अन्त में शार्दूलविक्रीडित और मालिनी, सातवें में उपेन्द्रवज्रा एवं अन्त में शार्दूलविक्रीडित, आठवें में मालिनी तथा अन्त में मन्दाक्रान्ता, नवें में इन्द्रवंशा और अन्त में हरिणी और शार्दूलविक्रीडित, ग्यारहवें में वंशस्थ तथा अन्त में पृथ्वी, शार्दूलविक्रीडित और मन्दाक्रान्ता, तेरहवें मे सुभद्रिका तथा अन्त में मालिनी और शार्दूलविक्रीडित, चौदहवें में उपजाति और अन्त में मन्दाक्रान्ता और शार्दूलविक्रीडित, पन्द्रहवें में स्वागता एवं अन्त में वसन्ततिलका; सोलहवें में प्रहर्षिणी तथा अन्त में शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित तथा वसन्ततिलका, सत्रहवें में उपजाति और अन्त में वसन्ततिलका तथा शार्दूलविक्रीडित, अठारहवें में वंशस्थ एवं अन्त में शार्दूलविक्रीडित तथा हरिणी, उन्नीसवें में अनुष्टुप् एवं अन्त में वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्विणी और मालिनी, बीसवें में शालिनी तथा अन्त में मालिनी, इक्कीसवें में अनुष्टुप् और अन्त में शार्दूलविक्रीडित और मालिनी तथा प्रशस्ति में वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा उपजाति छन्दों का प्रयोग हुआ है। दसवें सर्ग में उपजाति, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वंशस्थ, वसन्ततिलका, पृथ्वी, भुजंगप्रयात, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवंशा, प्रहर्षिणी, उपेन्द्रवज्रा, दोधक, प्रमिताक्षरा, माधव, कीर्ति और इन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार 'धर्मशर्माभ्युदय' में उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, रथोद्धता, वसन्ततिलका, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, इन्द्रवंशा, द्रुतविलम्बित, सुभद्रिका, स्वागता, प्रहर्षिणी, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, शिखरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, भुजंगप्रयात, इन्द्रवज्रा, दोधक, प्रमिताक्षरा, माधव, कीर्ति और स्रग्विणी इन पच्चीस छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें उपजाति, अनुष्टुप् और वंशस्थ का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। रथोद्धता, वसन्ततिलका, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, इन्द्रवंशा, द्रुतविलम्बित, सुभद्रिका, स्वागता तथा प्रहर्षिणी का प्रयोग भी पर्याप्त हुआ है। शेष छन्दों का प्रयोग वहुत-कम, यत्र-तत्र ही दीख पड़ता है।

(२) सनत्कुमारचक्रिचरित्र (जिनपाल उपाध्याय)
(रचनाकाल सं० १२६२ से १२७८ के मध्य)

चौबीस सर्गों का 'सनत्कुमारचक्रिचरित्र' आलोच्य युग के उत्कृष्ट महाकाव्यों में से है। इसकी रचना जिनपाल उपाध्याय ने की है। इसमें सनत्कुमार चक्री के चरित्र का वर्णन मनोहर शैली में किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य अभी तक अप्रकाशित है। आश्चर्य है कि इतने उच्चकोटि के महाकाव्य के प्रकाशन की ओर अभी तक विद्वत्समाज और साहित्य-प्रेमी जैन धनिक-वर्ग उपेक्षा दिखा रहा है। प्रस्तुत महाकाव्य की एक प्रेस-

कापी मुझे श्रीयुत अगरचन्द नाहटा की कृपा से प्राप्त हुई, उसी के आधार पर यह विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सनत्कुमारचरित्र का महाकाव्यत्व

आलंकारिकों ने महाकाव्य के लिए जो आवश्यक तत्त्व माने हैं, उन सभी का सफल निर्वाह 'सनत्कुमारचरित्र' में हुआ है। यह एक सर्गबद्ध कृति है और इसके कलेवर में महाकाव्योचित विस्तार है। धीरोदात्त नायक सनत्कुमार इसके नायक हैं। इसमें शान्त-रस प्रधान है और गौण-रूप में श्रृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स आदि रसों की योजना भी इसमें प्राप्त होती है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा लोकप्रसिद्ध होना चाहिए। 'सनत्कुमारचरित्र' के रचयिता ने अपने काव्य के लिए जो वृत्त चुना है वह जैन साहित्य एवं धर्म में चिरकाल से विख्यात है। चतुर्वर्ग में से धर्म और मोक्ष की प्राप्ति 'सनत्कुमारचरित्र' का उद्देश्य है, जैसा कि कवि ने ग्रन्थ-रचना का प्रयोजन बताते हुए इन पंक्तियों में स्वीकार किया है:—

किमपि चरितमित्थं तुर्यचक्राधिनेतुः
सुकृतकृतिफलाविर्भावकं देहभाजाम् ।
व्यरचि लसदतुच्छोत्साहतस्तद्गुणौघ-
ग्रथनसलिलकेली कौतुकित्वान्मयैतत् ॥[1]

'सनत्कुमारचरित्र' में घटनाओं की अधिकता, उनके संगठित विकास तथा पात्रों की कर्मशीलता के कारण नाटकों के ढंग की सक्रियता मिलती है अतः उसमें नाटक की पाँचों कार्यावस्थाएँ भी दिखाई पड़ती हैं। वे ये हैं:—

(१) प्रारम्भ:—सनत्कुमार के पूर्वभव के वर्णन से लेकर उनके वसन्तक्रीडा के लिए उपवन में जाने तथा अदृश्य होने तक की घटनाएँ। इनसे भावी घटनाओं के प्रति औत्सुक्य उत्पन्न होता है।

(२) प्रयत्न:—वन में मूर्च्छित होने के प्रसंग से लेकर असिताक्ष यक्ष से युद्ध होने तक की कथा। इसमें कथा अत्यन्त तीव्रगति से आगे बढ़ती है।

(३) प्राप्त्याशा:—सनत्कुमार के नभश्चरेन्द्र भानुवेग की आठ कन्याओं से विवाह करने के प्रसंग से लेकर विद्याधरभगिनी से प्रज्ञप्तिविद्या प्राप्त करने के प्रसंग तक। इसमें एक ओर सनत्कुमार के नभश्चरेन्द्र भानुवेग के जामाता बनने तथा विद्याधर-भगिनी से प्रज्ञप्तिविद्या प्राप्त करने से सनत्कुमार के भावी अभ्युदय (चक्रित्व-प्राप्ति) का विश्वास होता है, दूसरी ओर असिताक्ष यक्ष द्वारा सनत्कुमार को भीषण वन में डाल दिये जाने तथा सिद्धविद्य विद्याधर से युद्ध आदि बाधाओं के कारण आशका भी बनी रहती है।

(४) नियताप्ति:—सनत्कुमार की युद्धयात्रा, भानुवेग तथा चण्डवेग का सहयोग

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २४, श्लोक १०२

आदि की घटनाएँ नियताप्ति के अन्तर्गत आती हैं।

(५) फलागम :—चक्रवर्ती अशनिघोष को हरा कर स्वयं चक्री बनना, अशनिघोष की पुत्रियों (वकुलमती आदि) से विवाह करके घर लौटना और राजा बनना फलागम है। वस्तुतः कथा की समाप्ति यहीं हो जानी चाहिए, किन्तु कथानक को शान्तरसपर्यवसायी बनाने के लिए अन्तिम सर्ग में सनत्कुमार द्वारा तीव्र तपस्या करने और मृत्यु के बाद शिवत्व प्राप्त करने का उल्लेख और किया गया है।

'सनत्कुमारचरित्र' के कथानक में पंचसन्धियों की योजना भी मिलती है। सातवें सर्ग से लेकर आठवें सर्ग तक सनत्कुमार का जन्म होने, उनके युवराज बनने तथा अदृश्य होने तक के वर्णन में मुखसन्धि है, क्योंकि यहाँ बीजरूप अर्थप्रकृति की योजना वर्तमान है। बारहवें सर्ग से तेरहवें सर्ग तक कुमार के भयंकर कानन में पहुँचने, तीव्र पिपासा से अचेतन होने, यक्ष द्वारा जलसेचन से उसे चैतन्य करने तथा असिताक्ष यक्ष से सनत्कुमार के युद्ध होने के प्रसंगों में बीज का कुछ लक्ष्य तथा कुछ अलक्ष्य-रूप में विकास होता है, अतः यहाँ प्रतिमुख सन्धि है। चौदहवें से अठारहवें सर्ग तक गर्भ-सन्धि है, क्योंकि यहाँ विद्याधरेश भानुवेग की पुत्रियों से विवाह होने के कारण सनत्कुमार की विद्याधरेश से मैत्री, सुनन्दा से प्रज्ञप्तिविद्यालाभ आदि की घटनाओं से फलप्राप्ति की आशा जाग्रत होती है, किन्तु साथ ही असिताक्ष यक्ष द्वारा उनके (सनत्कुमार के) हरण तथा सिद्धविद्य विद्याधर के साथ युद्ध होने आदि की घटनाओं से चिन्ता उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रसन्नता-चिन्ता एवं आशा-निराशा के द्वन्द्व में यहाँ गर्भ-सन्धि की सफल योजन हुई है। उन्नीसवें से इक्कीसवें सर्ग तक की कथा में विमर्शसन्धि है। सिद्धविद्य हो जाने पर सनत्कुमार के घर लौट कर राजा बनने की संभावनाएँ अधिक रहती हैं, किन्तु फिर भी सन्देह बना रहता है, क्योंकि अशनिघोष जैसे प्रबल शत्रु से युद्ध अभी होना शेष है, यद्यपि यह सन्देह शीघ्र ही दूर हो जाता है। इस प्रकार यहाँ गर्भसन्धि की अपेक्षा फल-प्राप्ति की नियत संभावना का विकास अधिक होने के कारण विमर्शसन्धि है। बाईसवें से चौबीसवें सर्ग तक निर्वहण सन्धि है, क्योंकि यहीं सनत्कुमार घर लौट कर चक्री नरेश बनते हैं और शिवत्व प्राप्त करते हैं जो प्रस्तुत काव्य का फलागम है।

शास्त्रीय नियमों के अनुसार 'सनत्कुमारचरित्र' के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन कर दिया गया है। तेरहवें, चौदहवें और पन्द्रहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'सनत्कुमारचरित्र' के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत निहित करने से सम्बन्धित नियम का पालन भी दीख पड़ता है। इसमें सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, षड्ऋतु, कुमारजन्म, विवाह, युद्ध आदि महाकाव्य के वर्ण्यविषयों का यथास्थान समावेश किया गया है। परम्परा के अनुसार इसका प्रारम्भ भी मंगलाचरण से हुआ है। प्रारम्भ में कवि ने अपने गुरु जिनपति की स्तुति की है, उसके बाद जिन वर्धमान, वीर, इन्द्रभूति, सिद्धसेन दिवाकर तथा चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। काव्य के नायक सनत्कुमार चक्री के नाम

पर प्रस्तुत काव्य का नामकरण हुआ है। सर्गों के नाम भी वर्ण्यविषयों पर आधारित हैं। इस प्रकार 'सनत्कुमारचरित्र' में महाकाव्य के सभी नियमों का पालन हुआ है। इसके साथ-साथ इसमें उच्चकोटि की काव्यकला, युगजीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति, गम्भीर रसव्यंजना, उदात्त भाषाशैली एवं मनोहर कल्पना के दर्शन होते हैं। इस प्रकार 'सनत्कुमारचरित्र' प्रमुख महाकाव्यों में स्थान पाने का वास्तविक अधिकारी है।

'सनत्कुमारचरित्र' में शास्त्रीय और पौराणिक शैलियों का समन्वय हुआ है। पौराणिक महाकाव्यों की तरह इसमें सनत्कुमार के पूर्व भवों का वर्णन है और इस भव के सुख-दुख का सम्बन्ध पूर्वभव के पुण्य-पाप से दिखाया गया है। जिनधर्म अपनी तपस्या के प्रभाव से सौधर्मपति और बाद में चक्री सनत्कुमार होते हैं और त्रिदण्डी वैदिक ब्राह्मण, जो जिनधर्म की पीठ पर गर्म खीर परोसवा कर खाता है, अपने दुष्टकर्मों के कारण सौधर्मपति का गज बनता है जहाँ उसे दारुण दुख मिलता है। अधिकांश पौराणिक महाकाव्यों की तरह इस काव्य में भी जैन धर्म की श्रेष्ठता तथा अन्य मतों की निकृष्टता प्रदर्शित की गयी है। ग्रन्थ के आदि में पौराणिक महाकाव्यों की तरह ही विस्तृत मंगलाचरण किया गया है और अनेक अलौकिक और अप्राकृत घटनाओं का समावेश किया गया है। द्वितीय सर्ग में रानियाँ कार्मणोच्चारण के द्वारा विष्णुश्री को मरवा डालती हैं। बारहवें सर्ग में यक्षों, मनुष्यों, विद्याधरों और देवताओं का परस्पर सम्पर्क दिखाया गया है। इस सर्ग में यक्ष सनत्कुमार की मूर्च्छा दूर करता है। तेरहवें सर्ग में असिताक्ष यक्ष से कुमार का युद्ध होता है। अठारहवें सर्ग में एक विद्याधर राजपुत्री सुनन्दा को उठा ले जाता है। इस सर्ग में तथा आगे भी सनत्कुमार का युद्ध यक्षों और विद्याधरों से होता है। एक देव सनत्कुमार की परीक्षा लेने आता है। सनत्कुमार अपनी अँगुली पर निष्ठीवन (थूक) लगाते हैं और अँगुली चम्पकवर्ण जैसी हो जाती है। इसी प्रकार अन्य अलौकिक घटनाएँ भी 'सनत्कुमारचरित्र' में प्राप्त होती हैं। पौराणिक महाकाव्यों की तरह इसका कथानक भी पुराण (प्राचीन चरितग्रन्थ) सम्मत है और उसमें जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। इन पौराणिक तत्त्वों के साथ-साथ इसमें शास्त्रीय महाकाव्य के गुणों का समावेश भी हुआ है। शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति यह महाकाव्य भी चमत्कृतिप्रधान है। चित्रालंकारों की योजना तो इसमें बहुत ही अधिक है। अपने पाण्डित्यप्रदर्शन की चेष्टा कवि ने अनेक स्थलों पर की है। वस्तुव्यापार के अत्यधिक विस्तृत वर्णन, जो शास्त्रीय महाकाव्यों की प्रधान विशेषता है, 'सनत्कुमारचरित्र' में भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए सनत्कुमार और यक्षों के बीच हुए युद्ध का वर्णन पूरे दो सर्गों में हुआ है। अलंकृति की ओर भी कवि ने बहुत ध्यान दिया है। इस दृष्टि से यदि कोई इस काव्य को शास्त्रीय महाकाव्य कहना चाहे तो कह सकता है। किन्तु यहाँ हमने उसका पौराणिकता की ओर कुछ अधिक झुकाव होने के कारण उसे पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत ही रखा है।

काव्य के अन्त में जो प्रशस्ति उपलब्ध है उसके अनुसार 'सनत्कुमारचरित्र' के

रचयिता जिनपालगणी चन्द्रकुल की प्रवरवज्र शाखा से सम्बन्धित मुनि थे। इस शाखा में प्रसिद्ध सूरि वर्द्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए। जिनेश्वर सूरि की शिष्यपरम्परा में क्रमशः नवांगी-टीकाकार अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि तथा जिनपतिसूरि हुए। जिनपतिसूरि के शिष्य प्रस्तुत काव्य के रचयिता श्री जिनपालगणी थे। 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली' के अनुसार जिनपाल ने सं० १२२५ में दीक्षा ग्रहण की थी।[1] सं० १२६९ में श्रीजिनपतिसूरि ने उन्हें उपाध्याय का पद प्रदान किया था।[2] जिनपाल उपाध्याय ने सं० १२७३ में पं० मनोनानन्द को हरा कर नगरकोट के राजा पृथ्वीचन्द्र से जयपत्र प्राप्त किया था। जिनपाल उपाध्याय की मृत्यु सं० १३११ में हुई थी।[3] सं० १३१२ में रचित 'अभयकुमारचरित्र' के रचयिता चन्द्रतिलकगणी को धार्मिक ग्रन्थों का पाठन जिनपाल उपाध्याय ने ही कराया था। जिनपाल उपाध्याय के पास अनेक शिष्य शिक्षा पाते थे। उन्होंने (जिनपाल उपाध्याय ने) ही चन्द्रतिलकगणी को 'अभय-कुमारचरित्र' की रचना करने की प्रेरणा दी थी। चन्द्रतिलक उपाध्याय ने इन सब तथ्यों का वर्णन 'अभयकुमारचरित्र' की प्रशस्ति में इस प्रकार किया है:—

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

सम्यगध्याप्य निष्पाद्य यश्चान्तेवासिनो बहून्।
चक्रे कुम्भध्वजारोपं गच्छप्रासादमूर्द्धनि॥
श्रीजिनपालोपाध्यायमौलेस्तस्यास्य सन्निधौ।
मयोपादायि नंद्यादिमूलागमाङ्गवाचना॥
श्रीजिनपालोपाध्यायकृतां त्रिःप्रेरणामहम्।
चरित्रकरणे प्रापं सरस्वत्युपदेशवत्॥[4]

श्रीमोहनलाल दलीचन्द देसाई ने लिखा है कि, "जिनपाल उपाध्याय ने सं० १२६२ में 'षट्स्थानकवृत्ति' और उसके बाद 'सनत्कुमारचक्रिचरित' महाकाव्य की रचना की।"[5] इससे स्पष्ट है कि 'सनत्कुमारचरित्र' की रचना सं० १२६२ के बाद हुई। इधर श्रीअगरचन्द नाहटा के प्रयत्नों से 'सनत्कुमारचरित्र' की जो प्रेस कापी तैयार की गयी है उसका आधार वह प्रति है जिसका प्रतिलिपि-काल सं० १२७८ की वैसाख बदी ५ है। इससे यह भी सिद्ध है कि इस सम्वत् के पूर्व ही 'सनत्कुमारचरित्र' की रचना हो चुकी थी। इन तथ्यों के आधार पर 'सनत्कुमारचरित्र' का रचनाकाल सं० १२६२ से सं० १२७८ के मध्य का समय माना जा सकता है।

जिनपाल उपाध्याय ने प्रस्तुत काव्य की रचना भक्तिभावना से प्रेरित होकर की, जैसा कि इन पंक्तियों से ज्ञात होता है:—

---

(१) खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली, सम्पादक मुनिजिनविजय, पृ० ४४
(२) वही, पृ० ४६ (३) वही, पृ० ५०
(४) अभयकुमारचरित्र, प्रशस्ति, श्लोक ३८–४०
(५) जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० ३९५

किमपि चरितमित्थं तुर्यचक्राधिनेतुः
सुकृतकृतिफलाविर्भावकं देहभाजाम् ।
व्यरचि लसदतुच्छोत्साहतस्तद्गुणौघ-
ग्रथनसलिलकेलीकौतुकित्वान्मयैतत् ।।[१]

कथानक

'सनत्कुमारचक्रिचरित्र' का कथानक २४ सर्गों में विभक्त है । पहले (विष्णुश्रीहरण) सर्ग में कांचनपुर में विक्रमयश नाम का राजा राज्य करता है। इसी नगर में नागदत्त वणिक् रहता है जिसकी पत्नी विष्णुश्री अतीव सुन्दरी है। एक बार राजा की दृष्टि उस पर पड़ती है और वह उस पर मुग्ध होकर उसका अपहरण कर लेता है। दूसरे (नृपप्रत्युज्जीवन) सर्ग में राजा विष्णुश्री के प्रेम में पड़ कर अन्य रानियों की उपेक्षा कर देता है। फलस्वरूप कार्मणोच्चारणपटु मन्त्रिकों से मिल कर रानियाँ विष्णुश्री को मरवा डालती हैं। यह वृत्तान्त सुन कर राजा मूर्च्छित हो जाता है। रानियाँ उस पर हवा आदि करके उसे पुनरुज्जीवित करती हैं। तीसरे (नृपनाकलोकगमन) सर्ग में विलाप करता हुआ राजा विष्णुश्री के सौन्दर्य की अन्तिम झलक पाने के लिए श्मशान जाता है। वहाँ शव में से भयंकर दुर्गन्ध आती है, जिससे उसे वैराग्य हो जाता है और गुणाढ्यसूरि से दीक्षा लेकर अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग जाता है।

चौथे (पाखण्डिप्रतिभाषण) सर्ग में स्वर्ग से च्युत होकर विक्रमयश रत्नपुर में जिनधर्म नामक जैनधर्मी व्यक्ति होता है और नागदत्त वणिक् भृंगि-योनि में भटकता हुआ कुरूप वैदिकधर्मी ब्राह्मण अग्निशर्मा होता है। दरिद्रता से पीड़ित होकर अग्निशर्मा त्रिजटी बन जाता है और घूमते-घूमते रत्नपुर में आता है। यहाँ का शैव राजा हरिवाहन उसे पारणा के लिए आमन्त्रित करता है। राजा की सभा में त्रिदण्डी जिनधर्म को देख कर प्राग्भव वैर से राजा से कहता है कि यदि तुम मुझे इसकी (जिनधर्म की) पीठ पर गरम खीर परोस कर भोजन कराओ तो मैं पारणा करूँगा अन्यथा नहीं। पाँचवें (शक्राभ्युदय-वर्णन) सर्ग में धर्मभीरु (?) राजा वैसा ही करता है। जिनधर्म की पीठ पर अत्यन्त गरम खीर परोसी जाती है। चर्म और माँस जल कर अस्थियाँ निकल आती हैं, किन्तु जब तक त्रिदण्डी भोजन करता है जिनधर्म स्थिर रहता है। अब जिनधर्म घर छोड़ कर तपस्या करने लगता है, गृद्ध उसकी सारी पीठ नोंच डालते हैं। अन्त में वह मर कर अपनी तपस्या के प्रभाव से सौधर्मपति होता है। छठे (शक्रप्रच्यवन) सर्ग में त्रिदण्डी अपने दुष्कर्मों के कारण सौधर्मपति का गज बनता है जहाँ उसे अंकुशों की मार से दारुण दुःख मिलता है। अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग कर सौधर्मपति च्युत होकर चक्री होते हैं और त्रिदण्डी गज कई योनियों में भटकता हुआ व्यन्तरसंज्ञी देवों में प्रकोपन देव होता है।

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २४, श्लोक ११२

सातवें (कुमारोदयवर्णन) सर्ग में हस्तिनापुर-नरेश अश्वसेन की पत्नी सहदेवी की कुक्षि से विक्रमयश का जीव उत्पन्न होता है। आठवें (यौवराज्याभिषेक) सर्ग में अश्वसेन नवजात पुत्र का नाम सनत्कुमार रखते हैं। सनत्कुमार के युवक होने पर वे उन्हें युवराज बना देते हैं। नवें (कुमारापहरण सर्ग) में सनत्कुमार वसन्तोत्सव मनाने उद्यान में जाते हैं। लौटते समय अश्व बिगड़ जाता है और कुमार को जंगल की ओर ले जाता है। दसवें (मित्रान्वेषण) सर्ग में सनत्कुमार का बाल-सखा महेन्द्र अपने मित्र को ढूँढने निकल पड़ता है, किन्तु सनत्कुमार का कोई पता नहीं चलता। ग्यारहवें (मित्रसमागम) सर्ग में चार-पाँच महीने की खोज के बाद महेन्द्र एक सर के समीपवर्ती प्रासाद में गाये जाने वाले गीतों में खेचरेश सनत्कुमार की गाथा सुन कर उस प्रासाद में प्रवेश करता है और वहाँ अपने मित्र को एक रमणी के समीप बैठे देखता है।

बारहवें (यक्षदर्शन) सर्ग में कुशलवार्तानन्तर सनत्कुमार के संकेत पर उसकी पत्नी बकुलमती महेन्द्र को पूरा वृत्तान्त बताती है कि सनत् को लेकर दूसरे दिन मध्याह्न में अश्व एक जंगल में रुकता है। सनत्कुमार उससे उतर कर जल की खोज में भटकता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। इतने में एक यक्ष वहाँ आता है जो एक कमलपुट में जल लाकर सनत् को सचेत करता है। तेरहवें (यक्षविजय) सर्ग में यक्ष सनत् को सरोवर पर ले जाता है जहाँ कुमार स्नानादि करता है। यहाँ एक अन्य यक्ष असिताक्ष सनत् पर आक्रमण कर देता है, किन्तु सनत् उसे पराजित कर देता है। चौदहवें (चन्द्रोदयवर्णन) सर्ग में सनत् आगे चल कर उस स्थान पर आता है जहाँ विद्याधरेश भानुवेग की आठ पुत्रियाँ गीत गा रही थीं। वे सनत् के रूप पर मुग्ध होकर उसे अपने प्रासाद में ले जाती हैं। रात्रि में सनत् वहीं विश्राम करता है। यहाँ रात्रिवर्णनप्रसंग में कवि चन्द्रोदय का वर्णन करता है। पन्द्रहवें (विवाहमण्डपागमन) सर्ग में भानुवेग की प्रार्थना पर सनत् अष्ट कन्याओं से विवाह करने के लिए विवाह-मण्डप में आ जाता है और विवाह सम्पन्न होता है। सोलहवें (शरद्वर्णन) सर्ग में सोते हुए सनत् को असिताक्ष यक्ष शैया से उठा कर वन में छोड़ देता है। जागने पर सनत् को बड़ा आश्चर्य होता है और वह अपने को शरत्कालीन वन्य प्रकृति के मध्य में पाता है।

सत्रहवें (सुनन्दासमागमन) सर्ग में आगे चल कर सनत् को गिरिशिखर पर स्थित सप्तभूम प्रासाद में विलाप करती हुई नारी, जिसका नाम सुनन्दा है, मिलती है। अठारहवें (प्रज्ञप्तिलाभ) सर्ग में सुनन्दा सनत्कुमार को ही पतिरूप में वरण करने का अपना निश्चय बताती है। इतने में सुनन्दा का अपहरण करके यहाँ लाने वाला विद्याधर आता है जिससे सनत् का युद्ध होता है। युद्ध में विद्याधर मारा जाता है। यह वृत्तान्त सुन कर विद्याधर की बहिन प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर सनत् के पास आती है, किन्तु सनत् के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वह उससे विवाह कर लेती है और उसे (सनत् को) प्रज्ञप्तिविद्या प्रदान करती है। उन्नीसवें (सभाक्षोभवर्णन) सर्ग में पुत्रवध का वृत्तान्त सुन कर खेचरेश अशनिघोष क्रुद्ध होकर अपने दूत को भानुवेग (सनत् के श्वसुर) की सभा में भेजता है।

भानुवेग अपने जामाता को निर्दोष बता कर दूत को निकाल देते हैं। भानुवेग के क्रुद्ध होने पर सारी सभा क्षुब्ध हो उठती है। बीसवें (संकीर्णयुद्धवर्णन) तथा इक्कीसवें (रिपुविजय) सर्गों में अशनिघोष भानुवेग एवं सनत् पर आक्रमण कर देता है, किन्तु युद्ध में सनत् की विजय होती है। बाईसवें (गजपुरप्रत्यागमन) सर्ग में सनत् अशनिघोष के नगर में जाता है और अशनिघोष की वकुलमती आदि सौ कन्याओं से विवाह करके खेचरेश बनता है। यह वृत्तान्त बता कर वकुलमती चुप हो जाती है। महेन्द्र के मुख से यह सुन कर कि माता-पिता उसके (सनत् के) वियोग में बहुत दुखी हैं, सनत् ससैन्य गजपुर चल देता है।

तेईसवें (देवागमन) सर्ग में अश्वसेन समारोहपूर्वक पुत्र का प्रवेशोत्सव मनाते हैं। एक समय इन्द्र के मुख से सनत् के सौन्दर्य की प्रशंसा सुन कर एक सुर उनके सौन्दर्य को देखने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण करके आता है। राजसभा में सनत् की कान्ति को अचानक ही नष्ट हुआ देख कर सुर उदास हो जाता है। सुर के मुख से छह मास में ही अपनी मृत्यु की संभावना सुन कर तथा अपने शरीर की कान्ति को नष्ट हुआ देख कर सनत् को वैराग्य हो जाता है। चौबीसवें (शुभफलोदय) सर्ग में लम्बे उपवासों के बाद बकरी के छाछ से पारणा करने के कारण सनत् के शरीर में सात भयंकर व्याधि (कुष्ठ, श्वास, उदरशूल आदि) उदित हो जाती हैं, किन्तु सनत् इनकी ओर से निश्चिन्त होकर पूर्ववत् तपस्या में लीन रहते हैं। उनके सम्यक्त्व की परीक्षा के लिए वही सुर पुनः वैद्य के रूप में सनत् के पास आता है और चिकित्सा करने की इच्छा व्यक्त करता है। सनत् उससे यह कह कर "भाई तुम किसकी चिकित्सा करते हो, शरीर की या आत्मा की? यदि आत्मा की दवा करते हो, तो करो, अन्यथा शरीर की चिकित्सा तो मैं स्वयं ही कर सकता हूँ"—अपने हाथ की अँगुली में अपना निष्ठीवन (थूक) लगा कर उसे चम्पकवर्ण जैसा कर देते हैं। सनत् का यह प्रभाव देख कर वैद्यरूपधारी सुर अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट करता है और क्षमा माँग कर सनत् की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। मृत्यु के समय पंचपरमेष्ठिमंत्र का स्मरण करके सनत् शिवत्व प्राप्त करते हैं। यही 'सनत्कुमारचक्रिचरित्र' का कथानक है।

'सनत्कुमारचरित्र' का कथानक सुसंगठित और व्यवस्थित है। उसकी समस्त घटनाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, फलस्वरूप कथानक में अविच्छिन्नता और धारावाहिकता है। पौराणिक और शास्त्रीय दोनों प्रकार के महाकाव्यों में प्रायः कथानक की शिथिलता वर्तमान रहती है। पौराणिक महाकाव्यों में अतिशय अवान्तर-कथाओं की योजना से तथा शास्त्रीय महाकाव्यों में लम्बे वर्णनों के कारण कथानक में कार्य-कारण-शृंखलाबद्ध घटनाओं की अन्विति नहीं होने पाती है। 'सनत्कुमारचरित्र' इस दोष से पूर्णतया मुक्त है। उसमें कथा का प्रवाह मन्द-मन्द गति से निरन्तर आगे बढ़ता है।

'सनत्कुमारचरित्र' में यद्यपि पात्रों की कमी नहीं है, किन्तु उनमें चरित्र-विकास की

चरित्र-चित्रण

दृष्टि से केवल सनत्कुमार ही उल्लेखनीय है। अन्य पात्रों में अश्वसेन, महेन्द्र, वकुलमती, अशनिघोष आदि पात्र हैं, किन्तु उनके चरित्र का विकास नहीं हुआ है।

सनत्कुमार प्रस्तुत काव्य के नायक हैं। अपने इस भव के पूर्व वे चार भव बिता चुके हैं। प्रथम भव में वे विक्रमयश राजा होते हैं। विक्रमयश में राजोचित सभी गुण हैं,

सनत्कुमार

किन्तु नागदत्त की सुन्दर पत्नी विष्णुश्री पर वह मोहित हो जाता है और उसका अपहरण कर लेता है। किन्तु, इससे यह न समझना चाहिए कि वह अत्याचारी और विवेकहीन शासक है। विष्णुश्री पर मोहित हो जाने पर भी वह बहुत सोच-विचार करता है और अपने को इस कार्य से निवृत्त करने की चेष्टा करता है जो उसके इस कथन से स्पष्ट है:—

अन्यायमार्गे यदि चास्मि वर्ते, न्यसेत् पथि न्यायमये पदं क:।
सीमामतिक्रामति चेत्पयोधिर्वार्ताऽपि का शेषसरस्सु तस्य ॥[1]

किन्तु, बाद में असात्त्विक वृत्तियाँ उसे पराजित कर देती हैं और वह अपने दुष्कर्म का इन शब्दों में समर्थन करता है:—

यथा तथाऽत्मा परिरक्षणीय: इत्याह तावन्ननु दण्डनीति:।
शास्त्रेऽपि च स्वेतरकार्ययोर्यत् स्वमेव कार्यं कथितं विधेयम् ॥[2]

विष्णुश्री के प्रेम में विक्रमयश अन्य रानियों की उपेक्षा कर देता है। विष्णुश्री को फुसला कर वह उसे अपनी पर्यंकशायिनी बना लेता है। ईर्ष्यालु रानियों द्वारा विष्णुश्री के मार डाले जाने पर वह विष्णुश्री के शव को गोद में लेकर करुण विलाप करता है। इससे विष्णुश्री के प्रति उसके अतिशय प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। उसके इस दु:ख पर ग्रन्थकार टिप्पणी करता हुआ कहता है कि नागदत्त (विष्णुश्री के पति) को उसने जो दु:ख पहुँचाया, वही सहस्रगुण होकर उसे वापिस मिला है:—

कृतं कुकर्मेह विपाककाले नानागुणं वेद्यत एवमेतत्।
सहस्रवृद्ध्या नृपतिर्विडम्बनाद् यन्नागदत्ते विहितात्तमाप ॥[3]

किन्तु, जब विक्रमयश श्मशान में जाकर विष्णुश्री के शव की गलित और वीभत्स दशा देखता है तो उसे अपने कुकर्म पर बड़ा पश्चाताप और ग्लानि होती है और वह इस कृत्य को अपने निष्कलंक कुल में कलंक लगाने वाला कह कर इन शब्दों में अपनी गर्हणा करता है:—

निर्मुक्तनिर्मोकभुजंगराजभोगश्रियं स्वस्य कुले दधाने।
कलङ्कहीनेऽपि मया कलङ्क: समर्प्यताज्ञानभृता यदर्थम् ॥[4]

इस घटना से उसे संसार से विरक्ति हो जाती है और वह गुणाढ्य मुनि से दीक्षा लेकर तप करता है, फलस्वरूप द्वितीय भव में सुर बनता है।

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १, श्लोक ८१ (२) वही, सर्ग १, श्लोक ८६
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक १६ (४) वही, सर्ग ३, श्लोक ३७

स्वर्ग से च्युत होकर विक्रमयश का जीव जिनधर्म होता है। जिनधर्म जैनधर्म
प्रति आस्था रखता है। अग्निशर्मा के हठ पर जब उसकी पीठ पर गरम खीर परोसी
जाती है जिससे उसकी पीठ का चर्म और मांस जल जाता है, तो भी वह विचलित नहीं
होता और न इस कृत्य के लिए किसी को दोष देता है। वह तो इन शब्दों में अपने कर्मों
को ही दोष देता है:—

न चान्यदोषेण ममैष दाहो, यदन्यथावृत्ति न जातुकर्म।
बृहस्पतिं न ग्रसते कदाचिद् विधुन्तुदश्चन्द्रमसा विरुद्धः ॥[1]

इन शब्दों से उसकी जैनधर्म के सिद्धान्त—कर्मफल—में पूर्ण आस्था प्रकट होती है।
बुरी तरह घायल होकर वह गृह-त्याग कर देता है और भीषण तपस्या करता है। वन में
गृद्धों और शृगालों द्वारा पृष्ठदेश का मांस नोचा जाने पर भी वह विचलित नहीं होता।
इस पद्य में उसकी धीरता की अभिव्यक्ति हो रही है:—

गृद्धैः पलाशैरिव मांसगृद्धैः शिवाभिरुद्दीपितवाशिताभिः।
विदार्यमाणोऽपि स पृष्ठदेशे, चचाल नैवाचलराजधेयः ॥[2]

अपनी उग्र तपस्या के फलस्वरूप चतुर्थ भव में वह सौधर्मपति होता है। स्वर्ग से
च्युत होकर पंचम भव में विक्रमयश का जीव हस्तिनापुरनरेश अश्वसेन की पत्नी सहदेवी
के गर्भ से सनत्कुमार के रूप में उत्पन्न होता है। युवक सनत्कुमार अतीव सुन्दर हैं। उनके
सौन्दर्य को देख कर स्त्रियों में सात्त्विक भाव का उदय हो जाता है:—

संवीक्ष्य तं चन्द्रमिवाभिरामं रामाः क्षणान् स्वेदमुचो बभूवुः।
शशाङ्ककान्ताप्रतिमा इवाक्षिप्रस्यन्दिवैमुख्ययुजः समन्तात् ॥[3]

उनके इस अनिन्द्य रूप को देख कर नभश्चरेन्द्र भानुवेग की पुत्रियाँ मुग्ध हो जाती
हैं, अशनिघोष की पुत्री, जो अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए आती है, उन पर
मुग्ध होकर उन्हें पति-रूप में स्वीकार कर लेती है। उनके सौन्दर्य की प्रशंसा स्वयं
इन्द्र भी करते हैं।

सौन्दर्य के साथ-साथ सनत्कुमार में विद्वत्ता, दया, दाक्षिण्य आदि सभी गुण वर्तमान
हैं। इन सब गुणों से ऊपर है उनका शौर्य। कवि ने उनके शौर्य के सम्बन्ध में कहा है:—

अपूर्ववीर्याग्र्यगुणस्य तस्य, श्रुत्वापि विख्यातपराध्यशौर्याः।
चकम्पिरे वैरिनृपाः सभासु ग्रीष्मे निवातास्वपि लोलनेत्राः ॥[4]

सनत्कुमार का यह शौर्य अनेक युद्धों में प्रकट हुआ है। वे महाप्रतापी असिताक्ष
तथा यक्षराज अशनिघोष को अपनी वीरता से पराजित करते हैं। सनत्कुमार विपत्तियों
से विकल होने वाले व्यक्ति नहीं हैं। वे अश्व द्वारा भयंकर जंगल में लाये जाते हैं, यक्ष भी
सोते समय उन्हें जंगल में ला पटकता है, किन्तु कभी उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ नहीं
खिचतीं। वे सर्वत्र निर्भीक होकर घूमते रहते हैं।

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग ४, श्लोक २१
(२) वही, सर्ग ५, श्लोक ६३
(३) वही, सर्ग ८ श्लोक ३३
(४) वही, सर्ग ५, श्लोक २८

लौकिक जीवन में चक्रिपद प्राप्त कर लेने पर भी सनत्कुमार कभी लोक में लिप्त नहीं होते। राजसभा में अपने शरीर की कान्ति नष्ट होते देख कर उन्हें वैराग्य हो जाता है। नागरिकों की प्रार्थना पर भी वे पुर में नहीं रुकते और विनयन्धर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। अब वे उग्र तपस्या करने लगते हैं। संसार की कोई आपत्ति उन्हें उनके पथ से विचलित नहीं कर सकती। पारणा-दिवस पर अजातक्र पीने से उनके शरीर में सात भयंकर रोग हो जाते हैं। वैद्यरूपधारी सुर उनकी चिकित्सा की बात चलाता है, किन्तु सनत् तो शारीरिक मोह से ऊपर उठ चुके हैं, उन्हें तो केवल आत्मा की चिकित्सा की आवश्यकता है। शारीरिक रोग तो वे स्वयं दूर कर सकते हैं, जैसा कि वे अपनी अँगुली में निष्ठीवन लगा कर उसे चम्पकवर्ण की बना भी देते हैं। वैद्यरूपधारी सुर सनत् के प्रभाव को देख कर उनके चरणों में गिर पड़ता है। सचमुच ही सनत् अपनी तपस्या के बल पर आत्मा की औषधि खोज लेते हैं।

अश्वसेन हस्तिनापुर-नरेश अश्वसेन सनत्कुमार के पिता हैं। वे पुत्रवत्सल पिता हैं जो सनत् का जन्म होने पर प्रफुल्लित होकर अबाध दान देते हैं और नगरोत्सव मनाते हैं। पुत्र को देख कर और उसे अपनी गोद में लेकर उन्हें जो प्रसन्नता होती है उसका वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है:—

पुत्रस्य सर्वाङ्गमनोरमस्य तस्याननाम्भोरुहमीक्षमाणः ।
योगीन्द्रगम्यां समवाप कांचिन्मुदं निजोत्सङ्गगतस्य भूपः ।।[1]

सनत् के अदृश्य होने पर अश्वसेन विह्वल हो उठते हैं और उसकी खोज के लिए स्वयं जाने को प्रस्तुत होते हैं। सनत् के वापिस आने पर वे हर्षमग्न होकर उसे हृदय से लगा लेते हैं और उसका नगरप्रवेशोत्सव समारोह के साथ मनाते हैं। अश्वसेन के ये सभी कृत्य उनके वात्सल्यपूर्ण हृदय के प्रतीक हैं।

अश्वसेन नीतिनिपुण हैं। राजकुमार सनत् को युवराज बनाते समय वे जो नीति शिक्षा उन्हें (सनत् को) देते हैं उससे उनकी नीतिज्ञता, प्रजावत्सलता और न्यायपरकता की अभिव्यक्ति होती है। उनकी दृष्टि में राजा का प्रथम धर्म प्रजापालन है:—

वत्स ! प्रजापालनमेव धर्मः क्षोणीश्वराणां प्रथमः प्रतीतः ।।[2]

महेन्द्रसिंह महेन्द्रसिंह सनत्कुमार का मित्र है। काव्य में वह एक आदर्श मित्र के रूप में चित्रित हुआ है। सनत् के अदृश्य हो जाने पर जब अश्वसेन स्वयं उसकी खोज के लिए जाने को तैयार होते हैं तो वह नम्रतापूर्वक कहता है—

मयि सत्ययमायासः साम्प्रतं न तव प्रभो ।।[3]

वह स्वयं मित्र की खोज में चल देता है। भयंकर अटवी में ग्रीष्म की लपटों तथा वर्षा की भयंकर बौछारों को सहन करता हुआ वह आगे बढ़ता जाता है और अन्त में

---

(१) सनत्कुमारचरित, सर्ग ८, श्लोक २ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ६३
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ४२

अपनी लगन और अध्यवसाय से अपने मित्र को खोज लेता है और उसे हस्तिनापुर वापिस ले आता है। सनत्कुमार के प्रति उसके अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है:—

> यस्यानुरागः स सनत्कुमारेऽत्यशेत यो लक्ष्मणरागमुग्रम् ।
> रामो न सीतास्वथवा प्ररूढप्रेम्णा मृगाक्षीष्विव मन्मथस्य ॥[1]

'सनत्कुमारचरित्र' के अन्य पात्रों में अशनिघोष, असिताक्ष आदि यक्ष एवं विद्याधर प्रतिनायक के रूप में प्रतिष्ठित किये गये हैं। ये सभी दुष्ट कर्मों में प्रवृत्त और ईर्ष्या-द्वेष-परायण हैं। असिताक्ष पूर्वभव का सनत् का वैरी है, अतः वह सनत् से युद्ध करता है, किन्तु अन्त में हारता है। फिर भी वह अतुल पराक्रमी है, इसमें सन्देह नहीं। अशनिघोष सनत् द्वारा अपने पुत्र का वध सुन कर क्रोधोन्मत्त हो जाता है और सनत् पर आक्रमण कर देता है। वह भी अत्यन्त पराक्रमी है। हरिचन्द्र-चन्द्रसेन के इन शब्दों में उसके वीरतापूर्ण चरित्र का अंकन हुआ है:—

अन्य पात्र

> न तेन स्पर्द्धते कोऽपि खेचरेष्वपि भूपतिः ।
> घनी क्रीडति को व्याले नाऽबालः कालसाक्षिणा ॥
> करदीकृतनिश्शेषभूपालः स्वप्रतापतः ।
> नहि सम्बद्ध एवार्क एवमस्यास्ति शार्वरम् ॥[2]

किन्तु, अन्त में उसे भी सनत् के सम्मुख हारना और मृत्यु के घाट उतरना पड़ता है।

स्त्री-पात्रों में सुनन्दा, यक्षकन्याएँ, वकुलमती आदि हैं। ये सभी अतीव सुन्दरी हैं, जो सनत्कुमार के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती हैं। अन्त में सभी का विवाह सनत्कुमार से ही हो जाता है। इनके अतिरिक्त गुणाढ्य और विनयन्धर मुनि के नाम भी काव्य में आये हैं। गुणाढ्य मुनि की देशना से प्रभावित होकर विक्रमयश संसार को छोड़ देते हैं। विनयन्धर मुनि सनत्कुमार के दीक्षागुरु हैं।

प्रकृति-चित्रण

'सनत्कुमारचरित्र' में प्रकृति को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। शास्त्रीय महाकाव्यों में प्रायः लक्षणग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रकृति के विभिन्न रूपों के वर्णन इधर-उधर जमाने का प्रयास होता रहा है जिसका कथा से कोई सामंजस्य नहीं होता है। 'सनत्कुमारचरित्र' में परम्परागत प्रकृति के विविध रूपों की योजना होते हुए भी उसका कथानक की घटनाओं से सामंजस्य रखने की चेष्टा की गयी है।

'सनत्कुमारचरित्र' के कवि का प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण बहुत व्यापक है। उसने अनेक स्थलों पर प्रकृति की स्वाभाविक नियोजना की है। ग्रीष्मऋतु की दोपहरी में भयंकर आँधियाँ चलने लगती हैं जो समस्त दिशाओं को धूलिधूसरित कर देती हैं, ग्राम-बालाओं के नेत्रों में धूलि के कण डाल कर उन्हें अन्धा सा बना देती हैं और सघन वृक्षों को उन्मूलित

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग ८ श्लोक ४२ (२) वही, सर्ग १९, श्लोक १३–१५

कर देती हैं। ग्रीष्म की दोपहरी का यह चित्र इन पंक्तियों में अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है:—

अन्धत्वमिव यच्छन्ति यत्र ग्रामेषु योषिताम् ।
रेणूत्करा भृशं सान्द्राः वातोत्क्षिप्ताः दिने दिने ।।
उन्मूलयन्ति सच्छायानपि वान्तो महीरुहान् ।
उत्ताला वायवो यत्र क्व वा चण्डषु मार्दवम् ।।[1]

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में अपनी निसर्गगत चपलता को छोड़ कर छाया में चुपचाप शान्त भाव से बैठे रहने वाले वानरों एवं सघन छाया में भी व्याकुल, अतएव मुख से बाहर लटकती हुई जिह्वा से जलविन्दु गिराते हुए सिंहों का चित्रण करके कवि ने ग्रीष्म की भयंकरता का सजीव और सहज चित्र प्रस्तुत किया है:—

मध्याह्ने घर्मसन्त्रस्ता वने चित्रगता इव ।
निसर्गचापलं हित्वा यत्र तिष्ठन्ति वानराः ।।
लोलजिह्वागलद्वारिसिक्तसन्तप्तभूमयः ।
यत्र छायास्वपि स्वास्थ्यं लभन्ते न मृगारयः ।।[2]

प्रकृति के ऐसे वर्णन कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के परिचायक हैं। वारहवें सर्ग में पुनः ग्रीष्म के सहज, स्वाभाविक और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। छाया में बैठा हुआ भूखा सिंह ग्रीष्म के असह्य आतप के कारण सामने मृगयूथ को देख कर भी उसे पकड़ने का साहस नहीं करता:—

छायाभ्यश्चातपत्रस्तः मृगेन्द्राः क्षुधिता अपि ।
यत्र दृष्टेन यूथा अप्युत्सहन्ते न धावितुम् ।।[3]

सोलहवें सर्ग में समस्त सरोवरों के जल के निर्मल हो जाने, उनके तट पर हंसों के विहार करने, मयूरों के केकाध्वनि करने एवं प्रमुदित होकर पंख फैला कर नृत्य करने का वर्णन करके शरद् ऋतु की प्रकृति की योजना यथार्थता और सहज सजीवता के साथ इन पंक्तियों में प्रस्तुत की गयी है:—

यत्राऽसंख्यानि वीक्ष्यामलमधुरपयः पूर्णलीलासरांसि ।
प्राणिन्दन्नल्पकालाश्रयमनिकटगं मानसं राजहंसा ।।
आकृष्येव प्रणादश्रियमसितगलेभ्यो जगुस्तानि नूच्चैः ।
कूजव्याजेन पक्षोन्नमनविनमनैः खे प्रनृत्ताः प्रमोदात् ।।[4]

इसी प्रकार मयूरों के पंख झड़ जाने, कोकिल के मौन हो जाने तथा केवल मरुवक पुष्प के खिलने का उल्लेख करके शिशिरकालीन प्रकृति का वास्तविक रूप इस प्रकार उपस्थित किया गया है:—

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १०, श्लोक ६१, ५९ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक ६४, ६५
(३) वही, सर्ग १२, श्लोक ४१ (४) वही, सर्ग १६, श्लोक ६२

केकिनां न हि शिखण्डमण्डलं नापि पंचमकलापिकीरवः ।
एकको मरुवकः समुल्लसन् यत्र मोदयति सर्वकामिनः ॥[1]

'सनत्कुमारचरित्र' में कवि ने अनेक स्थलों पर उद्दीपन के रूप में प्रकृति का उपयोग किया है । हस्तिनापुर-वर्णन में वहाँ के केलिवन की उद्दीपक प्रकृति—मयूरों की केकाध्वनि तथा कोयल की कूक—मानिनियों को मानमोचन करने के लिए और मुनियों को समाधि भंग करने के लिए बाध्य कर रही है:—

कीर्णानि कर्णामृतकेकिकेकापिकस्वनैः केलिवनानि यत्र ।
भङ्गाय मानस्य मनस्विनीनां अलं समाधेश्च समाधिभाजाम् ॥[2]

इसी प्रकार खद्योतों की चमक, जलसीकरसम्पृक्त शीतल समीर, दर्दुर-ध्वनि, मयूरों का नृत्य आदि वर्षाकालीन प्रकृति विरहिणी की विरहवेदना को और भी उद्दीप्त कर रही है जिससे वे अपने प्रवासी पति को आक्रोशमिश्रित उपालंभ दे रही हैं:—

खद्योतैर्द्योतमानैर्नभसि भुवि जलासारवद्भिः मरुद्भिः ।
भेकक्वाणैः सरस्सु द्रुततिषु शिखिनां ताण्डवाडम्बरैश्च ॥
सोत्कण्ठां सर्वतोऽपि प्रतिदिनमबला यत्र चाधीयमानाः ।
भर्तृष्वाक्रोशमुच्चैर्ददति चिरतरप्रोषितेष्वप्रसन्नाः ॥[3]

जिनपाल उपाध्याय ने 'सनत्कुमारचरित्र' में प्रकृति का मानवीकरण भी किया है । उन्होंने प्रकृति को मानव-जीवन और मानव-भावनाओं से स्पन्दित चित्रित किया है । निम्नोद्धृत पद्य में समुद्र में कृतज्ञता का भावात्मक आरोप किया गया है, वर्षा-ऋतु ने समुद्रपत्नियों (नदियों) को जल से पूर्ण कर दिया है, अतः अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वह चातकरव-व्याज से वर्षाऋतु की स्तुति कर रहा है:—

निन्ये यो वृद्धिमद्भिर्भुवि सकलनदी नीरदैरात्तनीरै
रम्भोधेस्तद्वधूनां प्रियकरणरुचिर्नूनमुच्चैः कृतज्ञः ।
माद्यन्मद्गुप्रघोषैर्हरिनिवहरवैश्चास्तुवंस्ता ध्रुवं यं
को वा नौचित्यकारी विदितसुचरितैः कीर्त्यते पुण्यकामैः ॥[4]

प्रातःकाल के इस वर्णन में नदियों को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है, जिनके कमल-रूप स्तन शीघ्र ही होने वाले प्रिय (सूर्य) संगमजन्य हर्ष के कारण विकञ्चित हो रहे हैं:—

उच्छ्वसितानि मनाक् कमलानि स्तनसुभगानि सरोरुहिणीषु ।
संदधतीषु वधूष्विव नूनं निकटनिजप्रियसंगमहर्षात् ॥[5]

जिनपालगणी ने प्रस्तुत को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति की

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १२, श्लोक ६६
(२) वही, सर्ग ७, श्लोक १९
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक १४
(४) वही, सर्ग ११, श्लोक ५
(५) वही, सर्ग १५, श्लोक १४

योजना भी की है। छठे सर्ग में जिनधर्मसुर के स्वर्ग से च्युत होने पर विगतश्रीक स्वर्ग का वर्णन अप्रस्तुत योजना के द्वारा किया गया है:—

उद्यानमुद्भ्रान्तसमस्तसूनं व्योमस्थलं मेघविलुप्तचन्द्रम् ।
ततः सरोलूनसहस्रपत्रं यथा तथाऽभूत् त्रिदिवं गतश्रि ।।[२]

यहाँ अप्रस्तुत के रूप में प्रकृति की योजना की गयी है। प्रकृति की आलंकारिक योजना कवि ने अनेक स्थलों पर की है।

इस प्रकार 'सनत्कुमारचरित्र' में कवि का प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण बहुत व्यापक रहा है। उसने प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है, अलंकारों और उदाहरणों के रूप में उसका उपयोग किया है, मानवीकरण की शैली को अपनाया है और साथ ही सहज-स्वाभाविक दृश्यों को भी उपस्थित किया है।

संस्कृत-साहित्य में सामान्यतया सौन्दर्यवर्णन दो प्रकार से किया गया है, समग्र शरीर की शोभा का समन्वित वर्णन तथा शरीर के अंग-प्रत्यंगों की शोभा का पृथक्-पृथक् वर्णन। दूसरे प्रकार के सौन्दर्य-वर्णन को नख-शिख-वर्णन भी कहते हैं।

सौन्दर्य-वर्णन

'सनत्कुमारचरित्र' में सौन्दर्यवर्णन की दूसरी शैली का आश्रय लिया गया है। काव्य के नायक सनत्कुमार के सौन्दर्यवर्णन में कवि ने उनके भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन पृथक्-पृथक् पद्यों में किया है। कवि ने उपमान और अंगविशेष में क्या सादृश्य है, इसका पूरा ध्यान रखा है, जिससे पाठक की दृष्टि में अंगविशेष का सौष्ठव मूर्त हो उठता है। उदाहरणार्थ सनत्कुमार की सरलोन्नता नासिका को जगद्विजय के लिए प्रस्थित कामदेव की पताकायष्टि बताया गया है:—

नासा तदीया सरलोन्नता च विस्तीर्णनेत्रोपगता सदाऽधात् ।
जगज्जयप्रस्थितमन्मथस्योल्लसत्पताकध्वजयष्टिलक्ष्मीम् ।।[३]

निम्नोद्धृत श्लोक में मुख को कमल और श्मश्रु को मुखाब्ज पर स्थित भ्रमर पंक्ति, ये परम्परागत उपमान दिये गये हैं :—

तस्याबभौ श्मश्रु विनीलपंक्तिः सौरभ्यपात्रं परितो मुखाब्जम् ।
भृंगावली नूनमपूर्वगन्धलुब्धोपविष्टा प्रविहाय पद्मम् ।।[४]

जिनपालसूरि ने नायिका सुनन्दा के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। यहाँ भी उपमा-उत्प्रेक्षाएँ परम्पराभुक्त ही हैं, किन्तु वे अंगविशेष के सौष्ठव का पूरा भान कराती हैं। सुनन्दा के शिरस्थित नीलसुचिक्कण केशों की मुख पर लटकती हुई एक लट को अधररसपान की लालसा से मुखाम्बुज की ओर बढ़ती हुई भ्रमरमाला बताया गया है :—

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग ६, श्लोक २५ (२) वही, सर्ग ८, श्लोक १५
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ७२ (४) वही, सर्ग १५, श्लोक १७

सुस्निग्धनीला कुटिलालकावलिः परिस्फुरन्ती वदनाम्बुजं प्रति ।
लीनालिमाला निभृतेव लालसा दन्तच्छदस्वादुरसे प्रकाशते ।।[1]

इसी प्रकार सुनन्दा को लावण्य-नदी और उसके चरणों को पयोजयुग परम्परागत उपमान प्रदान किये गये हैं ।

विभाव्यतेऽस्याश्चरणद्वयं चलत्पयोजयुग्मं सरसः समागतम् ।
इमां हि लावण्यनदीं निषेवितुं पङ्कावगाहव्यथनादिव त्रसत् ।।[2]

नखशिख-वर्णन-प्रसंग में यद्यपि कवि ने विभिन्न अंगों के लिए परम्परागत उपमानों को ही जुटाया है, फिर भी उसकी कल्पनाएँ उत्कृष्ट एवं कलात्मक हैं, जिनमें यत्र-तत्र मौलिकता और नवीनता भी दृष्टिगत होती है । संस्कृत के अधिकांश कवियों ने भिन्न-भिन्न अंगों के आभूषणों का भी वर्णन किया है, किन्तु जिनपाल की प्रवृत्ति इस ओर नहीं जान पड़ती । उन्होंने प्रसाधन-सामग्री से अलंकृत नायक-नायिका का वर्णन न करके उनके अंग-प्रत्यंग के स्वाभाविक सौन्दर्य को ही व्यक्त किया है ।

मानव-सौन्दर्य के विभिन्न पक्षों का अंकन करके जिस प्रकार कवि ने अपनी कलात्मक अभिरुचि का परिचय दिया है, उसी प्रकार उसने यत्र-तत्र सामाजिक परम्पराओं की झाँकी प्रस्तुत कर अपने व्यावहारिक ज्ञान को व्यक्त किया है । 'सनत्कुमारचरित्र' के पन्द्रहवें और सोलहवें सर्ग में विवाह के समय सम्पन्न होने वाले रीति-रिवाजों का

समाज-चित्रण कवि ने सुन्दर वर्णन किया है । समाज में पण्डितों और गणकों का स्थान मूर्धन्य है । बिना मुहूर्त देखे कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता, अन्यथा अमंगल की आशंका बनी रहती है । भानुवेग अपनी अष्ट पुत्रियों के विवाह के लिए शुभ मुहूर्त गणकों को बुला कर पूछते हैं और गणक निर्दिष्ट लग्न में ही भानुवेग की पुत्रियों का विवाह सम्पन्न कराते हैं ।[3] विवाह के अवसर पर भानुवेग पुत्रियों के लिए मंगलभूषा तैयार कराते हैं[4] और याचकों को अवारित दान देते हैं ।[5] स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं और भानुवेग की पुत्रियों का शृंगार करती[6] एवं श्वेत परिधान पहनाती हैं ।[7] इस अवसर पर चार सधवा स्त्रियों द्वारा तकुआ पूरने का भी उल्लेख है :—

सधवा चतस्र इव चक्रुस्तन्तुसरैर्मुदावमननानि ।[8]

गुरुजन लाजाकण फेंकते हैं । वर गजारूढ़ होकर मण्डप में आता है । इस समय तूर्यादिक विविध वाद्य बजते हैं । मण्डप में वधुओं की सखियाँ वर से हास्य-विनोद करती हैं । वर वधुओं का मुखोद्घाटन करता है और सखियों को मुख-दिखलाई में प्रभूत धन देता है । इस समय वर-वधुओं का कराब्जमेलन होता है । स्त्रियाँ मंगल-गीत गाने लगती हैं ।

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १७, श्लोक १६
(२) वही, सर्ग १७, श्लोक ७२
(३) वही, सर्ग १५, श्लोक ३२
(४) वही, सर्ग १५, श्लोक ३३
(५) वही, सर्ग १५, श्लोक ३४
(६) वही, सर्ग १५, श्लोक ३५
(७) वही, सर्ग १५, श्लोक ३८
(८) वही, सर्ग १५, श्लोक ३६

इन गीतों में वर-वधू का कभी विरह न हो, यह भाव सन्निहित है। इस समय श्वसुर (भानुवेग) प्राज्य दान देता है।

रात्रि में वर-वधू विदग्धगोष्ठी-सुख-लाभ के लिए एक दूसरे से प्रहेलिकाएँ पूछते हैं जिनमें एक दूसरे की बुद्धि-परीक्षा के साथ-साथ मनोरंजन की भावना भी अन्तर्निहित है। यहाँ केवल दो प्रश्नोत्तर उद्धृत किये जाते हैं :—

(१) प्रश्न :—का प्राार्थ्यते विश्वजनेन सादरं, का वा विजेया वत चक्रवर्तिनाम्।
कीदृग् नृपः स्यान्न पराभवास्पदं, भात्यम्बरे नन्दनमालिकेव का।।
अथोक्ता तातताततीरूपां काचित् ततावलीम्।
दयितालोकयामास सस्मेरं वल्लभाननम्।।

उत्तर:—प्रिये किमत्र वक्तव्यं प्रसिद्धा सारसावली।[1]

(२) प्रश्न :—लक्ष्मीणां केह सत्ता दयितहृदि भवेत् कीदृशी स्त्रीषु साध्वी
साधुः कीदृक् क्रुधं प्रत्यय भवति हृदः कीदृशी चास्य माया।
विष्णो लक्ष्मीश्च कीदृक् प्रवदति च किमप्यक्षरं कं व्यता किं
मत्तोऽभूद् दुःखखिन्नः कथमथ विलपेद् वासुदेवैकभक्तः।।
जगत्त्रितयवन्द्यत्वाद् देवत्वेनोत्तमाऽत्र का।
व्यक्ता ततावली चेह तीतताततितेतता।।

उत्तर:—मंजरीति च विज्ञप्तः सोऽवदद् देव ते मुखात्।
सुधेवश्रवतीत्येषा श्रीमहावीरदेवता।।[2]

ऐसे प्रश्नोत्तर में प्रश्नकर्ता कई प्रश्न पूछता है और उन प्रश्नों का उत्तर भी ततावली में दे देता है। उत्तर देने वाला उस ततावली की समानता पर प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है। प्रथम प्रश्नोत्तर में चार प्रश्न पूछे गये हैं (१) संसार में पुरुषों द्वारा कौन आदरपूर्वक याचित की जाती है ? (२) चक्रवर्ती राजाओं के जीतने योग्य क्या है ? (३) किस प्रकार का नृप पराभवास्पद नहीं होता ? (४) आकाश में वन्दनमालिका की तरह क्या सुशोभित होती है ? इन चारों प्रश्नों का उत्तर भी प्रश्नकर्ता अव्यक्त ततावली 'तातताततती' में बता देता है। चारों प्रश्नों का उत्तर क्रमशः इस प्रकार है:—(१) सा (स्त्री) (२) रसा (पृथ्वी) (३) बली (४) सारसावली। इस प्रकार चारों प्रश्नों का उत्तर 'सारसावली' में समाविष्ट है। यह उत्तर 'तातताततती' में अव्यक्त रूप से छिपा है। इन प्रश्नोत्तरों से ज्ञात होता हैं कि संभ्रान्त घरानों में पुत्रियों को भी साहित्यिक शिक्षा दी जाती थी।

'सनत्कुमारचरित्र' में वैवाहिक रीतिरिवाजों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक परम्पराओं का वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

'सनत्कुमारचरित्र' में कहीं भी जैनधर्म के नियमों अथवा दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन नहीं हुआ है। तृतीय सर्ग में जैन मुनि गुणाढ्यसूरि की देशना का संकेतमात्र है।

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १६, श्लोक ३०–३२ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ३७–३९

धर्म और दर्शन देशना में मुनि ने किन सिद्धान्तों और नियमों का उपदेश दिया, यह नहीं बताया गया है, किन्तु अप्रत्यक्ष-रूप से जैन धर्म का प्रचार करना भी इस काव्य का उद्देश्य रहा है। छठे सर्ग में जिन-धर्म का पालन करने के कारण जिनधर्म सौधर्मपति बनता है और वैदिक ब्राह्मण त्रिदण्डी गज बनता है। इसी प्रकार कथानक में अन्यत्र भी जैनधर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादक तत्त्वों का समावेश है, किन्तु कवि ने स्पष्ट-रूप से कहीं भी जैन धर्म के तत्त्वों का प्रतिपादन नहीं किया।

'सनत्कुमारचरित्र' में मानवहृदय की शाश्वत वृत्तियों का सफल चित्रण हुआ है। इस कारण उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति हुई है। 'सनत्कुमारचरित्र' महाकाव्य में

रस-परिपाक शान्तरस प्रधान है। उसमें शान्तरस की भव्य योजना अनेक स्थानों पर पायी जाती है। तेईसवें सर्ग में अपने शरीर की कान्ति को नष्ट हुआ देख कर सनत्कुमार को वैराग्य हो जाता है और वे तपोमय जीवन बिताने का निश्चय करते हैं। इस अवसर पर सनत्कुमार की इन उक्तियों में उनके हृदयगत निर्वेद की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है:—

व्याधयोऽपि पटुतापहारिणो दाववह्निविडतापकारिणः।
तैरहर्निशमिह ग्रहैरिव ग्रस्तशस्तवपुषः कुतः सुखम् ॥
मामधन्यतममाप्तसम्पदो, हारिणं सुकृतदूरगत्वतः।
धिक् धिगत्यरसपोषणच्छलात् स्वस्य दुर्गतिरसप्रपोषकम् ॥
देहरूपगलनश्रुतेरपि प्रोल्ललास सविवेककोरकः।
तस्य यो विरतिभावनामयं सौरभं समतनोद् विकासतः ॥[1]

यहाँ शरीर की कान्ति का नष्ट हो जाना अलम्बन विभाव है। सांसारिक सुखों के अनित्य होने, रोग-शोक से शरीर के ग्रस्त रहने एवं विगत जीवन में भवलिप्त रहने के विचार उद्दीपन विभाव हैं। पश्चाताप करना, जीवन की अनित्यता पर विचार करना, हृदय में विवेक भावना का स्फुरण होना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, वितर्क, स्मृति, उद्वेग, विरति, मति आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से यहाँ सनत्कुमार के हृदयगत निर्वेद की परिणति शान्त रस में होती है।

सोलहवें सर्ग में सनत्कुमार और भानुवेग की कन्याओं के विवाह के अवसर पर संयोग शृंगार का परिपाक इन पंक्तियों में हुआ है:—

व्रीडावनम्राणि मुदोन्मुखानि स स्मरोल्लसद्विभ्रमभारसंयुजाम्।
अपश्यदास्यान्यथ चन्द्रपद्मयोश्चपेटसज्जानि विवाह्य सुभ्रुवाम् ॥[2]

यहाँ सनत्कुमार तथा उसकी पत्नियाँ एक दूसरे की हृदयगत रति का आलम्बन हैं। विवाहकालीन राजभवन का हर्षोत्फुल्ल वातावरण उद्दीपन विभाव है। सनत्कुमार का पत्नियों की ओर देखना तथा पत्नियों का लज्जा से मुख नीचा करना अनुभाव हैं। उत्सु-

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २३, श्लोक ८–११ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ६

कता, हर्ष, लज्जा आदि संचारी भाव हैं। सनत्कुमार और उनकी पत्नियों की रति स्थायी भाव है।

भावों की विविधता एवं तीव्रता वियोग शृंगार के अन्तर्गत दर्शनीय है। कवि को विरह-जनित आन्तरिक वेदना की अभिव्यक्ति करने में पर्याप्त सफलता मिली है। वस्तुतः विरह-वर्णन में कवि की प्रतिभा सर्वोच्च शिखर पर आसीन दिखाई देती है। यहाँ वियोग-शृंगार के अन्तर्गत आने वाली समस्त मनोदशाओं का चित्रण व्यापक गम्भीरता के साथ हुआ है। साहित्यिक कसौटी पर कसे जाने पर भी 'सनत्कुमारचरित्र' का विरह-वर्णन खरा उतरता है। आचार्यों ने वियोग शृंगार के अन्तर्गत अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मूर्च्छा, इन दस दशाओं का उल्लेख किया है। 'सनत्कुमारचरित्र' में इन सबका मार्मिक चित्रण हुआ है। इनके उदाहरण पादटिप्पणी में दिए जा रहे हैं।[1]

'सनत्कुमारचरित्र' में वात्सल्य रस का भी मनोहारी वर्णन हुआ है। अष्टम सर्ग में शिशु सनत्कुमार की बालक्रीडाओं के वर्णन में वात्सल्य का सुन्दर उद्रेक हुआ है। यथा :—

---

(१) इतिश्रुते दूतमुखेन सद्गुणे तस्मिन्कुमारे जनकेन सत्वरम्।
तस्मै प्रदत्ताऽस्मि वसुंधरा यथा रामेण विप्रप्रचयाय सादरम्॥
ततः प्रभृत्येव ममाप्यभूत्तरां तत्राभिलाषो मधुरे फले यथा।
औत्सुक्यचिन्तादिमहाललाततैः प्ररोह उद्बुद्धमनोभवोद्भवः॥
नक्तं दिवं मानविमुंचति क्षणं चिन्ता प्रसन्ना सुसखीवदुत्थिताम्।
स्मरामि तं धीरतदेकमानसा, शुद्धं परं ब्रह्म यथैव योगिनी॥
सोत्कण्ठमुत्कीर्तनमस्य गौरवात्, करोमि नीतेव स्वनिघ्नताम्।
तल्लाभरिक्ता च कदाचिदुद्विजे सच्चक्रवाकी निशिकेवला यथा॥
क्व प्राप्स्यते मन्दतमाल्पपुण्यया, त्वं कल्पशाखीव जगत् प्रियप्रदः।
इत्थं कदाचित् प्रलपामि मन्दिरोद्याने च सीतेव वनेऽतिदुःखिता॥
लुठामि भूमौ लुलिताऽलकावलिर्हसामि नृत्यामि च रोदिमि क्षणम्।
उन्मत्तताभाक्तदनन्यभावतो, भवामि चान्येव कदाचिदंजसा॥
ज्वरस्तथारोहति कर्हिचिद् यथा समीपगस्यापि सखीजनस्य मे।
सद्यो मदुच्छ्वासतनुष्मतापि ताः प्लुष्यन्ति कण्ठेष्वपि पुष्पमालिकाः॥
शून्येक्षणाऽन्तःकरणावदामिनो चित्रार्पिताङ्गीव कदापि निश्चला।
तन्नास्ति दुःखं सकलेऽपि भूतले, तदप्रयोगेऽनुभवामि यन्न भोः॥
दशस्ववस्थास्विति चित्तजन्मः सा कापि न प्रापि मया तदा न या।
दधास्तु ताः प्रत्युत मां प्रतिस्थिताः प्रत्येकमप्याशु सहस्रशो ध्रुवम्॥

—वही, सर्ग १८, श्लोक १४–२२

पुत्रस्य सर्वाङ्गमनोरमस्य तस्याननाम्भोरुहमीक्षमाणः ।
योगीन्द्रगम्यां समवाप कांचिन्मुदं निजोत्संगगतस्य भूपः ॥
कूर्चे कचाकर्षणमादधानः सोऽनन्दयत् स्मेरमुखं नरेन्द्रम् ।
प्रियाहितं सौख्यदमेव वा स्यात् कान्तापदाघात इवापि वामम् ॥
वचोऽपि तस्यास्फुटवर्णभेदं सुधासमंस्त क्षितिपः स्वकर्णे ।
स्वाधीनकान्तेव रुतं पिकस्य किं किं न मोदाय हि बालकानाम् ॥[1]

यहाँ राजा अश्वसेन की शिशु सनत्कुमार-विषयक वात्सल्य रति स्थायीभाव है। शिशु सनत्कुमार आलम्बन विभाव है और उसका सर्वाङ्गमनोरम रूप, कूर्च के बालों को खींचना, उसकी तोतली वाणी आदि उद्दीपन विभाव हैं। अश्वसेन का पुत्र को गोद में लेना, उसके मुख को देखना, हँसना, पुलकित होना आदि अनुभाव हैं। हर्ष और औत्सुक्य संचारी भाव हैं।

दशम सर्ग में महेन्द्र सनत्कुमार की खोज में चल पड़ता है और एक अटवी में पहुँचता है। यहाँ अटवी की भयंकरता के वर्णन में भयानक रस सजीव हो उठा है :—

तदर्थे भीषणां प्राप राक्षसीमिव सोऽटवीम् ॥
पुण्डरीकद्युतिं सिंहं ज्योत्स्न्यां यत्र पतिभ्रमात् ।
पुण्डरीकवधूर्भेजे छायया चित्रितं तरोः ॥
कौशिकद्रुमसंलीनं काकवच्छ्वापदं व्रजम् ।
कौशिकस्त्रासयत्युच्चैर्यत्र घूघारवैर्घनैः ॥
यत्रामिषरसोन्मत्ताः स्फारफेत्कारभैरवाः ।
जयन्त्यदूध्वनिप्रौढान्नक्तं नक्तंचरानपि ॥[2]

इसी प्रकार तृतीय सर्ग में मृत विष्णुश्री के दुर्गन्धित शव के चित्रण में वीभत्सरस का वर्णन इन पंक्तियों में हुआ है :—

तत्र द्विकस्फोटितनेत्रयुग्मामपश्यदस्पृश्यतमावमाङ्गीम् ।
क्षतस्रवत्पूयरसप्लवार्द्रां मूर्तामिवान्यायजपापपङ्क्तिम् ॥
व्रणावलोलत्क्रमिजालवर्मस्पृशं तनुं त्रातुमिवाण्डजेभ्यः ।
नाराचपूरेभ्य इव प्ररूढदुष्कर्मवैरिद्रुतपातितेभ्यः ॥
विलुप्तनाशाश्रवणां शृगालैरामानुजाकाण्डविडम्बिताङ्गीम् ।
रौद्राकृतिं शूर्पणखामिवोच्चैर्दन्तैरपि क्षोणिभृतामयोग्याम् ॥
श्रीखण्डकर्पूरविलेपकान्ते प्रकाशयन्ती स्तनमण्डलेऽपि ।
श्मसानभस्मच्छुरितानि लक्ष्मीश्चलेति संबोधयितुं ध्रुवं नॄन् ॥
मृता हि कौलेयकमुख्यदेहिप्रसूतदेहाक्रमसर्पिगन्धात् ।
अप्युत्कटं गन्धभरं किरन्तीं, दिक्चक्रवालं परिवासयन्तम् ॥[3]

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग ८, श्लोक २३, ५ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक २७, ३१, ३४
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक ३१-३५

यहाँ गृद्धों द्वारा शव के दोनों नेत्रों को निकाल लेने, व्रणों में से पूय के प्रवाहित होने, कृमियों के बिलबिलाने, शृगालों द्वारा नासिका और श्रवणों को निकाल लेने, दुर्गन्ध फैलने आदि का वर्णन करके शव की वीभत्स अवस्था का अच्छा चित्रण किया गया है।

बीसवें सर्ग में अशनिघोष तथा सनत्कुमार के मध्य हुए युद्ध के वर्णन में वीररस का वर्णन हुआ है। इस प्रकार 'सनत्कुमारचरित्र' के रचयिता को विविध रसों के चित्रण में पर्याप्त सफलता मिली है।

'सनत्कुमारचरित्र' का भाव पक्ष जितना समृद्ध है उतना ही उसका कला पक्ष प्रौढ़ है। उसकी भाषा में महाकाव्योचित गरिमा और उदात्तता है। 'सनत्कुमारचरित्र' में

भाषा

जिनपालगणी ने अवसर और प्रसंग के अनुकूल शब्दों का चयन किया है। वे शब्दों के कुशल शिल्पी हैं। कोमल रसों और भावनाओं को अभिव्यक्त करते समय उनकी भाषा में अपूर्व माधुर्य और प्रसाद गुण आ गया है और परुष भावों के चित्रण में भाषा भी परुष और ओजगुणप्रधान हो गयी है। विष्णुश्री के अतुलित सौन्दर्य को देख कर विक्रमयश के हृदय में जो सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं उनके चित्रण में भाषा प्रसादगुण से युक्त, मधुर और दीर्घ समास से रहित है :—

> रंभा किमेषा त्रिदिवावतीर्णा किं वा रतिः प्रोज्झितभर्तृसङ्गा।
> लक्ष्मीरुताहो ! हरिविप्रयुक्ता, शम्भौ सकोपा किमु पार्वती वा ॥[1]

रौद्र रस को व्यक्त करने वाली कर्णकटु और ओजप्रधान पदावली का प्रयोग इन पंक्तियों में हुआ है :—

> विदधद्भ्यामिवाशेषां सभां रक्तच्छटास्तृताम्।
> पाटलद्युतिचक्षुभ्यामुद्वमन्निव स क्रुधम् ॥
> स संरम्भमभाषिष्ट विष्टपस्य भयानकः।
> और्ववह्निवदुर्वीशो रक्तनेत्रप्रभाशिखः ॥[2]

'सनत्कुमारचरित्र' में कहीं-कहीं एक ही श्लोक में दो तरह की भाषा उपलब्ध होती है। यथा :—

> वल्गुवल्गद्भटप्रौढध्वनिभिर्द्विषतां श्रुतीः।
> श्रुतीरिवार्हतां वाणी दलन्ती स्यात् पदक्रमैः ॥[3]

यहाँ पूर्वार्द्ध में ओजप्रधान तथा उत्तरार्द्ध में प्रसादगुणमयी पदावली प्रयुक्त हुई है।

सनत्कुमार के दीक्षा ग्रहण करने के लिए गृहत्याग करते समय नागरिक उनसे गृह न छोड़ने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रसंग की भाषा अपने में अथाह करुणा, दीनता और विवशता छिपाये हुए है :—

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १, श्लोक ७० (२) वही, सर्ग १६, सर्ग १६-२४
(३) वही, सर्ग २०, श्लोक ३८

नाथ किं वयमुपेक्षितास्त्वयाऽकाण्ड एव निबिडाऽगसो यथा ।
किं विहातुमुचितो निरंजन प्रेमवानपि हि मातुरङ्गजः ॥[1]

'सनत्कुमारचरित्र' में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। भाषा में चमक लाने के साथ ही इनका प्रयोग कवि की व्यवहारकुशलता, प्रयोगनिपुणता और सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का परिचायक है। कुछ मुहावरों और लोकोक्तियों को यहाँ दिया जाता है :—

व्याघ्रोऽस्ति पृष्ठे पुरतस्तु दुस्तटी पार्श्वद्वये ज्वालशताकुलः शिखी ।
महाशनिश्चोर्ध्वमधोऽन्धकूपकः क्व संकटे मादृश ईदृशि व्रजेत् ॥[2]
तीव्रोऽपि बह्निः सलिलेन शम्यते तच्चेज्ज्वलेत् किं हि तदा निवर्तकम् ।[3]
जयन्ति पुण्यानि जनस्य सर्वथा ।[4]
विबुधो हि मोदते श्रिया परस्यापि किमु स्वकीयया ।[5]
भवन्ति वालेयसमा अभव्याः ।[6]
साधोः कथंचित् पिशितोऽपि योगतोऽप्यस्थ्नोर्विबन्धः किमु युज्यते गले ।[7]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि जिनपाल का अपनी काव्य-भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उनकी भाषा में विषय, भाव और रस के अनुकूल शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यदि भाव मधुर हैं तो भाषा में भी स्वाभाविक माधुर्य आ गया है। यदि कहीं ओज का प्रदर्शन वांच्छनीय है तो वहाँ भाषा ओजमयी हो गई है।

अलंकृति एवं पाण्डित्य-प्रदर्शन

'सनत्कुमारचरित्र' में एक सर्ग (इक्कीसवाँ सर्ग) ऐसा भी है जिसकी रचना पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रेरणा से हुई है। अतएव वहाँ की भाषा क्लिष्ट एवं दुरूह हो गई है और अपेक्षित अर्थ के निकालने में खींचातानी एवं बौद्धिक व्यायाम बहुत करना पड़ता है। इन स्थलों पर कवि ने अपना भाषा-पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए कुछ जटिल बन्धन अपने ऊपर लगा लिये हैं और उन बन्धनों का पालन करते हुए काव्य का निर्माण किया गया है। निम्नलिखत पद्य में कवर्गीय अक्षरों का अभाव है :—

महीयांसः भवन्त्येव महद्भ्योऽपि हि भूतले ।
ओतुना नास्यते बर्हो यदाशीर्विषवृन्दहा ॥[8]

इसी प्रकार इस श्लोक के निर्माण में कवर्ग, चवर्ग, और टवर्ग इन तीनों वर्गों के अक्षरों का बहिष्कार किया गया है :—

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २४, श्लोक ३
(२) वही, सर्ग १, श्लोक ८४
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ३
(४) वही, सर्ग ३, श्लोक ८८
(५) वही, सर्ग ३, श्लोक ६०
(६) वही, सर्ग ५, श्लोक ४
(७) वही, सर्ग १८, श्लोक २३
(८) वही, सर्ग २१, श्लोक ७

महत्यथेतरत्राऽस्य ध्वंसेनाऽभूद्भिदा युधि ।
यवसे शिंशपायां वा दाहे दावततेरिव ॥[1]

संयुक्त वर्णों का परित्याग ऐसे श्लोकों में दीख पड़ता है :—

अरीणां सकला सेना विनिमीलितलोचना ।
तारकापेतनिशया समं रेजे महातमाः ॥[2]

क च ट त, इन चार वर्गों के परिहार से इस पद्य का निर्माण किया गया है :—

सभायामसुरेशोऽपि यशः समरसम्भवम् ।
यस्योरुरोषभीमस्य विववार शशिप्रभम् ॥[3]

निम्नलिखित श्लोकों में तो पांचों—क च ट त प—वर्गों का बहिष्कार करके केवल य र ल व श ष स ह, इन आठ वर्णों का ही प्रयोग किया गया है :—

रसालः शौर्यवर्यलिः संश्लेषो यशसः श्रियाम् ।
आसील्लीलाहवः शस्यः सुरास्य सरसीरुहाम् ॥[4]
वारिवाह इवावश्यविसारि शरवर्षसूः ।
सहस्रशो वीरशिरः स्राव्यलोरुसरिल्लयः ॥[5]

इनके साथ-साथ इस सर्ग में कवि ने इतने चित्रकाव्यों की योजना की है जितने चित्र-काव्य न तो किरातार्जुनीय, माघ और हरविजय में प्राप्त होते हैं और न जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी है, संस्कृत के अन्य महाकाव्यों में । कवि द्वारा निबद्ध कुछ चित्रकाव्य यहाँ प्रस्तुत किये जाते है :—

(१) हलम् :—सावधाने विशेषेण दिव्यसिद्धाङ्गनाजने ।
साक्षाद् दृश्याभिनेयौघं दृष्टुं तन्नवनाटकम् ॥
शिलीमुखान् निचिक्षेप तेनाऽसौ बलवद्बली ।
लीनपक्षान् कठोरास्यानितीव हयरंहसा ॥[6]

(२) मुशलम् :—तादृग् धनुर्धरो धीमानोजसा द्विषतां बलम् ।
लंघयन्मोदिषु जनोत्मानी शक्रं जिगाय सः ॥[7]

(३) धनुः—रेजे कुण्डलितं घोरटंकाराट्टहसं मुखम् ।
खं व्याप्यैतद्यमस्येव लम्पटं द्विषतां व्रजे ॥[8]

(४) शक्तिः—महिमा कस्य न मुदेभिदेवाति भियोऽत्र हि ।
हिमभानोरिवैतस्य ततस्तुतिभृतः प्रभाः ॥[9]

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २१, श्लोक २२
(२) वही, सर्ग २१, श्लोक २६
(३) वही, सर्ग २१, श्लोक ३७
(४) वही, सर्ग २१, श्लोक ४४
(५) वही, सर्ग २१, श्लोक ४३
(६) वही, सर्ग २१, श्लोक ४६
(७) वही, सर्ग २१, श्लोक ५५
(८) वही, सर्ग २१, श्लोक ५७
(९) वही, सर्ग २१. श्लोक ६१

(५) गोमूत्रिका:—सुदृष्टि: शस्यरत्नोऽपि सुपक्ष्माकान्तसत्प्रभ: ।
दद्दृशे शशिरम्योऽपि सपरै: कालसन्निभ: ।।[1]

इसी प्रकार खड्ग, क्षुरिका, शर, निश्रेणिका, चामर, कलश, छत्र तथा दो चक्रबन्धों की योजना काव्य में की गई है।[2] एक चक्रबन्ध में 'सनत्कुमारचक्रिचरितमिदम्' तथा दूसरे में 'जिनपालगणिविरचितमिदम्' यह वाक्य गर्भित है ।

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग २१, श्लोक ५०

(२) खड्ग:—संरोप्यमाणगुणमप्याऽऽचक्रन्दाऽथ तत्तदा ।
दासदुश्छात्रवस्तु वभावभावितसाहसम् ।।
संयोगं चापबाणेन शुद्धिभाजा समज्जसम् ।
संतोषिताऽनेकदिव्यवधूसिद्धवनेचरम् ।। युग्मम् ।।
—वही सर्ग २१, श्लोक ५२-५३

क्षुरिका:—नीतिस्थितिप्रीतिभृतं पालयन्तं द्विषां बलम् ।
लम्पटेशान् शातयन्तं तं पापे यशसाऽमलम् ।।
—वही सर्ग २१, श्लोक ७३

शर:—तद्वक्षसि न्यधाच्छक्तिं सकान्तविततद्युतिम् ।
सहसा सात्त्विक: कान्तामिव नानांगदारणाम् ।।
—वही, सर्ग २१, श्लोक ६७

निश्रेणिका:—गते विलक्षत्वमिति क्षमापतौ वलत्यनैकध्यमवध्यदेहिषु ।
पदं महास्त्रं हि ववंध सद्युति क्षणाद् भुजंगाकलनं रुषा चिते ।।
—वही, सर्ग २१, श्लोक ८१

चामर:—ततस्तत्राऽतनुधी: कुमार: कलं कथं कच्छिदुर: खगेन्द्रान् ।
ससर्ज सन्त्रासदनादकन्द—दम्भुदरगंदभिदत्तदक्ष: ।।
—वही, सर्ग २१, श्लोक ८४

कलश:—स्फूर्जद्धूमकच: शिखामयभुज: प्राण्यौघदत्तातुल-
त्रासो घोररवाट्टहासविकटो वेतालकल्प: शिखी ।
संवृद्धो दवतोऽधिको रणभुवि प्राणापहारी जग-
ज्जन्तूनामपि तूर्णमुद्धुरजवात् क्षुन्दन् हसं साहसाम् ।।
—वही, सर्ग २१, श्लोक ८६

छत्रम्:—श्रीसद्मापि कुशेशयं ननु जडा संगिस्फुरत् कुंकुम-
च्छायोऽप्यभ्युदयन् सुमास्समुपचेयांक: शिवो मारह ।
इत्थं कोऽपि न यस्य साम्यमभजद् वासस्य विश्वश्रियां
सोऽयं माननिधि: प्रतापतरणि: केनावनौ जीयते ।।
श्रीसनत्कुमारस्येति नामांङ्कं छत्रम् ।। —वही, सर्ग २१, श्लोक ९६

यद्यपि ऐसे चित्रकाव्यों की गणना अधम काव्य में होती है, क्योंकि इनका उद्देश्य अपने पाण्डित्य से पाठक को चमत्कृत करना होता है, तथापि इनसे कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार अवश्य परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से निश्चय ही 'सनत्कुमारचरित्र' की भाषा अपनी प्रौढ़ता, परिपुष्टता और गंभीरता के लिए प्रशंसनीय है।

'सनत्कुमारचरित्र' में कवि ने अपनी भाषा-शैली को विविध अलंकारों से सजाया है। इक्कीसवें सर्ग में कवि ने शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत किया है।

अलंकार-योजना

अलंकारों के इन प्रयोगों में स्वाभाविकता का पूर्ण अभाव है। उनमें यत्नसाध्यता और चमत्कृति ही दृष्टिगत होती है। यमक के इन उदाहरणों में अलंकृति स्पष्ट है :—

रुषोत्तस्थौ महावेगो विद्वद्वेगसहोदरः।
पयोद इव धौतास्त्रविद्वद्वेगसहोदरः ॥[1]
न तेषु स दयो धीरो ये दुर्वृत्ता महारयः।
नतेषु सदय्योऽधीरो धनदो दुष्कृताऽगमे ॥[2]

किन्तु, अन्यत्र अलंकारों के प्रयोग में स्वाभाविकता की रक्षा की गयी है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में अनुप्रास की स्वाभाविक योजना हुई है :—

वसतिः कालकेलीनां रौद्रतायाः परं पदम्।
दुःखानामाकरो धात्रा चक्रे या कौतुकादिव ॥[3]

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग काव्य में प्रचुरता से हुआ है। सप्तम सर्ग में सहदेवी के गुणों की प्रशंसा में उपमा का प्रयोग इस प्रकार किया गया है :—

चक्र १ :—विश्वासह्यरणक्रियं बलनिधिं तन्तारसीमास्यदं
युद्धेन क्षणितुं चकार लसनं मिथ्यापि शूरत्वतः।
वल्गत्कुण्टभुजो रिपूत्पलमहादन्ती मृधे चत्वरे-
ऽरेकं भाविनि भूयुजः स्ववपुषो दंष्ट्रावतः स्नस्तरोः ॥
सनत्कुमारचक्रिचरितमिदं इति वाक्यगर्भं चक्रम् ॥
—वही, सर्ग २१, श्लोक १०१

चक्र २ :—तस्याऽजिक्षतविग्रहस्य नरपस्यान्तर्मुदालम्बिनी
पद्मानन्दपरप्रसन्ननयनाभूमित्रमाऽऽगत्य तम्।
बद्धे पात्रमचिन्त्यकीर्तनगिरां कोदण्डपाणिन्नवम
वंशद्योतरविं पवित्रवचनं नीत्याश्रितं स्वाऽऽहवम् ॥
जिनपालगणिविरचितमिदं इति कविनामगर्भचक्रम् ॥
—वही, सर्ग २१, श्लोक १४२

(१) सत्कुमारचरित्र, सर्ग २१, श्लोक १८ (२) वही, सर्ग २१, श्लोक २६
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक ३८

लक्ष्मीरिवोन्मीलितकान्तकामा शचीव सौभाग्ययशोनिधानम् ।
ज्योत्स्नेव विश्वेक्षणसौधधारा बभूव सीतेव पतिव्रता या ॥[1]

प्रथम सर्ग में विक्रमयश के अन्तःपुर की स्त्रियों पर कामीजन की लोल दृष्टि नहीं पड़ती थी, इसका हेतु देते समय कविकल्पना जिस सम्भावना को प्रस्तुत करती है उसमें उत्प्रेक्षा का सुन्दर निर्वाह हुआ है:—

दृष्टिर्यदन्तःपुरिकासु कामिव्रातस्य लोलापि पपात नैव ।
उन्मज्जनाभावभयेन मन्ये लावण्यलीलामृतकूपिकासु ॥[2]

निम्नोद्धृत पंक्तियों में सनत्कुमार में असुरारि, महावराह आदि का आरोप किये जाने से परम्परित रूपक की भव्य योजना हुई है:—

सत्यानुषङ्गातिशयाऽसुरारिः क्षमाधृतिस्थैर्यमहावराहः ।
कलाकलापाश्रितिशारदेन्दुः पद्मालयक्रीडनराजहंसः ॥
नानाबलासंस्मितपुष्पभासः सरस्वतीवक्त्रविलाससिन्धुः ।
गुरुक्रमाराधनदेवराजः सनत्कुमारः स कुमारराजः ॥[3]

सनत्कुमार के शौर्य की प्रशंसा में अर्थान्तरन्यास का उपयोग इस प्रकार किया गया है:—

अनात्मरक्षो समभूत् प्रचण्डो यक्षोऽपि साक्षात् युधिपेन रुद्धः ।
किं कृष्णसर्पोऽपि करोति तत्र स्याद् यत्र शत्रुर्नकुलः सदर्पः ॥[4]

सनत्कुमार की महनीयता तथा अपनी अल्पज्ञता की अभिव्यक्ति करने के लिए कवि ने इन पंक्तियों में विषम अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है:—

क्व तादृशो सौगुणरत्नराशिः क्वाऽज्ञोऽहमेतच्चरितं चिकीर्षुः ।
सुरेशितुः क्ष्मावहनीयमद्रिमुद्धोद्धुमुक्तः कुणिरेष नूनम् ॥[5]

जम्बूद्वीप के वर्णन में विरोध का प्रयोग अत्यन्त कलात्मक हुआ है:—

यो सप्तवर्षोऽप्यमितप्रवर्षो यो निम्नगालिङ्गनकृत्कुलीनः ।
यो मर्त्यभूरप्यपवर्गभूमिः किमन्यदाह्लास्ततमन्तरीपम् ॥[6]

इनके अतिरिक्त सन्देह, उदाहरण, संभावना, विशेषोक्ति, परिसंख्या, एकावली, मुद्रा, असंगति, तिरस्कार आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग 'सनत्कुमारचरित्र' में मिलता है।[7]

---

(१) सनत्कुमारचरित्र, सर्ग १२, श्लोक २८
(२) वही, सर्ग १, श्लोक ५४
(३) वही, सर्ग १८, श्लोक १०-११
(४) वही, सर्ग १, श्लोक २०
(५) वही, सर्ग १, लोक २७
(६) वही, सर्ग १, श्लोक ३३
(७) सन्देह:—रम्भा किमेषा त्रिदिवावतीर्णा किं वा रतिःप्रोज्झितभर्तृसंगा ।
लक्ष्मीरुताहो ! हरिविप्रयुक्ता शंभौ सकोपा किमु पार्वती वा ॥
—वही, सर्ग १, श्लोक ७०

परिसंख्या की योजना तो कई स्थलों पर अच्छी बन पड़ी है ।[1]

'सनत्कुमारचरित्र' के अधिकांश सर्गों में एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है । कतिपय सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग भी किया गया है । पहले सर्ग में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है और अन्त का एक श्लोक शार्दूलविक्रीडित

उदाहरण:—तस्याद्भुताचारविचारसिन्धोरन्तश्चरत्सच्चरितं बलान्माम् ॥
वाचालयत्यम्बुजखण्डकोशं गर्भेध्वनद्भृङ्गकुलं यथोच्चैः ॥
—वही, सर्ग १, श्लोक २६

संभावना— शशी यदि स्यान्मधुपालियुक्तः शिखण्डभारोद्धुरमम्बुजं वा ।
तेनोपमीयेत यदास्यचन्द्रः स्निग्धायतश्यामलवेणिदण्डः ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक ५२

विशेषोक्ति:—अनाप्तकालुष्यमहो यदच्छाद्वै तस्वरूपं जलदागमेऽपि ।
अशुद्धसङ्गेऽपि विशुद्धता स्यात् या सा शुचित्वस्य परा हि काष्ठा ॥
—वही, सर्ग ६, श्लोक ४६

परिसंख्या:—यत्र दिवपामेव हि सर्वलोपः कलावसादोऽपि शशांकमूर्तेः ।
वृषावमुक्तिः पितृकार्य एव स्मार्तस्य नान्यस्य जनस्य दृष्टः ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक ११

एकावली— न दन्तिनो दानविहीनगण्डा न दानमप्युज्झितगन्धवासम् ।
गन्धोऽपि नैवासुरभिर्व्यधत्त कलत्करणां यत्र मधुव्रतालीम् ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक १२

मुद्रा:—कलालयो यो बत तेजसां निधिर्भूनन्दनोऽप्यद्भुतकाव्यपद्धतिः ।
बुधोऽपि शत्रौ गुरुसिंहिकासुतः केतुः स्ववंशस्य शनैश्चरः पथि ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक ३५

असंगति:—सम्भ्रमाच्छ्रवसि कङ्कणं करे कुण्डलं तु परिधाय धाविता ।
वाससोऽपि परिवृत्तितत्परा कापि तत्र हसिता सखीजनैः ॥
—वही, सर्ग २३, श्लोक ८

तिरस्कार:—पीवरोरुजघनस्तनस्थला रुद्धवेगगमना समुत्सुका ।
काऽप्यदृष्टनृपतिर्निनिन्द तान्यंगकान्यहितकृन्न शस्यते ॥
—वही, सर्ग २३, श्लोक ११

(१) परिसंख्या:—क्लेशेषु बन्धस्तरलत्वमक्ष्णोः काठिन्यलक्ष्मी कुचमण्डलेषु ।
संभोगभङ्गिष्वदयाभिघाता मृगीदृशामेव यदीय राज्ये ॥
प्रवादिजल्पे छलजातियोगः सकण्टकत्वं वनकेतकेषु ।
विष्कम्भशूले खलु योगजाते न जातुलोकस्य तु यस्य राज्ये ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक ४४–४५

छन्द में है। दूसरे सर्ग में वंशस्थ तथा अन्त में मालिनी, तीसरे सर्ग में उपजाति छन्द तथा अन्त में मालिनी, चौथे सर्ग में वंशस्थ और अन्त में शार्दूलविक्रीडित, पाँचवें में उपजाति एवं अन्त में मालिनी, छठे में वंशस्थ तथा अन्त में स्रग्धरा, सातवें में उपजाति तथा अन्त में मालिनी, आठवें में उपजाति तथा अन्त में शार्दूलविक्रीडित, नवें में उपजाति तथा अन्त में मालिनी और दसवें सर्ग में अनुष्टुप् और आर्या तथा अन्त में मालिनी छन्द का व्यवहार हुआ है। ग्यारहवें सर्ग में मालिनी, स्रग्धरा, उपजाति, अनुष्टुप् और शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। बारहवें सर्ग में अनुष्टुप् तथा अन्त में उपजाति और स्रग्धरा का प्रयोग हुआ है। तेरहवें सर्ग में विविध छन्द दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें शालिनी, आर्यागीति, विद्युन्माला, भ्रमरविलसिता, हरिणप्लुता, युग्मविपुला, दोधक, प्रमाणिका, वेगवती, वैतालीय, द्विपदी, स्वागता, हरिणी, चण्डवृष्टिप्रयातोदण्डक का समावेश है। चौदहवें सर्ग में अर्णवाख्यदण्डक, प्रहर्षिणी, व्यालाख्यदण्डक, रुचिरा, अपराजिता, पन्द्रहवें सर्ग में उपचित्र, मणिगुणनिकरा, द्रुतमध्या, वेगवती, केतुमती, वाणिनी, स्रग्विणी तथा सोलहवें सर्ग में वंशस्थ, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित और मालिनी छन्दों का प्रयोग किया गया है। सत्रहवें और अठारहवें सर्ग में इन्द्रवंशा तथा सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित, उन्नीसवें में अनुष्टुप् तथा अन्त में मालिनी तथा बीसवें में अनुष्टुप् और अन्त में शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। इक्कीसवें सर्ग में प्रमुखता अनुष्टुप् छन्द की है, किन्तु बीच-बीच में शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, रथोद्धता आदि छन्दों का प्रयोग भी विद्यमान है। बाईसवें से लेकर चौबीसवें सर्ग तक रथोद्धता छन्द का व्यवहार हुआ है। बाईसवें के अन्त में स्रग्धरा, तेईसवें के अन्त में मालिनी तथा चौबीसवें के अन्त में शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुआ है। प्रशस्ति में अनुष्टुप्, आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका एवं उपजाति का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार 'सनत्कुमारचरित्र' में उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, रथोद्धता, इन्द्रवंशा, आर्या, मालिनी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, आर्यागीति, विद्युन्माला, भ्रमरविलसिता, हरिणप्लुता, युग्मविपुला, दोधक, प्रमाणिका, वेगवती, वैतालीय, द्विपदी, स्वागता, हरिणी, प्रहर्षिणी, चण्डवृष्टिप्रयातोदण्डक, अर्णवाख्यदण्डक, व्यालाख्यदण्डक, रुचिरा, अपराजिता, उपचित्र, मणिगुणनिकरा, द्रुतमध्या, केतुमती, वाणिनी और स्रग्विणी, इन चौंतीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें उपजाति, अनुष्टुप् और वंशस्थ का प्रयोग सर्वाधिक है। 'सनत्कुमारचरित्र' में अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित छन्दों—मणिगुणनिकरा, अर्णवाख्यदण्डक आदि—का प्रयोग कदाचित् पाण्डित्यप्रदर्शन की भावना से प्रेरित होकर ही किया गया है।

(३) बालभारत (अमरचन्द्रसूरि)

(रचनाकाल सं० १२७७ से १२९४ के मध्य)

श्री अमरचन्द्रसूरि-कृत 'बालभारत' की रचना १८ पर्वों और ४४ सर्गों में हुई है। यह 'वीर' शब्दाङ्कित महाकाव्य है। इसमें 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

महाकाव्य की दृष्टि से 'बालभारत' एक सफल कृति सिद्ध होती है। यह एक सर्गबद्ध रचना है जिसका कथानक 'महाभारत' पर आधारित है। इसका कथानक लोक-विश्रुत पाण्डवों के चरित्र से सम्बन्धित है। वीर पाण्डव इसके नायक हैं, उनमें वीरता, धीरता, दया, दाक्षिण्य आदि सभी धीरोदात्त नायक के गुण उपलब्ध हैं।

बालभारत का महाकाव्यत्व

शृङ्गार, वीर और शान्त, इन तीनों रसों में से वीर रस की इसमें प्रधानता है और शृङ्गार, शान्त, करुण, रौद्र आदि रसों का भी यथास्थान समावेश हुआ है। चतुर्वर्ग की प्राप्ति इसका लक्ष्य है। 'बालभारत' की मुख्य कथा के साथ अनेक उपाख्यान जुड़े हुए हैं जिससे मुख्य कथा का प्रवाह यत्र-तत्र अवरुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें अनेक पात्रों के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाएँ दी गई हैं। इन दो कारणों से 'बालभारत' में कथानक की पंच सन्धियों की योजना संभव नहीं थी। स्वयं 'महाभारत' में इन सन्धियों की योजना नहीं मिलती है, फिर पूर्णतया उसी पर आधारित 'बालभारत' में सन्धि-विधान किया जाना कैसे संभव था? किन्तु, सन्धियों की योजना न होने पर भी सामान्यतः 'बालभारत' का कथानक त्रुटिपूर्ण नहीं स्वीकार किया जा सकता, क्योंकि उसमें विकासक्रम तथा आदि, मध्य एवं अन्त की सुसंगठित व्यवस्था है। आदि पर्व के पाँचवें सर्ग में द्रोणाचार्य की परीक्षा में अर्जुन के सफल होने और उसके प्रतिस्पर्द्धी कर्ण को दुर्योधन द्वारा चम्पा का राज्य दिये जाने के प्रसंग में कौरवों और पाण्डवों के द्वेष के प्रारम्भ से कथा का आरम्भ होता है जो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और अन्त में महाभारत के युद्ध में परिणत होता है। कथानक का यह अंश कथा का मध्यभाग है। कथानक का अन्त समस्त कौरवों के विनाश तथा पाण्डवों के राज्य प्राप्त करने के वर्णन से होता है। वस्तुतः कथा की समाप्ति यहीं हो जाती है, किन्तु कथानक को शान्तरसपर्यवसायी बनाने के लिए 'महाभारत' की भाँति 'बालभारत' में भी पाण्डवों के हिमालय पर जाकर स्वर्ग जाने का वर्णन आगे किया गया है। सन्धियों की योजना कथानक में क्रमिक विकास लाने के लिए की जाती है। 'बालभारत' के कथानक में यह क्रमिक विकास दीख पड़ता है। अतः सन्धियों का अभाव उसके महाकाव्यत्व को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करता।

महाकाव्य के नियमों के अनुसार 'बालभारत' के एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है तथा सर्गान्त में वृत्तपरिवर्तन के नियमों का पालन हुआ है। महाकाव्य के परम्परागत नियमों के अनुसार तृतीय पर्व के द्वितीय सर्ग तथा सप्तम पर्व के तृतीय सर्ग में विविध

छन्दों का प्रयोग हुआ है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार 'बालभारत' में व्यास-स्तुति-परक नमस्कारात्मक मंगलाचरण को स्थान दिया गया है। इसमें प्रातः, सन्ध्या, चन्द्रोदय, वसन्त, ग्रीष्म, नगर, वन, उपवन आदि महाकाव्य के वर्ण्यविषयों के सजीव वर्णन उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत काव्य विशालकाय 'महाभारत' को संक्षिप्त रूप देने का प्रयास है, अतः इसका नाम 'बालभारत' रखना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसमें पर्वों के नाम भी 'महाभारत' की भाँति ही हैं। सर्गों का नामकरण भी उनके वर्ण्यविषयों के अनुसार किया गया है।[1] महाकाव्य के इन शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाह के साथ-साथ 'बालभारत' में जातीय आदर्शों और विचारों की महनीय अभिव्यक्ति, समाज की विविध परिस्थितियों और जीवन की विविध समस्याओं की सन्तोषजनक व्याख्या, जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति, चरित्रचित्रणगत स्वाभाविक शालीनता एवं भाषाशैली की प्रौढ़ता के कारण महाकाव्योचित गरिमा दृष्टिगत होती है। इन विशेषताओं के कारण हम उसे आलोच्य युग के प्रमुख महाकाव्यों में स्थान देना उचित ही समझते हैं। कवि ने स्वयं भी इसे महाकाव्य कहा है। प्रत्येक पर्व के अन्त में यह श्लोक दिया गया है :—

भेजे श्रीजिनदत्तसूरिसुगुरोरर्हन्मतार्हस्थितेः
पादाब्जभ्रमरोपमानममरो नाम व्रतीन्द्रः कृती।
एतन्नन्दतु बालभारतमहाकाव्यं तदुल्लासितम्
वाग्देवीगृहकोविदेन्दुहृदयः श्रेयः सुधास्वस्तिकः॥

ग्रन्थ के अन्त में इस श्लोक में भी 'बालभारत' को महाकाव्य अभिधा प्रदान की गयी है :—

वैदग्ध्यात्मनि बालभारतमहाकाव्ये स्म निर्गच्छति।
स्वर्गारोहणपर्व तन्मतिमहः स्पष्टोदयेऽष्टादशम्॥

प्रत्येक सर्ग के अन्त में पुष्पिका में भी 'बालभारत' के पूर्व महाकाव्य विशेषण दिया गया है।

'बालभारत' पौराणिक शैली का महाकाव्य है। पौराणिक महाकाव्यों की तरह 'बालभारत' का कथानक भी पौराणिक है जिसका आधार व्यास-कृत 'महाभारत' है। फलस्वरूप उसमें अलौकिक और अतिमानवीय तत्त्वों का प्राधान्य है। 'बालभारत' के नायक पाण्डव यद्यपि मनुष्य ही हैं, तथापि उनके चरित्र में अलौकिकता है। पाण्डुपुत्र होते हुए भी वे धर्मराज, पवन, इन्द्र, अश्विनीकुमार और सूर्य की सन्तान हैं। अर्जुन का इन्द्र के रथ पर आसीन होकर स्वर्ग जाना, वहाँ उर्वशी की उससे प्रणय-प्रार्थना, अस्वीकार करने पर उर्वशी द्वारा अर्जुन को षण्ढ होने का शाप देना आदि अलौकिक कार्य अर्जुन के अलौकिक व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। कृष्ण तो उत्तरा के मृत पुत्र को भी जीवित कर देते हैं। तीर्थयात्रा-प्रसंग में अर्जुन का भीषण तप करना, अग्नि की प्रार्थना पर खाण्डव-दाह करना

---

(१) उदाहरणार्थ आदि पर्व के प्रथम सर्ग का नाम 'आदिवंशावतारो पुरूरवप्रभृतिराजचतुष्टयवर्णन' तथा द्वितीय सर्ग का नाम 'पुरुप्रमुखाष्टादशराजवर्णन' है।

और अग्नि से सिताश्व रथ, कपिकेतु, गाण्डीव धनुष और अक्षय तूणीर प्राप्त करना, प्रतिश्रुत विद्याओं की प्राप्ति के लिए काम्यकवन में तपस्या करना और किरातवेषधारी शिव से युद्ध करना, उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करना, विचित्रसेन गन्धर्व से संगीत-नृत्य की शिक्षा प्राप्त करना, अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गये नारायणास्त्र और ब्रह्मास्त्र का उस पर कोई प्रभाव न पड़ना आदि तथ्य इतने चमत्कारपूर्ण और साहसिक हैं कि वे अप्राकृत से प्रतीत होते हैं। 'बालभारत' में अनेक स्थलों पर मन्त्राभिषिक्त अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया गया है जो पात्रों की अतिमानवीयता में वृद्धि करते हैं। गान्धारी का एक साथ सौ पुत्रों को उत्पन्न करना तथा कुन्ती का कवचकुण्डलयुक्त बालक को जन्म देना भी अतिप्राकृत तत्त्वों के अन्तर्गत ही है। इसी तरह काव्य में देव, दनुज, गन्धर्व तथा मनुष्यों के परस्पर मेलजोल और युद्ध आदि दिखाये गये हैं। कौशिकमुनि मेनका अप्सरा पर मुग्ध होकर उसके साथ विलास करते हैं। उर्वशी और पुरूरवा की प्रेमकथा भी मनुष्य और अप्सरा के प्रणय की कथा है। भीम हिडिम्बा राक्षसी से विवाह करता है जिससे घटोत्कच राक्षस उत्पन्न होता है। भीम अपने शैशव में वज्रकाय चित्रित किया गया है जो माता की गोद से लुढ़क जाने पर अपने शरीर से पर्वतशिलाओं को चूर-चूर कर देता है। 'बालभारत' में ऐसे आश्चर्यजनक तत्त्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। यादवों के गृह-युद्ध में तृण मौशल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। जनमेजय का नागयज्ञ भी एक आश्चर्यजनक घटना है।

'बालभारत' में पौराणिक महाकाव्यों में पाई जाने वाली कथानक रूढ़ियों और अभिप्रायों का भरपूर प्रयोग हुआ है जो इस प्रकार हैं :—

(१) रूप-परिवर्तन :—अज्ञातवास में सभी पाण्डव और द्रौपदी अपना रूप ही नहीं, नाम-काम भी बदल लेते हैं। आस्तीक पर्व में तक्षक-सर्प सूक्ष्म कीट का रूप धारण करके फूलों में प्रविष्ट हो जाता है। इन्द्र ब्राह्मण का वेश धारण करके कर्ण से कुण्डल-कवच माँगते हैं और शिव किरात का वेश धारण कर अर्जुन से युद्ध करते हैं।

(२) पूर्वभव का सम्बन्ध :—शिखण्डी पूर्वभव के वैर के कारण भीष्म से शत्रुता रखता है और उनका वध करता है। द्रौपदी भी पूर्वभव की तपस्या के कारण पाँच पति प्राप्त करती है।

(३) शाप और वरदान :—'बालभारत' में ऋषि-मुनियों के शाप से अनेक अलौकिक घटनाएँ घटित होती हैं। शुक्राचार्य के शाप से युवक ययाति वृद्ध हो जाते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य यह है कि शुक्राचार्य के वरदान के अनुसार ययाति अपने पुत्र पुरु के यौवन से अपनी वृद्धावस्था बदल लेते हैं। उर्वशी अर्जुन को एक वर्ष तक षण्ढ रहने का शाप देती है। अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा का गर्भ गिराये जाने पर कृष्ण उसे तीन हजार वर्ष तक निर्जन वन में घूमने का शाप देते हैं। कौशिक मुनि के शाप से शाम्ब के मौशल पैदा होता है और मौशलों से ही यादवों का नाश होता है। इन शापों के साथ-साथ वरदानों के कारण भी 'बालभारत' के कथानक को गति मिली है। शिव की आराधना के प्रभाव से जयद्रथ चतुःपाण्डवीजेता बन जाता है। जयद्रथ का पिता जयद्रथ को वरदान देता है कि

जिसके हाथ से उसका सिर पृथ्वी पर गिरेगा, उसका सिर भी पृथिवी पर लोटने लगेगा। यह वरदान स्वयं उसकी (जयद्रथ के पिता की) जान ले लेता है। इस प्रकार के अनेक वरदानों का उल्लेख 'बालभारत' में है।

(४) स्वप्न और शकुनों में विश्वास :—'बालभारत' में शकुन-अपशकुनों एवं स्वप्नों को शुभ-अशुभ फलदाता स्वीकार किया गया है। समाज-चित्रण के अवसर पर इनका विशेष वर्णन किया जाएगा।

(५) वंशपरम्परा और भवान्तर-वर्णन:—'बालभारत' के आदि पर्व में कुरुवंश के आदि पुरुष चन्द्र से लेकर शान्तनु तक का वर्णन विस्तार से किया गया है। उसमें द्रौपदी और शिखण्डी के भवान्तरों का वर्णन भी हुआ है। पूर्वभव में द्रौपदी एक मुनीन्द्रकन्या होती है जो अपनी आराधना से शिव को प्रसन्न करके उनसे पाँच बार 'पतिं देहि' कह कर सुयोग्य पति की याचना करती है, फलस्वरूप शिव उसे पाँच पति प्राप्त करने का वरदान देते हैं। इसी तरह शिखण्डी पूर्वभव की अम्बा है जो भीष्म से बदला लेने के लिए इस भव में शिखण्डी होती है।

(६) स्तोत्र और माहात्म्य-वर्णन :—पौराणिक महाकाव्यों की एक विशेषता उनमें स्तोत्रों और माहात्म्य-वर्णनों का होना है। 'बालभारत' में भी कुछ स्तोत्र प्राप्त होते हैं। राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर तथा शरशैया पर लेटे हुए भीष्म कृष्ण की परब्रह्म के रूप में स्तुति करते हैं। कवि द्वारा व्यास की स्तुति तो प्रत्येक पर्व के आरम्भ में की गयी है। काव्य के अन्त में आस्तीक परीक्षित की स्तुति करता है। वन पर्व के प्रथम सर्ग में लोमश तथा धौम्य ऋषि के साथ युधिष्ठिर तीर्थयात्रा करते हैं। इस अवसर पर लोमश ऋषि तीर्थों की उत्पत्ति के साथ-साथ उनका माहात्म्य भी बताते हैं।

(७) युद्ध और प्रेम का वर्णन :—'बालभारत' यद्यपि धार्मिक काव्य है, फिर भी उसमें पौराणिक महाकाव्यों की तरह शृंगार और युद्ध के वर्णन यत्र-तत्र हुए हैं। युद्ध का वर्णन तो ग्रन्थ के आधे भाग से भी अधिक में है। प्रेम-प्रसंगों की भी कमी नहीं है। बुध-इडा, पुरूरवा-उर्वशी, ययाति-शर्मिष्ठा, दुष्यन्त-शकुन्तला और शान्तनु-सत्यवती की प्रेम कथाओं का वर्णन काव्य के प्रारम्भ में किया गया है। तीर्थयात्रा-प्रसंग में अर्जुन-सुभद्रा के प्रणय की कथा भी विद्यमान है।

(८) काव्य का शान्तरसपर्यवसायी होना तथा उसमें धर्मोपदेशों की योजना होना :—पौराणिक काव्यों की तरह 'बालभारत' भी शान्तरसपर्यवसायी तथा वैराग्यमूलक है। इसका अन्त वृष्णियों के विनाश और तज्जन्य निर्वेद से पाण्डवों के हिमालय पर जाने के वर्णन से हुआ है। 'बालभारत' के वन-पर्व में मार्कण्डेय मुनि की देशना तथा शान्ति-पर्व में भीष्म की देशना है। धर्मोपदेशों की योजना ने 'बालभारत' की पौराणिकता को अधिक गहरा रंग प्रदान किया है।

(९) अवान्तर-कथाएँ और श्रोता-वक्ता-परम्परा :—विविध उपाख्यानों और अवान्तर कथाओं से 'बालभारत' भरा पड़ा है। उसमें श्रोता-वक्ता के प्रश्नोत्तर के रूप में

कथा कहने की पौराणिक शैली के दर्शन भी होते हैं। महाभारत की कथा लिख कर व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को, वैशम्पायन ने जनमेजय और सौति को और सौति ने शौनकादि ऋषियों को सुनायी। यही कथा अमरचन्द्रसूरि ने 'बालभारत' में निबद्ध की, जैसा कि उन्होंने इन पंक्तियों में स्वीकार किया है :—

वीरेन्दोर्जनमेजयस्य पुरतस्तत्राहिसत्रान्तरे
वैशम्पायनतो निशम्य किल यां सूतः स उग्रश्रवाः।
आख्यन् नैमिषकानने कुलपतेः श्रीशौनकस्य क्रतौ ॥
सेयं लालयतु स्वबालमिव सद्ग्रन्थं कथा भारती ॥[1]

(१०) पौराणिक शैली :—'बालभारत' मे पौराणिक शैली के अनुसार अनुष्टुप् छन्दों की बहुलता है और उसकी कथा भी पर्वों में विभक्त है।

पौराणिक शैली के इन तत्त्वों के आधार पर 'बालभारत' को पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत रखना ही समीचीन प्रतीत होता है।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

'बालभारत' के अन्त में कवि ने जो प्रशस्ति दी है उसमें उसने अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है। कतिपय अन्य ग्रन्थों से भी कवि के जीवन का परिचय मिलता है। इन ग्रंथों में कवि-कृत 'पद्मानन्दमहाकाव्य,' सं० १४०५ में रचित राजशेखरसूरि-कृत 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' एवं रत्नमन्दिरगणि-कृत 'उपदेशतरंगिणी' प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि अमरचन्द्रसूरि वायटगच्छीय थे। वायटगच्छ में परकायप्रवेशविद्या में निपुण श्रीजीवदेवसूरि की शिष्यपरम्परा में 'विवेकविलास' के रचयिता श्रीजिनदत्तसूरि हुए। अमरचन्द्रसूरि इन्हीं जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' के तेरहवें प्रबन्ध अमरचन्द्रकवि-प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि अमरचन्द्रसूरि ने जिनदत्तसूरि के भक्त कविराज अरिसिंह से सिद्धसारस्वत मन्त्र ग्रहण किया था और कोष्ठागारिक पद्म के विशाल भवन के एक भाग में संयमपूर्वक इक्कीस दिन तक अनवरत इस मन्त्र का जप किया था। इक्कीसवें दिन मध्यरात्रि में सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर इन्हें सिद्ध कवि होने एवं निःशेष नरपतियों से सम्मान प्राप्त करने का वरदान दिया। बाद में अमरचन्द्रसूरि ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। 'बालभारत' के आदिपर्व में प्रभातवर्णन के अन्तर्गत—

दधिमथनविलोलल्लोलदृग्वेणिदम्भा-
दयमदयमनङ्गो विश्वविश्वैकजेता।
भवपरिभवकोपत्यक्तबाणः कृपाण-
श्रममिव दिवसादौ व्यक्तशक्तिर्व्यनक्ति ॥[2]

—इस श्लोक में वेणी को अनंग की कृपाण के रूप में वर्णन करने के कारण

(१) बालभारत, सर्ग ४३, श्लोक १६३
(२) वही, आदिपर्व, सर्ग ११, श्लोक ६

अमरचन्द्र ने 'वेणीकृपाणोऽमरः' यह विरुद कविवृन्द से प्राप्त किया।[1] गुर्जराधिपति वीसलदेव ने अमरचन्द्रसूरि की विद्वत्ता की प्रशंसा सुन कर अपने मन्त्री ठक्कुर वइजल को उन्हें बुलाने भेजा। अमरचन्द्र के आने पर वीसलदेव के दरबारी कवि सोमेश्वर, नानाक आदि कवियों ने उन्हें एक सौ साठ समस्याएँ दीं जिनकी पूर्ति कवि ने प्रौढ़ और कलात्मक शैली में की।[2] समस्त कवि एवं वीसलदेव उनके आशुकवित्व को देख कर आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने अमरचन्द्र को 'कविसार्वभौम' की उपाधि प्रदान की। अमरचन्द्रसूरि ने ही अपने कलागुरु अरिसिंह ठक्कुर का परिचय वीसलदेव से कराया। कालान्तर में कोष्ठागारिक पद्ममन्त्री की प्रार्थना पर अमरचन्द्र ने 'पद्मानन्द' महाकाव्य की रचना की। रत्नमन्दिरगणि-कृत 'उपदेशतरंगिणी' में भी अमरचन्द्रसूरि के आशुकवित्व के सम्बन्ध में एक प्रसंग दिया हुआ है।

'बालभारत' और 'पद्मानन्दमहाकाव्य' के अतिरिक्त अमरचन्द्रसूरि की अन्य कृतियों में निम्नलिखित रचनाओं के नाम बताए जाते हैं:—(१) काव्यकल्पलतावृत्ति (२) काव्यकल्पलता या कवि-शिक्षा (३) चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरितानि (४) 'सुकृत-संकीर्तन' के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम चार श्लोक (५) स्यादिशब्दसमुच्चय (६) काव्य-कल्पलतापरिमल (७) छन्दोरत्नावली (८) अलंकारप्रबोध, (९) कलाकलाप (१०) काव्यकल्पलतामंजरी तथा (११) सूक्तावली। इनमें प्रथम पाँच ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं, अन्तिम चार अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं और शेष दो ग्रन्थों की प्रतियाँ जैन भण्डारों में सुरक्षित हैं। 'पद्मानन्दमहाकाव्य' में कतिपय श्लोक ऐसे भी हैं[3] जिनसे यह ध्वनित होता है कि कवि ने चौबीस तीर्थंकरों के चरित्र से सम्बन्धित पृथक्-पृथक्

---

(१) नयचन्द्रसूरि ने अपने 'हम्मीरमहाकाव्य' में कवि के इस विरुद का उल्लेख इस श्लोक में किया है:—

वाणीनामधिदेवता स्वयमसौ ख्याता कुमारी ततः
प्रायो ब्रह्मवतां स्फुरन्ति सरसा वाचां विलासा ध्रुवम्।
कुक्कोकः सुकृती जितेन्द्रियचयो हर्षः स वात्स्यायनो
ब्रह्मज्ञप्रवरो महाव्रतधरो वेणीकृपाणोऽमरः॥

—हम्मीरमहाकाव्य, सर्ग १४, श्लोक २१

(२) कविवर नानाक ने 'गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु' यह समस्या दी थी, जिसकी पूर्ति कवि ने इस प्रकार की थी:—

श्रुत्वा ध्वनेर्मधुरतां सहसाऽवतीर्ण
भूमौ मृगे विगतलांछन एष चन्द्रः।
मागान्मदीयवदनस्य तुलामितीव
गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु॥

(३) कुछ श्लोक इस प्रकार हैं:—

चौवीस काव्यों की रचना की थी, किन्तु आदि तीर्थंकर के चरित्र से सम्बन्धित 'पद्मानन्द काव्य' ही अब तक उपलब्ध हो सका है, शेष तीर्थंकरों के चरित्र से सम्बन्धित काव्य प्राप्त नहीं हुए हैं।

अमरचन्द्रसूरि ने 'बालभारत' की रचना कब की ? इसका निश्चित उत्तर किसी सूत्र से नहीं मिलता। फिर भी तत्कालीन रचनाओं तथा शिलालेखों से कतिपय ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे 'बालभारत' के रचनाकाल पर प्रकाश पड़ता है। राजशेखरसूरि-कृत 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध', जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, से ज्ञात होता है कि अमरचन्द्र वीसलदेव के समकालीन थे। इतिहासकारों के अनुसार वीसलदेव ने धौलका में सं० १२९४ से १३२८ तक राज्य किया, अतः 'बालभारत' की रचना भी इसी समय के आसपास होनी चाहिए। पाटन के अष्टापदजिनालय के अन्तःस्थित अमरचन्द्रसूरि की प्रतिमा के ऊपर यह लेख खुदा है:—

सं १३४९ चैत्रबदि ६ शनौ श्रीवायटीयगच्छे श्रीजिनदत्तसूरिशिष्य पण्डित श्रीअमरचन्द्रमूर्तिः पं० महेन्द्र-शिष्य मदनचन्द्राख्येन कारिता। शिवमस्तु ॥

इस लेख से स्पष्ट हो जाता है कि अमरचन्द्रसूरि की मृत्यु सं० १३४९ के पूर्व ही हो चुकी थी। अतः 'बालभारत' की रचना निश्चय ही इस सम्वत् के पूर्व की है। राजशेखरसूरि के 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' के अनुसार 'बालभारत' की रचना अमरचन्द्रसूरि के वीसलदेव नरेन्द्र से परिचित होने के पूर्व ही हो चुकी थी। इसी प्रबन्ध से यह भी ज्ञात होता है कि कवि की दूसरी कृति 'पद्मानन्द महाकाव्य' की रचना के पूर्व ही 'बालभारत' की रचना हो चुकी थी। 'पद्मानन्द' का रचनाकाल हमने आगामी पृष्ठों में सं० १२९४ से सं० १२९७ के मध्य का काल माना है। इस आधार पर 'बालभारत' की रचना निश्चित रूप से सं० १२९४ के पर्याप्त पहले की होनी चाहिए, क्योंकि अमरचन्द्र और वीसलदेव के प्रथम मिलन, जिसका समय सं० १२९४-९५ के आसपास है, के समय बालभारत की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी और उसके एक श्लोक 'दधिमथनविलोल' के आधार पर उन्हें कवियों द्वारा 'वेणीकृपाण' का विरुद भी प्राप्त हो चुका था।

अमरचन्द्रसूरि जिनदत्त सूरि के शिष्य थे। जिनदत्तसूरि ने सं० १२७७ में 'विवेकविलास' की रचना की थी।[1] कवि ने 'बालभारत' के प्रशस्ति सर्ग में अपने गुरु का स्मरण 'विवेकविलास' के रचयिता के रूप में इस प्रकार किया है:—

पूर्वं श्रीवृषभादीनामर्हतां चरितानि ते।
पुरः श्रीपद्म ! संक्षेपाद् वक्ष्ये विस्तरतस्ततः ॥
—चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरित्र, श्लोक २

**यथा तेनार्थितोऽत्यर्थमकरोदमरो मुनिः।
चरित्राणि जिनेन्द्राणां शृणुत श्रावकास्तथा ॥
—पद्मानन्द काव्य, सर्ग १, श्लोक ५६**

(१) जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृष्ठ ४१५

श्रीविवेकविलासाद्यैर्यत्प्रबन्धैः सहस्रशः ।
हृतमोहतमो कारि करैरिव रवेर्जगत् ।।

इससे यह सिद्ध होता है कि 'बालभारत' की रचना 'विवेकविलास' के रचनाकाल सं० १२७६ के पश्चात् हुई ।

इन तर्कों के आधार पर 'बालभारत' का रचनाकाल सं० १२७७ से सं० १२६४ का मध्यकाल स्वीकार किया जा सकता है ।

'बालभारत' की रचना कवि ने वायट-निवासी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर की थी । प्रशस्ति सर्ग में कवि ने इस रहस्य का उद्घाटन इन पंक्तियों में किया है:—

श्रीवायटस्थाननिवासिनस्ते सम्भूय भूयस्तरहर्षभाजः ।
कदाचिदागत्य निवेशवेश्म, जगुर्द्विजास्तं मुनिचक्रशक्रम् ।।
मरुद्वाताऽस्माकं भुवनजयिनौ यस्य तनयौ
तयोः सङ्गो यस्यामजनि हनुमद्भीमभटयोः ।
तथा संक्षेप्यासौ पृथुरपि महाभारतकथा
यथा स्वल्पाभिः स्यात् तिथिभिरतिथिः कर्णपथयोः ।।
आज्ञापितस्तदिह कर्म्मणि सूरिभिस्तैः ख्यातः क्षितावमरचन्द्र इति स्वशिष्यः
श्रीबालभारत इति प्रततान काव्यं वीराङ्कमेतदविनश्वरमात्मनोऽङ्कम् ।।[१]

४४ सर्ग के इस महाकाव्य की कुल श्लोक-संख्या अनुष्टुप् परिमाण से ६६५० है । यह कवि ने स्वयं इन शब्दों में बताया है:—

चतुर्युक्तचत्वारिंशत्सर्गैरासन्ननुष्टुभाम् ।
षट्साहस्री नवशती पंचाशद् बालभारते ।।[२]

कथानक

'बालभारत' का कथानक १८ पर्वों और ४४ सर्गों में विभक्त है । पहले (आदि) पर्व में बारह सर्ग हैं । पहले सर्ग में कुरुवंश के आदिपुरुष चन्द्र से ययाति-पर्यन्त राजाओं का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है । दूसरे सर्ग में ययाति-पुत्र पुरु से दुष्यन्त तक १८ राजाओं का विवरण दिया गया है । तीसरे सर्ग में दुष्यन्त-शकुन्तला का प्रेमाख्यान तथा भरत से लेकर प्रतीप तक १२ राजाओं का वृत्तान्त दिया गया है । चौथे सर्ग में प्रतीप-पुत्र राजा शान्तनु के धीवरकन्या सत्यव्रती पर मुग्ध होने, देवव्रत भीष्म के आजन्म कुमार रहने की प्रतिज्ञा करने, शान्तनु-सत्यवती का परिणय होने, चित्रांगद-विचित्रवीर्य उत्पत्ति, युद्ध में चित्रांगद की मृत्यु, यक्ष्मा से पीडित होकर विचित्रवीर्य की मृत्यु, कृष्णद्वैपायन के नियोग से अम्बिका, अम्बालिका तथा दासी के गर्भ से क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर की उत्पत्ति, धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सौ कौरवों तथा पाण्डु के युधिष्ठिरादि पाँच पाण्डवों की उत्पत्ति तथा द्रोणाचार्य के समीप कौरव-पाण्डवों की शिक्षा का वर्णन किया गया है । पाँचवें सर्ग में राजकुमारों की कलापरीक्षा, उसमें केवल अर्जुन का

---

(१) बालभारत, प्रशस्ति, श्लोक ४२—४४ (२) वही, प्रशस्ति, श्लोक ४८

सफल होना, कर्ण द्वारा शरविद्या का प्रदर्शन, दुर्योधन का कर्ण को चम्पा का राज्य प्रदान करना, कौरव-पाण्डवों में वैमनस्य का बढ़ना, दुर्योधन का पाण्डववध के लिए लाक्षागृह का निर्माण कराना, पाण्डवों का लाक्षागृह से सकुशल निकल जाना, भीम-हिडिम्बा-परिणय, घटोत्कच की उत्पत्ति, द्रौपदी-स्वयंवर तथा द्रौपदी का पाँच पाण्डवों की पत्नी होना, इन घटनाओं का वर्णन किया गया है। छठे सर्ग में दुर्योधन के विरोध करने पर भी भीष्मादि के प्रयत्न से पाण्डवों को आधा राज्य मिलना, खाण्डव वन में पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थनगर की नींव डालना, अर्जुन की द्वादशवर्षीय तीर्थयात्रा, द्वारिका में अर्जुन-सुभद्रा-परिणय, अभिमन्यु की उत्पत्ति तथा अर्जुन का इन्द्रप्रस्थ लौटना, इन घटनाओं का वर्णन हुआ है। सातवें सर्ग में कृष्ण- अर्जुन की वनक्रीडा तथा दोलान्दोलन-क्रीडा का तथा आठवें सर्ग में जलकेलि एवं पुष्पावचय-प्रसंग का वर्णन है। नवें सर्ग में सन्ध्या, सूर्यास्त, चन्द्रोदय तथा मानिनी-मान का वर्णन है। दसवें सर्ग में सुरत-सुरापान, ग्यरहवें में सूर्योदय तथा बारहवें सर्ग में खाण्डव-दाह का वर्णन किया गया है।

दूसरे (सभा) पर्व में तेरहवें सर्ग से सत्रहवें सर्ग तक के पाँच सर्गों का समावेश है। तेरहवें सर्ग में खाण्डवदाह से मयासुर की अर्जुन द्वारा रक्षा, कृतज्ञ मय द्वारा युधिष्ठिर के लिए सभा का निर्माण, युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ करने का निश्चय करना और भीम द्वारा जरासंध का वध, चौदहवें सर्ग में पाण्डवों की दिग्विजय, पन्द्रहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ का प्रारम्भ, कृष्ण की प्रथम पूजा के प्रश्न पर शिशुपाल का विरोध, कृष्ण के चक्र से शिशुपाल की मृत्यु तथा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति, सोलहवें सर्ग में दुर्योधन द्वारा मय-कृत सभा का निरीक्षण, दुर्योधन की स्थल में जलभ्रान्ति तथा जल में स्थलभ्रान्ति को देख कर भीमादि का हास्य तथा अपमानित दुर्योधन का द्यूतक्रीडा द्वारा पाण्डवों का सर्वस्व छीनने का संकल्प, सत्रहवें सर्ग में दुर्योधन के निमन्त्रण पर द्यूतक्रीडा के लिए युधिष्ठिर का हस्तिनापुरगमन, युधिष्ठिर का राज्य तथा द्रौपदी को भी द्यूत में हार जाना, द्रौपदी-चीरहरण, पराजित पाण्डवों का बारह वर्ष के लिए वनवास, इन प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

तीसरे (वन) पर्व में १८ से २१ सर्ग तक के चार सर्ग हैं। अठारहवें सर्ग में काम्यक वन में अर्जुन की तपस्या, किरातवेशधारी शिव से युद्ध, पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्र की प्रार्थना पर अर्जुन का स्वर्गगमन, उर्वशी का प्रणयप्रस्ताव, अर्जुन का उसे ठुकराना तथा उर्वशी का अर्जुन को षण्ढ होने का शाप देना, उन्नीसवें सर्ग में युधिष्ठिर का गन्धमादन पर्वत पर आगमन, बीसवें सर्ग में स्वर्ग से अर्जुन का गन्धमादन पर्वत पर आना और युधिष्ठिर से मिलना, इक्कीसवें सर्ग में चित्रसेन गन्धर्व द्वारा दुर्योधन को बन्दी बनाया जाना और धर्मराज के आदेश पर अर्जुन का दुर्योधन को मुक्त कराना, इन घटनाओं का वर्णन है।

चौथा (विराट) पर्व २२ से २५ तक चार सर्गों में विस्तृत है। बाईसवें सर्ग में बारह वर्ष के वनवास के बाद एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए पाण्डवों का वेश बदल कर राजा विराट के यहाँ निवास तथा कीचक की द्रौपदी से छेड़छाड़, तेईसवें सर्ग में भीम द्वारा

कीचक की मृत्यु, चौबीसवें सर्ग में दुर्योधन द्वारा विराट की गायों का अपहरण तथा पाण्डवों का कौरवों को हराना, पच्चीसवें सर्ग में अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने पर पाण्डवों का अपने वास्तविक रूप में प्रकट होना तथा अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह, ये घटनाएँ वर्णित हुई हैं।

२६ से ३० सर्ग तक पाँच सर्गों में पाँचवाँ (उद्योग) पर्व व्यापक है। छब्बीसवें सर्ग में युधिष्ठिर का दुर्योधन के समीप सन्धि-प्रस्ताव भेजना, दुर्योधन का युद्ध के बिना सूच्यग्र-परिमाण भूमि देने से भी इन्कार करना, सत्ताईसवें सर्ग में कृष्ण द्वारा पुनः सन्धि का असफल प्रयत्न करना, अट्ठाईसवें सर्ग में कुन्ती का कर्ण के समीप जाना, कर्ण का अर्जुन को छोड़ कर शेष पाण्डवों को न मारने की प्रतिज्ञा करना तथा विप्रवेशधारी इन्द्र को कुण्डल-कवच देना, इन महाभारतीय प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

छठा (भीष्म) पर्व ३१ एवं ३२ इन दो सर्गों में विभक्त है। इक्कीसवें सर्ग में भीष्म के कौरव-सेना के सेनापति पद पर अभिषिक्त होने तथा बत्तीसवें सर्ग में उनके दस दिन के युद्ध तथा शिखण्डी की ओट से छोड़े गये अर्जुन के बाणों से उनके धराशायी होकर शर-शैया पर लेटने का वर्णन है।

सातवाँ (द्रोण) पर्व ३३ सर्ग से ३६ सर्ग तक विस्तृत है। तेतीसवें सर्ग में भीष्म के बाद द्रोण द्वारा चक्रव्यूह-रचना, सप्त महारथियों द्वारा निःशस्त्र अभिमन्यु के वध तथा सूर्यास्त से पहले जयद्रथ-वध-सम्बन्धी अर्जुन की प्रतिज्ञा का विवरण है। पैंतीसवें सर्ग में जयद्रथ-वध तथा छत्तीसवें सर्ग में कर्ण द्वारा घटोत्कच का वध तथा द्रोण द्वारा पाण्डवों की सेना का भीषण संहार देख कर सत्यवादी युधिष्ठिर का 'अश्वत्थामा (हाथी) मारा गया' यह मिथ्या-कथन, द्रोण का विह्वल होकर शस्त्र-त्याग तथा धृष्टद्युम्न द्वारा उनका वध—ये घटनाएँ वर्णित हैं।

आठवें (कर्ण) पर्व की कथा का वर्णन सैंतीसवें सर्ग में हुआ है। इसमें कर्ण के सेनापति बनने तथा कर्णार्जुन-युद्ध में कर्ण की मृत्यु का वर्णन हुआ है। नवें (शल्य) तथा दसवें (सौप्तिक) पर्व का समावेश अड़तीसवें सर्ग में हुआ है। शल्य पर्व में कर्ण की मृत्यु के पश्चात् शल्य के सेनापति बनने, युद्ध में शल्य की मृत्यु होने, दुर्योधन के ह्रद में छिपने दुर्योधन-भीम का गदायुद्ध होने, भीम के दुर्योधन के उरुओं पर गदाप्रहार करने तथा दुर्योधन के घायल होकर गिर पड़ने का वर्णन है। दुर्योधन के सन्तोष के लिए अश्वत्थामा द्वारा सोते हुए पांचालों का वध, दुर्योधन की मृत्यु, अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मशिरोस्त्र का प्रयोग करके उत्तरा के गर्भ का गिराया जाना, श्रीकृष्ण का अपने तप के प्रभाव से उसे (गर्भस्थ शिशु को) जीवित करना तथा कृष्ण का अश्वत्थामा को ३००० वर्ष तक निर्जन वन में भ्रमण करने का शाप देना, इन घटनाओं का वर्णन सौप्तिक पर्व में हुआ है।

ग्यारहवें (स्त्री) पर्व की कथा का वर्णन उनतालीसवें सर्ग में हुआ है। इसमें कौरव-स्त्रियों के करुण विलाप, युधिष्ठिर द्वारा कौरवों की अन्त्येष्टि तथा कौरव-वीरों को जलांजलि दिये जाने का वर्णन है। बारहवें (शान्ति) पर्व की कथा का समाहार चालीसवें

सर्ग में हुआ है। इसमें शर-शैया पर लेटे हुए भीष्मपितामह के उपदेशों का वर्णन है। तेरहवें (अनुशासन) पर्व को इकतालीसवें सर्ग में स्थान मिला है। इसमें उत्तरायण सूर्य के आने पर भीष्म के प्राण छोड़ने का वर्णन है। चौदहवें से लेकर अठारहवें पर्व तक (अश्वमेध, आश्रमवास, मौशल, प्रास्थानिक तथा स्वर्गारोहण) पाँच पर्वों का समावेश ब्यालीसवें सर्ग में हुआ है। अश्वमेध पर्व में युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये जाने का वर्णन है। आश्रमवास पर्व में गान्धारी, कुन्ती आदि के साथ धृतराष्ट्र के आश्रमगमन तथा तपोमय जीवन बिता कर स्वर्ग-प्रयाण करने का वर्णन है। मौशल पर्व में कौशिक मुनि के शाप से यादवों के नाश तथा बलराम और कृष्ण की मृत्यु का वर्णन है। प्रास्थानिक पर्व में कृष्ण-बलराम की मृत्यु से दुःखी पाण्डवों का परीक्षित को राज्य-भार सौंप कर हिमालय की ओर प्रस्थान, द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम का मार्ग में ही गिरना तथा धर्मराज का सदेह स्वर्ग-गमन, इन घटनाओं का वर्णन है। स्वर्गारोहण पर्व में क्षणभर के लिए युधिष्ठिर के नरक में जाने एवं पुनः स्वर्ग जाकर अपने बन्धुओं को देखने का वर्णन है।

आदिपर्व-सम्बन्धी आस्तीक पर्व की कथा तेतालीसवें सर्ग में है। इस सर्ग में परीक्षित का मृगयार्थ बन जाना, 'मृग किधर गया है' इस प्रश्न का उत्तर न देने पर उनका ध्यानस्थ मुनि शमीक के कण्ठ में मृत साँप डाल देना, यह देख कर शमीक-पुत्र शृंगी ऋषि का क्रोधित होना और सातवें दिन तक्षक सर्प के काटने से परीक्षित की मृत्यु होने का शाप देना, तक्षक का परीक्षित को डँसना, परीक्षित की मृत्यु, परीक्षित-पुत्र जनमेजय का नागयज्ञ करना, आस्तीक मुनि की प्रार्थना पर जनमेजय का तक्षक को मुक्त करना, इन घटनाओं का वर्णन हुआ है। बालभारत का चवालीसवाँ सर्ग प्रशस्ति सर्ग है। इसमें कवि ने अपनी गुरुपरम्परा का वर्णन किया है। वस्तुतः तेतालीसवें सर्ग की समाप्ति के साथ ही कथानक समाप्त हो जाता है।

'बालभारत' की कथासामग्री 'महाभारत' से ली गयी है। किन्तु, जहाँ 'महाभारत' की विविध घटनाओं में महाकाव्योचित धारावाहिकता का अभाव है, वहाँ 'बालभारत' के कथानक में प्रवाह दृष्टिगत होता है। विविध घटनाओं में सामंजस्य स्थापित करके सुसंगठित कथानक के निर्माण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कवि ने 'महाभारत' के कथानक में कोई परिवर्तन नहीं किया है। 'बालभारत' में यत्र-तत्र पात्रों के कथोपकथन नाटकीय सजीवता लिए हुए हैं और वे कथानक के प्रवाह को गति देते हैं। इस प्रकार अमरचन्द्रसूरि ने 'महाभारत' के विस्तृत कथानक को संक्षेप में और सुसंगठित रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है।

'बालभारत' का कथानक बहुत व्यापक है और उसका सम्बन्ध अनेक पात्रों से है। ये सब पात्र पौराणिक हैं, अतः उनका चरित्र-चित्रण पौराणिक पार्श्वभूमि पर हुआ है। इसी कारण कवि पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई नवीनता नहीं दिखा सका है।

चरित्र-चित्रण

'महाभारत' की तरह 'बालभारत' के पात्रों में सामूहिक व्यक्तित्व का विकास मिलता है। एक ओर सत्पक्ष है तो दूसरी ओर असत्पक्ष। सत्पक्ष के नियन्ता स्वयं श्री कृष्ण हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य है सत्पक्ष की स्थापना तथा असत्पक्ष का विनाश या तिरोभाव। वे कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि आसुरी शक्तियों का दमन करके धर्म की स्थापना करने का प्रयत्न करते हैं। पाण्डव और उनके सहायक सत्पक्ष के पात्र हैं और कौरव और उनके सहायक असत्पक्ष के। पाण्डवों का चरित्र 'बालभारत' में सबसे अधिक व्यापक है। वे प्रधान पात्रों के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। काव्य की विविध घटनाएँ उन्हीं के चरित्र से संबद्ध हैं। युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा, भीम की शक्तिमत्ता और अर्जुन की वीरता के सजीव चित्र 'बालभारत' में विद्यमान हैं। इनके साथ-साथ दुर्योधन, कर्ण, भीष्म, द्रोण आदि पात्र भी अपनी परम्परागत विशेषताएँ लिये हुए हैं। स्त्री-पात्रों में कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि का चरित्रांकन भी 'बालभारत' में सुन्दर बन पड़ा है।

अमरचन्द्रसूरि ने 'बालभारत' में कुशल कलाकार के समान प्रकृति का प्रयोग किया है। विविध प्राकृतिक दृश्यों से 'बालभारत' भरा पड़ा है। उसमें देश-काल-स्थिति-सम्बन्धी

प्रकृति-चित्रण

प्राकृतिक वर्णन बहुत हैं। महाकाव्यों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए जहाँ अमरचन्द्रसूरि किसी देश-विशेष का वर्णन करते हैं वहाँ उसकी प्रमुख विशेषताओं को चित्रित करना नहीं भूलते। अर्जुन की दिग्विजय के प्रसंग में मलयाद्रितटी के वर्णन में पन्नगों से आवृत चन्दनवृक्ष, तमालमाल एवं लवंगलता का वर्णन देशगत विशेषताओं को उभारने के लिए इस प्रकार किया गया है:—

तत्र वर्हातपत्राणि दृष्ट्वा केकिविशङ्किभिः।
चन्दनाः पन्नगैर्मुक्ताः ययुस्तत्सैन्यसेविताम्॥
खेलंस्तमालामालासु हेलामालासु संसृजन्।
तत्र रिङ्गल्लवङ्गेषु तमसेवत मारुतः॥[1]

इसी प्रकार अर्जुन के कलिंगविजय के निर्देश में समुद्रतट पर फैली सुपारी और पान की लताओं तथा नारिकेलि-वृक्षों के वर्णन में कलिंग देश की पार्श्वभूमि का कलात्मक वर्णन इस प्रकार हुआ है:—

तत्र नीरधितीराप्तपूगाभोगिलतादलैः।
तद्वीरैः किंचिदस्मारि नारिकेलीफलेक्षणात्॥[2]

कवि ने वातावरण और घटना के अनुरूप प्रकृति के प्रयोग किये हैं। वनपर्व के प्रथम सर्ग में अर्जुन प्रतिश्रुतविद्या की साधना के लिए काम्यक वन में जाते हैं। वहाँ उनकी तपस्या के प्रभाव से प्रकृति भी प्रभावित होती है। पशु-पक्षी अपने नैसर्गिक वैर विरोध को त्याग कर परोपकार में लीन हो जाते हैं। अर्जुन की तपस्या की पृष्ठभूमि में काम्यक वन

(१) बालभारत, पर्व २, सर्ग २, श्लोक १०३, १०५
(२) वही, पर्व २, सर्ग २, श्लोक १२५

का यह वर्णन अनुरूप वातावरण के निर्माण के लिए और तपस्यासिद्धि की अनुकूलता प्रदर्शित करने के लिए किया गया है:—

तेनासितीव्रव्रतलीलयैव निहन्यमनैरिव भीतभीतैः ।
तस्मिन् प्रदेशे सकलोऽप्यमोचि द्वेषादिदोषैरसुमत्समूहः ॥
पुच्छं चमर्यास्तरुगुच्छलग्नममोचयत्सिंहयुवा नखाग्रैः ।
श्रान्तं रतान्ते कलविङ्कयुग्मं सर्पमृदु व्यंज्यत फूत्कृतेन ॥
शुष्यज्जलादाशु नदादुदस्य तिमिर्दकेऽमोचि वकेन भूरौ ।
अपाययन्मातृविमुक्तमेणमेणारिनारी कृपया पयांसि ॥
समं समग्रैः ऋतुभिर्व्यभूषि वनावनी तत्र विमुक्तवैरैः ।
आविर्बभूवार्जुनमर्जुनस्य यशोलतापुष्पततिच्छलेन ॥[१]

इस प्रकार के प्रयोगों के द्वारा कवि ने प्रकृति और मानव-जीवन में एक सहज सम्बन्ध स्थापित किया है। निश्चय ही प्रकृति के ऐसे वर्णन अधिक प्रभावशाली होते हैं।

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति के निर्भर सौन्दर्य के चित्र खींचे हैं। ऐसा उस समय हुआ है जब किसी पात्र के संमुख प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य आ गया है और वह उसका वर्णन करता है। खाण्डव वन में पहुँचने पर कृष्ण वन-सौन्दर्य का उपभोग करते हुए अर्जुन से कहते हैं:—

पश्य स्वभावमधुराणि मधूकगुल्माद्
गुंजन्मधुव्रतवधूनि मधूनि पीत्वा ।
उच्चैस्तरेषु कलितस्खलितः समीरो
वात्येष मत्त इव हासितवल्लिपुष्पः ॥[२]

प्रकृति के इन वर्णनों से कृष्ण और अर्जुन के हृदय में निहित उल्लास भी प्रकट होता है। वस्तुतः ये वर्णन परोक्ष-रूप से कृष्णार्जुन की मानसिक स्थिति के व्यंजक हैं। इसी प्रकार हिमवत्प्रदेश के वर्णन में वायु द्वारा उड़ाये गये निर्झर-जल-सीकरों के अनवरत स्पर्श से प्रमुदित होकर मयूरों के नृत्य करने और चातकों के प्रफुल्लित होने का वर्णन करके प्रकृति का यह सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया गया है :—

लसन्नीलग्रावच्छविभरविनीलेऽम्बरतले
सदावर्षाहर्षादिहतटवनेषु क्षितिभृतः ।
समीरप्राग्भारप्रहतनिपतन्निर्झरकणै–
र्मयूरा नृत्यन्ति स्फुरति परितश्चातकचयः ॥[३]

'बालभारत' में पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत हुआ है। आदिपर्व के

---

(१) बालभारत, पर्व ३, सर्ग १, श्लोक २८–३१ (२) वही, पर्व १, सर्ग ७, श्लोक ३८
(३) वही, पर्व ३, सर्ग २, श्लोक २६

सप्तम सर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन कृष्ण-अर्जुन के वन में विहार करने और खाण्डव-दाह की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है :—

अन्येद्युरर्जुनहरी तपसस्तनूज
मापृच्छ्य पौरपरिवारपरीतपार्श्वौ ।
जाते वसन्तसमये यमुनोर्मिविन्दु–
सिक्ताय खाण्डववनाय गतौ विहर्तुम् ॥[1]

पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित की गयी प्रकृति को कहीं-कहीं कवि ने स्वाभाविकता के विरुद्ध आचरण करते हुए दिखाया है। इन स्थलों पर प्रकृति अलौकिक हो गयी है। महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व दुर्योधन की राजधानी हस्तिनापुर में उदित हुए सूर्य में शीतलता और चन्द्रमा में उष्णता दीख पड़ती है। पृथ्वी काँपती हुई प्रतीत होती है, पूर्णिमा की रात्रि में भी चन्द्रोदय न होने से अमावास्या की तरह घोर अन्धकार छाया रहता है। इसी तरह की अनेक अप्राकृतिक घटनाएँ घटित होती हैं जिनका वर्णन करता हुआ कर्ण कुन्ती से कहता है :—

मातर्महोत्पाततति: पुरे न: प्रतिक्षणं कौरवभैरवास्ति ।
तप्तो निशीन्दुः कुरुपूर्वजः स्यात्क्रुधेव दुर्योधनदुर्नयस्य ॥
उदेति शीतो मृतिसम्मुखानामस्मादृशां भेदभियेव भानुः ।
विकम्पते भूरपि वीरशय्याशयालुदुर्योधनसङ्गमेच्छुः ॥
कुहूकलामस्मदकीर्तिलेपैरिवाश्रयत्कार्तिकपूर्णिमापि ।
चंचन्ति चास्मत्क्षयकालरक्तः करालवक्त्राग्निशिखावदुल्काः ॥
प्रासादवृन्देऽस्मदभाग्यदुष्टभूतग्रहार्ता इव देवतार्चाः ।
स्विद्यन्ति कम्पं दधते हसन्ति वमन्ति रक्तं निपतन्ति भूमौ ॥[2]

प्रकृति में इन अलौकिक घटनाओं का जो उल्लेख किया गया है उन्हें कौरवों के विनाश का भविष्योन्मुखी संकेत भी माना जा सकता है। कर्ण द्वारा कथित प्रकृति के इस रूप में भविष्य की व्यंजना पूर्णतः स्पष्ट है।

आगे कवि ने प्रकृति के जो चित्र उपस्थित किये हैं उनमें कुछ स्थलों पर प्रकृति पर मानव-भावनाओं के आरोप किये गये हैं। किन्तु, वस्तुतः प्रकृति का यह मानवीकरण उद्दीपन के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। निम्नोद्धृत पंक्तियों में पारावतमिथुनों को केलि में रत देख कर रम्भा स्वयं भी कामवश होकर वसन्त-नायक का आलिंगन कर उसे मकरन्दरस देती है :—

मत्तेषु पश्य दयितारसविह्वलेषु
पारावतेषु कृतकौतुककूजितेषु ।

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग ७, श्लोक २

(२) वही, पर्व ५, सर्ग ५, श्लोक २४–२५, २८–२९

एषा वसन्तपरिरम्भभरेण रम्भा

कामातुरेव मकरन्दरसं ददाति ॥[1]

यहाँ यद्यपि रम्भा (कदलीवृक्ष) में कामातुरा नयिका की चेष्टाओं का आरोप किया गया है, किन्तु पर्यवसान में प्रकृति की शृंगार-भावना कृष्ण-अर्जुन की मनःस्थिति के लिए उद्दीपक है। इसी प्रकार :—

कौन्तेय पश्य वनसीमनि दूरकृष्ट

कालायसासितशिलीमुखचक्रवालाः।

पान्थान्विकम्पयति केशव किंकिरातः

कोऽप्यत्र निष्कृपमना ननु किंकिरातः ॥[2]

इस श्लोक में भी भृंगों से युक्त अशोक पथिकों को कँपाता है। वस्तुतः इस चित्र में भी वसन्त के व्यापक उद्दीपक प्रभाव का रूप है।

इसके बाद प्रकृति पार्श्वभूमि में चली जाती है और मानवीय विलास प्रमुख हो जाता है। जैसे :—

स्मरातुरः कश्चन दूरचुम्बनानुकारलीलामिलदोष्ठसम्पुटः।

प्रियामुखे पुष्पलयोन्मुखे समं तदेव तन्वत्यतिसंभवं दधौ ॥[3]

यहाँ पुष्पावचय के वर्णन में नाममात्र के लिए प्रकृति विद्यमान है। वस्तुतः प्रकृति के स्थान पर विलासक्रीडा ही उल्लसित हो उठी है। 'बालभारत' में विलास के ऐसे वर्णन बहुत हैं।

'बालभारत' में कहीं-कहीं प्रकृति के मानवीकरण के सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। निम्नोद्धृत पंक्तियों में शरद् को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है:—

चन्द्रचारुवदना धृतभास्वद्दर्पणा सुरधनुर्मुकुटाढ्या।

हंसहाररुचिरा च तदीयक्वाणनूपुररवा शरदागात् ॥[4]

प्रातःकाल के इस वर्णन में प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है:—

अपरशिखरचूलासिन्धुसम्बन्धिनीभिः

किमपि कुमुदिनीभिर्द्राक् परीरम्भलुब्धे।

लसति शशिनि कान्ते कौमुदी कोपनेवाऽ

द्भुतमलभत कार्श्यं शोणिमानं च किंचित् ॥[5]

यहाँ चन्द्रिका को कोपना नायिका के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने पति चन्द्रमा को अपनी (चन्द्रिका की) उपस्थिति में ही कुमुदिनियों (परनारियों) का आलिंगन करने को उत्सुक देख कर क्रोध से लाल और दुःख से कृश (फीकी कान्तिवाली) हो रही है।

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग ७, श्लोक ३३ (२) वही, पर्व १, सर्ग ७, श्लोक ४१

(३) वही, पर्व १, सर्ग ८, श्लोक १८ (४) वही, पर्व ८, सर्ग १, श्लोक २५६

(५) वही, पर्व १, सर्ग ११, श्लोक १२

अमरचन्द्रसूरि अपनी प्रकृति को आलंकारिक-रूप में चित्रित करने की कला में भी सिद्धहस्त हैं। रूपवर्णन में उपमेय के वैशिष्ट्य को प्रकट करने के लिए प्राकृतिक उपमानों की सुन्दर योजना की गयी है। जैसेः—

गीतकं मृदुपदेन तदानीं यन्मदेन जगुरम्बुजनेत्राः।
षट्पदास्तदलपन्खलु लोला सीधुगन्धिमुखपानमिषेण ॥[1]

यहाँ नायिका के स्वर को अपह्नुति द्वारा भौंरों की गुंजार बताया गया है।

इस प्रकार 'बालभारत' में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। उसके प्रायः प्रत्येक पर्व में विविध प्रकार से प्रकृति की योजना हुई है। प्रथम पर्व के चतुर्थ सर्ग में मृगया का वर्णन है। सातवें सर्ग से लेकर ग्यारहवें सर्ग तक महाकाव्यीय वर्ण्यविषयों के वर्णन के रूप में प्रकृतिचित्रण हुआ है तथा बारहवें सर्ग में खाण्डवदाहप्रसंग में भयंकर प्रकृति के चित्र उपस्थित किये गये हैं। द्वितीय पर्व के प्रथम सर्ग में विन्दुसर का वर्णन है, तथा द्वितीय सर्ग में दिग्विजयप्रसंग के अन्तर्गत विविध देशों की प्रकृति का वर्णन हुआ है। तृतीय पर्व में हिमालय तथा ऋतुओं का वर्णन है। चतुर्थ पर्व में सैरन्ध्री के रूप-वर्णन में प्रकृति की योजना उपमानों के रूप में प्राप्त होती है। आगे के पर्वों में भी प्रकृति का उपयोग किसी-न-किसी रूप में हुआ है।

सौन्दर्य-वर्णन

प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ 'बालभारत' में कवि ने पात्रों के विविध सौन्दर्यचित्र भी प्रस्तुत किये हैं। नारी-पात्रों में द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा एवं इला के तथा पुरुष-पात्रों में अर्जुन, अभिमन्यु एवं बुध आदि के सौन्दर्य-चित्र खींचे गये हैं। पात्रों के सौन्दर्य का चित्रण करते समय कवि ने सौन्दर्य के समग्र प्रभाव को व्यक्त किया है, केवल इला के सौन्दर्य-वर्णन में नख-शिख-प्रणाली का उपयोग किया गया है। यहाँ कवि ने कविसमयसिद्ध उपमानों और मान्यताओं का उपयोग प्रचुरता से किया है। परम्परा से शृंगाररस का वर्ण कृष्ण माना जाता है। इसी आधार पर इला के केशपाश को पुंजीभूत शृंगाररस कह कर केशपाश के असीम आकर्षक होने की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी हैः—

विरंचिरस्या नितमाममान्तमङ्गेषु शृङ्गाररसं सुकेश्याः।
स्निग्धोल्लसत्कुन्तलकैतवेन निधाय मूर्ध्नि स्तवकीचकार ॥[2]

इसी प्रकार नाभि की गम्भीरता एवं अतिशय रमणीयता व्यक्त करने के लिए उसे ह्रद का उपमान दिया गया है और उसमें शिव की क्रोधाग्नि से तप्त कामदेव के निवास करने की कल्पना की गयी है। नाभि के समीप सुशोभित रोमावली को वर्णसादृश्य से शृंगार रस की मूर्तिमती धारा कह कर नाभिप्रदेश के असीम लावण्य की व्यंजना इस प्रकार की गयी हैः—

अस्या ध्रुवं नाभिह्रदे पपात स्मरो हरक्रोधकृशानुतप्तः।

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग १०, श्लोक ३३ (२) वही, पर्व १, सर्ग १, श्लोक १८

रोमावली भाति यदत्र मूर्तोद्धृतेव शृङ्गाररसस्य धारा ॥[1]

यद्यपि इस वर्णन में प्रयुक्त सभी उपमान परम्परागत हैं, फिर भी उनकी योजना जिस ढंग से की गयी है उसमें लालित्य है और वे अवयव-विशेष के सौन्दर्य को व्यक्त करने में समर्थ हैं। कहीं-कहीं कवि ने अत्यन्त मनोहर और नूतन कल्पनाएँ की हैं जिनमें भाव-सौन्दर्य तो है ही, वे कवि की सूझ-बूझ तथा कल्पना की ऊँची उड़ान की परिचायक हैं। निम्नोद्धृत पंक्तियों में भ्रूयुग्म को किसी भाग्यशाली के नवप्रवेश पर हृदय-गृह के नयन-रूपी दो द्वारों पर सुशोभित होने वाली वन्दनमालाएँ बताया गया है:—

भ्रूवल्लिरस्या हृदयालयस्य द्वारायमाणे नयनद्वयेऽस्मिन् ।
कस्यापि धन्यस्य नवप्रवेशे नन्दत्यसौ वन्दनमालिकेव ॥[2]

यहाँ भ्रू को वन्दनमालिका कह कर एक ओर उनकी कुटिलता को व्यक्त किया गया है, दूसरी ओर उनके उद्दीपक प्रभाव की अभिव्यक्ति की गयी है। निश्चय ही कला की दृष्टि से ऐसे वर्णन उच्चकोटि के हैं।

पुरुष-सौन्दर्य-चित्रों को प्रस्तुत करते समय कवि ने बाह्य सौन्दर्य की उपेक्षा करके आन्तरिक सौन्दर्य का उद्‌घाटन किया है। नहुष का वर्णन करते समय उसकी वीरता और दानशीलता का वर्णन ऐसे अवतरणों में हुआ है:—

अभूद् भुवोऽपि प्रियवासवोऽपि प्रियः सुतः श्री नहुषो नरेन्द्रः ।
द्विषां यदीयांघ्रिनखानतानां नृपत्वदीक्षामुकुटत्वमीयुः ॥
यद्दानगानव्यसनैकतानस्वर्भीरुभावाश्रुजलौघयोगात् ।
शङ्के पशुप्रस्तरपादपानामप्यद्भुताभूद्दिवि दानबुद्धिः ॥[3]

अर्जुन, भीम आदि के वर्णन में भी प्रायः उनके शौर्य का वर्णन है, शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन नहीं है। समष्टि-रूप में 'बालभारत' के सौन्दर्य-चित्र विविध कल्पना-रंगों से चित्रित किये गये हैं। उनमें भाव-प्रवणता, कलात्मकता और वैचित्र्य की समुचित योजना है जिससे उनका साहित्यिक मूल्य बढ़ गया है।

'बालभारत' महाभारत का संक्षिप्त रूप है। अतः उसमें चित्रित समाज भी बहुत अंशों में महाभारतकालीन ही है, फिर भी उसमें कतिपय ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं जिनसे कवि के युग की सामाजिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन समाज में अनेक रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास प्रचलित दिखाई देते हैं। स्वप्न के शुभाशुभ फल में लोगों को पूर्ण विश्वास है। शकुन-अपशकुन की मान्यताओं ने भी उनके हृदय में घर कर रखा है। रणयात्रा के समय छत्र का गिरना, कुमारिका के सिर पर स्थित मंगल-कलश का गिर पड़ना, मुकुट का सिर से स्रस्त होना, मार्जारों का परस्पर लड़ना, मंगलदीप का बुझना, पटह का फूटना आदि अपशकुन माने जाते हैं। दुर्योधन

समाज-चित्रण

---

(१) **बालभारत, पर्व १, सर्ग १, श्लोक ३५** (३) **वही, पर्व १, सर्ग १, श्लोक २१**
(२) **वही, पर्व १, सर्ग ३, श्लोक ६८, ६९**

के रणप्रस्थान के समय ये ही अपशकुन होते हैं जिनके परिणामस्वरूप उसकी पराजय होती है। इन अपशकुनों का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है।[1]

कतिपय अलौकिक घटनाओं का घटित होना भी आपत्तिसूचक माना जाता है। महाभारत-युद्ध के पूर्व हस्तिनापुर में दो सूर्य उगते हैं जिनमें शीतलता दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा का उष्ण तथा सूर्य का शीतल होना, सिर पर काक का बैठना, दर्पण में अपना मुँह दिखाई न देना, केवल कबन्ध दिखाई देना, देवमूर्तियों का काँपना, हँसना, रक्तवमन करना तथा स्वेद से आर्द्र होकर पृथ्वी पर गिर पड़ना, पूर्णिमा को चन्द्रोदय न होना और अमावस्या को पूर्णचन्द्र का उदय होना, पुष्पों का विपरीत ऋतु में खिलना, स्त्री के गर्भ से विजातीय (सर्प, कुत्ता आदि) सन्तान उत्पन्न होना, उत्पन्न हुए बालक का तत्क्षण हँसना-नाचना तथा दसों दिशाओं में दावाग्नि सी लगी दिखायी देना आदि घटनाएँ भावी विनाश की सूचक हैं। भारत-युद्ध के पूर्व कौरव पक्ष के योद्धाओं को ये सभी अपशकुन होते हैं जो उनके भावी सर्वनाश के परिचायक हैं।[2] शुभ-अशुभ स्वप्नों का वर्णन भी 'बालभारत' में हुआ है। स्वप्न में गर्दभ पर आरूढ़ होकर, रक्तवर्ण का परिधान धारण कर दक्षिण दिशा की ओर द्रुत गति से जाना भावी मृत्यु का द्योतक है। स्वप्न में मिट्टी खाना, पहाड़ पर रहना, घृत और क्षीर का भोजन करना, मनुष्य के कन्धों अथवा गज पर आरूढ़ होना भावी राज्य-लक्ष्मी के द्योतक हैं।[3] 'बालभारत' में शकुन-अपशकुन तथा शुभाशुभ स्वप्नों के इन वर्णनों में तत्कालीन जनता के अन्धविश्वास का सहज-रूप प्रस्फुटित हुआ है।

'बालभारत' की रचना ब्राह्मणों की प्रार्थना पर की गयी है। अतः कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ को पूर्णतया 'महाभारत' के अनुसार ही बनाया है। इस कारण 'बालभारत' में जैनधर्म के तत्त्वों के प्रतिपादन की चेष्टा कहीं भी नहीं की गयी है।

विविध ज्ञान 'महाभारत' के अनुसार ही 'बालभारत' के शान्तिपर्व में शरशय्या पर शयन करते हुए भीष्म, राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्ष धर्म का उपदेश देते हैं। राजधर्म के अन्तर्गत राजा के कर्तव्यों का विवेचन किया गया है और राजनीति का निर्धारण किया गया है। जो राजा अवसर देख कर कहीं शान्ति से काम लेता है और कहीं उग्र बन जाता है उसका कभी पराभव नहीं होता :—

सत्तेजः कीर्तिसूर्येन्दुः कालः क्ष्माप इवापरः।
क्वचिद् भीमः क्वचिच्छान्तः केन शक्येत लंघितुम् ॥[4]

राजा को सतत ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उसके अधिकारी प्रजा पर अत्याचार तो नहीं करते। जिस राजा के राज्य में प्रजा पर अत्याचार होते हैं वह राजा प्रजा के शाप से शीघ्र नष्ट हो जाता है :—

---

(१) बालभारत, पर्व ५, सर्ग ५, श्लोक ६५-८१
(२) वही, पर्व ५, सर्ग ५, श्लोक २४-३३ (३) वही, पर्व ५, सर्ग ५, श्लोक ३४-३५
(४) वही, पर्व १२, सर्ग १, श्लोक ११०

तीर्थाधिकारिभिः स्फीतलोभैर्विनियोगिभिः ।
पीड्यमाना प्रजास्तीर्थमिव भूपं शपन्ति च ॥[1]

आपद्धर्म के अन्तर्गत आपत्ति के समय राजा के कर्तव्यों की रूपरेखा निश्चित की गयी है। एक प्रकार से आपद्धर्म का समावेश नीति में करना चाहिए। शत्रु को प्रबल और स्वयं को शक्तिहीन एवं सहायकों से रहित देख कर शान्त होकर कालयापन करने का और अवसर पाते ही उसे (शत्रु को) नष्ट कर देने का उपदेश इन शब्दों में किया गया है :—

अस्ते मित्रबले शत्रुमुद्यन्तं वीक्ष्य धीमता ।
सङ्कुच्य कमलेनेव स्थेयं दिवसमिच्छता ॥
अन्तर्वसन्नलक्ष्यात्मा वर्तेत बलिनि द्विषि ।
प्रहरेत् स्फुटीभूय काले रोग इवाङ्गिनि ॥[2]

मोक्षधर्म के अन्तर्गत शरीर और संसार की अनित्यता तथा आत्मा की नित्यता घोषित की गयी है। इस प्रसंग में सुख-दुःख, लाभ-हानि तथा हर्ष-शोक में समभाव से रहने वाले को जीवन्मुक्त बता कर सांसारिक विषयों से ऊपर उठने का उपदेश दिया गया है।[3] 'बालभारत' के ये अंश पूर्णतया महाभारत पर आधारित हैं, इनमें कवि की मौलिकता लक्षित नहीं होती।

रस-परिपाक

'बालभारत' के विस्तृत कथानक में यथास्थान सभी रसों की व्यंजना हुई है। 'बालभारत' का अंगी रस वीर है। समस्त काव्य में वीर रस व्यापक-रूप से विद्यमान है, किन्तु उसकी समाप्ति शान्त रस में हुई है। अतः, शान्त-रस-पर्यवसायी होने के कारण, यदि कोई 'बालभारत' को शान्त-रस-प्रधान काव्य कहना चाहे तो कह सकता है। 'बालभारत' के विविध युद्ध-प्रसंगों में वीर रस की सुन्दर छटा दृष्टिगत होती है। द्वितीय पर्व में भीम-जरासंध-युद्ध के इस वर्णन में वीर रस की अभिव्यक्ति भव्य बन पड़ी है :—

आकर्ण्य कर्णद्वयवज्रसूचीमिदं वचः सङ्गरभङ्गरभ्रूः ।
आस्फालयत्तालबलेन बाहू द्वैमातुरः कातरितत्रिलोकः ॥
रे रे शठास्तिष्ठत तिष्ठतेति गिरं किरन्नुत्थित एष यावत् ।
अभ्युत्थितस्तावदमीः स भीमो योद्धुं जवादुद्धृषितोद्धताङ्गः ॥
दोःस्फालनस्फाररवैस्तदेव तयोः स्फुटं स्फोटितमन्तरिक्षम् ।
स्वर्दण्डवेधादखिलेह तस्य प्रस्फोटरेखा स्फुरति स्फुटा तत् ॥

---

(१) बालभारत, पर्व १२, सर्ग ११, श्लोक १६

(२) वही, पर्व १२, सर्ग १, श्लोक १३८, १४६

(३) येषां न लब्धुमारम्भो न स्तम्भो लब्धवर्जने ।
जीवन्तोऽपि विमुक्तास्ते सुखे दुःखेऽपि हर्षिणः ॥–वही, पर्व १२, सर्ग १, श्लोक १७७

तदा तयोरुद्धतपादपातैः पातालभर्तुः खलु भूमिधर्तुः ।
सहस्रधा मौलिरभूत्प्रभूतमणिच्छविच्छद्मनिषक्तरक्तः ॥[1]

यहाँ शत्रुनाश-विषयक भीम और जरासंध का उत्साह स्थायी भाव है । भीम के उत्साह का आलम्बन जरासन्ध और जरासन्ध के उत्साह का आलम्बन भीम है । कटूक्तियाँ उद्दीपन विभाव हैं । दोनों वीरों का भुजास्फालन करना, उद्धत पादघात करना अनुभाव हैं । गर्व, अमर्ष, आवेग आदि संचारी भाव हैं ।

'बालभारत' के युद्धवर्णनों में सर्वत्र सजीवता दृष्टिगत होती है । युद्ध-प्रसंगों में वीर रस के सहायक के रूप में रौद्र और वीभत्स का परिपाक हुआ है । रणस्थल में निःशस्त्र द्रोणाचार्य के वध का वृत्तान्त सुन कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रोधाभिभूत हो उठता है । उसके इस रूप के चित्रण में रौद्ररस की छटा ऐसी पंक्तियों में दिखाई देती है:—

ततः पितृवधक्रोधी रुद्रांशो भालरौद्रदृक् ।
अश्वत्थामा दधौ रूपं कल्पान्तायेव भैरवम् ॥
पिबन्करं करेणायं कोपोष्मत्प्रोषितप्रजम् ।
ऊचे कोपानललोल्काभिः स्खलद्भिर्वासरैर्मुहुः ॥

× × × ×

अथ नारायणास्त्रेण पितृदत्तेन विष्टपम् ।
असौ करोम्यपांचालमपाण्डवमकेशवम् ॥[2]

युद्धवर्णन के ऐसे प्रसंगों में वीभत्स और भयानक रस की सम्मिलित झाँकी दीख पड़ती है:—

तद्बाणभिन्नेऽथ बले नृपालमौलिप्रसूनस्रगनूपवासम् ।
नालीकनालैरिव हस्तिहस्तैर्दूरं पिशाचाः पपुरस्रपूरम् ॥
कृत्तानुपादाय करीन्द्रकर्णान् प्राणेश्वरीभिः परिवीज्यमानाः ।
मांसास्रतृप्ताः सुखिनः पिशाचाः किरीटिकोदण्डरवानशृण्वन् ॥[3]

यहाँ पिशाचों के मुण्डमाला पहनने, मृतकों का रक्त पीने तथा मांस खाने आदि के वर्णन द्वारा भयंकर और घृणास्पद दृश्यों का विधान किया गया है । सप्तम पर्व में घटोत्कच द्वारा कौरवसेना के विनाश किये जाने पर कौरव-सेना में चतुर्दिक् हाहाकार मच उठता है । इस अवसर पर भयानक रस का परिपाक इन पंक्तियों में हुआ है:—

स दशापि दिशो ह्रादैर्हा दैवोक्तिमयीः सृजन् ।
ववर्ष राक्षसो वृक्षविषभृद्ग्रावपावकैः ॥
ततो पदे पदे शुष्यद्दिक्षु सर्वासु तद्बलम् ।
भिन्नपालिस्थलशिरः सरोजलमिवाद्रवत् ॥

---

(१) बालभारत, पर्व २, सर्ग १ श्लोक ६३–६६
(२) वही, पर्व २, सर्ग ४, श्लोक १४३–१४४
(३) वही, पर्व ७, सर्ग ४१, श्लोक १७–१८

शिश्रियुर्द्विट्चमूमेव केचित्केचिदहो पुनः ।
प्राविशंश्चाशु हस्त्यश्वशवशैलमहागुहम् ॥
प्रच्छिन्नभिन्नदीर्णाङ्गक्रियासमभिहारतः ।
हाहेत्येव ध्वनिमयस्तदाजनि चमूचयः ॥
मुहुः किलकिलारावं चक्रे विवि सुदारुणम् ।
मुहुर्ननर्त काष्ठासु ज्वलद्रोमावलीमुखः ॥
ससादि सालङ्करणं हस्त्यश्वमगिलन्मुहुः ।
पपौ तडागतुल्याभ्यां प्रसृतिभ्यामसृङ्मुहुः ॥[1]

यहाँ कौरव-सेना में व्याप्त भय स्थायी भाव है। राक्षस घटोत्कच आलम्बन विभाव है और घटोत्कच का किलकिलारव करना, हस्ती, अश्व आदि को समूचा ही निगल जाना, सैनिकों के अंगों को विदीर्ण कर देना आदि उद्दीपन विभाव हैं। दसों दिशाओं में हाहाकार मच जाना, सैनिकों में भगदड़ मच जाना, किसी-किसी का शत्रुपक्ष में प्रविष्ट हो जाना, किन्हीं का मृत हस्ती-अश्व आदि की विदीर्ण उदरगुफा में छिप जाना आदि अनुभाव हैं। आवेग, चिन्ता, त्रास आदि संचारी भाव हैं।

शृंगाररस की योजना काव्य में अनेक स्थलों पर मिलती है। शकुन्तलाख्यान में दुष्यन्त-शकुन्तला-मिलन-प्रसंग में संयोग शृंगार की सुन्दर योजना निम्नोद्धृत अवतरणों में हुई है:—

अथ तां चुचुम्ब मदमन्दघूर्णनो रसतोऽर्धमीलितविलोचनां नृपः ।
मधुरं रसान्नलियुवा नवाब्जिनीमिव किंचिदुन्मिषितपद्मकुड्मलाम् ॥
मलयानिलो विलुलितालिकुन्तलां नवमाधवीमिव शनैः शकुन्तलाम् ।
रसभासुरां सुरभिशीतलस्तदा मृदुवेपमानतनुमालिलिङ्ग सः ॥
नटति स्म सज्जघनगौरवाद् ध्रुवं पृथुतन्नितम्बभुवि कामबर्हिणः ।
इह तेन तच्चरणचारचिह्नतां प्रियदत्तपाणिजपदानि तेनिरे ॥[2]

इन पंक्तियों में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का सुन्दर चित्र अंकित है। यहाँ दुष्यन्त की रति का आलम्बन विभाव शकुन्तला और शकुन्तला की रति का आलम्बन दुष्यन्त हैं। कुंज का एकाकी वातावरण उद्दीपन विभाव है। दुष्यन्त का मन्द-मन्द घूर्णन तथा आलिंगन-चुम्बन करना एवं शकुन्तला का लोचनों को अर्धमीलित करना, काँपना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, मद, उत्सुकता, लज्जा आदि संचारी भाव हैं और दुष्यन्त एवं शकुन्तला की रति स्थायी भाव है।

द्वितीय पर्व में पाण्डव दुर्योधन को मयकृत सभा दिखाने ले जाते हैं। दुर्योधन स्फटिक-भूमि को जलपूर्ण भूमि समझ कर अपने अधोवस्त्रों को ऊँचा करने लगता है और जलपूर्ण

(१) बालभारत, पर्व ७, सर्ग ४, श्लोक ७८–८०, ८४–८६
(२) वही, पर्व १, सर्ग ३, श्लोक २०–२२

क्रीडावापी को शुष्क भूमि समझ कर जल में गिर पड़ता है। उसके ये अटपटे कार्य भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा अन्य व्यक्तियों को हास्यरस की सामग्री प्रदान कर रहे हैं:—

स्फाटिकोर्व्यामसौ चीरमुत्क्षिपन्नीरसम्भ्रमात्।
रसादहासि दासेरैर्विलक्षवदनः क्षणम् ॥
पद्मरागमयीं पश्यन्नन्तरापद्मिनीमयम् ।
आकाशभूमितर्केण लीलावापीजलेऽपतत् ॥
हसत्सु सह दासेरैर्भीमार्जुनयमादिषु ।
अहस्यत प्रतिध्वानैः सभाभित्तिरप्यसौ ॥[1]

यहाँ हास स्थायी भाव है। आलम्बन दुर्योधन और उद्दीपन उसके अटपटे कार्य हैं। भीमादिक का हँसना अनुभाव है। हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं। चतुर्थ पर्व में कीचक-वध के उपरान्त उसकी पत्नियों के इस विलाप में करुण रस की धारा प्रवाहित हो रही है:—

अथ तत्र समं सुदेष्णया सुदृशस्तस्य सहोदराश्च ते ।
कृतहाकृतिदुःसहस्वना सहसा नृत्यनिकेतने ययुः ॥
प्रतिशब्दमिषेण देहिना निबिडाक्रन्दभृतां पदे पदे ।
अपि कुट्टिमकेलिपर्वत त्रिदशावासभरैररुद्यत ॥
विजयिन् बलिनः सुशर्मणः स्मरवीरप्रतिवीरविग्रहम् ।
अनिमेषकराललोचनाः सुरनार्यः स्वदिता किमद्य ते ॥
× × × × ×
इति तस्य नितम्बिनीजनप्रबलाक्रन्दितगाढदुःखतः ।
स्फुटति स्म किल द्विधा नभः ककुभो भङ्गमिवाययुस्तदा ॥[2]

यहाँ शोक स्थायी भाव है। कीचक आलम्बन और उसके मृत शरीर को देखना उद्दीपन विभाव है। सुदेष्णा, कीचक की पत्नियों और भाइयों का हाहाकार, उसके गुणों का स्मरण करना अनुभाव हैं। ग्लानि, विषाद, जडता आदि संचारी भाव हैं।

सत्रहवें पर्व में यादवों के विनाश की कथा सुन कर युधिष्ठिर को संसार से विरक्ति हो जाती है और वे परीक्षित को राज्य सौंप कर हिमालय की ओर चल देते हैं। इस अवसर पर शान्तरस का परिपाक इन पंक्तियों में हुआ है:—

श्रुत्वाऽथ वृष्णिनिधनं धनंजयमुखान्नृपः ।
तादृक्कालबलत्रस्तः समस्तत्यागधीरभूत् ॥
धृतराष्ट्रभुवा राष्ट्रमनुयुज्य युयुत्सुना ।
परीक्षिते क्षितिं स्वीयां ददौ सोदरसंमतः ॥

---

(१) बालभारत, पर्व २ सर्ग ४, श्लोक ४-५, ७
(२) वही, पर्व ४, सर्ग २, श्लोक ४७-४६, ५०

श्राद्धमाधाय बन्धुभ्यो विधायेष्टिं च नैष्ठिकीम् ।
उत्ससर्ज जले सोऽग्नीन् रागानिव शमामृते ।।
पौरानाश्वास्य विधुरान्धरामामन्त्र्य सानुजः ।
उर्वीशः सर्वसन्यासी याज्ञसेनीसखोऽचलत् ।।[1]

द्यूतक्रीडा में हार कर पाण्डव वन में चले जाते हैं । उनके वियोग में कुन्ती विलाप करती है । इस विलाप में कुन्ती के हृदय का वात्सल्य प्रकट हुआ है । वात्सल्य रस का यह प्रसंग करुणाजनक स्थिति तक पहुँच गया है ।[2]

इस प्रकार 'बालभारत' में प्रायः सभी रसों का मनोहारी वर्णन हुआ है । उसमें पाठकों के हृदय को स्पर्श करने की पूर्ण क्षमता दृष्टिगत होती है

अमरचन्द्रसूरि ने 'बालभारत' को वाणीवेश्म [3] तथा भाषा-रूपी पृथ्वी पर खड़ा किया गया श्रेय और शोभा का भवन कहा है ।[4] यह कथन 'बालभारत' की

भाषा भाषा को देखते हुए यथार्थ प्रतीत होता है । 'बालभारत' की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसकी सुन्दर भाषा है । अमरचन्द्रसूरि की भाषा वैविध्यपूर्ण, परिमार्जित, प्रांजल और प्रवाहयुक्त है । 'बालभारत' में माधुर्य गुण अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है । उसमें कर्णकटु शब्दों का नितान्त अभाव है । भाषा के माधुर्य गुण का एक उदाहरण देखिए :—

---

(१) बालभारत, पर्व १७, सर्ग १, श्लोक १–२, ४–५

(२) भवदीयमुखेन्दुना विना विकसत्कोमलकान्तिनाऽमुना ।
नकुल क्व कुलैककैरवप्रतिमं मेऽक्षिविकाशमेष्यति ।।
यदि सत्यमपालि सोदरैर्नियतं पालितमेव तत्त्वया ।
त्वमिहैव कृतस्थितिः शुचः सहदेव प्रिय पुत्र पाहि माम् ।।
जतुमन्दिरतो विकृष्य मां निजपृष्ठेन वहन्नहर्निशम् ।
किमु भीम गतस्तदा खिदां यदिदानीं रुदतीं विमुंचसि ।।
निजमौलिमणीगणोन्मृजा शुचिशोभेषु नमन्नहमुखे ।
मम पादनखेषु को युधिष्ठिर कर्ता वदनावलोकनम् ।।
अधिपाः किमु यान्त्यमी हहा वनभूमीर्मिति (—) ।
सकलोऽपि रुरोद रोदसीदरदूरोदरपूरणादरः ।।

—वही, पर्व २, सर्ग ५, श्लोक ६०–६१, ६३–६६

(३) वाणीवेश्मनि बालभारतमहाकाव्ये तदन्तर्दृगु-
न्मेषप्रेषणभासि पर्वदशमं शान्तिं ययौ सौप्तिकम् ।।

—वही, सौप्तिक पर्व, श्लोक ११०

(४) तद्भाषाभुवि बालभारतमहाकाव्येऽनुशास्ति क्रमं
श्रेयः श्रीसदनं त्रयोदशमिदं पर्व प्रपेदे शमम् ।। —वही, अनुशासन पर्व, श्लोक ५१

कुसुमशरशरालीसम्पदा दम्पतीनाम्
सुरभिणिसुरतान्तस्नेहनीरे निमज्जन् ।
अथ मुरमथनस्य प्रीतये मन्दचारो-
ऽजनि रजनिविरामारम्भशंसी समीरः ॥[1]

'बालभारत' में सर्वत्र भावानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए रूप, प्रभात, सन्ध्या, सुरत आदि शृङ्गाररस-सम्बन्धी प्रसंगों में उनकी कोमल-कान्त-पदावली दर्शनीय है। इन अवसरों पर भाषा की कोमलता और अनुप्रास की कर्णसुखद झंकृति ने मिल कर भाषा को अपूर्व माधुर्य प्रदान किया है। जैसे :—

रुचिनिचयममुं चत्तारकाचक्रवालं
विधुरपि विधुरत्वं प्राप शूरागमेऽस्मिन् ।
इति चकित इवोच्चैः कम्पितो दम्पतीनां
रतिगृहकुहरान्तर्दुर्गदीप्तोऽपि दीपः ॥[2]

तथ्य तो यह है कि 'बालभारत' में अमरचन्द्र शब्दों के जौहरी और भाषा के कुशल शिल्पी के रूप में दिखायी देते हैं। भावाभिव्यक्ति के लिए शब्दों का अभाव उन्हें नहीं होता। भावों और रसों के अनुरूप उनकी भाषा में माधुर्य, प्रसाद और ओज, इन तीनों गुणों का समान योग दिखाई देता है। खाण्डवदाह के समय अग्नि-ज्वाला से भयभीत वनचारियों की भयत्रस्तता और विकलता का सजीव चित्र इन शब्दों में अंकित हुआ है :—

दहनो दहेज्जननि हा सुत हा दयिते हहा हृदयनाथ हहा ।
हहहा सगर्भ हहहा भगिनीत्युदितं तदा वनजनेन मिथः ॥[3]

साधारण वार्तालाप में 'बालभारत' की भाषा अति सरल और निरलंकृत दिखायी देती है। वन पर्व में सर्प भीम को आपादकण्ठ आवेष्टित कर लेता है। उस समय वह धर्मराज से जो प्रश्न पूछता है और धर्मराज उन प्रश्नों का जो उत्तर देते हैं उनकी भाषा सरल और प्रसाद गुण से युक्त है :—

को विप्रः किल कः शूद्रः किं मित्रं के च शत्रवः ।
कः सुधी कश्च वैधेयः कः शूरः कश्च कातरः ॥
किं सत्यं किमसत्यं च को धर्मो किं च पातकम् ।
किं सुखं किमु दुःखं च का मुक्तिः का च संसृतिः ॥[4]

निम्न पंक्तियों में ओज गुण और उसके अनुकूल समासान्त पदावली द्रष्टव्य है जिसने पर्वत को वीर रस से ओत-प्रोत कर दिया है:—

चूलांचन्मणिगणविभाक्रुष्टकोदण्डकेलि:
क्रीडालोलस्फुरदुरुतडिद्दम्भदम्भोलिशोभी ।

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग ११, श्लोक २ (२) वही, पर्व १, सर्ग ११, श्लोक २०
(३) वही, पर्व १, सर्ग १२, श्लोक २८ (४) वही, पर्व ३, सर्ग ४, श्लोक २३-२४

कालेनाऽब्दच्छलनवमवत्पक्षपक्षोऽयमद्रि
जैत्रं शत्रुं हरिमिव पराजित्य जग्राह शस्त्रे ॥[1]

तृतीय पर्व के तृतीय सर्ग में अर्जुन के स्वर्ग से भूलोक पर आते समय का चित्र कितनी उपयुक्त शब्दावली में खींचा गया है :—

श्वेतपर्वततटेषु स खेलन्नेकदा नृपतिरैक्षत कान्तिम् ।
द्वादशद्युमणिदीप्तिसहस्रीं मण्डितामिव दिवः प्रपतन्तीम् ॥
व्योमकालिमपयोदतमिस्रज्योतिरिङ्गिणमशीतमयूखम् ।
विश्वविश्वदृगशक्यविलोकैः स्वप्रभावविभवैः पिदधानाम्
विस्फुलिङ्गनिभपिङ्गपतङ्गभ्राजमानसविधां वियदब्धौ ।
और्वहेतिपटलीमिव तादृङ्नीलिमच्छलजलानि पिबन्तीम् ॥[2]

निष्कर्ष-रूप में कहा जा सकता है कि 'बालभारत' में कवि ने समयानुकूल वैविध्य-पूर्ण भाषा का प्रयोग किया है जो उसकी भावनाओं और सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति करने तथा उसकी मनोरम कल्पनाओं को साकार रूप देने में पूर्णतया समर्थ है। उसकी भाषा-शैली में वह गरिमा, भव्यता और उदात्तता विद्यमान है जो अन्य काव्यों में बहुत-कम प्राप्त हैं।

अलंकार-योजना

'बालभारत' में अमरचन्द्रसूरि ने अपने भाव और भाषा को अलंकारों के द्वारा कान्त और उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में उन्होंने अनुप्रास का प्रयोग बहुत किया है। एक उदाहरण लीजिए :—

वन्येभप्रकरकराग्रभग्नवंशप्राग्भारप्रभवनवीनमौक्तिकोऽयम् ।
कान्तारप्रसवपरागपिङ्गमूर्तिर्नक्षत्रावलिवृत्तमेरुवद्विभाति ॥[3]

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, कैतवापह्नुति, पर्यायोक्ति, सन्देह, दीपक, मुद्रा, तिरस्कार आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। दुष्यन्त द्वारा किये जाने वाले यज्ञों के वर्णन में उत्प्रेक्षा का एक सुन्दर प्रयोग इस पद्य में हुआ है :—

निःशेषप्रतिपन्थिपार्थिवचमूपाथोधिमन्थोद्धुरः
साम्राज्यश्रियमाप्य यः समतनोच्चक्रं क्रतूनां तथा ।
मन्ये येन तदुत्थधूमलहरीसम्पातसम्पादिता-
मद्यापि क्रतुपूरुषो न वपुषि श्यामां रुचिं मुंचति ॥[4]

तृतीय पर्व में हिमालय पर्वत के इस वर्णन में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है :—

भात्येष मेरुरुचिरोऽपि न मेरुशोभी, कृत्स्नामिलामपि वहन्ननिलाभिरामः ।
सव्यालबालमपि चन्दनपादपानां नव्यालवालमभितो वहते समूहम् ॥[5]

---

(१) बालभारत, पर्व ३, सर्ग २, श्लोक ३०
(२) वही, पर्व ३, सर्ग ३, श्लोक २-४
(३) वही, पर्व ३, सर्ग २, श्लोक २३
(४) वही, पर्व ३, सर्ग २, श्लोक २०
(५) वही, पर्व ३, सर्ग २, श्लोक २१

इला के केशों के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कवि ने कैतवापह्नुति अलंकार द्वारा इस प्रकार की है :—

विरंचिरस्या नितमाममान्तमङ्गेषु शृङ्गाररसं सुकेश्याः ।
स्निग्धोल्लसत् कुन्तलकैतवेन निधाय मूर्ध्नि स्तवकीचकार ।।[1]

पर्यायोक्ति अलंकार का प्रयोग 'बालभारत' में अनेक स्थलों पर हुआ है । विचित्र-वीर्य के स्वर्गवास का कथन पर्यायोक्ति अलंकार द्वारा इस प्रकार किया गया है :—

अतिस्त्रीसंगतो राजा पीडितो राजयक्ष्मणा ।
दृष्टुं रम्भादिरम्भोरूरिव कामी दिवं ययौ ।।[2]

यहाँ 'विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई' इस कथनीय बात को सीधे शब्दों में न कह कर कुछ घुमा-फिरा कर 'वे रम्भा आदि अप्सराओं को देखने के लिए स्वर्ग गये' इस प्रकार कहा गया है ।

गुरु द्रोण का ऋण चुकाने के लिए द्रुपद पर आक्रमण करने को सन्नद्ध भीमार्जुन की वीरत्वव्यंजक मनोहर जोड़ी का चित्रण कवि ने सन्देह अलंकार द्वारा इस प्रकार किया है :—

किं भूचरौ तरणिशीतरुची किमन्यौ
रामाच्युतौ किमु गणेशगुहाविहैतौ ।
एतौ पुनः किमुदितौ रघुराजपुत्रा-
वित्याकुलैर्नृपकुलैः सहसैव दृष्टौ ।।[3]

वर्षा ऋतु के इस वर्णन में 'पश्याम मा स्म' इस एक ही पद के चार स्थानों पर लगने से यहाँ देहलीदीपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है :—

पान्थस्य दुःखं नलिनस्य नाशं जलस्य मालिन्यमिनस्य लोपम् ।
पश्याम मा स्मेति विशुद्धपक्षाः प्रागेव जग्मुर्नृपराजहंसाः ।।[4]

निम्नोद्धृत पंक्तियों में मुद्रा अलंकार का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है :—

आश्चर्यं तत्र शार्दूलविक्रीडितमहो महत् ।
सेनाभिर्यदिदं बाणस्रग्धराभिरधःकृतम् ।।[5]

यहाँ प्रकृत अर्थ के साथ-साथ शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा छन्दों के नाम भी सूचित होते हैं ।

लाक्षागृह में पाण्डवों के जल कर मर जाने के तथाकथित वृत्तान्त को सुन कर पौर लोग उन्हें जलाने वाली अग्नि और उसकी पूजा करने वाले ब्राह्मणों को इन शब्दों में धिक्कारते हैं :—

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग १, श्लोक १८ (२) वही, पर्व १, सर्ग ४, श्लोक १२६
(३) वही, पर्व १, सर्ग ५, श्लोक ६६ (४) वही, पर्व ३, सर्ग १, श्लोक ७१
(५) वही, पर्व १, सर्ग ४, श्लोक १६३

धिक्त्वां मुखं मखभुजां धिगपि द्विजास्त्वा
मर्चन्ति धिक्च शुचितां तव येन दग्धः ।
दैत्यावतारधृतराष्ट्रसुतप्रियार्थी
देवद्विजप्रियतमश्च शुचिश्च राजा ॥[1]

यहाँ तिरस्कार अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है ।

इन अलंकारों के अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास, भ्रान्तिमान, अप्रस्तुतप्रशंसा, स्मरण, सहोक्ति आदि अलंकारों की योजना हुई है ।[2] अधिकतर कवि ने भाव को स्पष्ट करने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग किया है, फिर भी प्रयत्नप्रसूत अलंकारों की योजना भी यत्र-तत्र दीख पड़ती है । किन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि अलंकारों के प्रयोग ने 'बालभारत' के कला पक्ष को अधिक दीप्ति और प्रौढ़ता प्रदान की है ।

छन्द-प्रयोग

'बालभारत' में अधिकांश सर्गों में एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन कर दिया गया है । कतिपय सर्गों में विविध छन्दों की योजना भी की गई है । सर्ग सं० १६, ३३, ३४, ४३ और ४४ में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है । बालभारत में कुल २७ छन्दों का प्रयोग हुआ है । वे छन्द इस प्रकार हैं :—उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, मंजुभाषिणी, पुष्पिताग्रा, अनुष्टुप्, प्रहर्षिणी, मालिनी, वंशस्थ, रथोद्धता, स्वागता, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, आर्या, ललिता, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, मालती, चपला, द्विज तथा

---

(१) बालभारत, पर्व १, सर्ग ५, श्लोक ४१

(२) अर्थान्तरन्यास :—रेमे स धर्मैकधुरन्धरोऽपि पत्न्यां धरोद्धारकृते सुताय ।
पूतो जनो शंकरपूजनाय न पंकजार्थं किमु पंकमेति ॥
—वही, पर्व १, सर्ग १, श्लोक ६३

भ्रान्तिमान् :—तटस्थकान्ताकुचदर्शनेन प्रधावितान् कुंजरकुम्भबुद्ध्या ।
वने विनास्त्रैर्भुजलीलयैव जिगाय सिंहानपि यद्विपक्षः ॥
—वही, पर्व १, सर्ग २, श्लोक ५६

अप्रस्तुतप्रशंसा :—पिदधे हरिः करयुगेण मत्सरी श्रवणौ गुणस्तुतिषु यस्य स श्रियः ।
अपि गर्भविश्वनिनदं निशम्य तन्मयमेव नूनमयमाप कृष्णताम् ॥
—वही, पर्व १, सर्ग ३, श्लोक ४६

स्मरण :—सह सिंहेन संग्रामं कुर्वन्कोऽपि महाभटः ।
मध्यं पस्पर्श तस्यैव संकल्पान्निजसुभ्रुवः ॥
—वही, पर्व १, सर्ग ४, श्लोक १५८

सहोक्ति :—तदाभवद्बलाभोगभयभङ्गुरचेतसाम् ।
नश्यतां सह सारङ्गैर्मृगेन्द्राणां मृगेन्द्रता ॥
—वही, पर्व १, सर्ग ४, श्लोक १६२

तीन प्रकार के अर्धसम—(१) (स स ज ग, स भ र ल ग), (२) (त र ज ग ग, त त ज ग ग) तथा (३) (स स ज ग, स भ र य)।

इन छन्दों में अनुष्टुप् का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। उसके बाद उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, वंशस्थ. स्वागता, रथोद्धता, मंजुभाषिणी और शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग उत्तरोत्तर कम हुआ है। शेष छन्दों का प्रयोग यत्र-तत्र हुआ है। विविध छन्दों के प्रयोग में कवि का छन्दों पर अच्छा अधिकार दृष्टिगत होता है।

(४) जयन्तविजय (अभयदेवसूरि)

(रचनाकाल सं० १२७८)

आलोच्य युग के महाकाव्यों में अभयदेवसूरि-प्रणीत 'जयन्तविजय' नामक महाकाव्य प्रमुख स्थान पाने का अधिकारी है। उन्नीस सर्ग का यह महाकाव्य 'श्री' शब्दांकित है। इसमें मगध देश के राजा जयन्त और उनकी विजयों का वर्णन किया गया है।

जयन्तविजय का महाकाव्यत्व

भारतीय लक्षणशास्त्रियों की महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर 'जयन्तविजय' एक सफल महाकाव्य है। यह एक सर्गबद्ध रचना है। इसके नायक राजकुलप्रसूत धीरोदात्त जयन्त हैं। इसमें वीररस प्रधान है तथा शृंगार, रौद्र, वीभत्स, शान्त आदि रस गौणरूप में आये हैं। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष में से धर्म की प्राप्ति इसका मुख्य उद्देश्य है। काव्य के प्रारम्भ में तीर्थंकर ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, महावीरस्वामी आदि की वन्दना की गयी है। इसके पश्चात् सरस्वती का ध्यान करके सज्जनप्रशंसा तथा खलनिंदा को स्थान दिया गया है। 'जयन्तविजय' में कार्यव्यापारसम्बन्धी सन्धियों की नाटकीय ढंग से सफल योजना हुई है। द्वितीय सर्ग में मुख-सन्धि है, जिसमें बीज-रूप अर्थप्रकृति की रूपरेखा झलक रही है। इस सर्ग में अपने पुत्र को स्नेह करती हुई इभ्यकान्ता को देख कर प्रीतिमती की पुत्राभावजन्य वेदना के उभर आने और उसे उदास देख कर राजा द्वारा प्राणों की बाजी लगा कर भी उसकी इस इच्छा को पूर्ण करने के वर्णन में बीजरूप अर्थप्रकृति की योजना विद्यमान रहने से इसे मुखसन्धि स्वीकार किया जा सकता है। चतुर्थ सर्ग में राजा को उदात्त पुत्र उत्पन्न करने की क्षमता वाले मुक्ताहार की प्राप्ति से लेकर छठे सर्ग में मुक्ताहार के धारण करने से प्रीतिमती के गर्भवती होने तक के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि की योजना का सफल निर्वाह है। ग्यारहवें और बारहवें सर्ग में गर्भ सन्धि मानी जा सकती है, क्योंकि महाकाव्य का प्रधान पात्र जयन्त गर्भित (अन्तर्निविष्ट, गायब) रहता है। इन सर्गों में एक

और राजा विक्रमसिंह जयन्त के दिग्विजय के समाचार को सुन कर प्रसन्न होते हैं तो तत्क्षण ही उसके अदृश्य होने से चिन्तित हो उठते हैं। इस प्रकार बीज के लाभ-अलाभ, प्रसन्नता-चिन्ता के द्वन्द्व का चित्रण प्रस्तुत महाकाव्य में करके गर्भ-सन्धि की सफल योजना की गयी है। तेरहवें-चौदहवें सर्ग में विमर्श सन्धि है। कनकवती से विवाह हो जाने पर जयन्त के राजधानी लौटने की संभावना होती है, किन्तु फिर भी सन्देह बना रहता है, क्योंकि विघ्न-बाधाओं से मुठभेड़ अभी समाप्त नहीं होती है। विद्याधरेश चक्रवर्ती महेन्द्र जैसे प्रबल शत्रु से जयन्त को लोहा लेना पड़ता है। फलप्राप्ति की नियत संभावना और विघ्न-बाधाओं के कारण इसकी संदिग्धता के द्वन्द्व में यहाँ जो नाटकीयता का विकास हुआ है उसमें विमर्श सन्धि का सुन्दर निर्वाह है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार ही इस सन्धि में महाकाव्य के प्रधान चरित्र का पौरुष और भी अधिक उद्दीप्त रूप में प्रकट हुआ है। उन्नीसवें सर्ग में जयन्त के राजधानी लौटने और उसके राज्याभिषेक के वर्णन में उपसंहृति या निर्वहण सन्धि स्वीकार की जा सकती है। 'जयन्तविजय' में महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन भी हुआ है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना भी दे दी गयी है। उदाहरण के लिए तृतीय सर्ग में राजा अपनी प्रतिज्ञा की चर्चा मंत्री से करता है। मन्त्री से परमेष्ठिमन्त्र का प्रभाव सुन कर वह इस व्रत को ग्रहण कर लेता है। इसकी सूचना कवि द्वितीय सर्ग के अन्तिम श्लोक में इस प्रकार दे देता है:—

सिद्धिः साहसकर्मकर्मठधियामेवेप्सितानामिति
क्ष्मापस्तत्र समुत्सहिष्णुहृदयस्तस्याग्रतः श्रीमतः।
मन्त्रीशस्य जगाद गौरवपरस्तां स प्रतिज्ञां यतः
क्षोणीन्द्रस्य सदैव मन्त्रणविधौ धौरेयता मन्त्रिणाम्॥[1]

'जयन्तविजय' में महाकाव्यीय वर्ण्यविषयों, जैसे दोलान्दोलन, पुष्पावचय, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, युद्ध, यात्रा, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, षड् ऋतु आदि, का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। महाकाव्य के चरितनायक जयन्त के जीवन और उसकी विजयों से सम्बन्धित मुख्य कथा के आधार पर इस काव्य का नामकरण हुआ है। सर्गों के नाम भी उनमें वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। इस प्रकार महाकाव्य के सभी शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह 'जयन्त-विजय' में हो जाता है।

महाकाव्य के इन बाह्यनिरूपक शास्त्रीय तत्त्वों के साथ-साथ 'जयन्तविजय' में महाकाव्य के वे गुण भी वर्तमान हैं जिन्हें पाश्चात्य विद्वान् महाकाव्य के लिए आवश्यक मानते हैं। 'जयन्तविजय' का कथानक व्यापक है। उसमें मानव-जीवन और उसकी विभिन्न परिस्थितियों का प्रभावशाली वर्णन है। कथावस्तु साधारणतया संगठित है। रूढ़ विषयों का निरूपण होने पर भी घटनानिबन्धन में शिथिलता नहीं आने पायी है। चरित्रचित्रणगत शालीनता,

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग २, श्लोक ५२

भाषाशैली की उदात्तता, युगचेतना के प्रति जागरूकता, मार्मिक प्रसंगों की अभिव्यक्ति एवं उद्देश्य की महत्ता आदि गुणों के कारण 'जयन्तविजय' को आलोच्य युग के प्रमुख महाकाव्यों में स्थान देना समीचीन ही प्रतीत होता है।

'जयन्तविजय' पौराणिक महाकाव्य है अथवा शास्त्रीय ? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। एक ओर उसमें शास्त्रीय नियमों का पालन पूर्ण-रूप से हुआ है, तो दूसरी ओर उसमें पौराणिक शैली के महाकाव्यों के गुण भी वर्तमान हैं। 'जयन्तविजय' में कवि की सहज प्रतिभा और काव्यशक्ति का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। कथानक में प्रवाह है, जीवन के विविध अनुभवों की अभिव्यक्ति है, उदात्त शैली और उद्देश्य की महत्ता है। चन्द्रोदय, वन-विहार, जलक्रीड़ा, शरद्, वसन्त आदि के वर्णन स्वतन्त्र सर्गों में किये गये हैं। इस प्रकार इसमें शास्त्रीय महाकाव्यों के लक्षणों का पूर्ण निर्वाह है। यद्यपि इसमें जयन्तविजयकार का दार्शनिक और धर्मप्रचारक पक्ष प्रबल हो उठा है, फिर भी कथानक शान्तरसपर्यवसायी नहीं है। कथानक के अन्त में नायक का अभ्युदय हुआ है। उसे हम इन्द्र के आसनार्ध पर बैठे तथा उत्तम प्रकार से राज्य-व्यवस्था एवं धर्म का पालन करते हुए देखते हैं। पौराणिक महाकाव्यों की तरह इसमें नायक दीक्षा लेकर निर्वाणप्राप्ति की ओर अग्रसर होता नहीं दीख पड़ता। इसमें मनुष्यों, विद्याधरों तथा देवताओं को एक दूसरे के सम्पर्क में आता हुआ दिखाया गया है, कुछ अप्राकृत और अलौकिक घटनाओं का वर्णन भी हुआ है, जैसे जयन्त का पालन पाँच देवताओं द्वारा होना, वनदेवी का जयन्त को अदृश्य करना, देवताओं का फूल बरसाना आदि। 'जयन्तविजय' में रतिसुन्दरी के पूर्वभव का वर्णन हुआ है और पौराणिक महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार अधिक तो नहीं, किन्तु एक अवान्तरकथा (धनद-कथा) की योजना भी कथावस्तु के अन्तर्गत हुई है। किन्तु, इन पौराणिक तत्त्वों के होने पर भी 'जयन्तविजय' को विशुद्ध पौराणिक शैली का महाकाव्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें शास्त्रीय रूढ़ियों का पालन हुआ है। इसी कारण, हमारी दृष्टि में 'जयन्तविजय' एक साथ ही शास्त्रीय और पौराणिक शैलियों का काव्य है, फिर भी पौराणिकता की ओर उसका कुछ अधिक झुकाव होने के कारण यहाँ उसकी गणना पौराणिक महाकाव्यों में ही की जाती है।

अभयदेवसूरि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अब तक कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। उनके परिचय का एकमात्र साधन 'जयन्तविजय' के अन्त में दी हुई ग्रन्थ-कर्ता की प्रशस्ति ही है। प्रशस्ति में अभयदेवसूरि ने अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार चन्द्रगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए। जिनेश्वरसूरि के शिष्य नवांगी टीकोकार अभयदेवसूरि हुए। इन अभयदेयसूरि के शिष्य प्रसिद्ध विद्वान् जिनवल्लभसूरि हुए, जिनके चरणों की वन्दना नरवर्मभूपति भी करता था। जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनेश्वर-सूरि थे, जिनके शिष्य का नाम पद्मेन्दु मुनिराज था। हमारा कवि इन्हीं पद्मेन्दु मुनिराज का शिष्य था।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

'जयन्तविजय' की रचना सं० १२७८ में हुई। रचनाकाल का उल्लेख स्वयं कवि ने प्रशस्ति में इस श्लोक में किया है:—

विक्करिकुलगिरिदिनकर (१२७८) परिमितविक्रमनरेश्वरसमायाम्।
द्वाविंशतिशतमानं शास्त्रमिदं निर्मितं जयतु ॥

इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट है कि इस काव्य की कुल श्लोक-संख्या २२०० है, किन्तु निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित 'जयन्तविजय' की श्लोक-संख्या केवल १५४८ ही है। कदाचित् कवि ने यह संख्या अनुष्टुप्-परिमाण से दी है।

'जयन्तविजय' के कथानक का विभाजन उन्नीस सर्गों में किया गया है। प्रथम (प्रस्तावनानिरूपण) सर्ग में तीर्थंकरों की स्तुति के पश्चात् मगध देश की जयन्ती नगरी के राजा विक्रमसिंह, उनकी पत्नी प्रीतिमती और मन्त्री सुबुद्धि का परिचय दिया गया है। दूसरे (पुत्रचिन्तादिनिरूपण) सर्ग में अपने शिशुगज के साथ सरोवर में क्रीडा करती हुई करिणी को देख कर प्रीतिमती को अपनी अपत्यहीनता की स्मृति आ जाती है और वह उदास हो जाती है। उसकी उदासी का कारण जान कर राजा प्राणों की बाजी लगा कर भी रानी की इस इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता है। तीसरे (नमस्कारप्रभाववर्णन) सर्ग में राजा सभा में अपनी प्रतिज्ञा की चर्चा मन्त्री सुबुद्धि से करता है। मन्त्री इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का एकमात्र साधन 'श्रीपंचपरमेष्ठिनमस्कारमन्त्र' को बताता है। इस नमस्कार का माहात्म्य बताने के लिए वह 'धनावह श्रेष्ठी' का उपाख्यान भी कहता है। नमस्कार-प्रभाव को सुन कर राजा इस व्रत को ग्रहण कर लेता है।

कथानक

चतुर्थ (सुरयोगीन्द्रविजय) सर्ग में रात्रि में राजा वेश बदल कर पुर में निकलता है। एक नारी-चीत्कार को सुन कर वह उसी ओर चल देता है। मार्ग में एक श्मशानवासी सुर उसका रास्ता रोकता है। नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से राजा युद्ध में उसे परास्त कर देता है। सुर द्वारा दीन भाव से प्राणों की भिक्षा माँगे जाने पर राजा उसे छोड़ देता है। इस पर प्रसन्न होकर सुर राजा को एक ऐसा मुक्ताहार प्रदान करता है जिसके धारण करने से वन्ध्या स्त्री उदात्त पुत्र उत्पन्न करती है। यहाँ से राजा आगे बढ़ता है। कुछ दूर जाने पर देवता को प्रसन्न करने के लिए चीत्कार करती हुई नारी की बलि देने को उद्यत योगी से उसका युद्ध होता है। योगी परास्त होता है। विजयी राजा पर वह कन्या मुग्ध हो जाती है। पाँचवें (योगीन्द्रस्वरूपनिरूपण) सर्ग में सुर आकर राजा को बताता है कि यह कन्या आपकी पत्नी प्रीतिमती की बहिन है। इसका अनुराग आपमें है और यह आपकी पत्नी बनेगी। सुर योगी के वास्तविक स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है और बताता है कि राज्य-प्राप्ति के लिए अघोरघंट योगी से दीक्षा लेकर इस योगी ने कन्याबलि का उपक्रम किया है। वह (सुर) विक्रमसिंह को उनके पूर्व-जन्म का पूरा विवरण भी बताता है।

छठे (पुत्रजन्मोत्सव) सर्ग में सुर से कन्या का परिचय पाकर राजा विक्रमसिंह कन्या के पिता जितारि के पास कन्या को साथ लेकर जाता है। जितारि कन्या का विवाह विक्रमसिंह से कर देता है। नवपरिणीता पत्नी को साथ लेकर राजा जयन्ती नगरी को

लौटता है और सुर द्वारा प्रदत्त मुक्ताहार प्रीतिमती को देता है, जिसके प्रभाव से वह गर्भवती होती है। उचित समय पर उसके पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम जयन्त रखा जाता है। सातवें (वसन्त-वर्णन) सर्ग में जयन्त के युवा होने पर उसे युवराज बना दिया जाता है। वसन्त ऋतु आने पर वह वनश्री देखने उपवन में जाता है। आठवें (दोलाविलासपुष्पावचयजलकेलिसूर्यास्तचन्द्रोदयवर्णन) सर्ग में उपवन-क्रीडाओं के अन्तर्गत दोलान्दोलन, पुष्पावचय, एवं जलकेलि का वर्णन है। इसके बाद सन्ध्या-समय उसके राजधानी में लौटने का वर्णन है।

नवें (दूतोक्तिवर्णन) सर्ग में सिंहल-भूपति के हाथी के राजधानी में भाग आने का वर्णन है। इस हाथी के प्रभाव से जयन्त के खचरेश्वर बनने की भविष्यवाणी सुन कर विक्रमसिंह उसे पकड़वा लेते हैं। सिंहल-भूप का दूत हाथी माँगने आता है, किन्तु विक्रमसिंह दैव-दत्त गज को वापिस करने से इन्कार कर देते हैं। फलस्वरूप सिंहल-भूप हरिराज जयन्ती नगरी पर आक्रमण करता है जिसके प्रतिरोध के लिए जयन्त को ससैन्य भेजा जाता है। दसवें (हरिराजपराजय) सर्ग में युद्ध में हरिराज की मृत्यु तथा जयन्त की विजय का वर्णन है। ग्यारहवें (दिग्विजय) सर्ग में जयन्त की दिग्विजय का वर्णन है।

बारहवें (कुमारधर्मप्रतिपत्ति) सर्ग में सेना के मध्य से जयन्त के अदृश्य हो जाने और इस समाचार से विक्रमसिंह के विकल होने का वर्णन है। नभश्चरेन्द्र महेन्द्र अपने पुत्र के लिए गगनविलासपुर के राजा पवनगति से उनकी पुत्री कनकवती की याचना करता है, किन्तु पवनगति उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं। कनकवती अनुरूप वर की प्राप्ति के लिए जिनशासनदेवता जया की आराधना करती है। प्रसन्न होकर जया उसके लिए जयन्त का अपहरण करके जिनमन्दिर पर ले आती है। यहाँ जयन्त जिनबिम्ब का दर्शन करके श्रीधर्मसूरि की देशना सुनता है। तेरहवें (विवाहोत्सववर्णन) सर्ग में उपवन में जयन्त और कनकवती एक दूसरे को देख कर मुग्ध हो जाते हैं। यह जान कर पवनगति कनकवती का विवाह जयन्त से कर देते हैं। चौदहवें (आयुधवर्णन) सर्ग में जब महेन्द्र चक्रवर्ती को यह ज्ञात होता है कि पवनगति ने उनके पुत्र की उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर दिया है तो वह पवनगति पर आक्रमण कर देता है। युद्ध में जयन्त की तलवार से महेन्द्र की मृत्यु होती है। युद्ध में विजय प्राप्त करके महेन्द्र-पुत्र को करद राजा बना कर पवनगति और जयन्त अपने पुर में लौटते हैं।

पन्द्रहवें (नरेन्द्रसम्यक्त्वप्रतिपत्तिवर्णन) सर्ग में सुस्थिताचार्य की देशना सुन कर विक्रमसिंह श्राद्धधर्म ग्रहण कर लेते हैं। इस समय उनकी सभा में सुस्थित मुनि और एक विद्वान् ब्राह्मण के शास्त्रार्थ का वर्णन है जिसमें पराजित ब्राह्मण को राजा अपमानित कर सभा से निकलवा देते हैं। इसी समय जयन्त आकर पिता को प्रणाम करता है जिससे वातावरण में हर्ष की हिलोर फैल जाती है। सोलहवें (स्वयंवरवर्णन) सर्ग में जयन्त हस्तिनापुर के राजा वैरिसिंह की पुत्री रतिसुन्दरी के स्वयंवर में जाता है। वहाँ रतिसुन्दरी जयन्त के गले में वरमाला डालती है। विवाह के बाद पत्नी को साथ लेकर जयन्त जयन्ती नगरी

लौटता है। सत्रहवें (नरेन्द्रपूर्वभव) सर्ग में विद्यादेवी द्वारा जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्व-भव का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि पूर्वभव में वे भिक्षा माँग कर निर्वाह करते थे। एक बार उन्होंने भिक्षा में प्राप्त अन्न से मासोपवास करने वाले मुनि को पारणा कराई थी। इसी कारण उन्हें इस जन्म में राज्यपद प्राप्त हुआ। अठारहवें (ऋतुत्रयवर्णन) सर्ग में परम्परागत ऋतु-वर्णन है, जिसमें ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद का वर्णन है। इसी सर्ग में वैरिसिंह अपने दामाद जयन्त को हस्तिनापुर का राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उन्नीसवें (नरेन्द्रराज्यस्थितिवर्णन) सर्ग में जयन्त के हस्तिनापुर से जयन्ती नगरी में जाने का वर्णन है। विक्रमसिंह समारोह के साथ प्रवेशमहोत्सव मनाते हैं और राज्यभार पुत्र (जयन्त) को सौंप कर स्वयं प्रव्रज्या ले लेते हैं। जयन्त नीति से प्रजा का पालन और जिनेन्द्रभक्ति का प्रचार करता है। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर जिनमन्दिर में पूजामहोत्सव के अवसर पर सौधर्मपति भी आते हैं और जयन्त को अर्धासन प्रदान करते हैं। सर्ग के अन्त में सत्पात्रदानमहिमासम्बन्धी इस श्लोक के साथ कथानक की समाप्ति होती है :—

> **इत्थं नन्दोपनिषदुदयात्स्वानुभूतप्रभावं**
> **स्तावं स्तावं मुनिवितरणं भक्तिसन्दर्भगर्भम्।**
> **सार्वः सर्वं गुरुरिवजनं तत्र सोत्कण्ठमुच्चैः**
> **कुर्वन्नुर्वीमवनितिलकः श्रीजयन्तप्रशस्तिः ॥**[1]

'जयन्तविजय' में कथावस्तु का सामान्यतया सफल निर्वाह हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग में दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन एवं सत्रहवें सर्ग में जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्व-भव का वर्णन मुख्य कथा को अग्रसर करने में बाधा पहुँचाते हैं। इन पौराणिक तत्त्वों के समावेश के कारण कहीं-कहीं कथानक के प्रवाह में शिथिलता अवश्य आ गयी है, किन्तु उसका क्रम कहीं भी टूटता नहीं दिखाई देता। नवें, दसवें और चौदहवें सर्ग के युद्ध-प्रसंगों में यत्र-तत्र पात्रों के कथोपकथन नाटकीय सजीवता लिये हुए हैं जो कथानक की गति में तीव्रता उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः कवि ने 'जयन्तविजय' की कथा-सामग्री को सुसम्बद्ध कर उसे महाकाव्योचित कथानक के रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

'जयन्तविजय' का कथानक सरल है और उसमें जटिलता का अभाव है, फिर भी उसमें व्यापकता है, अतः उसका सम्बन्ध कई पात्रों से है। इन पात्रों में विक्रमसिंह, जयन्त, हरिराज, महेन्द्र, सुबुद्धि, वैरिसिंह और सुस्थिताचार्य पुरुष-पात्र तथा प्रीतिमती, कनकवती और रतिसुन्दरी स्त्रीपात्र हैं। अघोरघंट योगीन्द्र तथा मत्सरी ब्राह्मण का समावेश कथानक में गति देने तथा अन्य मतों के ऊपर जैन मत की प्रतिष्ठा कराने के उद्देश्य से की गयी है।

चरित्र-चित्रण

विक्रमसिंह

विक्रमसिंह मगधदेश की जयन्ती नगरी के राजा और काव्य के चरितनायक जयन्त के पिता हैं। वे अत्यन्त रूपवान, प्रजापालक और पराक्रमी हैं। काव्य में

(१) जयन्तविजय, सर्ग १९, श्लोक ८६

उनके इन गुणों की प्रशंसा इन शब्दों में की गयी है :—

यः कामिनीनां प्रतिभाति कामः पितेव च प्रीतिपदं प्रजानाम् ।
कालः करालो रिपुभूपतीनां कल्पद्रुमश्च प्रणयिव्रजानाम् ॥[1]

उन्हें अपनी पत्नी से अत्यन्त प्रेम है। जब वे उसे उदास देखते हैं तो वे उसका कारण जानने और उसे दूर करने को व्याकुल हो जाते हैं। अपत्यहीनता पत्नी के दुःख का कारण है, यह जान कर वे अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी उसकी इच्छा को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा इन शब्दों में करते हैं :—

निवेश्य सन्देहपदेऽपि जीवितं प्रिये प्रियं ते त्वरितं करोत्यवः ।
न चेज्जनोऽयं ज्वलने प्रवेशतः पतङ्गतां याति तदा विनिश्चितम् ॥[2]

विक्रमसिंह को अपने मन्त्री सुबुद्धि पर अत्यन्त विश्वास है। वे अपनी प्रतिज्ञा का पूरा विवरण उसे सुना देते हैं। सुबुद्धि द्वारा प्रतिज्ञापूर्ति का एकमात्र साधन श्रीपंचपरमेष्ठि-नमस्कार को जान कर वे इस व्रत को स्वीकार कर लेते हैं।

विक्रमसिंह ऐसे राजा नहीं हैं जो राजसुख और ऐश्वर्य का उपभोग करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लें। वे प्रजा की दशा जानने के लिए रात्रि में वेश बदल कर नगर में घूमते हैं। वे निडर और साहसी हैं। रात्रि में नारी के करुण चीत्कार को सुन कर वे भयंकर श्मशान में पहुँचते हैं और उसकी रक्षा के लिए योगी से युद्ध करते हैं। वे सच्चे वीर हैं जो मूर्च्छित शत्रु पर प्रहार नहीं करते। वे पहले सेचनादि क्रिया द्वारा उसकी मूर्च्छा दूर करते हैं और तब उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं। उनके इस स्वरूप का चित्रण इन पंक्तियों में सुन्दर हुआ है :—

सिचयपल्लववीजनवायुना विगतमूर्छमुवाच नृपोऽथ तम् ।
कुरु करेऽसिलतां मम पूरय क्षम रणे रणकेलिकुतूहलम् ॥[3]

विक्रमसिंह के चरित्र का एक अन्य गुण दयालुता है। उनकी दयालुता का एक उदाहरण उस सुर को प्राण-दान देना है जो उन्हें भयंकर श्मशान में जाने से रोकता है और उन्हें 'मम पुरो मनुजाः किल कीटकाः' कह कर उत्तेजित करता है। विक्रमसिंह के इन गुणों का फल उन्हें मिलता है। सुर उन्हें वन्ध्या स्त्री को वीरप्रसू बनाने वाला मुक्ताहार प्रदान करता है, जिसके द्वारा वे अपनी पत्नी के दुःख को दूर करने में कृतकार्य होते हैं और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं।

विक्रमसिंह स्नेहशील पिता हैं। पुत्र के दिग्विजय करके लौटते समय अदृश्य हो जाने का समाचार सुन कर वे व्याकुल हो उठते हैं। इस व्याकुलता में उनके स्नेहशील हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं, उद्यान में सुस्थित मुनि का आगमन सुन कर वे सपरिवार उनकी वन्दना करने जाते हैं और उनकी देशना से प्रभावित

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १, श्लोक ६० (२) वही, सर्ग २, श्लोक ३१
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ६२

होकर श्राद्धधर्म स्वीकार कर लेते हैं। वृद्धावस्था आने पर वे अपने पुत्र जयन्त को राज्यभार सौंप कर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

जयन्त

राजा विक्रमसिंह का पुत्र जयन्त प्रस्तुत महाकाव्य का नायक है। उसे राजनीति का ज्ञान है और साथ-ही अपने गौरव का भी पूर्ण ध्यान है। सिंहलेश का दूत जब उसके पिता के पास हाथी वापिस करने की माँग करता है और सिंहलेश के पराक्रम का भय दिखाता है तो वह गम्भीर भाव से यह उत्तर देता है, जो उसकी नीतिनिपुणता का परिचायक है :—

महानिधीनामधिपोऽपि चक्रभृन्नयागतं वस्तु न जातु मुंचति।
मतङ्गजस्यास्य मिषात्स्वमन्दिरे रमा प्रविष्टा क्रियते कथं बहिः॥
द्विषो न पोष्याः प्रणिपातमन्तरा निजैः पदार्थैरिति भूभृतां नयः।
न जातु तेषां तमपश्यतां भवेज्जनाद्विशेषः फणिदुग्धपायिनः॥[1]

जयन्त बड़ा शूरवीर है। सिंहलेश के प्रतिरोध के लिए पिता को रणक्षेत्र में जाते देख कर वह इन शब्दों में पिता को रणक्षेत्र में जाने से रोकता है और स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान करता है :—

मयि स्थिते हन्त निदेशवर्तिनि स्वयं प्रयासः कतमः प्रभोरिति।[2]

सिंहलेश हरिराज के अतिरिक्त भिल्ल, सुम्ह आदि अनेक राजाओं को जीत कर वह दिग्विजय करता है। वह जहाँ जाता है विजयी होकर लौटता है। यह उसकी वीरता का ज्वलन्त प्रतीक है। विद्याधरेश महेन्द्र चक्रवर्ती जैसे प्रबल शत्रु का सामना होने पर भी उसके मन में विकलता का आभास तक नहीं मिलता। वह बड़ी निश्चिन्तता के साथ नित्य-क्रिया करके संग्रामभूमि की ओर प्रयाण करता है।[3] युद्धक्षेत्र में उसके शौर्य पर देवता तक मुग्ध हो जाते हैं और उसके जीतने पर भेरीनिनाद तथा पुष्पवर्षा करते हैं।[4]

शौर्य के साथ-साथ उसके चरित्र में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी हुई है। कनकवती और रतिसुन्दरी उसके अतुल रूप पर प्रथम-दर्शन में ही मुग्ध हो जाती हैं।[5] विनयशीलता उसके चरित्र का एक अन्य गुण है। जिनशासनदेवता जया द्वारा अपहृत किये जाने के बाद उद्यान में वह श्रीधर्मसूरि को देखते ही उन्हें प्रणाम करता है और उनके उपदेशों को ध्यान-पूर्वक सुनता है।[6] चक्रवर्ती हो जाने पर भी उसमें रंचमात्र गर्व नहीं होता। विमान से उतरते ही वह भक्तिपूर्वक पिता को प्रणाम करता है।[7]

जयन्त प्रजावत्सल और कुशल शासक है। प्रजाप्रिय वैरिसिंह के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर जब हस्तिनापुर का राज्य उसे मिलता है तो वह कुछ ही दिनों में अपने गुणों के

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग ६, श्लोक ३१–३३
(२) वही, सर्ग ६, श्लोक ६०
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक ४४-४५
(४) वही, सर्ग १५, श्लोक १०७
(५) वही, सर्ग १३, श्लोक ३६
(६) वही, सर्ग १२, श्लोक ४७
(७) वही, सर्ग १५, श्लोक ७३

कारण लोकप्रिय हो जाता है और प्रजा वैरिसिंह को भूल जाती है।[1] वह एक आदर्श राजा है। उसके राज्य में मेघ समय पर वर्षा करते हैं और जनता ईति-भीति के डर से मुक्त दीख पड़ती है।[2] प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए जहाँ वह बाह्य शत्रुओं का नाश करता है वहाँ वह अपने अन्तर के षट्शत्रुओं के प्रति भी असावधान नहीं है :—

अङ्गैस्ततः सप्तभिरप्यवन्ध्यम् प्रवृद्धशक्तित्रयकीर्तिरेषः।
राज्यं शशासापरवैरिनाशात् षडन्तरङ्गानविजित्य शत्रून् ॥[3]

जयन्त की जिनेश्वर में अतुल भक्ति है। जिन-मन्दिरों में वह भक्तिपूर्वक जिनबिम्ब की अर्चना करता है। जिनेश्वर में उसकी प्रगाढ़ भक्ति देखकर स्वयं इन्द्र उसकी प्रशंसा इन शब्दों में करते हैं :—

धन्योऽसि राजन् सफलं तवैव राज्यं धनं जन्म च जीवितं च।
दुःखार्दितेऽपीह मनुष्यभावे यस्यातिभक्तिर्जिनपुङ्गवेषु ॥[4]

इस प्रकार जयन्त के चरित्र में सौन्दर्य, शौर्य, भक्ति और प्रजावत्सलता का समावेश अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।

'जयन्तविजय' में सिंहलनरेश हरिराज की प्रतिष्ठा प्रतिनायक के रूप में हुई है। वह शूरवीर और अभिमानी है। विक्रमसिंह द्वारा उसका हाथी न लौटाये जाने पर वह विक्रमसिंह पर आक्रमण कर देता है। विक्रमसिंह की सभा में उसका दूत उसके वीरत्वपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन इस प्रकार करता है:—

हरिराज

परत्र वीरे नरवीर का कथा न शङ्कते जातु पुरन्दरादपि।
प्रचण्डदोर्दण्डबलावलेपतस्तृणाय न त्वामपि मन्यते प्रभोः ॥[5]

युद्ध में वह अपने सेनापति सुषेण के मारे जाने पर भी विकल नहीं होता। ऐसे अवसर पर जयन्त के प्रति कहे गये उसके ये शब्द उसके चरित्र की निर्भयता, शूरता और स्वाभिमान को व्यक्त करने में सफल हुए हैं:—

(अथ क्लेशावेशप्रसरविरसं सिंहलपति
जगादैवं) वध्यस्त्वमसि मम नासेः शिशुरिति।
सतां निस्त्रिंशोऽपि प्रभवति नहि भ्रूणहतये
प्रपद्याज्ञां तन्मे व्रज निजगृहं रन्तुमधुना ॥[6]

---

(१) अत्यन्तविस्मारितवैरिसिंहक्ष्माधिराजः स्वगुणैः प्रजानाम् ॥
—जयन्तविजय, सर्ग १९ श्लोक १

(२) तस्मिन्महीं पालयति क्रमाप्तां नयांचिते पंचमलोकपाले ॥
ववर्ष काले जलदः समस्तप्रशस्यसस्योद्गममूलबीजम् ॥
—वही, सर्ग १९, श्लोक ७१

(३) वही, सर्ग १९, श्लोक ४८

(४) वही, सर्ग १९, श्लोक ७७

(५) वही, सर्ग ६, श्लोक ४८

(६) वही, सर्ग १०, श्लोक ७२

अन्त में वह जयन्त की तलवार के घाट उतरता है। उसके चरित्रचित्रण में प्रतिनायक के चरित्र के गौरव की रक्षा हुई है।

चक्रवर्ती खेचरेश्वर महेन्द्र का चित्रण भी कवि ने प्रतिनायक के रूप में किया है।

महेन्द्र

जब पवनगति उसकी (महेन्द्र की) उपेक्षा करके अपनी पुत्री का विवाह जयन्त से कर देता है तो वह क्रोध से काँपने लगता है और तत्क्षण जयन्त तथा पवनगति पर आक्रमण कर देता है। वह बड़ा वीर, साहसी और स्वाभिमानी है। युद्ध में उसके द्वारा छोड़े गये चक्र के भी निष्फल हो जाने पर वह हताश नहीं होता और उसी उत्साह से युद्ध करता हुआ जयन्त को तृणवत् समझता है:—

..............सोऽप्याह योग्योऽस्मि न तेऽधुनाऽपि।
गम्योऽस्ति गोमायुशिशोः कदाचिद् वृद्धोऽपि किं रे हरिणाधिराजः॥[1]

किन्तु, अन्त में जयन्त त्रिपुरान्तकास्त्र द्वारा उसका वध कर देता है।

अन्य पात्र

अन्य पात्रों में प्रीतिमती विक्रमसिंह की पत्नी है। वह अत्यन्त सुन्दरी है, किन्तु सन्तान के बिना उसे अपना स्त्रीत्व व्यर्थ प्रतीत होता है। क्रीडाह्रद में करिणी को अपने अपत्य गज से स्नेह करते देख कर उसकी मातृत्व की भूख इन शब्दों में व्यक्त होती है:—

नभस्थलीव द्युतिमद्विना कृता निशेव शीतद्युतिमण्डलोज्झिता।
महौषधीवोन्मदवीर्यवर्जिता न सूनुहीना वनिता प्रशास्यते॥[2]

अन्त में उसकी यह इच्छा पूर्ण होती है और उसे जयन्त जैसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है।

कनकवती विलासपुर के राजा पवनगति की सुन्दरी पुत्री है। अनुरूप वर की प्राप्ति के लिए वह पिता की आज्ञा से जिनशासनदेवता जयादेवी की आराधना करती है और सात दिन की अनवरत भक्ति से उन्हें प्रसन्न कर लेती है। प्रसन्न होकर जयादेवी उसके लिए दिग्विजय से लौटते हुए जयन्त का अपहरण करती हैं। उपवन में कनकवती और जयन्त का मिलन होता है और अन्त में उसका विवाह जयन्त से हो जाता है।

सुबुद्धि विक्रमसिंह का विश्वासपात्र मन्त्री है। नृप विक्रमसिंह अपनी घरेलू समस्याओं में भी उससे परामर्श करते हैं। वे रानी प्रीतिमती की अपत्यचिन्ता और अपनी प्रतिज्ञा का विवरण उससे स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं। वह भी नृप का शुभचिन्तक है और उन्हें धनावह श्रेष्ठी का उपाख्यान सुना कर अभीष्टसिद्धि के लिए पंचपरमेष्ठिनमस्कार का व्रत स्वीकार करने को कहता है। नृप उसकी बात मान लेते हैं। उसे पंचपरमेष्ठि मन्त्र में पूर्ण विश्वास है। वह बृहस्पति की तरह राजनीति-कुशल और विद्वान् है। उसका परिचय देते समय कवि ने उसके इस गुणों की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है:—

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १४, श्लोक १०५ (२) वही, सर्ग २, श्लोक २

मन्त्री हरेर्जीव इवास्य जज्ञे सौधर्मसाम्राज्यमलङ्करिष्णुः ।
सुबुद्धिनामा विबुधप्रमोदक्षीरार्णवार्णः क्षणदाभुजङ्गः ॥[1]

सुबुद्धि के अतिरिक्त सुस्थिताचार्य, वैरिसिंह और रतिसुन्दरी के नाम भी अन्य पात्रों में उल्लेखनीय हैं। श्री सुस्थितसूरि जैन आचार्य हैं। उनकी देशना से प्रभावित होकर विक्रम सिंह श्राद्धधर्म स्वीकार कर लेते हैं। वे तार्किक हैं। अपने तर्कों से वे विरोधी ब्राह्मण को पराजित करते हैं। वैरिसिंह हस्तिनापुर के राजा हैं। वृद्धावस्था में वे राज्यभार अपने जामाता जयन्त को सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। उनकी पुत्री रतिसुन्दरी प्राग्जन्म-सम्बन्ध के कारण जयन्त में अनुरागिणी दीख पड़ती है। इसी कारण स्वयंवर में वह अन्य राजाओं को छोड़ कर जयन्त को वरण कर लेती है।

प्रकृति-चित्रण

शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति 'जयन्तविजय' में प्रकृति को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। प्रथम सर्ग में कथानक का प्रारम्भ करते समय कवि मगध देश का वर्णन उसकी व्यापक विशेषताओं के चयन से करता है, जिससे उस देश की पार्श्वभूमि का रूप पाठकों के मन पर प्रतिबिम्बित हो उठता है:—

सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डैः ।
तैः पद्मखण्डानि च राजहंसैः स्वै राजहंसा सुगतिप्रचारैः ॥
निजैर्गुणैः स्मारितकामधेनुव्रजा व्रजा यत्र गवां विभान्ति ।
स्वादिष्टदुग्धेन मुधा सुधाऽपि यासां महिष्यश्च मनोहरास्ताः ।
पदे पदे यत्र विचित्रवाप्यः प्रसन्नरूपाश्च विभान्ति कूपाः ।
ज्योत्स्नासपत्नेन जलेन पूर्णा माधुर्यदीक्षागुरुणा सुधायाः ॥
यत्राभिरामाणि विशालशालिक्षेत्राणि संरक्षितुमीयुषीणाम् ।
गोपाङ्गनानां मधुरोपगीतैः कृच्छ्राद्युवानः पथि यान्ति पान्थाः ॥[2]

मगध देश के इस वर्णन में कवि ने हंसों और विकसित कमलों से युक्त सरोवर, स्निग्ध जल से पूर्ण कूप और वापी, दुधारू गाय और भैंस तथा धान के खेतों की रखवाली करती हुई स्त्रियों के मधुर गीत—इन सबका वर्णन करके मगध देश की पार्श्वभूमि का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है।

अभयदेवसूरि ने देश के समान काल का वर्णन भी कथा के अनुरूप किया है। अष्टम सर्ग में रात्रि के वर्णन-प्रसंग में एक स्वाभाविक चित्र इस प्रकार है, 'उत्कण्ठित चकोरी की आवाज से तन्द्राविमुक्त चकोर चन्द्रिका को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। दूसरी ओर दुखी चक्रवाक क्रन्दन कर रहे हैं। इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार ही दुःख और सुख प्राप्त होता है।'[3] ऐसे चित्र 'जयन्तविजय' में कम ही मिलते हैं।

कहीं-कहीं कवि ने वातावरण को अनुरूप बनाने का कार्य भी प्रकृति से लिया है। बारहवें सर्ग में जयन्त जयादेवी के द्वारा एक जिनालय के समीप लाया जाता है। वह वहाँ

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १, श्लोक ७१ (२) वही, सर्ग १, श्लोक ३०, ३२, ३६, ३८
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ६०

जिनबिम्ब का दर्शन करके श्रीधर्मसूरि की देशना सुनता है। इस भावी घटना के अनुरूप भक्तिभाव और श्रद्धा के वातावरण का निर्माण करने के लिए जिनालय की पार्श्ववर्ती प्रकृति में भी शान्ति, पवित्रता तथा भक्ति की भावना विद्यमान दिखायी गयी है:—

सरसफलभरावनम्रशाखद्रुमशिखरैः पवनेन यन्नमद्भिः।
प्रणमदिव जिनं शिरोभिरस्यालयमतुलं परिवृत्य तिष्ठति स्म ॥[1]

प्रकृति का यह चित्र बड़ा प्रभावशाली है, जिसने पवित्र और भक्तिपूर्ण वातावरण को सघन बनाने में योग दिया है।

'जयन्तविजय' की प्रकृति की योजना में कथानक के भविष्योन्मुखी संकेत भी यत्र-तत्र विद्यमान हैं। चौदहवें सर्ग में विद्याधर महेन्द्र पर आक्रमण करने के लिए प्रयाण करते समय जयन्त को प्रकृति का जो आचरण मिलता है वह अपने में उसकी (जयन्त की) भावी विजय को छिपाये हुए है:—

तस्य प्रयाणक्षण एव देवैः प्रसूनवृष्टिर्मुमुचे नभस्तः।
छन्दानुवर्तीव समीरणोऽपि मार्गानुगामी समजायतास्य ॥[2]

इसी प्रकार जयन्त से युद्ध करने के लिए विद्याधर महेन्द्र के प्रस्थान करते समय प्रकृति के इस वर्णन में उसकी पराजय एवं मृत्यु हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष हो जाती है:—

तस्याथ दैवे प्रतिकूलभावमुपेयुषि प्रोषितपुण्यराशेः।
समुल्ललासाभिमुखो नभस्वान्कुर्वन्निवोच्चैर्गलहस्तितानि ॥
दिवाकराधिष्ठितदिग्विभागमाश्रित्य फेत्कारपरम्पराभिः।
भृशं शिवाः कातरजन्तुजातमुत्त्रासयन्त्यः प्रकटीबभूवुः ॥
गच्छन्ति मार्गे सममेव गृद्धश्येनादयः क्रूरपतत्रिणस्तैः।
व्यापारयन्तो नयनान्यभीक्ष्णं तेषां शरीरेष्वतिमांसलेषु ॥[3]

'जयन्तविजय' में उद्दीपन-रूप में भी प्रकृति का चित्रण हुआ है। उद्दीपन-रूप में प्रकृति का चित्रण मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करता है। प्रातःकाल के इस वर्णन में चरणायुधों की ध्वनि मानिनियों को मान-त्याग करने पर विवश कर देती है और वे वक्रता छोड़ कर कान्तालिंगन में तत्पर दिखलाई पड़ती हैं:—

मानोत्तानतया सखीषु कलुषाः प्रेङ्खोलरोषाश्चिरम्
दूतीषु स्वयमानतेऽपि दयिते याश्चक्रिरे वक्रताम्।
ताः प्रातश्चरणायुधध्वनिमिभादाज्ञामिवाप्य स्मर–
क्षोणीशस्य समुत्सुकाः प्रियपरीरम्भं स्त्रियस्तन्वते ॥[4]

इसी प्रकार इन पंक्तियों में वर्षाऋतु का वर्णन भी उद्दीपन-रूप में किया गया है:—

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १२, श्लोक ३३ (२) वही, सर्ग १४, श्लोक ३६
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक १५, १८–१९ (४) वही, सर्ग ८, श्लोक ६८

मिथुनकैर्नववारिववायुना पुलकितैरमृतोर्मिविवर्षिणा ।
अथ मिथः परिरम्भसुखैस्तदा नवमिवाक्रियते स्मरशासनम् ।।[1]

महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार अभयदेवसूरि ने उद्दीपन-रूप प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत रति-विलास का वर्णन किया है । जलक्रीड़ा के अन्तर्गत प्रेमियों की यह प्रेमलीला भी चल रही है :—

पयसि लघुनिलीनः कौतुकेनापकर्षत्
परिहितसिचयान्तं दक्षयाऽलक्षि कान्तः ।
तदनु च स तयोक्तः कोऽपि चौरोऽयमेवं
सरसविधि बबन्धे बाहुपाशेन सद्यः ।।[2]

इन वर्णनों में प्रकृति बिलकुल पृष्ठभूमि में चली गयी है और रतिविलास का प्राधान्य हो गया है । फिर भी ऐसे चित्र प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत ही स्वीकार किये जाते हैं ।

'जयन्तविजय' में प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है । कवि की प्रकृति भी मानव की भाँति सप्राण और स्पन्दनशील है । वसन्त-ऋतु में प्रोषितपतिकाओं की दुर्दशा को देख कर मल्लिका भी व्याकुल है और छलकते हुए मकरन्दबिन्दु-रूप आँसुओं को गिरा रही है :—

अध्वगप्रणयिनीषु दुर्दशां वीक्ष्यते करुणयेह मल्लिका ।
रोदतीव विपुलाश्रुभिर्भृशं स्पन्दमानमकरन्दबिन्दुभिः ।।[3]

चन्द्रोदयवर्णन-प्रसंग में चन्द्रमा मे मानव (राजा) का आरोप किया गया है जो अपने किरण-वीरों के द्वारा तिमिर-शत्रु पर विजय प्राप्त करता है :—

तिमिररिपुजयाय प्रस्थितस्याथ राज्ञो
रुचिरकिरणवीरैः प्रोल्लसद्भिः समन्तात् ।
जगदखिलमकारि क्षिप्रमेव विपक्षं
किमिव वसुमतां न क्ष्मातले साध्यमस्ति ।।[4]

महाकाव्यों में जहाँ प्रकृति में मानवता का आरोप किया जाता है उसी तरह उसमें मानवीय भावनाओं का आरोप भी किया जाता है । जयन्तविजयकार ने प्रभातवर्णन से सम्बन्धित इन पंक्तियों में प्रकृति में मानवीय भावनाओं का बहुत मनोरम वर्णन किया है:—

मद्वल्लभां कैरविणीमुपेत्य चुम्बन्त्यमी रागवतेति राज्ञा ।
अमोचयत्पंकजगुप्तिनद्धान् मित्रः प्रभाते वसुभिर्द्विरेफान् ।।[5]

रात्रि में भ्रमर पद्मनिमीलन से पद्मों में बन्द हो जाते हैं और प्रातःकाल सूर्य की

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १८, श्लोक १९ (२) वही, सर्ग ८, श्लोक ४१
(३) वही, सर्ग ७, श्लोक ४० (४) वही, सर्ग ८, श्लोक ५८
(५) वही, सर्ग ८, श्लोक ७१

किरणों से कमलों के विकसित होने पर मुक्त हो जाते हैं। इस प्राकृतिक तथ्य का कवि ने निम्न कल्पना के द्वारा अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया है। वह कहता है कि ये भ्रमर चन्द्रमा की प्रेयसी कुमुदिनी का रात्रि में चुम्बन करते हैं, अतः चन्द्रमा उन्हें कमलरूपी कारागार में बन्द कर देता है। किन्तु, प्रातःकाल सूर्य उन्हें अपनी किरणों से कमलरूपी कारागार को खोल कर मुक्त कर देता है, जैसे कोई राजा अपनी प्रेयसी के कामुक व्यक्ति को कारागार में डाल देता है, किन्तु प्रातः उसका विरोधी धन लेकर उसे मुक्त कर देता है।

मानवीकरण के रूप में प्रकृति का यह प्रयोग कलात्मक है। कभी उसमें उद्दीपन का भाव परिलक्षित होता है तो कभी उसमें मानव के समान ईर्ष्या-द्वेष और सुख-दुःख की भावनाएँ व्यक्त की जाती हैं। इन सभी रूपों में प्रकृति मानव-जीवन के समानान्तर सचेतन और सप्राण है।

अभयदेवसूरि ने अलंकारों के रूप में भी प्रकृति का उपयोग किया है। प्रथम सर्ग में मगधदेश की ललनाओं को स्मरकेलिवापी कह कर उनके अंगों के लिए प्राकृतिक उपमान जुटाए गये हैं :—

नेत्रैः सरोजैरिव राजमाना लावण्यपूरैरमृतैरिवोच्चैः।
कुचैश्च चक्रैरिव सद्विलासैर्यत्रत्यरामाः स्मरकेलिवाप्यः॥[1]

इस प्रकार 'जयन्तविजय' में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। प्रकृति का यह वर्णन महाकाव्यों की परम्परा के अनुकूल है और उसमें सरसता एवं सजीवता की कमी नहीं है।

प्रकृति-सौन्दर्य की तरह मानव-सौन्दर्य के विविध पक्षों का अंकन कर अभयदेवसूरि ने अपनी कलात्मक अभिरुचि का परिचय दिया है। 'जयन्तविजय' में नारी-सौन्दर्य का वर्णन रतिसुन्दरी और कनकवती के वर्णन में किया गया है। प्रीतिमती के सौन्दर्य का संक्षिप्त चित्रण इस प्रकार हुआ है :—

सौन्दर्य-चित्रण

पीयूषभानोर्दलसंचयेन चङ्गं यदीयाङ्गमसर्जि धात्रा।
आनन्दकं लोचनकैरवाणां प्रकामसन्तापहरं च येन॥
उल्लासिलावण्यसुधातरङ्गै रंगैरनंगः सरसैर्यदीयैः।
चित्रीयते स्त्रैणगुणैस्त्रिलोकीलोकश्च लोकोत्तरकीर्तिकारैः॥
संजीवनी चौषधिरंगजस्य विश्रामधामेव हृदः स्वभर्तुः।
या राज्यऋद्धेरधिदेवतेव लावण्यवल्लेर्नवकन्दलीव॥[2]

यहाँ प्रीतिमती के अंग-प्रत्यंगों के सौन्दर्य का वर्णन नहीं, अपितु दर्शक के मन पर पड़े हुए उस सौन्दर्य के समग्र प्रभाव को व्यक्त करके उत्प्रेक्षा द्वारा उसके अतिशय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की गयी है। यह शारीरिक अवयवों और उनकी साज-सज्जा का चित्र नहीं, बल्कि कान्ति और सुन्दरता का मूर्तिमान चित्र है।

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १, श्लोक ४६　　(२) वही, सर्ग १, श्लोक ६७–६६

ऊपर के सौन्दर्य-चित्र में परम्परागत नखशिख जैसा अवयव-क्रम नहीं है, किन्तु कनकवती का सौन्दर्य-चित्रण रूढ़िबद्ध नख-शिख-वर्णन है जिसमें शरीर के अंगों की तुलना रूढ़िबद्ध उपमानों से की गयी है। इस नखशिखवर्णन में कनकवती के पैर, पैर की अँगुलियाँ और उनके नख, चाल, जंघा, नितम्ब, कटि, नाभि, रोमराजि, स्तन और उन पर पड़े मुक्ताहार, कण्ठ, अधर, नासिका, नेत्र, श्रवण, भ्रूयुग, ललाट, मुख, दाँत तथा केश का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। जयन्त ने कनकवती का जो सौन्दर्य देखा, उसका परिचय देने के लिए यह एक उदाहरण ही पर्याप्त है:—

कुन्तलैरलिकुलैरिव नीलैः केसरैरिव रदद्युतिपूरैः ।
कण्ठनालपरिवर्द्धितशोभं शोभते वदनवारिजमस्याः ॥[1]

यहाँ कनकवती के मुख को कमल का रूपक प्रदान किया गया है। काले बालों के लिए भौंरों का समूह, दाँतों की चमक के लिए कमलकेसर (पराग) और कण्ठ के लिए कमलनाल परम्पराभुक्त उपमान हैं।

इसी तरह पुरुष-सौन्दर्य के चित्रण में परम्पराभुक्त उपमानों का आश्रय लिया गया है। जयन्त के मुख की तुलना में चन्द्रमा और सूर्य को हीन दिखा कर मुख की अतिशय सुन्दरता और तेजस्विता को व्यक्त किया गया है। व्यतिरेक अलंकार द्वारा उपस्थित किया गया जयन्त का यह सौन्दर्य-चित्र जयन्तविजयकार के पुरुष-सौन्दर्य का परिचय देने के लिए पर्याप्त है:—

चन्द्रमाः शशमलीनसच्छविस्तापकृत् तरणिरुग्रतेजसा ।
तत्र किंचिदसृजद्विधिश्चिरादस्य येन मुखमेति तुल्यताम् ॥[2]

'जयन्तविजय' में तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं की झलक भी यत्र-तत्र मिल जाती है। उसमें जिस समाज का स्वरूप और जीवन चित्रित है वह बहुत-कुछ अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित है। तत्कालीन समाज में कुछ ऐसी धारणाएँ देखने को मिलती हैं जिनका तार्किक आधार कुछ नहीं है, फिर भी समाज का उन पर अटूट विश्वास है। तन्त्र-मन्त्र, शकुन-अपशकुन तथा इसी प्रकार के नानाविध विश्वास समाज में प्रचलित हैं। बिना मुहूर्त के कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता, अन्यथा अमंगल की आशंका रहती है। जयन्त अपने पुत्र को शुभ वार देख कर यौवराज्य पद पर प्रतिष्ठित करता है।[3] हस्तिनापुर से लौटते समय जयन्त स्वयं भी ज्योतिष द्वारा निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त में नगर-प्रवेश करता है।[4] जयन्त द्वारा युद्ध के लिए प्रस्थान भी शुभ मुहूर्त में किया जाता है:—

समाज-चित्रण

शुभे मुहूर्ते जयकुंजराधिपं रणे जयं मूर्तमिवाधिरूढवान् ।[5]

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १३, श्लोक ३५ (२) वही, सर्ग १७, श्लोक ८४
(३) वही, सर्ग १९, श्लोक ५८ (४) वही, सर्ग १९, श्लोक १२
(५) वही, सर्ग ९, श्लोक ६७

समाज में शकुन और अपशकुनों का भी पर्याप्त प्रचार है। पुरुष की दाहिनी आँख का फड़कना शुभ शकुन माना जाता है। रतिसुन्दरी के स्वयंवर में जयन्त की दाहिनी आँख फड़कती है, जो कवि के शब्दों में उसके भावी विवाह की सूचक है:—

विस्फुरत्यथ स दक्षिरोक्षणे पाणिपीडनविधानशंसिनि।
पूर्वभूधरतटीमिवार्यमा हैमविष्टरमलंचकार च ॥[1]

विद्याधरेश महेन्द्र चक्रवर्ती से युद्ध करने के लिए जाते समय दाहिनी आँख का फड़कना, दाहिनी भुजा का फड़कना आदि शकुनों को जयन्त भावी विजय का सूचक मानता है: –

वामेतरेणाक्षिसरोरुहेण प्रस्यन्दमानेन तथा भुजेन।
तदात्मनः संयति सांयुगीनः स निश्चिकायाभ्युदयं जयन्तः ॥[2]

इसी प्रकार प्रतिकूल पवन, ध्वजभंग, दिन में शृगालरव आदि अपशकुन माने जाते हैं। युद्ध के लिए प्रयाण करते समय महेन्द्रचक्रवर्ती को ये ही अपशकुन होते हैं जो उसके भावी विनाश के सूचक हैं।[3]

इस युग के लोग तन्त्र-मन्त्र में विश्वास करते हैं। सुर द्वारा प्रदत्त मुक्ताहार आधुनिक गण्डा या तावीज का ही रूपान्तर है जिसके धारण करने से वन्ध्या स्त्री भी उदात्त पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हो जाती है। मन्त्र-शक्ति का प्रभाव तो काव्य में कई स्थलों पर दिखाया गया है। विक्रमसिंह पंचपरमेष्ठिनमस्कार मन्त्र के प्रभाव से ही सुर और योगीन्द्र जैसे प्रबल शत्रुओं को परास्त करते हैं। और-तो-और मन्त्र-प्रभाव से सिंह भाग जाते हैं, सर्प विलीन हो जाते हैं और दावाग्नि शान्त हो जाती है। इन सब घटनाओं का वर्णन तत्कालीन समाज का मन्त्रशक्ति में विश्वास का द्योतक है। स्वप्नों को भावी घटनाओं का पूर्वसूचक माना जाता है। जयन्त के गर्भ में आते ही प्रीतिमती स्वप्न में अपने मुख में गजेन्द्र, सिंह, कमल और लक्ष्मी को प्रवेश करते देखती है। यह स्वप्न चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने का द्योतक माना जाता है।[4] कुमारिकाएँ अभीष्ट वर-प्राप्ति के लिए जिन-शासन-देवता की आराधना करती हैं।[5] विवाह के समय कंकणबन्धन एवं तारामेलक आवश्यक कार्य माने जाते हैं।[6] पर्दे की प्रथा भी समाज में विद्यमान है। कनकवती विवाह-मण्डप में अवगुण्ठन डाल कर आती है।[7] दहेज-प्रथा भी किसी-न-किसी रूप में वर्तमान है। पवनगति जयन्त को दहेज में विविध सामग्री प्रदान करते हैं।[8] चाहे पुत्रोत्पत्ति हो या विवाह, पास-पड़ोस में, सगे-सम्बन्धियों में हर्ष का स्रोत उमड़ पड़ता है। इन अवसरों पर नाचना और गाना-बजाना

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १६, श्लोक २४
(२) वही, सर्ग १४, श्लोक ३७
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक १५–२०
(४) वही, सर्ग ६, श्लोक ६३
(५) वही, सर्ग १३, श्लोक ५१
(६) वही, सर्ग १३, श्लोक ८१
(७) वही, सर्ग १३, श्लोक ८४
(८) वही, सर्ग १३, श्लोक ९४

भी खूब होता है।[1] इस प्रकार 'जयन्तविजय' में तत्कालीन सामाजिक-परम्पराओं की झाँकी किसी-न-किसी रूप में मिल ही जाती है।

जयन्तविजयकार का प्रधान लक्ष्य जयन्त-कथा के सहारे पंचपरमेष्ठिनमस्कार मन्त्र की महिमा बताना रहा है। उन्होंने यद्यपि जैनधर्म के नियमों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किये हैं, फिर भी पन्द्रहवें सर्ग में उनका कवि-स्वरूप बहुत-कुछ तिरोहित हो गया है और धार्मिक तत्त्वों का निरूपण ही प्रधान हो गया है। इस सर्ग में सर्वज्ञता के सम्बन्ध में ब्राह्मण और जैन सिद्धांतों का विवरण शास्त्रार्थ के रूप में देकर ब्राह्मण-विचारधारा पर जैनविचार-धारा की विजय दिखाई गई है। मुमुक्षुओं में विचारणीय विषय यह था कि मोक्ष के मार्ग का साक्षात्कार किसने किया। यही मोक्ष-मार्ग धर्म-मार्ग के नाम से निर्दिष्ट होता है। अतः विवाद का विषय यह रहा कि धर्म का साक्षात्कार हो सकता है या नहीं। एक पक्ष का, जिसके अनुगामी शबर, कुमारिल आदि मीमांसक हैं, कहना था कि धर्म जैसी अतीन्द्रिय वस्तुओं को हम लोग प्रत्यक्ष से नहीं जान सकते। धर्म के सम्बन्ध में वेद का ही अन्तिम और अबाध अधिकार है। इस धर्मज्ञान में वेद को ही अन्तिम प्रमाण मानने के कारण उन्हें पुरुष में अतीन्द्रियार्थविषयक ज्ञान का अभाव मानना पड़ा। उन्होंने पुरुष में राग, द्वेष और अज्ञान आदि दोषों की शंका होने से अतीन्द्रिय-धर्म-प्रतिपादक वेद को पुरुष-कृत न मान कर अपौरुषेय माना। इस अपौरुषेय की मान्यता से ही ब्राह्मण धर्म में पुरुष में सर्वज्ञता का निषेध हुआ। किन्तु, निम्न पंक्तियों में आचार्य सुस्थित ने इस मत का खण्डन करके जैन-दर्शन के अनुसार त्रिकालत्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों के पूर्ण परिज्ञान के अर्थ में सर्वज्ञता का समर्थन करके अर्हत् को सर्वज्ञ माना है और उनके द्वारा प्रतिपादित जीवदया-अग्रणी जैन धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म स्वीकार किया है:—

धार्मिक एवं दार्शनिक तत्त्व

सार्वसर्वोपमातीतः समस्ताद्भुतवैभवः।
श्रीसर्वज्ञपरं देवः सतां निःश्रेयसः श्रिये॥
लोकम्पृणः पृणीतस्तैर्धर्मो जीवदयाग्रणीः।
यो मनोरथवल्लीनां स्पर्द्धते निजदोहदैः॥
सुगतिः प्रेयसी पुंसां बोभवीति वशंवदा।
जृम्भमाणे जिनेन्द्रोक्तधर्मकार्मणकर्मणि॥[2]

मत्सरी विद्वान् ब्राह्मण सुस्थित-मुनि के इस कथन का खण्डन करता हुआ कहता है, "पुरुष में सर्वज्ञता का स्वीकार करना ठीक ऐसा ही है जैसा आकाश-पुष्प की सत्ता को स्वीकार करना। प्रत्यक्षादि पाँच प्रमाणों से सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध नहीं होती, अतः उसका अभाव ही मानना चाहिए।"[3] इस कथन का उत्तर सुस्थित मुनि ने तर्क के आधार पर

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग ६, श्लोक ५८-५९ (२) वही, सर्ग १५, श्लोक ८, १०, १२
(३) **सर्वज्ञो नास्ति यद्ग्राह्यः प्रमाणैः पंचभिर्न सः।**
यदेवं तद्भवेदेवं यथा व्योमसरोरुहम्॥ —वही, सर्ग १५, श्लोक १७

दिया है। वे कहते हैं—"प्रत्येक वस्तु की सत्ता प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्ध वस्तु की ही सत्ता मानी जाए, इतर की नहीं, तो मृत प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह आदि का अस्तित्व भी असम्भव स्वीकार करना होगा। क्योंकि सर्वज्ञ की सत्ता में कोई बाधक प्रमाण नहीं, अतः उसकी निर्बाध सत्ता है। आत्मा में अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने की पूरी शक्ति है। यदि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान न हो सके तो सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिः ग्रहों की ग्रहण आदि भविष्यत् दशाओं का उपदेश कैसे हो सकेगा? ज्योतिःज्ञानोपदेश अविसंवादी और यथार्थ देखा जाता है, अतः यह मानना ही चाहिए कि उसका यथार्थ उपदेश अतीन्द्रिय-ज्ञान-दर्शन के बिना नहीं हो सकता।"[1] इस प्रकार के अनेक तर्कों के आधार पर आचार्य सुस्थित ने जैनधर्म के सर्वज्ञसिद्धि-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

'जयन्तविजय' में विविध रसों का परिपाक हुआ है। इसमें वीर रस प्रधान है। वीर रस के सहायक के रूप में रौद्र और भयंकर रस का परिपाक हुआ है। इनके अतिरिक्त अंगरूप में वात्सल्य, श्रृंगार और शान्त रस भी विद्यमान हैं। जयन्त-हरिराज, विक्रमसिंह-योगी और खेचरेन्द्र महेन्द्र के युद्ध में वीर रस की अच्छी अवतारणा हुई है। दशम सर्ग में युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय सैनिकों के इस वर्णन में वीर रस का सुन्दर निर्वाह हुआ है :—

रस-परिपाक

आसन्नसंग्रामसमुत्सहिष्णोर्वीरव्रजस्यानशिरे मनांसि।
हर्षप्रकर्षैः समुदंचदुच्चरोमांचचक्रैश्च चिरं वपूंषि॥
प्रमोदसोच्छ्वासतया तदानीं स्फुटं स्फुटत्पूर्वरणव्रणौघैः।
अखण्डवीरव्रतबाहुदण्डैः सन्नद्धमारभ्यत वैरिवृन्दैः॥
रणोत्सवोत्साहसमुद्भविष्णुरोमांचचंचत्कवचान्तरस्य।
एकस्य कस्यापि महाभटस्य मातिस्म कृच्छ्रेण तनौ तनुत्रम्॥[2]

यहाँ शत्रु आलम्बन विभाव है, हरिरिपु का सीमा पर आ जाना तथा जयन्त द्वारा युद्ध की आज्ञा देना उद्दीपन विभाव हैं। वीरों द्वारा कवच धारण करना, निर्भय होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करना, शरीर का रोमांचित होना अनुभाव हैं। गर्व, आवेग, औत्सुक्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। वीरों के हृदय का उत्साह स्थायी भाव है। इस प्रकार युद्धप्रयाणजनित उत्साह की वीर रस में परिणति का भव्य चित्र यहाँ अंकित किया गया है।

नवम सर्ग में जब विक्रम भूपति हरिराज के दूत से हाथी लौटाने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं उस समय दूत के क्रुद्ध होने पर रौद्र रस की छटा इन पंक्तियों में अंकित की गई है :—

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १५, श्लोक २२–४२ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक २७–२६

निशम्य निन्दामथभर्तु रात्मनः परिस्फुरत्कोपभरारुणेक्षणः ।
जगाद दूतः क्षितिनाथनन्दनं प्रकम्पसंपद्वलितोत्तराधरः ।।
निपीड्य दोर्दण्डबलेन तत्प्रभुद्विपाधिराजं सह राज्यसम्पदा ।
न यावदादास्यति तावदस्य ते प्रभोः प्रतीतिर्न भविष्यति ध्रुवम् ।।[1]

यहाँ विक्रमभूपति आलम्बन विभाव हैं। उनकी उक्तियाँ, हरिराज की निन्दा करना आदि उद्दीपन विभाव हैं। दूत आश्रय है। आँखों का लाल होना, काँपना, ओठों का फड़कना आदि अनुभाव हैं। आवेग, अमर्ष, तिरस्कार आदि संचारी भाव हैं। दूत का क्रुद्ध होना स्थायी भाव है।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में श्मशान के वर्णन में वीभत्स और भयानक रस की अभिव्यक्ति एक-साथ दीख पड़ती है :—

मृतककोटिकरालकलेवरप्रचुरदुःसहगन्धभरावहे ।
अभिमुखागतगन्धवहैर्मुहुर्यदतिदूरविवर्त्यपि सूच्यते ।।
मिलदसंख्यशिवाकृतफेत्कृतैर्यदसुकम्पकृदूद्रितमूर्धजम् ।
अधिकघूकघनार्तिदघूत्कृतैः स्खलितकातरजन्तुगतागति ।।
मृतदिगन्तरदुःश्रवहुंकृतैर्विकृतवेषवपुर्मुखनर्तनैः ।
प्रचुरराक्षसभूतपिशाचकैर्भयकुलैरिव दुर्गपथं नृणाम् ।।
विपुलमांसवसामदिरोन्मदं विततमुत्कलकेशमवस्त्रभृत् ।
भ्रमति यत्र सताण्डवडाकिनीकुलमकालमृतेरिव सादरम् ।।
किमिह भूरिवचोभिरुदीरितैस्तदपरं भुवि कालनिकेतनम् ।
निजगृहं स्थिरधैर्यवतां पुनः पितृवनं स ददर्श नृपस्ततः ।।[2]

आठवें सर्ग में वनक्रीडा एवं जलकेलि-प्रसंगों के अन्तर्गत संयोग शृंगार के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। सोलहवें सर्ग में स्वयंवर-मण्डप में जब रतिसुन्दरी जयन्त को देखती है उस समय संयोगशृंगार की भव्य छटा इन पंक्तियों में दिखाई पड़ती है :—

व्यालिलेख मुहुरंघ्रिणा महीं सा चकर्ष भृशमंशुकांचलम् ।
श्रीजयन्तयुवराजदर्शने कारिता किमु न पुष्पधन्वनः ।[3]

यहाँ स्थायी भाव रति है। जयन्त, रतिसुन्दरी की हृदयगत रति का आलम्बन विभाव है। जयन्त का रूप तथा उसके गुण उद्दीपन विभाव हैं। भूमि को पैर के नखों से खोदना, अंशुकांचल को खींचना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, व्रीडा, जड़ता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से पुष्ट होकर रतिसुन्दरी की हृदयस्थ रति शृंगार रस में परिणत हुई है।

'जयन्तविजय' में वात्सल्यवर्णन भी हुआ है। छठे सर्ग में अपने पुत्र शिशु जयन्त को

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग ६, श्लोक ३८–३९ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक ९–१२, १४
(३) वही, सर्ग १६, श्लोक ३७

देख कर बिक्रमनृप का हृदय पुत्र-प्रेम से उमड़ आता है। इस स्थल पर वात्सल्य रस की हलकी सी झलक दीख पड़ती है :—

ततोऽनुजन्मानमिव स्मरस्य साऽदर्शयन्नन्दनमिन्दुकान्तम्॥
तमङ्कमारोप्य निरूप्य सम्यक् सल्लक्षणैर्लक्षितकाययष्टिम्।
अमन्यत क्षोणिपतिर्धरित्रीभारं समुत्तीर्णमिव स्वदोष्णः॥[1]

यहाँ स्थायी भाव पुत्र-विषयक रति है। आश्रय विक्रम नृप और आलम्बन शिशु जयन्त है। उसका स्मर जैसा रूप और उसकी बाल-चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। पुत्र को गोद में लेना, उसके शरीर को देखना अनुभाव हैं। हर्ष, औत्सुक्य, उत्साह आदि संचारी भाव हैं।

अठारहवें सर्ग में संसार की अनित्यता देख कर वृद्ध विक्रम-भूपति के हृदय में विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। यहाँ शान्त रस की अच्छी व्यंजना हुई है :—

वपुरिदं प्रथमं सुखसाधनं तदपि रोगजरादिभिरस्थिरम्।
किमिह मिष्टफलं प्रभवं वनं वनजवह्निशिखाभिरभंगुरम्॥
भवति शारदनीरदसोदरं सकलमेव भवप्रभवं सुखम्।
परिणतौ विरसं मधुरं मुखे विषतरोरिव पक्वफलं नृणाम्॥
त्रिभुवनेष्वपि नित्यमनित्यताकवलितं निखिलं खलु खेलति।
तदविलम्बमनन्तसनातनानुपमशर्मकरं व्रतमादधे॥[2]

इस प्रकार 'जयन्तविजय' में विविध रसों की व्यंजना में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

'जयन्तविजय' की भाषा शुद्ध और सरल है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। उसमें क्लिष्टता और अस्वाभाविकता का पूर्ण अभाव है। भाषा की व्यवस्था और प्रौढ़ता की दृष्टि से 'जयन्तविजय' की श्रेष्ठता निर्विवाद सिद्ध है। भाषा-

भाषा

सौष्ठव की दृष्टि से 'जयन्तविजय' की भाषा की प्रमुख विशेषता प्रसंग के अनुकूल रूप-परिवर्तन की क्षमता है। भाव और परिस्थिति के अनुसार कहीं उसमें मृदुलता, कहीं कर्कशता तथा कहीं व्यंग्यात्मक तीक्ष्णता मिलती है। पुष्पावचय-प्रसंग में वनक्रीड़ा करती हुई ललना का एक सजीव चित्र इन शब्दों में अंकित हुआ है :—

चरणकमलमेकं पादमूले सहेलम्
मृदुभुजयुगलं च स्कन्धदेशे निवेश्य।
सरससुरतकेलिप्रोक्तमार्गेण काचि–
त्प्रियमिव तरुमच्चैरारुरोहायताक्षी॥[3]

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग ६, श्लोक ६६-६७ (२) वही, सर्ग १८, श्लोक ५०, ५५-५६
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक १६

शृंगार रस के इस श्लोक की भाषा में लालित्य और सुषमा है तथा इसकी कोमल-कान्तपदावली ने अनुकूल रस की व्यंजना में सहयोग दिया है।

निम्नलिखित पंक्तियों में कर्णकटु, संयुक्त और समासान्त पदावली के द्वारा युद्ध का सजीव चित्र खींचा गया है :—

ततः कृतान्तभ्रकुटीकरालकोदण्डचण्डध्वनिपूरिताशम् ।
समं समानैः परिपन्थिसार्थैः प्रारब्धमायोधनमग्रसैन्यैः ।।
प्राणांस्तृणीकृत्य विपक्षकुम्भिकुम्भस्थलीपाटनलम्पटोऽन्यः ।
तदीयमुक्ताफलबीजवापमसूत्रयत् कीर्तिलतोद्गमाय ।।[1]

'जयन्तविजय' की भाषा अलंकृत है। उसकी भाषा में अनुप्रास और यमक आदि शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। श्रुतिमधुर अनुप्रास के प्रयोग से भाषा अधिक प्रवाहयुक्त, गतिशील और चंचल हो गयी है। एक उदाहरण देखिए :—

बहुविहगनिनादैर्वन्दिवृन्दैरिवोक्ते
विकटविटपवीथीच्छायया शीतमार्गे ।
पृथुसरसि स हंसीमण्डलेनेव हंसः
समचरदथ तस्मिन्सार्द्धमन्तःपुरेण ।।[2]

यहाँ अनुप्रास के मंजुल प्रवाह ने भाषा को स्वाभाविक और ललित बना दिया है।

'जयन्तविजय' की भाषा में लोकोक्तियों और सूक्तियों की अच्छी बहार है। इनके प्रयोग से 'जयन्तविजय' की भाषा अधिक प्रभावशाली हो गयी है। जैसे :—

भवेच्छिदा येन सकर्णकर्णयोर्न तेन हेम्नापि खलु प्रयोजनम् ।[3]
सर्वं विधौ हि विमुखे विमुखं जनस्य ।[4]
दण्डो विदेशगमनं हि महागसोऽपि ।[5]
क्व स्नेहमोहितधियां स्वहितप्रवृत्तिः ।[6]
उत्कोपिते यष्टिमुखेन सिंहे क्षेमो हि कौतस्कुतमङ्गभाजः ।[7]
यदेव भाव्यं भविता तदेव ।[8]

इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण 'जयन्तविजय' में वर्तमान हैं। ऐसे प्रयोगों ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि में पर्याप्त योग दिया है। इस प्रकार 'जयन्तविजय' की भाषा भावानुकूल, प्रौढ़ और प्रांजल दिखाई देती है। सूक्तियों के समावेश से कवि ने उसे अधिक मांसल और प्रवाहयुक्त बनाने की चेष्टा की है।

जयन्तविजयकार ने अपनी रचना के कला-पक्ष को अलंकारों की समुचित योजना

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १४, श्लोक ४६, ५६
(२) वही, सर्ग ८, श्लोक २७
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ५७
(४) वही, सर्ग ५, श्लोक ५६
(५) वही, सर्ग ५, श्लोक ३५
(६) वही, सर्ग ५, श्लोक २८
(७) वही, सर्ग १३, श्लोक १०६
(८) वही, सर्ग १६, श्लोक ४६

अलंकार-योजना से समृद्ध किया है। 'जयन्तविजय' में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही यथास्थान प्रयोग किया गया है। इनके प्रयोग में स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। निम्नोद्धृत श्लोक में भाषा-सम्बन्धी रमणीयता के साथ-साथ भावमयता भी दीख पड़ती है :—

दधति दशदिशोऽथ स्निग्धसन्ध्याभ्रशोणा
विविधविहगराजीकूजितो जागरूकाः।
मसृणघुसृणभासां भूपतेः सुन्दरीणाम्
प्रतिकृतिमिह सिंजन्मञ्जुमंजीरकाणाम् ॥[1]

यहाँ अनुप्रास की सुन्दर योजना के साथ-साथ 'सिंजन्मञ्जुमञ्जीरकाणाम्' इन शब्दों में मंजीर की ध्वनि भी मुखरित हो उठी है।

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों के साथ-साथ अतिशयोक्ति, सहोक्ति, अर्थान्तिरन्यास, एकावली, अपह्नुति, परिसंख्या आदि अनेक अलंकारों की योजना हुई है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है :—

संमुखं सपदि वेत्रधारिणा तामथान्यनृपतेर्निनाय सा।
हंसिकामिव तरंगपद्धतिः पंकजादपरपंकजं क्षणात् ॥[2]

यहाँ रतिसुन्दरी के स्वयंवर में वेत्रधारिणी द्वारा रतिसुन्दरी को एक के बाद एक राजा के पास ले जाने की तुलना कवि ने तरंगपद्धति द्वारा एक कमल से दूसरे कमल के समीप ले जाई गई हंसी से की है।

इसी प्रकार इन पंक्तियों में सिप्रा नदी को नारी का रूपक प्रदान किया गया है, जिसने वर्णना-सौन्दर्य में वृद्धि की है :—

विस्फुरत्तरलमीननेत्रया चक्रयुग्मकुचकुम्भशोभया।
राजहंसगतयाऽब्जहस्तया सख्यमस्तु तव देवि सिप्रया ॥[3]

इसी प्रकार इस श्लोक में उत्प्रेक्षा के प्रयोग ने भाव-सौन्दर्य में वृद्धि की है :—

न ह्यावयोरुद्धतिमेष जातः सहिष्यते हन्त विनीतवृत्तिः।
इति स्फुरत्खेदभरादिवोच्चैस्तस्या स्तनौ श्याममुखावभूताम् ॥[4]

निम्नोद्धृत पद्यों में उल्लेख, अनुज्ञा, अर्थावृत्ति, अन्योन्य तथा विशेषक अलंकारों का प्रयोग हुआ है :

यः कामिनीनां प्रतिभाति कामः पितेव च प्रीतिपदं प्रजानाम्।
कालः करालो रिपुभूपतीनां कल्पद्रुमश्च प्रणयिव्रजानाम् ॥[5]

यहाँ एक ही व्यक्ति विक्रम भूपति का बहुविध (काम, पिता, काल, कल्पद्रुम के

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग ८, श्लोक ४७ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ५८
(३) वही, सर्ग १६, श्लोक ६१ (४) वही, सर्ग ६, श्लोक ६७
(५) वही, सर्ग १, श्लोक ६०

रूप में) वर्णन किये जाने से उल्लेख अलंकार है।

गभीरभेरीरणितैरमर्त्यमर्त्येषु दूरं बधिरीकृतेषु।
तदात्मनः सर्पकुलं श्रुतीनामभावमुच्चैर्बहु मन्यते स्म ॥[1]

यहाँ सैन्य-प्रयाण की भेरी बजने से दूर-दूर तक के प्राणी बधिर हो गये, अतः सर्प अपनी कर्णहीनता पर बड़े आनन्दित हो रहे हैं। इस उदाहरण में दोष में ही गुण देख कर उस दोष को ही सराहने के कारण अनुज्ञा अलंकार है।

वराश्वह्रेषां गजराजगर्जितं सतूर्यनादं शुभशंखनिस्वनम्।
अदक्षिणाक्षिस्फुरणं प्रियोदितं तदाभृणोच्छाकुनिकाग्रणीरसौ ॥[2]

यहाँ ह्रेषा, गर्जित, नाद एवं निस्वन शब्द अलग अलग हैं, किन्तु उनका अर्थ एक ही है। अर्थ की आवृत्ति कई बार होने से यहाँ अर्थावृत्ति (आवृत्तिदीपक) अलंकार है।

संरक्षणाय रिपुतोऽहमभूवमस्याः
संग्रामकेलिभिरियं स्मरतापतो मे।
स्वैर्दर्शनामृतरसैस्तु समोपकार–
कन्येति तामथ मुहुर्नृपतिर्ददर्श ॥[3]

यहाँ विक्रम-भूप कन्या को शत्रु-ताप से मुक्त करता है और कन्या उसकी स्मरताप से रक्षा करती है। दोनों के परस्पर एक दूसरे के उपकारी होने से यहाँ अन्योन्य अलंकार है।

सुरेशवेषाभरणाङ्गरागवरेण लावण्यतरङ्गिताङ्गः।
निमेषमात्रेण परं सुरेभ्यो विभिद्यते यत्र जनः समस्तः ॥[4]

यहाँ बताया गया है कि मगध के निवासी तथा देवता एक ही आकार के हैं। इनमें अन्तर यों जाना जाता है कि यहाँ के निवासी सनिमेष हैं (देवता अनिमेष होते हैं), अतः यहाँ विशेषक अलंकार है।

इनके अतिरिक्त विरोधाभास, तिरस्कार, सहोक्ति, परिसंख्या, एकावली आदि अलंकारों का प्रयोग भी काव्य में भावोद्रेक में सहायक हुआ है।[5]

---

(१) जयन्तविजय, सर्ग १४, श्लोक ३५ (२) वही, सर्ग २, श्लोक ४१
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक १ (४) वही, सर्ग १, श्लोक ५४
(५) विरोधाभास :—देहं विनाप्याश्रितविग्रहोग्रास्तमःस्वरूपा अपि तर्ज्जितार्काः।
निकृत्तकण्ठा अपि चित्तसमग्राः प्रसत्त्रुरुच्चैरथ सैंहिकेयाः ॥
—वही, सर्ग १४, श्लोक ६६

तिरस्कार :—नृपात्मजालोकनकौतुकाय समुत्सुका काचन कैरवाक्षी।
नितम्बबिम्बं स्तनमण्डलंच निनिन्द मन्दां गतिमादधानम् ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक २४

सहोक्ति :—मुहुःप्रियायाः क्षितिपांचलानिलैर्जगाम मूर्च्छा नृपतेः सहार्तिभिः।
सचेतना जातवती सती ततो जगाद साश्रुर्निजजीवितेश्वरम् ॥
—वही, सर्ग २, श्लोक ३५

महाकाव्य की प्राचीन परिपाटी के अनुसार 'जयन्तविजय' के प्रायः प्रत्येक सर्ग में प्रधान-रूप से एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन कर दिया गया है। प्रथम सर्ग में उपजाति, द्वितीय में वंशस्थ, तृतीय में अनुष्टुप्, चतुर्थ में

छन्द

द्रुतविलम्बित, पंचम में वसन्ततिलका, छठे में उपजाति, सातवें में रथोद्धता, आठवें में मालिनी, नवें में वंशस्थ, दसवें में उपजाति, ग्यारहवें में अनुष्टुप्, बारहवें में पुष्पिताग्रा, तेरहवें में स्वागता, चौदहवें में उपजाति, पन्द्रहवें में अनुष्टुप्, सोलहवें में रथोद्धता, सत्रहवें में उपजाति, अठारहवें में द्रुतविलम्बित तथा उन्नीसवें में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रायः प्रत्येक सर्ग के अन्तिम ४-५ श्लोक विभिन्न छन्दों में हैं। सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित, हरिणी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा आदि छन्दों का प्रयोग है। कुल मिलाकर जयन्तविजय में १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है। ये छन्द उपजाति, अनुष्टुप्, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, वसन्ततिलका, मालिनी, पुष्पताग्रा, स्वागता, शार्दूलविक्रीडित, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, हरिणी, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, स्रग्धरा और आर्या हैं। उपजाति छन्द कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द ज्ञात होता है, क्योंकि काव्य में सबसे अधिक प्रयोग इसी का हुआ है। इसके बाद क्रमशः अनुष्टुप्, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, वसन्ततिलका, मालिनी, पुष्पिताग्रा और स्वागता का उत्तरोत्तर कम प्रयोग हुआ है। शेष छन्दों का प्रयोग बहुत-कम हुआ है।

परिसंख्या :—उद्यानवापीषु जलाशयत्वं, द्विजाश्रयेषु प्रियविप्रयोगः।
विलोक्यते राजकरोपमर्दः पद्माकरेष्वेव न यत्र लोके ॥
—वही, सर्ग १, श्लोक ५०

एकावली :—सरोवरैर्यत्र भुवो विभान्ति सरोवराणि स्मितपद्मखण्डैः।
तैः पद्मखण्डानि न राजहंसैः स्वै राजहंसाः सुगतिप्रचारैः ॥
—वही, सर्ग १, श्लोक ३०

(५) पद्मानन्द-महाकाव्य (अमरचन्द्रसूरि)

(रचनाकाल सं० १२९४ से १२९७ के मध्य)

अमरचन्द्रसूरि की दूसरी रचना 'पद्मानन्द' महाकाव्य है। इसकी रचना १९ सर्गों में हुई है। इसमें आदितीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के जीवनचरित्र का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत काव्य का दूसरा नाम 'जिनेन्द्रचरित्र' भी है।[1] 'बालभारत' की तरह यह भी 'वीराङ्क' महाकाव्य है।

'पद्मानन्द' में महाकाव्य के अनेक लक्षणों का समन्वय हो जाता है। इसका कथानक प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के चरित्र से सम्बन्धित है जिसका आधार परम्परागत चरित-ग्रंथ हैं। इसके नायक ऋषभदेव धीरप्रशान्त गुणों से युक्त हैं। महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार इसमें शान्त रस अंगी है और अन्य रस शृंगार, करुण, वीर आदि की योजना अंग-रूप में हुई है। चतुर्वर्ग में से धर्म और मोक्ष की प्राप्ति इसका मुख्य लक्ष्य है। परम्परागत नियमों के अनुसार 'पद्मानन्द' का आरम्भ चतुर्विंशति जिनेश्वरों के स्तुति रूप मंगलाचरण से हुआ है। उसके एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन-सम्बन्धी नियम का निर्वाह भी हुआ है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार ही 'पद्मानन्द' के चौदहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। महाकाव्य के अंगभूत वर्ण्यविषयों के अन्तर्गत नगर, अर्णव, शैल, मन्त्री, दूत, प्रयाण, पुत्र-जन्म, सूर्योदय तथा वसन्त आदि षड् ऋतुओं का वर्णन यथास्थान हुआ है। प्रस्तुत काव्य का निर्माण पद्मंत्री की प्रार्थना पर हुआ, अतः पद्म को आनन्दित करने के कारण इसका नाम 'पद्मानन्द' रखना उचित ही है। इसका दूसरा नाम 'जिनेन्द्रचरित्र' भी वर्ण्यविषय के आधार पर रखा गया है। इसमें सर्गों के नाम भी उनमें वर्णित कथा के आधार पर रखे गये हैं। 'पद्मानन्द' में कवि ने वृषभदेव के परम्परागत चरित्र को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया है, अपनी ओर से उसमें कोई जोड़-तोड़ नहीं की है। फलस्वरूप, 'पद्मानन्द' के कथानक में पंच-सन्धियों की योजना नहीं दीख पड़ती है। इस प्रकार शास्त्रीय लक्षणों की कसौटी पर कसने से 'पद्मानन्द' को सफल महाकाव्य कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें सन्धि-योजना-सम्बन्धी नियम को छोड़ कर अन्य सभी नियमों का पालन हुआ है। इसके साथ-साथ 'पद्मानन्द' में उदात्त भाषा-शैली तथा रसमग्न करने की क्षमता भी वर्तमान है तथा उसमें जातीय संस्कृति की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इन विशेषताओं के कारण 'पद्मानन्द' की गणना प्रमुख महाकाव्यों में करना ही उचित प्रतीत होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में पुष्पिका में कवि ने इसे महाकाव्य कहा है। इसके अतिरिक्त काव्य की समाप्ति पर भी इस श्लोक में 'पद्मानन्द' को महाकाव्य अभिधा प्रदान की गयी है:—

पद्मानन्द का महाकाव्यत्व

---

(१) श्रीपद्मेनार्थितः स श्रीजिनेन्द्रचरिताह्वयम्।
बालसहायो महाकाव्यं निर्ममे निर्ममेश्वरः॥ —पद्मानन्द, सर्ग १, श्लोक ४३

श्रीमद्वायटगच्छवारिजरवेः पादारविन्दद्वये
येन श्रीजिनदत्तसूरिसुगुरोः भृङ्गारभृङ्गायितम् ।
स श्वेताम्बरमौलिरत्नममरः श्रीपद्ममन्त्रीप्सितं
पद्मानन्दमिदं मुदाऽकृत महाकाव्यं महानन्दकृत् ॥[१]

'पद्मानन्द' पौराणिक शैली का महाकाव्य है । पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह इसमें ऋषभनाथ के तेरह भवों का वर्णन हुआ है । इसी प्रकार स्वयंप्रभा, केशव आदि अन्य पात्रों के भवान्तरों का भी वर्णन हुआ है । 'पद्मानन्द' में पात्रों के इस भव की मनःस्थिति अथवा चरित्र का सम्बन्ध पूर्वभव से जोड़ा गया है । पंचम सर्ग में प्राग्भवीय प्रेम के कारण श्रीमती वज्रजंघ को छोड़ कर अन्य किसी युवक से विवाह नहीं करती । प्राग्भव के प्रेम के कारण ही दृढ़धर्मसुर ललितांग को समझाने के लिए भूलोक में आता है । पौराणिक शैली के महाकाव्यों में स्तोत्र एवं माहात्म्य-वर्णनों का समावेश रहता है । 'पद्मानन्द' में अनेक स्तोत्रों की योजना दृष्टिगत होती है । स्थान-स्थान पर सुर, नर आदि ऋषभदेव की स्तुति करते दीखते हैं । सातवें सर्ग में इन्द्र द्वारा, चौदहवें सर्ग में देवताओं, भरत तथा पुण्डरीक द्वारा तथा सोलहवें सर्ग में भरत तथा सुन्दरी द्वारा ऋषभनाथ की स्तुति की गयी है । पन्द्रहवें सर्ग में मागधेन्द्र भरत की स्तुति में रत दृष्टिगत होते हैं और सप्तम सर्ग में दिक्कुमारियों द्वारा मरुदेवी की स्तुति की गयी है । स्तोत्र के साथ-साथ 'पद्मानन्द' में माहात्म्य-वर्णन भी प्राप्त होते हैं । अठारहवें सर्ग में शत्रुंजय-माहात्म्य का वर्णन हुआ है ।

पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह 'पद्मानन्द' महाकाव्य में स्वधर्मप्रशंसा एवं अन्य मतों के खण्डन की प्रवृत्ति विद्यमान है । तृतीय सर्ग में मन्त्री स्वयंबुद्ध चार्वाक, बौद्ध तथा शांकर मत का खण्डन करके जैनधर्म की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करता है । पौराणिक शैली के महाकाव्यों में अलौकिक तथा अतिप्राकृत तत्त्वों का समावेश भी रहता है । 'पद्मानंद' काव्य के नायक ऋषभदेव स्वयं अलौकिक व्यक्ति हैं, अतः उनके चरित्र में सर्वत्र अलौकिकता दृष्टिगत होती है । वे माता के स्तन का दुग्ध न पीकर अपने अंगुष्ठ में स्थित सुधा का पान करते हैं । उनके जन्म, दीक्षा, निर्वाण आदि महोत्सवों को देवता भूलोक पर आकर मनाते हैं । ऋषभनाथ की आयु भी लाखों वर्ष की है । उनका राज्याभिषेक ही एक लाख बीस हजार वर्ष की वय में होता है ।

पौराणिक महाकाव्यों की तरह 'पद्मानन्द' का कथानक भी शान्तरसपर्यवसायी है । इसकी समाप्ति वृषभनाथ की मोक्ष-प्राप्ति से होती है । 'पद्मानन्द' में धार्मिक उपदेश और जैनधर्म के नियमों का समावेश भी यत्र-तत्र हुआ है । इस प्रकार 'पद्मानन्द' महाकाव्य में पौराणिक रंग बहुत गहरा दीख पड़ता है । इस कारण यहाँ उसे पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत रखा जाता है ।

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग १९, श्लोक ६१

कवि परिचय, रचनाकाल आदि

'बालभारत' का अध्ययन करते समय अमरचन्द्रसूरि और उनके समय पर प्रकाश डाला जा चुका है। 'पद्मानन्द' के रचनाकाल पर राजशेखरसूरि के 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' के उल्लेखों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उसमें लिखा है:—

कवित्वप्रसिद्धेश्च महाराष्ट्रादिनरेन्द्राणां पूजा उपतस्थिरे। तदा श्रीवीसलदेवो राजा गूर्जराधिपतिर्धवलक्कके राज्यं शास्ति। तेनाऽमरकवेः गुणग्रामः श्रुतः। ठक्कुरं बइजलं प्रधानं प्रेष्य प्रातराहूतः कवीन्द्रः आसनादिप्रतिपत्तिः कृता। सभा महती। × × × × अद्भुतकविता‍दर्शनात् कविराजो राजेन्द्रेण नित्यसेवकीकृतः। ग्रासो महान् प्रत्यष्ठायि। × × × कालान्तरेऽ नरेण कोष्ठागारिकपद्ममन्त्रिप्रार्थनया पद्मानन्दाख्यं शास्त्रं रचितम्।

इस लेख से यह स्पष्ट है कि 'पद्मानन्द' की रचना कवि का वीसलदेव नरेन्द्र से परि-ाय होने के बाद हुई। वीसलदेव का राज्यकाल सं० १२९४–१२३८ माना जाता है। ीसलदेव के इस राज्यकाल को देखते हुए अमरचन्द्रसूरि और वीसलदेव के प्रथम मिलन का समय सं० १२९४ के पूर्व नहीं रखा जा सकता। दूसरे शब्दों में 'पद्मानन्द' की रचना सं० १२९४ के पश्चात् हुई, यह निश्चित है। अमरचन्द्रसूरि ने स्वयं भी 'पद्मानन्द' के उन्नीसवें सर्ग में पद्म का, जिसकी प्रार्थना पर 'पद्मानन्द' काव्य की रचना की गयी, परिचय देते हुए वीसलदेव नृप का उल्लेख इन पद्यों में किया है:—

> **सत्पात्रप्रसराश्रयः शुचिगुणग्रामभारगौराशयः**
> **सद्वृत्तो द्विजराजहंससुखकृद् दोषाकरे न्यङ्मुखः।**
> **श्रीमद्विश्वलदेवविश्वविभुना प्रोद्भास्य तेजोभरैः**
> **श्रीपद्मस्तपनेन पद्मवदयं सद्म श्रियो निर्ममे॥**
> **श्रीमद्विश्वलमेदिनीश्वरकृतप्रौढप्रसादादसौ**
> **व्यापारानधिगम्य कानपि कदाऽप्युत्सेकदावाम्बुदः।**
> **स्वार्थं सारपरोपकारकरणव्यापारसेवाकरोत्**
> **श्रीपद्मो नृपतिः प्रजार्थयुगलीं कृत्वार्यशास्त्रार्थतः॥**[1]

यहाँ पद्ममन्त्री के वीसलदेव नृप की सेवा में रहने के उल्लेख से 'पद्मानन्द' की रचना वीसलदेव के प्रथम राज्यवर्ष सं० १२९४ के पश्चात् हुई, यह सिद्ध होता है।

प्रोफेसर पीटर्सन ने अपनी प्रथम रिपोर्ट में लिखा है कि 'पद्मानन्द' महाकाव्य की सं० १२९७ की लिखी एक हस्तलिखित प्रति खम्भात में सुरक्षित है।[2] इन पंक्तियों के लेखक ने भी अपनी खम्भात-यात्रा में इस प्रति को देखा था। 'पद्मानन्द' की इस प्रति से यह सिद्ध हो जाता है कि 'पद्मानन्द' का निर्माण सं० १२९७ के पूर्व हो गया था। इस

---

(१) पद्मानन्द महाकाव्य, सर्ग १९, श्लोक ४९–५०

(२) पीटर्सन की प्रथम रिपोर्ट, पृ० ५८ तथा पद्मानन्द की अंग्रेजी भूमिका, पृ० ३४

विवेचन के आधार पर 'पद्मानन्द' का रचनाकाल सं० १२६४ से सं० १२६७ तक के मध्य का काल निर्विवाद-रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

'पद्मानन्द' काव्य की रचना वीसलदेव के मंत्री पद्म की प्रार्थना पर की गयी थी। इसका उल्लेख स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है:—

श्रीमत्तीर्थकृतां चरित्रततयश्चित्राश्चतुर्विंशतेः
स्वल्पाभिस्तिथिभिर्यथा श्रुतिपथे: पान्थत्वमातन्वते।
ग्रन्थः कोऽपि तथा भवेद् यदि ततः श्राद्धाः श्रयन्त्येव तं
शृण्वन्तः सुकृतानि पद्मसचिवेन्द्रस्येति चेतस्यभूत्॥
श्रीमद्वायटगच्छवारिजरवेः पादारविन्दद्वये
येन श्रीजिनदत्तसूरिसुगुरोः शृङ्गारभृङ्गायितम्।
स श्वेताम्बरमौलिरत्नममरः श्रीपद्ममन्त्रीप्सितं
पद्मानन्दमिदं मुदाऽकृत महाकाव्यं महानन्दकृत्॥[1]

अनुष्टुप्-परिमाण से 'पद्मानन्द' की श्लोक-संख्या ६३८१ है। इसकी रचना कवि ने कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि-कृत 'त्रिशष्टिशलाकासत्पुरुषचरित्र' के आधार पर की है। उसने स्वयं इस तथ्य को इन शब्दों में स्वीकार किया है:—

मया श्रीहेमसूरीणां त्रिषष्टिचरितक्रमः।
यूथप्रभोरिभस्याध्वा कलभेनेव सेव्यते॥[2]

'पद्मानन्द' का कथानक उन्नीस सर्गों में विभक्त है। प्रथम (प्रस्तावना) सर्ग में जिनेश्वर-स्तुति के पश्चात् काव्यनिर्माण का कारण बताया गया है। द्वितीय सर्ग से लेकर छठे सर्ग तक ऋषभदेव जी के द्वादश पूर्व-भवों का वर्णन किया गया है। द्वितीय (प्रथमधनसार्थवाहभवद्वितीयमिथुनभवतृतीयसौधर्मदेवभवकीर्तन) सर्ग में क्रमशः धनसार्थवाह, युग्मी, एवं धनजीव सुर—इन तीन भवों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। तृतीय (चतुर्थमहाबलभववर्णन) सर्ग में ऋषभदेव के चतुर्थ भव महाबल का वृत्तान्त है। चतुर्थ (पंचमललिताङ्गदेवभवषष्ठभवश्रीवज्रजंघोत्पत्तिकीर्तन) सर्ग में पंचम भव—ललिताङ्गभव का वर्णन हुआ है। पंचम (षष्ठश्रीवज्रजंघश्रीमतीभवसप्तमयुग्मिभवाष्टमसौधर्मभवप्रकाशन) सर्ग में ऋषभदेव के षष्ठ, सप्तम और अष्टम भव का वर्णन किया गया है। इन भवों में ऋषभदेव क्रमशः वज्रजंघ, युग्मी और सुधर्मा सुर बनते हैं। षष्ठ (नवमवैद्यजीवानन्दभवदशमाच्युतदेवलोकभवएकादशचक्रवर्तिश्रीवज्रनाभभवद्वादशसर्वार्थसिद्धिभवप्रकाशन) सर्ग में नवें वैद्य जीवानन्दभव, दसवें अच्युतदेवलोकभव, ग्यारहवें चक्रवर्ती वज्रनाभभव और बारहवें सर्वार्थसिद्धिभव का वर्णन हुआ है। सप्तम (कुलकरोत्पत्ति-प्रभुजन्मोत्सववर्णन) सर्ग में वज्रनाभचक्री के नाभिपत्नी मरुदेवा की कुक्षि में अवतीर्ण होने और उनके ऋषभदेव तीर्थंकर के रूप में उत्पन्न होने का वर्णन है। अष्टम (प्रभुबाललीला-

कथानक

(१) पद्मानन्द, सर्ग १६, श्लोक ६०-६१ (२) वही, सर्ग १, श्लोक ८६

यितवपुवर्णन) सर्ग में ऋषभदेव की बाल-लीलाओं तथा सुमंगला एवं सुनन्दा से उनके परिणय का वर्णन है। नवम (भरतब्राह्मीबाहुबलिसुन्दरीसम्भवमिथुनराजार्थनासमर्थन) सर्ग में सुमंगला के गर्भ से भरत और ब्राह्मी तथा सुनन्दा के गर्भ से बाहुबलि एवं सुन्दरी की उत्पत्ति का वर्णन है। दशम (भगवद्राज्याभिषेकविनीतास्थापन-जगद्व्यवस्थाप्रकाशन-सौराज्य-वर्णन) सर्ग में युगलिकों की प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक होता है। ऋषभदेव विनीता नगरी की स्थापना करते हैं और जनकल्याण के लिए राज्य करते हैं। एकादश (ऋतुषट्कप्रभुविलासवर्णन) सर्ग में ऋषभदेव के षड्ऋतुविलास का विस्तृत वर्णन है। द्वादश (वसन्तोत्सवखेलनभगवद्वैराग्यश्रीभरतराज्याभिषेकसांवत्सरिकदानदीक्षोत्सवप्रकाश) सर्ग के आरम्भ में ऋषभदेव की वसन्तोत्सवक्रीड़ा का वर्णन है। इसके पश्चात् लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर उनके विरक्त होने, भरत का राज्याभिषेक कर सांवत्सरिक दानपुरस्सर दीक्षा ग्रहण करने तथा उनमें मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न होने का वर्णन है।

त्रयोदश (कच्छमहाकच्छस्वरूपनमिविनमिविद्याधरैश्वर्यश्रेयांसकारितप्रभुपारणक-केवलज्ञानोत्पत्तिप्रकाशन) सर्ग में नमि-विनमि की ऋषभदेव में अटूट भक्ति देख कर धरणोरग का उन्हें विद्याधरैश्वर्य प्रदान करना, श्रेयांस का इक्षुरस द्वारा ऋषभदेव को पारणा कराना तथा ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त होना—इन घटनाओं का विवरण दिया गया है। चतुर्दश (समवसरणवर्णन—श्रीमरुदेवानिर्वाण—प्रभुदेशना—संघस्थापनाप्रकाशन) सर्ग में प्रभु के समवसरण-दर्शन के लिए मरुदेवा का आगमन और उसकी निर्वाणोपलब्धि, समवसरण में ऋषभदेव की देशना तथा संघस्थापना—इनका विवरण दिया गया है। पंचदश (भरतचक्रवर्तिदिग्विजये मागधतीर्थादिविजयतमिस्राप्रवेशकिरातरणकीर्तन) सर्ग में ऋषभदेव के समवसरण-महोत्सव से लौटकर भरत के दिग्विजय करने का वर्णन है। षोडश (क्षुद्रहिमवत्कुमारविजयादिदिग्विजय—विनीतापुरीप्रवेशचक्रवर्तिपदाभिषेक-सुन्दरीसहोदरव्रत—ग्रहणकीर्तन) सर्ग में दिग्विजय-प्रसंग के अन्तर्गत भरत हिमाचल प्रदेश के अधिपति हिमवत्-कुमार को जीत कर अपनी राजधानी विनीतापुरी में प्रवेश करते हैं और अपना चक्रित्वाभिषेक करते हैं। इसी सर्ग में सुन्दरी अष्टापद जाकर ऋषभदेवजी से दीक्षा ग्रहण कर लेती है। भरत के आक्रमण से दुखी होकर भरत के भाई भी अष्टापद जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। सप्तदश (बाहुबलिसंग्राम-दीक्षा-केवलज्ञानसंकीर्तन) सर्ग में भरत के बाहुबलि पर आक्रमण करने, युद्ध में भरत की हार होने, संसार की अनित्यता देख कर बाहुबलि के दीक्षा ग्रहण करने एवं केवलज्ञान प्राप्त करने का विवरण दिया गया है। अष्टादश (मरीचि-स्वरूप-भगवन्निर्वाण-श्रीभरतकेवलोत्पत्तिमोक्षवर्णन) सर्ग में मरीचि के अन्तिम तीर्थंकर बनने की ऋषभदेव की भविष्यवाणी, अष्टापद पर उनके (ऋषभदेव के) निर्वाण, भरत को केवलज्ञानोपलब्धि तथा उनके (भरत के) निर्वाण का वर्णन किया गया है। एकोनविंश (प्रशस्ति) सर्ग में कवि ने अपनी गुरुपरम्परा तथा प्रस्तुत काव्य की रचना करने के लिए प्रेरणा देने वाले पद्ममन्त्री की वंशावली का विवरण दिया है। वस्तुतः अष्टादश सर्ग के साथ ही कथानक की समाप्ति हो जाती है।

'पद्मानन्द' की कथावस्तु का मुख्य आधार वृषभनाथ का परम्परागत चरित्र है, अतः मूल कथा में परिवर्तन करना कवि का अभीष्ट नहीं रहा है। इस कारण कथानक में नवीन उद्भावनाओं का समावेश नहीं हो सका है। 'पद्मानन्द' का वास्तविक कथानक यद्यपि विस्तृत नहीं है, तथापि कवि ने आठवें सर्ग में वृषभनाथ की बाललीला, दसवें सर्ग में ऋषभदेव की राज्य-व्यवस्था, ग्यारहवें सर्ग में षड्ऋतुविलास, बारहवें सर्ग में वसन्तक्रीड़ा तथा सोलहवें सर्ग में भरत की दिग्विजय एवं ऋषभदेव की विविध देशनाओं की योजना करके उसे जीवन की विविधता और व्यापकता का चित्र उपस्थित करने में समर्थ बनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु साथ ही वर्ण्यविषयों को अनपेक्षित विस्तार देने से कथानक में शिथिलता आ गयी है।

चरित्र-चित्रण

'पद्मानन्द' एक धार्मिक काव्य है। उसमें भगवान् ऋषभनाथ के पावन चरित्र की विशेषताओं का चित्रण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है और उसमें उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है। वृषभनाथ ही 'पद्मानन्द' के प्रमुख पात्र हैं। काव्य के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कवि ने उन्हीं का चित्रण किया है। ऋषभदेव जी 'पद्मानन्द' काव्य के नायक हैं। उनके सभी पूर्वभवों में धर्मपरायणता की

ऋषभदेव

प्रवृत्ति सामान्य-रूप से परिलक्षित होती है। धर्म का बीज उनके मन में प्रारम्भ से ही वर्तमान है। ज्योंही कोई मुनि उसे अपने देशनाजल से आप्लावित करता है वह अंकुरित हो उठता है। प्रथम भव में धनसार्थवाह के रूप में वे धर्मघोषसूरि के उपदेश से धर्मग्रहण करते हैं। चतुर्थ भव में जब वे महाबल के रूप में हैं, स्वयंबुद्ध मन्त्री की प्रेरणा से दीक्षा ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार पंचम भव में दृढ़धर्म मन्त्री की प्रेरणा से, छठे भव में मुनिद्वय की देशना से, नवम भव में जीवानन्द मुनि के उपदेश से तथा ग्यारहवें भव में जिनेश्वर की देशना से वे धर्ममार्ग ग्रहण करते हैं। प्रायः इन सभी भवों में वे धर्मग्रहण के पूर्व लौकिक आसक्ति में ग्रस्त दीख पड़ते हैं। प्रथम भव में धनसार्थवाह धनोपार्जन की चिन्ता में मग्न दृष्टिगत होता है। उसका मत है, 'वित्तार्जनेनैव गृही विभाति'। चतुर्थ भव में महाबल स्त्री-आसक्ति का शिकार है। कवि के इन शब्दों—'सदाऽश्रयद् वैषयिकं सुखं स्वयं' में उसकी विषय-लिप्सा की अभिव्यक्ति हुई है। महाबल के सम्बन्ध में मन्त्री स्वयंबुद्ध के ये शब्द भी उसकी विषयैषणा को प्रकट करते हैं :—

महाबलोऽयं विषयैर्महाबलैर्विसंस्थुलः × × ×।[1]

पाँचवें भव में ललितांग में भी यही आसक्ति दिखायी देती है। उसका मत है :—

त्रिजगति सारं स्वर्गः स्वर्गे सारं सदैव विषयसुखम्।
विषयसुखे सारं स्त्री स्त्रियां हि सारं परं प्रेम॥[2]

छठे भव में वज्रजंघ भी 'विश्वोत्तरां विषयसौख्यसम्पदं' का अनुभव करता है।

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ३, श्लोक ६३ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक १०७

किन्तु बाद में इन सबकी लौकिक आसक्ति नष्ट हो जाती है और वे धर्म-मार्ग ग्रहण करते हैं।

बारहवें भव को पार करके नाभिपत्नी मरुदेवा के गर्भ से तीर्थंकर का अवतार होता है। उत्पन्न होते ही उनका तेजस्वी स्वरूप प्रकट हो जाता है और समस्त त्रिलोकी में प्रकाश फैल जाता है :—

> **प्रभौ प्रत्यक्षतां प्राप्ते भुवनत्रयभास्करे।**
> **उद्योतो द्योतयामास त्रैलोक्यमपि तत्क्षणम् ॥[1]**

ऋषभदेव एक आदर्श राजा हैं। उनकी शासन-व्यवस्था निर्दोष एवं जनहितकारी है। उनके राज्य में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, श्वश्रू-वधू, गुरु-शिष्य आदि सभी अपने-अपने कर्तव्यों के पालन में रत रहते हैं :—

> **श्वश्रूर्न वध्वा न पिता तनूजात् पतिर्न पत्न्या न विभुः पदातेः।**
> **न स्त्री सपत्न्या न गुरुर्विनेयाल्लेभे तदा दुर्विनयाभिभूतिम् ॥[2]**

ऋषभनाथ बाल्यावस्था से ही वैरागी वृत्ति के हैं। वसन्तोत्सवक्रीडा के अन्तर्गत लोगों की विषयाभिकांक्षा को देख कर उनकी वैराग्यवृत्ति जाग उठती है और वे लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर राज्य-त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और तीव्र तप करते हैं। ऋषभदेव में अद्भुत सहनशक्ति है। भूख-प्यास, शीत-आतप आदि की उन्हें बिलकुल चिन्ता नहीं है। कच्छादि मुनियों ने उनकी अद्भुत सहनशीलता का वर्णन इन शब्दों में किया है :—

> **विषाक्तानीव नाश्नाति फलानि वनजान्यपि।**
> **नद्यादिजान्यपि जलान्युच्छिष्टानीव नो पिबेत् ॥**
> **नातपेन न शीतेन शैलवत् क्लिश्यते क्वचित्।**
> **न शेते नोपविशति कदाऽपि पवमानवत् ॥**
> **पीड्यते क्षुत्पिपासाद्यैः स्वामी यन्न मनागपि।**
> **ततो ध्रुवमयं धातुमुक्तमूर्तिरमर्त्यवत् ॥[3]**

इस तीव्र तपस्या के परिणाम-स्वरूप वृषभनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति होती है और अन्त में वे निर्वाण प्राप्त करते हैं। वृषभनाथ कुशल उपदेशक भी हैं। काव्य में उनके द्वारा दी गई देशनाएँ उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को स्पष्ट करती हैं।

अन्य पात्र — अन्य पात्रों में भरत और बाहुबलि के चरित्र का ही विकास हुआ है। भरत सुमंगला के गर्भ से उत्पन्न वृषभनाथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं। पिता के प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर वे अयोध्या के राजा बनते हैं। भरत अतीव शक्तिशाली और दुर्दान्त वीर हैं। दिग्विजय-प्रसंग में उनकी वीरता की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ७, श्लोक ३२१ (२) वही, सर्ग १०, श्लोक ११३
(३) वही, सर्ग १३, श्लोक १९, २२, २४

शक्ति के दर्प में वे अनीति भी कर बैठते हैं। वे अपने भाइयों का राज्य भी छीन लेते हैं और बाहुबलि पर आक्रमण कर देते हैं। इस अनीति का फल भी उन्हें मिलता है। वे बाहुबलि के हाथों पराजित होते हैं। इस समय उन्हें आत्मग्लानि होती है और वे अन्त में दीक्षा ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

बाहुबलि सुनन्दा के गर्भ से उत्पन्न ऋषभदेव के पुत्र हैं। उनमें अतुलित शक्ति है। भरत जैसे पराक्रमी वीर को भी उनके सम्मुख पराजित होना पड़ता है। अन्त में उन्हें ऐसे राज्य से विरक्ति हो जाती है जो भाई-भाई में वैर उत्पन्न कर दे। भरत के प्रति कहे गये उनके इन शब्दों में उनके हृदय की विरक्ति स्पष्टतया झलक रही है :—

चक्रिन् ! मयाऽत्यजत राज्यतृष्णा भ्रात्रोर्ययेदृग् जनितो विभेद:।
एतत्कृते भ्रातृवधं न कुर्वे तातप्रपन्नां पदवीं प्रपत्स्ये ॥[1]

राज्य त्याग कर बाहुबलि दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और कैवल्य प्राप्त करते हैं।

'पद्मानन्द' में प्रकृति के अनेक भव्य चित्र उपस्थित किये गये हैं। इन चित्रों में पर्याप्त सजीवता दृष्टिगत होती है। समग्र ग्यारहवाँ सर्ग प्रकृति-वर्णन से भरा हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

इसमें यत्र-तत्र प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक वर्णन वर्तमान हैं। वर्षा-काल में जल से परिपूर्ण सरोवरों में कमलों का नितान्त अभाव दृष्टिगोचर होता है। वर्षाकालीन प्रकृति का यह चित्र इन पंक्तियों में अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है :—

अजनि तुंगतरंगपरम्परावलिनिलुप्तपयोजविलोचन:।
समुदय: सरसां नववारिदच्युतपयोभरपीवरवैभव: ॥[2]

इसी प्रकार निम्नोद्धृत पंक्तियों मे चारों ओर काँस के फूलने, नद-नदियों में जल के निर्मल होने, सूर्य के प्रखर होने, आकाश में शुक-पंक्ति के उड़ने एवं गगन में जलरहित शुभ्र मेघखण्डों के विचरने का चित्रण करके कवि ने शरत्कालीन प्रकृति का सहज रूप चित्रित किया है :—

शरदृतु: शरपूर्णदिगन्तरो विमलसत्तरवारिविजृम्भितम् ।
किल विजित्य घनागममुद्यतो विशददुस्सहसूर्यमहस्तति: ॥
प्रसृतताम्रमुखाह्निशुकावलिच्छलसविद्रुमवीचिसमुच्चयम् ।
विजलवारिदफेनिलमम्बरं सितितरं श्रियमश्रयदम्बुधे: ॥[3]

'पद्मानन्द' में अमरचन्द्रसूरि ने अनेक स्थलों पर उद्दीपन-रूप में प्रकृति का उपयोग किया है। वसन्तकालीन कोकिलारव वियोगिनी स्त्रियों की विरह-व्यथा को बढ़ाता है, मानिनी स्त्रियों को मानभंग करने के लिए विवश करता है और प्रियतम से युक्त कामिनियों

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग १७, श्लोक ३६५ (२) वही, सर्ग ११, श्लोक २८
(३) वही, सर्ग ११, श्लोक ४०, ४२

के कर्णकुहरों में अमृतधारा उँड़ेल कर उनके प्रणय को गहरा बनाता है। वसन्तकालीन प्रकृति का यह उद्दीपक रूप इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है :—

> वियोगिनीप्राणविनिर्गमानकः प्रकोपिनीकोपविलोपलग्नकः।
> प्रियान्विताकर्णपथाऽमृतप्लवः क्व नाम नाकर्ण्यत कोकिलारवः ॥[1]

प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत मानवीय रतिविलास के चित्र भी कवि ने उपस्थित किये हैं। वनवर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका की कामक्रीडा भी चल रही है :—

> इमानि पुष्पाणि वराणि कस्यचिन्न गोचराणीह समेहि तेऽर्पये।
> प्रलोभ्य मुग्धामिति वल्लभोऽनयद् रहस्तदालिङ्गनमङ्गलोत्सुकः ॥[2]

ऐसे वर्णनों में प्रकृति पृष्ठभूमि में चली गयी है और मानवीय रतिविलास प्रमुख हो गया है।

'पद्मानन्द' में कवि ने प्रकृति का मानवीकरण भी किया है, किन्तु उसके मानवीकरण में सर्वत्र उद्दीपन की भावना व्यक्त होती है। वनक्रीडा-प्रसंग में जहाँ नायक-नायिका काम-केलि में मग्न हैं, प्रकृति भी रतिविलास में लीन दिखाई देती है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में मलयानिल नवमाधवीलता का आलिंगन करते हुए चित्रित किया गया है :—

> द्विरेफनादैर्न नेतिवादिनीं धृतप्रकम्पां मलयानिलः शनैः।
> समालिलिङ्ग श्रितपुष्पसम्पदं युवेव मुग्धां नवमाधवीलताम् ॥[3]

इस प्रसंग में मानव-हृदय की भावनाओं और प्राकृतिक दृश्यों में समानता दिखा कर कवि ने मानव-हृदय और प्रकृति के बीच सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है। अन्य स्थलों पर भी कवि ने प्रकृति को मानवीय जीवन और भावनाओं से स्पन्दित चित्रित किया है। वसन्त के इस वर्णन में वनस्थली को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है जो वसन्त-नायक के प्रवास से लौटने पर हर्षोत्फुल्ल हो जाती है और कुसुम्भी साड़ी धारण कर प्रिय का अभिनन्दन करती है :—

> चिराद् वसन्ते समुपेयुषि प्रिये मनोहरालापकरेऽलिकूजितैः।
> निरन्तरोल्लासिपलाशमण्डलं दधौ कुसुम्भांशुकवद् वनस्थली ॥[4]

इसी प्रसंग में वसन्त को मानव के सेवक के रूप में भी चित्रित किया गया है जो युगल प्रेमियों की प्रणय-केलि के लिए उपयुक्त वातावरण एवं स्थान का निर्माण करने के लिए सघन कुंजों को वन्य लताओं के पत्रों से इस प्रकार आच्छादित कर देता है कि उनमें दिन में भी अमावास्या की रात्रि की तरह अन्धकार छा जाता है।[5]

'पद्मानन्द' में प्रकृति के आलंकारिक वर्णन भी प्रभावशाली बन पड़े हैं। प्रस्तुत को स्पष्ट करने के लिए प्रकृति के अप्रस्तुत रूपों की उपमान-रूप में योजना कवि ने अनेक

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग १२, श्लोक ५
(२) वही, सर्ग १२, श्लोक २०
(३) वही, सर्ग १२, श्लोक १०
(४) वही, सर्ग १२, श्लोक ७
(५) वही, सर्ग ११, श्लोक ७

स्थलों पर की है। स्वयंप्रभा के सौन्दर्य-वर्णन में प्रकृति का यही रूप चित्रित हुआ है :—

> **नाभ्यावर्तगभीरा घनमिलितस्तनरथाङ्गमिथुनवरा।**
> **मितहसितफेनकलिता वरेण्यवेणीविलासश्री ॥**
> **लावण्यामृतलहरी क्रमकरनयनाननारविन्दततिः।**
> **या विपुलजघनपुलिना विलसनकल्लोलिनी रतीशस्य ॥**[1]

यहाँ स्वयंप्रभा के रूप-वर्णन में रूपक की योजना द्वारा नदी का भव्य चित्र अंकित हुआ है।

इस प्रकार 'पद्मानन्द' के कथानक में कवि ने विविध प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के द्वारा मनोरमता लाने का प्रयत्न किया है। 'पद्मानन्द' में प्रभात, सन्ध्या, उदधि, षड्ऋतु आदि के अनेक सजीव चित्र वर्तमान हैं। ऋतुसम्बन्धी प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भावपूर्ण प्रकृति-चित्र अंकित करने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

'बालभारत' की तरह 'पद्मानन्द' में भी अमरचन्द्रसूरि ने अपने पात्रों के सौन्दर्य-चित्र उपस्थित किये हैं। पुरुष-पात्रों में महाबल एवं ऋषभनाथ के तथा स्त्री-पात्रों में सुनन्दा एवं स्वयंप्रभा के सौन्दर्य-चित्र कला की दृष्टि से अच्छे बन पड़े हैं।

सौन्दर्य-चित्रण

इन सौन्दर्य-चित्रों को उपस्थित करने में कवि ने परम्परागत नखशिख-पद्धति का आश्रय लिया है। नारी के सौन्दर्य-चित्रों में अंगविशेष की लावण्यमाधुरी को व्यक्त करने के लिए कवि ने प्रायः परम्परा-प्रथित प्राकृतिक उपमानों का ही प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियों में स्वयंप्रभा के उरुद्वय का लावण्य व्यक्त करने के लिए करिशुण्डा एवं रम्भास्तम्भ परम्परागत उपमान प्रस्तुत किये गये हैं :—

> **जाने यदूरुविजिताः करिहस्ता दुर्यशोमदालिमिषात्।**
> **रंभास्तम्भालोलद् विनीलदलदम्भतो रेजुः ॥**[2]

सुनन्दा के शरीर को मन-रूपी हस्ती को बाँधने वाली वारी (बन्धनशाला) और नाभि को मन-रूपी हस्ती को गिराने वाला गंभीर गर्त कह कर सुनन्दा की शरीरयष्टि एवं नाभि के अतुलित सौन्दर्य की व्यंजना इन शब्दों में की गयी है :—

> **साऽज्ञया स्मरनृपस्य कुमारी यौवनेन रचिता किल वारी।**
> **चित्तदन्तिपतनाय गभीरा नाभिरत्र तदतन्यत गर्ता ॥**[3]

कवि-कल्पना की मृदुल मंजुलता प्रसाधन-सामग्री से अलंकृत सुनन्दा के रूप-वर्णन में दर्शनीय है। सुनन्दा और सुमंगला के कण्ठ में सुशोभित हार कुच-युग्म पर लहरा रहा है। उसे देख कर कवि कल्पना करता है मानो कामदेव की दोनों प्रियाओं (रति-प्रीति) के क्रीडाशैलों से निकल कर दो नदियाँ प्रवाहित हो रही हों :—

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ४, श्लोक ५७–५८ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक ४६
(२) वही, सर्ग ८, श्लोक १५४

कण्ठेऽध्यरोपि कुचयुग्मलतावलम्बी हारस्तयोस्त्रिदिववारविलासिनीभिः ।
कामप्रियाद्वितयकेलिनगद्वयावरोहन्नदीयुगलवेणियुगानुकारः ॥[1]

प्रस्तुत के साम्य के आधार पर उपस्थित किया गया यह अप्रस्तुत विधान बाह्य सौन्दर्य को उभारने में कोई सहायता नहीं करता, किन्तु उसमें कल्पना की ऊँची उड़ान और दूर की कौड़ी लाने की कवि-प्रवृत्ति अवश्य परिलक्षित होती है ।

ऋषभदेव के सौन्दर्य-वर्णन में कवि की प्रवृत्ति आध्यात्मिक उपमान जुटाने की ओर दिखायी देती है । जिनपति की दोनों जंघाओं को श्राद्धधर्म-यतिधर्म के दो जयस्तंभ कह कर जंघाओं की परम पवित्रता की ओर संकेत किया गया है :—

जंघयोर्द्वयमशोभत भर्तुः श्राद्धधर्मयतिधर्मयुगस्य ।
क्रूरकर्मजयिनोर्जयकीर्तिस्तम्भयुग्ममिव जङ्गममूर्ति ॥[2]

जिनपति की दोनों भुजाओं को रागद्वेष को चूर्ण करने वाले दो मुद्गर बता कर उनके आध्यात्मिक सौन्दर्य को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है : —

दोर्युगं विजयते स्म जिनेन्दोर्जानुलम्बि पविदण्डविडम्बि ।
बोधिना प्रगुणितं खलु रागद्वेषपेषि गुरुमुद्गरयुग्मम् ॥[3]

इसी प्रकार जिनपति के पदपृष्ठ, पदपार्ष्णि आदि अवयवों के लिए भी कवि ने आध्यात्मिक उपमानों की योजना की है । सौन्दर्य-वर्णन की इस पद्धति में बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आभ्यन्तरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अधिक हुई है ।

'पद्मानन्द' के कथानक में तत्कालीन समाज में प्रचलित कतिपय मान्यताओं और रीति-रिवाजों का वर्णन भी यत्र-तत्र हुआ है । विशेषकर विवाह के समय सम्पन्न किये जाने वाले लौकिक आचारों का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है । ऋषभदेव के विवाह

समाज-चित्रण

में वधू पक्ष की स्त्रियाँ दोनों वधुओं—सुमंगला एवं सुनन्दा—को विविध अलंकारों से सज्जित करती हैं । इधर वर को स्नान–लेपन करा कर सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं । वर यान में बैठ कर मण्डप-द्वार तक जाता है । वहाँ पहुँचने पर वह यान से उतरता है । यहाँ स्त्रियाँ वर के मंगल के लिए एक अग्निपूर्ण शराव (मृत्तिका-पात्र) में लवण रखती हैं जिससे त्रटत्-त्रटत् की आवाज होती है ।[4] एक स्त्री दूर्वा आदि मांगलिक वस्तुओं से परिपूर्ण चाँदी का थाल लेकर खड़ी होती है और दूसरी मंथनदण्ड लेकर वर के समक्ष खड़ी होती है ।[5] मधुर गीतों के बीच वर को अर्घ्य दिया

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ९, श्लोक ५८ (२) वही, सर्ग ८, श्लोक ९१
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक १०२
(४) माणिक्यमण्डपचरा व्यमुचन् द्युनार्यो निःशेषमङ्गलमयप्रभुमङ्गलाय ।
द्वारे शराववरसम्पुटमुत्कटाग्निक्षिप्तत्रटत्त्रटितिकृल्लवणौघगर्भम् ॥
—वही, सर्ग ९, श्लोक ७१
(५) काचित्कुसुम्भवसनांऽचलचुम्बिताग्रं वैशाखमुद्धृतवती पुरतो वरस्य ॥
—वही, सर्ग ९, श्लोक ७३

जाता है और मन्थनदण्ड से वर का मस्तक स्पर्श किया जाता है। पादुका पहने हुए वर वाम चरण से अग्निलवणपूर्ण शरावसम्पुट का स्पर्श करता है। इसके बाद अर्घ्य देने वाली स्त्री वर को मातृगृह ले जाती है, यहाँ मातृदेवी के सामने वर को सुवर्ण के आसन पर बिठाया जाता है और वधुओं एवं वर के हाथ में सूत्र बाँध दिया जाता है। इस अवसर पर पिप्पल एवं शमी की त्वचा को पीस कर वधुओं के हाथों में लेप किया जाता है। लग्न का समय आने पर ऋषभदेव वधुओं के हाथों को अपने हाथ से पकड़ते हैं। इसी समय तारा-मेलनपर्व सम्पन्न होता है जिसमें वर-वधू एक दूसरे को देखते हैं। तारामेलकपर्व पर वधू पक्ष की स्त्रियाँ वर को लक्ष्य कर नर्म-वचन-पूर्ण गीत गाती हैं और वर के वसनांचल से वधुओं के अंचल-युग को बाँध देती हैं। वर वधुओं के साथ वेदीगृह को जाता है। यहाँ वर पत्नियों का हाथ पकड़ कर अग्नि की आठ बार प्रदक्षिणा करता है। इसके बाद वर-वधू का पाणिमोक्षणपर्व सम्पन्न होता है। स्त्रियाँ हल्लीसक नृत्य करती हैं, और गायन-वादन का वातावरण उपस्थित हो जाता है। पाणि-मोक्षण-क्रिया के साथ ही वैवाहिक क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं और वर यान में बैठ कर मंडप से अपने स्थान को लौट आता है।[1]

विवाहकालीन रीति-रिवाजों के साथ-साथ कतिपय अन्य धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के विवरण भी 'पद्मानन्द' में प्राप्त होते हैं। ऋषभदेव के समवसरण एवं राज्या-भिषेक के अवसर पर तत्सम्बन्धी रीति-रिवाजों की अभिव्यक्ति हुई है। भरत के चक्रित्वा-भिषेक एवं पुर-प्रवेश के वर्णनों में भी तत्कालीन समाज का रूप दृष्टिगत होता है। 'पद्मा-नन्द' में अनेक स्थलों पर शकुन, अपशकुन, मुहूर्त, दुःस्वप्न आदि का वर्णन भी हुआ है जो तत्कालीन समाज के अन्धविश्वास एवं रूढ़ि-प्रेम का परिचायक है।

धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व

'पद्मानन्द' में अमरचन्द्रसूरि ने जैन धर्म के नियमों और सिद्धान्तों का यथास्थान विवेचन करके अपने काव्य को धार्मिक स्वरूप प्रदान किया है। द्वितीय सर्ग में दान, शील, तप और भावना के भेद से धर्म के चातुर्विध्य पर प्रकाश डाल कर प्रत्येक की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है :—

दानं विपद्रुदनिदानदानं शीलं सुखोन्मीलनशालिशीलम्।
तपः स्फुरत्पंकतपातपश्रि सद्भावना स्याद् भवभावनाशा ॥[2]

दान की विवेचना करते समय ज्ञानदान, अभयदान तथा धर्मोपष्टम्भदान के भेद से दान का त्रिविधत्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अभयदान पर कवि ने बहुत बल दिया है। मन, वाणी, कर्म से जीव-हिंसा से विरत होना ही अभयदान कहा गया है। इसी प्रसंग में जीव के स्वरूप पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। सर्वप्रथम स्थावर और त्रस के भेद से जीव के दो भेद करके पुनः उसके उपभेदों की चर्चा की गयी है और

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ९, श्लोक ७४–१०२ (२) वही, सर्ग २, श्लोक १७७

अन्त में 'कुर्वीत नैतेषु वधं कदाचित्' कह कर जीव-वध से विरत रहने का उपदेश दिया गया है।

दान के पश्चात् शील की विवेचना की गयी है। 'सावद्ययोगपूर्वक विरति ही शील है' यह कह कर विरति को ही शील बताया गया है। इसके बाद एकदेशविरति तथा सर्वविरति के भेद से उसके दो भेद किये गये हैं। गृहस्थों के लिए एकदेशविरति और यतियों के लिए सर्वविरति का निर्देश किया गया है। देशविरति के अन्तर्गत द्वादश व्रतों की गणना की गयी है। द्वादश व्रतों में अहिंसा, सूनृता, अचौर्य, ब्रह्मानुषंग और अपरिग्रह ये पाँच अणुव्रत, दिग्विरति, भोगोपभोगविरति और अनर्थदण्डविरति ये तीन अणुव्रत तथा सामयिक, देशावकाशिक, पौषध तथा अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत गिनाये गये हैं। इन सबकी विवेचना विस्तार से की गयी है। भोगोपभोगविरति में उन खाद्य-पदार्थों की लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है जो श्राद्धों के लिए अखाद्य एवं वर्जनीय हैं। कतिपय वर्जनीय पदार्थों के नाम इन पद्यों में उल्लिखित हैं :—

हैयङ्गवीनं मधु सीधु मांसं विवर्जनीयं कृमिपूर्णगर्भम्।
उदुम्बरप्लक्षवटोद्भवं काकोदुम्बराऽश्वत्थफलं फलं च॥
पल्यङ्कशाकं लवणांह्रिपत्वक् सुकोमलाम्लां किशलं समग्रम्।
कुमारिकां शूकरसंज्ञवल्लस्नुहीविरूढामृतवल्लयोऽपि॥
तथा गुडूची गिरिकर्णिका च शतावरी चार्द्रसमग्रकन्दाः।
सूत्रोदिता इत्यपरेऽपि तज्ज्ञैरनन्तकायाः परिवर्जनीयाः॥[1]

तृतीय सर्ग में पूर्व-पक्ष के रूप में नास्तिकमत, बौद्धमत तथा मायावाद के सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है और उसके बाद उत्तरपक्ष के रूप में इन मतों का खण्डन करके जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं कवि ने पूर्व-पक्ष को अत्यन्त गलत ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ मायावादी मन्त्री मायावाद का समर्थन करता हुआ कहता है :—

महामतिः प्राह न तत्त्वतः किमप्यस्त्यत्र मायेयमहो विजृम्भते।
× × × × × ×
मांसं तटान्ते परिमुच्य जम्बुको मीनोपलम्भाय लघु प्रधावितः।
मीनो जलान्तः प्रविवेश सत्वरं मांसं च गृध्रो हरति स्म तद् यथा।
हित्वैहिकं वैषयिकं सुखं तथा येऽमुत्र सौख्यप्रसराय धाविताः।
ते वंचयन्ति स्वमहो सदोभयभ्रष्टा नरास्तीव्रतपोव्रतादिभिः॥[2]

इन पंक्तियों में शंकर का मायावाद कहाँ है? वस्तुतः ये विचार वेदान्तिक न होकर चार्वाकवादियों के ही हैं। आश्चर्य है कि 'बालभारत' जैसे प्रौढ़ ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थ के रचयिता अमरचन्द्र से यह भूल कैसे हो गयी?

(१) पद्मानन्द, सर्ग २, श्लोक २४२, २४६–२४७
(२) वही, सर्ग ३, श्लोक १६६, १६७–१६८

चतुर्थ सर्ग में विभिन्न नरकों और उनमें जीवों को प्राप्त होने वाली वेदना का वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में तिर्यग्गति आदि में जीवों की दुर्दशा का परिचय भी दिया गया है तथा 'जो जिनधर्म का सेवन करता है उसे नरक तथा तिर्यक् गति की वेदना कभी नहीं प्राप्त होती' यह कह कर इस प्रसंग का उपसंहार किया गया है। छठे सर्ग में अष्टविध जिनपूजा तथा विंशतिस्थानकों के विस्तृत विवरण हैं। उदाहरणार्थ अर्हत्प्रतिमा का पूजन, विविध स्तोत्रों से अर्हत् का स्तवन आदि की गणना प्रथम स्थानक में की गयी है :—

तत्रार्हतां तत्प्रतिमाततीनां यत्पूजनं यत् स्तवनं वरार्थः ।
अवर्णवादप्रतिषेधनं यत् स्थानं तदार्हन्त्यनिमित्तमेकम् ॥[1]

तेरहवें सर्ग में तप की महिमा बतायी गयी है। चौदहवें सर्ग में जिनेन्द्र ...र्न देशना में पुनः धर्म की महिमा बताते हैं। इस प्रसंग में शंका, अभिकांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यादृक् तथा आशंसन-संगति ये पाँच सम्यक्त्व के दूषण तथा स्थैर्य, प्रभावना, कौशल, भक्ति तथा तीर्थोपास्ति—ये पाँच सम्यक्त्व के गुण बताये गये हैं। अठारहवें सर्ग में ... का पंचविधत्व इन पंक्तियों में निरूपित किया गया है :—

व्याजहार प्रभुः पंचप्रकारः स्यादवग्रहः ।
इन्द्रचक्रिनृपाऽगारिसाधुसम्बन्धिभेदतः ॥[2]

इस प्रकार 'पद्मानन्द' में धार्मिक सिद्धान्तों के निरूपण को प्रमुख स्थान ... हुआ है। जीव-अजीवादि-निरूपण-प्रसंगों में कवि दार्शनिकता में भी उलझ गया है, ... भी अधिकतर उसने जैनधर्म के प्रचलित नियमों का प्रतिपादन ही अपने काव्य में किया है

'पद्मानन्द' महाकाव्य में विविध रसों की छटा यत्र-तत्र उपलब्ध होती है। ...

रस-परिपाक

प्रधान महाकाव्य होने के कारण 'पद्मानन्द' में शान्त रस की योजना ... स्थलों पर हुई है। सत्रहवें सर्ग में भरत के साथ संग्राम करते हुए ... के हृदय में अकस्मात् वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। इस प्रसंग में उनकी ... उक्तियों में उनके हृदयस्थ निर्वेद की सुन्दर व्यंजना हुई है :—

राजस्य लोभादमुनैव धिग् धिङ् मयाऽप्यहो भ्रातृवधो विधेयः ।
न तेन राज्येन ममास्ति कार्यमकार्यमित्थं क्रियते यदर्थम् ॥
लोभेन कोपेन विनिर्जितेऽस्मिन् जितेऽपि को मे प्रमदो मदो वा ।
याभ्यां जितोऽसावहमप्यहो चेत् ताभ्यां जितोऽस्मात् किमु गौरवं तत् ॥
राज्येऽपि लोभं भरतेऽपि कोपं त्यक्त्वा ततस्तातपथं प्रपद्ये ।
चेद् राज्यलक्ष्मीः परिणामरम्या तत्याज तातोऽपि कुतस्तदेताम् ॥
त्याज्यैव तस्मान्नरकप्रदेयं ग्राह्यैव दीक्षा शिवदानदक्षा ।

× × × × ×

(१) पद्मानन्द, सर्ग ६, श्लोक २३१ (२) वही, सर्ग १८, श्लोक ८७

इदं गदित्वा शिरसः स केशान् क्लेशानिवान्तःकरणप्रदेशात् ।
समूलमुन्मूलयति स्म कोपाटोपात् पुरोत्पाटितमुष्टिनैव ॥[1]

यहाँ सांसारिक क्षणभंगुरता आलम्बन विभाव है। लोभ-कोप से मन के ग्रस्त रहने एवं राज्यलोभ से भाई का वध करने को प्रस्तुत हो जाने से सम्बन्धित अपने कुकृत्यों की स्मृति उद्दीपन विभाव है। पश्चाताप करना हृदय में विवेक-भावना का स्फुरण होना, दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय करना तथा शिर से केशों का उन्मूलन करना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, वितर्क, उद्वेग, स्मृति, मति आदि संचारी भाव हैं। बाहुबलि के हृदय का निर्वेद स्थायी भाव है जिसकी परिणति शान्त रस में हुई है।

चतुर्थ सर्ग में ललितांग–स्वयंप्रभा–मिलन–सम्बन्धी इस वर्णन में संयोग-शृंगार की मधुर धारा प्रवाहित हुई है :—

तन्मनसोरन्योन्यं परमप्रेमरससान्द्रयोरधिकम् ।
मृत्पिण्डयोरिव रयादेकत्वं मिलितयोर्जज्ञे ॥
निविडानुरागनिगडाऽवलीढयोर्मिलितयोस्तयोः सततम् ।
एको लव इव बहुलः केलिकलयोर्ययौ कालः ॥[2]

इसी सर्ग में स्वयंप्रभा के श्रीप्रभ विमान से च्युत हो जाने पर ललितांग की करुण दशा का चित्रण इन पंक्तियों में हुआ है :—

एह्येहि वल्लभे ! लघु विनय कपोलाद् घनांजनं बाष्पम् ।
इति स जगौ मृगलांछनमागच्छद्वल्लभामुखभ्रान्त्या ॥
अपतदुदपच्च मुहुः क्षणमूर्च्छनचेतनाश्रयेणैषः ।
कुसुमतलिनेऽपि तूलीशयनेऽपि महीतलेऽपि न निवृत्तः ॥[3]

यहाँ स्वयंप्रभा-च्यवनजन्य ललितांग का हृदयगत शोक स्थायी भाव है। स्वयंप्रभा आलम्बन विभाव है और उसका अदृश्य हो जाना उद्दीपन विभाव है। ललितांग का मूर्च्छित होकर गिर पड़ना तथा उसका विलाप करना अनुभाव है। ग्लानि, उन्माद, जड़ता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

सुमंगला और सुनन्दा के साथ वृषभनाथ के परिणय के अवसर पर वर को लक्ष्य कर कहे गये वधू पक्ष की स्त्रियों के ये नर्म-वचन हास्य-रस की सुन्दर व्यंजना करते हैं :—

निर्द्रव्यबाल इव लड्डुकलोलपाणिर्दीनः श्ववद्घटकमण्डकलीननेत्रः ।
मार्जाररवन्मधुरदुग्धविलुब्धजिह्वः श्रद्धां दधात्यनुचरो मनसाऽद्य केन ॥

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग १७, श्लोक ३६१–३६४, ३६७ (२) वही, सर्ग ४, श्लोक ६९–७०
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ८५–८६

अवसर और प्रसंग के अनुकूल शब्द-चयन उनकी प्रमुख विशेषता है, फलस्वरूप उनकी शैली में वैविध्य के दर्शन होते हैं। नीतिपरक सूक्तियों में कवि की भाषा सरल, प्रसादगुणयुक्त एवं असमस्त पदावली से युक्त दृष्टिगोचर होती है। यथा :—

> मूर्खो वरं दुश्चरितो न विद्वान् वरं गृहस्थो न यतिः कुशीलः।
> निःस्वो वरं नो धनवानदाता क्लीवो वरं स्वीकृतभुग् न भक्तः ॥[1]
> परोपकारैकपराः परेषां दोषान् गुणत्वेन विवर्तयन्ते।
> सुस्वादुतां भस्म गुडा नयन्ति क्षारं घना वारिधिवारि यद्वत् ॥[2]

युद्ध-प्रसंग की भाषा ओजगुण से युक्त है। ऐसे स्थलों पर समासबहुला पदावली का प्रयोग किया गया है। ओजगुणयुक्त भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

सर्पः प्रसर्पति स्वैरं विले परविलेखिते ।[1]
अत्युदाराः हि दातारः कालक्षेपं न कुर्वते ।[2]
हस्तिनो हि मशकाः क्व समाः स्युः ।[3]
श्रेयांसि बहुविघ्नानि ।[4]
धनप्रदः प्राणिषु धर्म एव ।[5]
न जीवितादिष्टतमं समस्ति ।[6]
कला हि मूलं खलु जीविकायाः ।[7]

एक-दो स्थलों पर कवि ने देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का प्रयोग भी किया है। यथा :—

गद्दिका समुपवेशनोचिता वस्त्रपद्मवसतेरिव श्रियः ।[8]
निर्द्रव्यबाल इव लड्डुकलोलपाणिः ।[9]

यहाँ गद्दिका और लड्डुक शब्द देशी भाषा के गद्दी एवं लड्डू शब्द से प्रभावित ज्ञात होते हैं। इस प्रकार 'पद्मानन्द' में अमरचन्द्रसूरि का भाषा पर अच्छा अधिकार सिद्ध होता है। भाषा उनकी अनुवर्तिनी है। उसमें संस्कृत भाषा का प्रौढ़, परिमार्जित और साथ-ही-साथ व्यावहारिक रूप देखने को मिलता है।

शब्दक्रीडा और पाण्डित्य-प्रदर्शन

'पद्मानन्द' में कतिपय स्थल ऐसे भी हैं जहाँ अमरचन्द्रसूरि अपने को पाण्डित्य-प्रदर्शन के मोह से नहीं बचा सके हैं। इन स्थलों पर कवि ने अपने भाषा-पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए कतिपय जटिल बन्धनों का निर्वाह किया है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में यमक के सुन्दर निर्वाह के साथ-साथ कवर्ग, चवर्ग और टवर्ग इन तीन वर्गों के अक्षरों का बहिष्कार किया गया है:—

परमया रमया रमयात् तवांह्रिकमलं कमलं कमऽलम्भयम् ।
न नतमानतमानतमानमन् वरविभा रविभा रविभासुर ।।
अमरसामरसामरनिर्मिता जिननुतिर्ननु तिग्मरुचिर्यथा ।
रुचिरसौ चिरसौख्यपदप्रदा निहतमोहतमोरिपुवीर! ते ।।[10]

चौदहवें सर्ग में देवताओं द्वारा की गयी वृषभनाथ की सम्पूर्ण स्तुति त्रिवर्ग (क, च, ट वर्ग) रहित है। इसी सर्ग में आगे सौधर्मपति-कृत वृषभ-स्तोत्र है जिसमें पंच-वर्ग

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ७, श्लोक ७६ (२) वही, सर्ग ७, श्लोक १५६
(३) वही, सर्ग ८, श्लोक ५४ (४) वही, सर्ग १, श्लोक ५५
(५) वही, सर्ग २, श्लोक ३८ (६) वही, सर्ग २, श्लोक २००
(७) वही, सर्ग ६, श्लोक २१ (८) वही, सर्ग १०, श्लोक ११
(९) वही, सर्ग ९, श्लोक ९० (१०) वही, सर्ग १४, श्लोक ७३–७४

(कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग) के वर्णों का बहिष्कार करके शेष वर्णों के द्वारा काव्य-निर्माण किया गया है। इस स्तोत्र की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

श्रेयःश्रीवल्लिवलयशालशीलालयाशय।
उर्वीशेखरसेव्योऽसि रसावासववासवैः॥
रसाशीविषविश्वर्विहायस्तु शिवाश्रय।
अवार्यवीर्यसूर्योऽसि वसुराशिविलाससूः॥[1]

ये स्थल कवि के भाषा पर असाधारण अधिकार के द्योतक हैं।

अलंकार-योजना

'बालभारत' की तरह 'पद्मानन्द' में भी अमरचन्द्रसूरि ने विविध अलंकारों की सुन्दर योजना करके अपनी शैली को प्रौढ़ता और गरिमा प्रदान की है। शब्दालंकारों में कवि ने यमक और अनुप्रास का प्रयोग प्रचुरता से किया है। निम्नोद्धृत पद्य में अनुप्रास की रमणीयता द्रष्टव्य है:—

तस्य प्रियस्तत्र धियां निधानं घनाभिधानो धनदाधिकश्रीः।
यशोधनार्थी स्वधनैः कृतार्थी कृतार्थिसार्थोऽजनि सार्थवाहः॥[2]

यमक की योजना इस पद्य में मनोहर बन पड़ी है:—

तव सनातनसिद्धिसमागमं विनयतो नयतो नयतो जनम्।
जिनपते! सविवेकमुदित्वराऽधिकमला कमला कमलासयत्॥[3]

अर्थालंकारों में मालोपमा, अर्थान्तरन्यास और रूपक की योजना अनेक स्थलों पर हुई है। शिष्यवर्ग से युक्त धर्मघोषमुनि के प्रयाण के वर्णन में मालोपमा का एक सुन्दर प्रयोग इस प्रकार हुआ है:—

धिष्ण्यैरिवेन्दुः शुभवृत्तशोभैः करैरिवार्कः कृतविश्वबोधैः।
विष्कैरिवेभः समदत्वहीनैः शिष्यैर्वृतः सूरिपतिः प्रतस्थे॥[4]

चतुर्थ सर्ग में स्वयंप्रभा के स्वर्ग से च्युत होने पर ललितांग को करुण विलाप करते देख कर प्राग्भव-स्नेह से दृढ़धर्म सुर उसे धैर्य बँधाने के लिए आता है। अपने कथन को सशक्त बनाने के लिए वह इन पंक्तियों में अर्थान्तरन्यास का ललित प्रयोग करता है:—

सुपुरुषरेखा नैषा यद्विधुरे नैव धीरता ध्रियते।
वात्यावर्ते तृणमिव कम्पं कलयन्ति किं शैलाः॥[5]

स्वयंप्रभा के सौन्दर्य-वर्णन-प्रसंग में कवि ने उसमें नदी का आरोप करके सांग रूपक की सफल योजना इस प्रकार की है:—

नाभ्यावर्तगभीरा घनमिलितस्तनरथाङ्गमिथुनवरा।
मितहसितफेनकलिता वरेण्यवेणीविलासश्रीः॥

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग १४, श्लोक १०६–१०७ (२) वही, सर्ग २, श्लोक १७
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक ६७ (४) वही, सर्ग २, श्लोक ७३
(५) वही, सर्ग ४, श्लोक १००

लावण्यामृतलहरी भ्रमकरनयनाननारविन्दततिः ।
या विपुलजघनपुलिना विलसनकल्लोलिनी रतीशस्य ।।[1]

अन्य अलंकारों में असंगति, मुद्रा, दीपक, विषम आदि अलंकारों का प्रयोग भावोद्रेक में सहायक सिद्ध हुआ है । यथा:—

कर्पूरपूरश्रितचन्दनौघैर्विलेपनं ते विदधुर्जिनेन्दोः ।
अपारसंसारदवोद्भवस्तु तेषां तु तापः समवाप शान्तिम् ।।[2]

यहाँ चन्दनलेपन-रूप कारण के जिनेन्द्र के अंगों में होने तथा ताप-शान्ति-रूप कार्य के भक्त में प्रतिफलित होने से कार्यकारण में विरोधाभास दृष्टिगत होता है । अतः असंगति अलंकार है ।

स्थानं मुनीनां गुरुणा बुधेन शनैश्चरेणाश्रितमंगलेन ।
काव्येन संशोभि विकर्तनेन मुक्तं धनोऽगान्निशि खं शशीव ।।[3]

यहाँ धनसार्थवाह अपने विद्वान् गुरु के साथ रात्रि में मुनियों के स्थान पर गया । इस प्रस्तुत अर्थ के साथ-साथ गुरु, बुध, शनैश्चर, मंगल, सूर्य तथा चन्द्र इन ग्रहों के नाम भी सूचित होने से मुद्रा अलंकार है ।

नयेन नेता विनयेन शिष्यः शीलेन लिंगी प्रशमेन साधुः ।
जीवेन देहः सुकृतेन देही वित्तेन गेही रहितो न किंचित् ।।[4]

यहाँ वर्ण्य (गेही) तथा अवर्ण्य (नेता, शिष्य, लिंगी, साधु, देह, देही) दोनों का एक ही धर्म 'रहितो न किंचित्' कहा जाने से दीपक अलंकार है ।

क्व पर्वपीयूषकरः क्व तारकाः क्व वा स्वयम्भूरमणः क्व गोष्पदम् ।
वियन्मणिः क्व क्व वयोमणिः स वा क्व शं प्रभूपासनजं क्व राज्यजम् ।।[5]

यहाँ अनमेल वस्तुओं का वर्णन एक साथ होने के कारण विषम अलंकार है ।

इन अलंकारों के अतिरिक्त 'पद्मानन्द' मे सहोक्ति, विरोध, प्रत्यनीक, परिवृत्ति, एकावली आदि के सुन्दर प्रयोग हुए है ।[6] अलंकारों के प्रयोग में प्रायः स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है, तथापि कहीं-कहीं उनकी यत्नसाध्य योजना भी मिलती है ।

---

(१) पद्मानन्द, सर्ग ४, श्लोक ५७–५८		(२) वही, सर्ग ६, श्लोक १०३
(३) वही, सर्ग २, श्लोक १६६		(४) वही, सर्ग २, श्लोक २४
(५) वही, सर्ग १२, श्लोक ६७
(६) सहोक्तिः— सहसा सह देहेन व्यवहन् वसनानि तस्य मलिनत्वम् ।
आजन्मावियुतानां गुणिनां प्रणयोचितं तद्धि ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक २१६

विरोधः— लक्ष्मीरमुष्य पत्नी समजनि यन्नेत्रपद्मयुग्ममहो ।
सूर्यालोके विमुखं प्रियाऽऽस्यविधुवीक्षणे स्मेरम् ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक २४०

महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार 'पद्मानन्द' के अधिकांश सर्गों में एक छन्द का ही प्रयोग मिलता है और सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया गया है। कतिपय सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। प्रथम सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में आर्या, मालिनी और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। द्वितीय सर्ग में उपजाति और सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। तृतीय सर्ग में इन्द्रवंशा और सर्गान्त में वसन्ततिलका, चतुर्थ सर्ग में आर्या (यहाँ आर्या के तीन भेद आर्या, गीति और उद्गीति का प्रयोग हुआ है) तथा सर्गान्त में वसन्ततिलका, पंचम सर्ग में ललिता और सर्गान्त में वसन्ततिलका, छठे सर्ग में उपजाति, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा तथा सर्गान्त में वसन्ततिलका, सातवें सर्ग में अनुष्टुप् तथा सर्ग के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, आठवें सर्ग में स्वागता एवं सर्गान्त में उपजाति, इन्द्रवंशा, सुन्दरी, शालिनी, शिखरिणी तथा शार्दूलविक्रीडित, नवें सर्ग में वसन्ततिलका तथा सर्ग के अन्त में शार्दूलविक्रीडित, दसवें सर्ग में रथोद्धता तथा सर्गान्त में उपजाति, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवंशा, पृथ्वी और शिखरिणी, ग्यारहवें सर्ग में द्रुतविलम्बित एवं सर्गान्त में प्रमिताक्षरा, उपजाति, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा शालिनी, बारहवें सर्ग में वंशस्थ और सर्ग के अन्त में शिखरिणी, द्रुतविलम्बित तथा शार्दूलविक्रीडित एवं तेरहवें सर्ग में अनुष्टुप् तथा सर्गान्त में रथोद्धता, शालिनी, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, आर्या, अनुष्टुप्, प्रहर्षिणी एवं शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग हुआ है।

छन्द-योजना

चौदहवें और पन्द्रहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। चौदहवें सर्ग में द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, इन्द्रवंशा, मालिनी, आर्या गीति, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, प्रहर्षिणी वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, पुष्पिताग्रा, रथोद्धता, मेघविस्फूर्जिता, हरिणी, उपजाति, चन्द्रिणी, मनोहरा, पृथ्वी, अनुष्टुप्, मंजुभाषिणी, प्रमिताक्षरा, प्रबोधिता, शिखरिणी, स्रग्धरा, स्वागता तथा लक्ष्मी छन्दों का प्रयोग हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग में प्रहर्षिणी, वैतालीय, उपजाति, अनुष्टुप्, इन्द्रवंशा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, रथोद्धता, शालिनी तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। सोलहवें सर्ग में अनुष्टुप् और

प्रत्यनीकः— गुरुणा यदूरुयुगलेन लीलया करिणां करो जगति येन निर्जितः।
अधुनाऽपि तद्भ्रमवशाद् दिवानिशं कदलीप्रकाण्डपटलं भिनत्यसौ ॥
—वही, सर्ग १६, श्लोक ७१

परिवृत्तिः— नानाविमानरत्नांशुव्रातैरिन्द्रधनुःशतम्।
देवैर्ददेऽम्बुदेभ्यस्तैस्तेभ्यश्छायोपरिस्थितैः ॥
—वही, सर्ग ७, श्लोक ५४२

एकावलीः— मोक्षं विना न सौख्यं रागद्वेषक्षयं विना नायम्।
अयमपि न वीतरागप्रभुं विना प्रभवति क्वापि ॥
—वही, सर्ग ४, श्लोक १८५

सर्गान्त में इन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है। सर्ग के मध्य में २१ पद्य मंजुभाषिणी छन्द में हैं। सत्रहवें सर्ग में उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उत्थापनी, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, इन्द्रवंशा, अनुष्टुप्, शालिनी, शार्दूलविक्रीडित और स्वागता—इन विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। अठारहवें सर्ग में अनुष्टुप् और सर्गान्त में शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग हुआ है। सर्ग के मध्य में रथोद्धता का प्रयोग हुआ है। उन्नीसवें सर्ग में पुनः विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस सर्ग में शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी, स्रग्धरा, वसन्ततिलका, पृथ्वी, अनुष्टुप्, आर्या, रथोद्धता, ललिता, उपजाति तथा इन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त 'पद्मानन्द' के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति के बाद दो-तीन स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं। इन पद्यों में शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, अनुष्टुप्, प्रहर्षिणी, उपजाति और रथोद्धता छन्द प्रयुक्त किये गये हैं। इस प्रकार 'पद्मानन्द' महाकाव्य में अनुष्टुप्, उपजाति, आर्या, आर्या-गीति, उद्‌गीति, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, इन्द्रवंशा, मन्दाक्रान्ता, ललिता, स्वागता, इन्द्रवंशा, सुन्दरी, शालिनी, शिखरिणी, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, वंशस्थ, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा, मेघविस्फूर्जिता, हरिणी, चन्द्रिणी, मनोहरा, मंजुभाषिणी, प्रबोधिता, लक्ष्मी, वैतालीय और उत्थापनी इन चौंतीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें सबसे अधिक अनुष्टुप् छन्द का व्यवहार किया गया है। इसके उपरान्त क्रमशः उपजाति, आर्या, इन्द्रवंशा, प्रहर्षिणी, स्वागता, वंशस्थ, ललिता, वसन्ततिलका, रथोद्धता तथा द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग उत्तरोत्तर कम किया गया है। शेष छन्दों का यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है उसकी संख्या बहुत कम है।

(६) मुनिसुव्रतकाव्य (अर्हद्दास)

(रचनाकाल सं० १३०१ से १३२५ के मध्य)

'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य के अतिरिक्त अर्हद्दास-कृत 'मुनिसुव्रतकाव्य' भी दिगम्बर सम्प्रदाय की कृति है। इस काव्य का दूसरा नाम 'काव्यरत्न' भी है।[1] यह दस सर्गों का

(१) सद्वर्ण्यते जैनचरित्रमत्र चिन्तामणिर्भव्यजनस्य यच्च ।
हृद्यार्थरत्नैकनिधिः स्वयं मे तत्काव्यरत्नाभिधमेतदस्तु ॥
—मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १, श्लोक २०

महाकाव्य है जिसमें बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी का जीवनवृत्त लिखा गया है। इसका कथानक 'उत्तरपुराण' से लिया गया है।

महाकाव्य की दृष्टि से 'मुनिसुव्रतकाव्य' एक सफल रचना है। यह एक सर्गबद्ध रचना है जिसके नायक सद्वंशोद्भव मुनिसुव्रत हैं जो धीरप्रशान्त गुणों से युक्त हैं। इसमें शान्त रस प्रधान है और शृंगार आदि रस सहायक-रूप में विद्यमान हैं। चतुर्वर्ग में से धर्म और मोक्ष की प्राप्ति इसका उद्देश्य है। इसका प्रारम्भ वृषभनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, मुनिसुव्रत आदि तीर्थंकरों की स्तुति से हुआ है। सज्जनशंसा और दुर्जननिन्दा की रूढ़ि का पालन भी इन शब्दों में हुआ है :—

मुनिसुव्रतकाव्य का महाकाव्यत्व

> सन्तः स्वभावाद गुणरत्नमन्ये, गृह्णन्ति दोषोपलमात्मकीयम् ।
> यथा पयोऽस्त्रं शिशवो जलौकाः, जनो वृथा रज्यति कुप्यतीह ।।
> तिक्तोऽस्ति निम्बो मधुरोऽस्ति चेक्षुः, स्वं निन्दतोऽपि स्तुवतोऽपि तद्वत् ।
> दुष्टोऽप्यदुष्टोऽपि ततोऽनयोर्मे, निन्दास्तवाभ्यामधिकं न साध्यम् ।।[२]

महाकाव्य के नियमों के अनुसार 'मुनिसुव्रतकाव्य' का कथानक इतिहास (पुराण) से उद्भूत एवं सदाश्रित है। इसका कथानक पचसन्धियों से युक्त है। तृतीय सर्ग में अपुत्रवती रानी पद्मावती की व्यग्रता एवं उसके १६ महास्वप्न देखने के वर्णन में मुख सन्धि है। चौथे से छठे सर्ग तक मुनिसुव्रत का जन्म होने एवं उनकी बालक्रीड़ाओं के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि है। सातवें-आठवें सर्ग में गर्भ सन्धि स्वीकार की जा सकती है, क्योंकि इसमें एक ओर सुव्रतनाथ के वैवाहिक बन्धन में बँध जाने और युवराज बन जाने से उनके मोक्ष प्राप्त करने मे सन्देह होता है, तो दूसरी ओर उनके दीक्षा ग्रहण करने से मोक्ष-प्राप्ति की सम्भावनाएँ बढ़ जाने से विश्वास उत्पन्न होता है। इसलिए फल (मोक्षप्राप्ति) के लाभ-अलाभ, सन्देह-विश्वास के चित्रण में यहाँ गर्भ-सन्धि की योजना हुई है। आठवें सर्ग के अन्त में तथा नवें सर्ग में विमर्श-सन्धि विद्यमान है। यहाँ मुनिसुव्रत के मनःपर्यायज्ञान उपलब्ध कर लेने से फल (मोक्ष)-प्राप्ति की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं, फिर भी ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि के कष्टों एवं उग्र तपस्या-जनित क्लेशों के कारण थोड़ा सन्देह बना ही रहता है। इस द्वन्द्व के चित्रण में विमर्श सन्धि का निर्वाह हुआ है। बीसवें सर्ग में केवलज्ञान तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि मानी जा सकती है। 'मुनिसुव्रतकाव्य' में परम्परागत नियमों के अनुसार प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया गया है। शास्त्रीय मान्यता के अनुरूप ही उसके छठे और दसवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग मिलता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत भी दे दिया गया है। 'मुनिसुव्रतकाव्य' में नगर, शैल, उपवन, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर आदि ऋतु, पुत्रोत्पत्ति, विवाह आदि महाकाव्य के वर्ण्यविषयों का समावेश हुआ है। काव्य

---

(२) वही, सर्ग १, श्लोक १८–१९

के चरितनायक मुनिसुव्रत के आधार पर इसका नाम 'मुनिसुव्रतकाव्य' रखा गया है। इसका दूसरा नाम 'काव्यरत्न' भी काव्यगत साहित्यिक सौष्ठव के आधार पर रखा गया है जो उचित ही है। इसमें सर्गों के नाम भी उनमें वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। इस प्रकार महाकाव्य के प्रायः सभी शास्त्रीय नियमों का पालन 'मुनिसुव्रतकाव्य' में हुआ है। इसके साथ-साथ उसमें उदात्त भाषा-शैली, प्रौढ़ कल्पना-शक्ति, सुशृंखलित कथानक, उत्कृष्ट काव्यकला तथा शाश्वत जीवन-सत्य की प्रतिष्ठा—इन सब तत्त्वों का समावेश है, अतः 'मुनिसुव्रतकाव्य' आलोच्य युग के प्रमुख महाकाव्यों में स्थान पाने का अधिकारी है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' मूलतः पौराणिक महाकाव्य है। पौराणिक महाकाव्यों की भाँति इसका कथानक पुराण (उत्तरपुराण) से लिया गया है और इसमें धार्मिक भावना का प्राधान्य है। कवि ने तो अपने इस काव्य को जिनस्तुति ही कहा है :—

यत्स्थापनां नाम भुवं च कालं द्रव्यं च भावं प्रतिषट्प्रकाराः।
स्तुतिर्जिनस्य क्रियतेऽत्र तस्मात् काव्यं ममैतत्स्तुतिरेव भूयात् ॥

पौराणिक महाकाव्यों के अनुरूप 'मुनिसुव्रतकाव्य' भी शान्तरसपर्यवसायी है और उसकी कथावस्तु में अलौकिक और अप्राकृत तत्त्वों की अधिकता है। उसमें जिनेश्वर के गर्भ में आने पर पद्मावती की सेवा करने देवांगनाएँ आती हैं, कुबेर पन्द्रह मास तक रत्नवृष्टि करते हैं, इन्द्रादि देवता राजगृह आकर मुनिसुव्रत का जन्मकल्याणक मनाते हैं। दसवें सर्ग में मुनिसुव्रत की समवसरण-सभा आकाश-मार्ग से चलती है।

प्रबन्ध-रूढ़ियों की दृष्टि से भी 'मुनिसुव्रतकाव्य' पूर्ण-रूप से पौराणिक महाकाव्य की श्रेणी में आता है।। शास्त्रीय महाकाव्यों में मंगलाचरण आदि होता तो है, किन्तु बहुत संक्षिप्त, एक या दो श्लोकों में ही। किन्तु, 'मुनिसुव्रतकाव्य' के प्रथम सर्ग का लगभग आधा भाग ही मंगलाचरण की रूढ़ि पूर्ण करने में लग गया है। कवि ने विस्तार के साथ ऋषभदेव, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, मुनिसुव्रत, वीर, परमेष्ठिगण, सूरि, उपाध्याय, साधु, धर्म, सरस्वती, भट्टाकलंक, गुणभद्र, सामन्तभद्र आदि की स्तुति की है। इसके बाद सज्जन-दुर्जन-स्मरण, आत्मविनय, काव्य-रचना का उद्देश्य, वस्तु निर्देश आदि का समावेश किया गया है। इसके साथ ही 'मुनिसुव्रतकाव्य' के तृतीय सर्ग में सुव्रतस्वामी तथा अष्टम सर्ग में पट्टगज के पूर्व-भव का वर्णन है। अष्टम सर्ग में ही जैन धर्म से विद्वेष करने के कारण नरपति राजा दूसरे भव में गज बनता है। इस प्रकार प्रबन्ध-रूढ़ियों तथा भवान्तर-वर्णन की दृष्टि से भी प्रस्तुत काव्य पौराणिक महाकाव्यों की परम्परा में आता है।

किन्तु, कवि का प्रयत्न इसे शास्त्रीय काव्य बनाने का रहा है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों के कथानक में कसावट नहीं होती, क्योंकि उनमें कथा के भीतर कथा कहने की प्रवृत्ति रहती है। अवान्तर और प्रासंगिक कथाओं के कारण उनके कथानक में जटिलता

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १, श्लोक २१

और शिथिलता आ जाती है। 'मुनिसुव्रतकाव्य' में अवान्तर-कथाओं का पूर्णतया अभाव है, फलस्वरूप उसके कथानक में जटिलता नहीं आने पायी है। इसके साथ-साथ उसमें पौराणिक शैली के महाकाव्यों में पायी जाने वाली उपदेशात्मकता भी नहीं है, केवल अन्तिम सर्ग में देशना का निर्देश-मात्र है। शास्त्रीय महाकाव्यों की तरह उसमें विस्तृत वस्तुवर्णन है। दस सर्गों के इस महाकाव्य में चौथे से छठे सर्ग तक लगातार तीन सर्गों में जिनेन्द्रजन्म-महोत्सव का वर्णन है। शास्त्रीय महाकाव्यों की तरह 'मुनिसुव्रतकाव्य' में काव्यात्मकता अधिक है। उसमें अलंकृति की ओर भी कवि का झुकाव दीख पड़ता है।

इस प्रकार 'मुनिसुव्रतकाव्य' में शास्त्रीय और पौराणिक दोनों शैलियों का समावेश है। उसका कलेवर न तो बिलकुल पौराणिक महाकाव्यों के ढंग का है और न बिलकुल शास्त्रीय ढंग के महाकाव्यों जैसा। उसमें दोनों शैलियों का मिश्रण है। फिर भी, पौराणिकता की ओर उसका झुकाव कुछ अधिक होने के कारण यहाँ उसे पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

प्रस्तुत काव्य के अन्त में कवि ने प्रशस्ति नहीं दी है, अतः उसका विस्तृत परिचय अभी तक विद्वानों को नहीं मिल सका है। किन्तु, उसके काव्यों में कतिपय ऐसे कथन विद्यमान हैं जिनसे उसके जीवन और जीवनकाल पर प्रकाश पड़ता है। अर्हद्दास के अभी तक तीन काव्य उपलब्ध हुए हैं जिनके नाम 'मुनिसुव्रतकाव्य', 'पुरुदेवचम्पू' और 'भव्यकण्ठाभरण' हैं। इन तीनों के निम्नलिखित श्लोकों से अर्हद्दास का कुछ परिचय मिलता है:—

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्मा।
त एव शेषाश्रमिणां सहाया धन्याः स्युराशाधरसूरिवर्याः ॥[1]
मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मिन्नाशाधरोक्तिकुतुकप्रसरैः प्रसन्नो।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जजृम्भे ॥[2]
मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूतैः।
आशाधरोक्तिलसदंजनसम्प्रयोगैरच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥[3]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अर्हद्दास ने अपना काव्य-गुरु आशाधर को माना है और उनके काव्य एव उपदेशों से प्रभावित होकर वे काव्य-रचना में अग्रसर हुए थे।

पुरुदेवचम्पू के विज्ञ सम्पादक फड़कुले महोदय और मुनिसुव्रतकाव्य' के सम्पादकद्वय पं० के० भुजबलि शास्त्री तथा पं० हरनाथ द्विवेदी ने अर्हद्दास का समय वि० सं० १३०० के लगभग माना है उनका कथन है—"पं० आशाधर का समय इतिहासवेत्ताओं ने सं० १३०० निश्चित किया है, अतः इनका भी वही समय या इसके लगभग मानना उचित होगा।"[4]

---

(१) भव्यकण्ठाभरण, अर्हद्दास (२) पुरुदेवचम्पू, अर्हद्दास-कृत
(३) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १०, श्लोक ६५
(४) मुनिसुव्रतकाव्य, भूमिका, पं० के० भुजवली शास्त्री तथा पं० हरनाथ द्विवेदी

संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्राध्यापक पं० अमृतलाल शास्त्री ने ठोस प्रमाणों के आधार पर 'मुनिसुव्रतकाव्य' का रचना-काल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का पूर्वभाग बताया है। उनके अनुसार—"आशाधर का अन्तिम ग्रन्थ 'अनागारधर्मामृत' है, जिसकी रचना वि० सं० १३०० में समाप्त हुई थी। इसी के बाद अर्हद्दास उनके पास पहुँचे थे। यदि पहले पहुँच जाते तो आशाधर 'अनागारधर्मामृत' की प्रशस्ति में उनका नाम अवश्य दे देते। अर्हद्दास ने 'मुनिसुव्रतकाव्य' के अन्त में यह श्लोक दिया है:—

धावन्कापथसम्भृते भववने सन्मार्गमेकं परम्
त्यक्त्वा श्रान्ततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुं।
सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवचः क्षीरोदधेरादरात्
पायं पायमितश्रमः सुखपदं दासो भवाम्यर्हतः ॥[1]

इस श्लोक में उन्होंने 'सद्धर्मामृतमुद्धृतम्' पद दिया है। इससे पता चलता है कि उन्होंने सं० १३०० के बाद आशाधरजी के पास धर्मामृत ग्रन्थ का एकाधिक बार पारायण किया था।

सागारधर्मामृत के प्रथम अध्याय के:—

आसन्नभव्यताकर्महानिसंज्ञित्वशुद्धभाक्।
देशनाद्यस्तमिथ्यात्वो जीवः सम्यक्त्वमश्नुते ॥

इस पद्य के आधार पर अर्हद्दास ने 'भव्यजनकण्ठाभरण' का यह पद्य बनाया है:—

आसन्नभव्योत्तमभावकर्महानी च संज्ञित्वविशुद्धभावौ।
सम्यक्त्वलाभान्तरहेतुरन्यो धर्मोपदेशातिशयेक्षणादिः ॥

इससे स्पष्ट है कि अर्हद्दास ने आशाधरजी के धर्मामृत के दोनों भागों (अनागार धर्मामृत और सागारधर्मामृत) का मनन किया था। इससे वे चौदहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में वर्तमान थे।" इसके आगे शास्त्रीजी लिखते हैं—"अर्हद्दास ने अपने तीनों ग्रन्थों में कृतज्ञतापूर्वक आशाधरजी के नाम का उल्लेख किया है और एक-दो पद्य ऐसे भी लिखे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उन्होंने आशाधरजी को निकट से देखा था।"

इस प्रकार श्री फड़कुले महोदय, पं० के० भुजबली शास्त्री पं० हरनाथ द्विवेदी तथा पं० अमृतलाल शास्त्री के लेखों से यह सिद्ध हो जाता है कि अर्हद्दास ने 'मुनिसुव्रतकाव्य' की रचना चौदहवीं शताब्दी के पूर्व भाग (सं० १३०१ से सं० १३२५ के मध्य) में की।

कवि ने 'मुनिसुव्रतकाव्य' की रचना जिनेन्द्रभक्ति से प्रेरित होकर स्वान्तःसुखाय की, यह इन पंक्तियों से स्पष्ट है:—

गणाधिपस्यैव गणेयमेतत् भवामि चोद्यन्भगवच्चरित्रे।
भवतीरितो नन्वगचालनेऽपि शक्तो न लोके ग्रहिलो न लोकः ॥

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १०, श्लोक ६४

मनः परं क्रीडयितुं ममैतत् काव्यं करिष्ये खलु बाल एषः ।
न लाभपूजादिरतः परेषां न लालनेच्छा कलभाः रमन्ते ।।[1]

'मुनिसुव्रतकाव्य' आकार में बहुत छोटा है। इसके कुल श्लोकों की संख्या ४०८ है।

कथानक

'मुनिसुव्रतकाव्य' दस सर्गों में विभक्त है। प्रथम (भगवदभिजनवर्णन) सर्ग में परम्परागत मंगलाचरण के पश्चात् मगध देश तथा राजगृह नगर का वर्णन है। द्वितीय (भगवज्जननीजनकवर्णन) सर्ग में मगध देश के राजा सुमित्र और उनकी रानी पद्मावती का वर्णन है। तृतीय (भगवद्गर्भावतरणवर्णन) सर्ग में पद्मावती के गर्भ में मुनिसुव्रत के आने के पूर्व ही देवांगनाएँ पद्मावती की परिचर्या के लिए आती हैं और राजा को तीर्थंकर के पूर्वभव का वृत्तान्त बताती हैं। पद्मावती गर्भ में जिनेश्वर के आगमन के सूचक सोलह महास्वप्नों को देखती है। चतुर्थ (भगवज्जननोत्सव-वर्णन) सर्ग में पद्मावती के गर्भ में जिनेश्वर के अवतीर्ण होने पर कुबेर पन्द्रह मास तक रत्नवृष्टि करते हैं और इन्द्र पुंसवनादि संस्कार करते हैं। पुत्र उत्पन्न होने पर राजा सुमित्र महोत्सव मनाते हैं और इन्द्रादि देव राजगृह आते हैं। पंचम (भगवन्मन्दारानयन-वर्णन) सर्ग में इन्द्राणी जिनमाता की गोद में कपट-शिशु डाल कर जिनेन्द्र को गोद में उठा लाती हैं और इन्द्र को दे देती हैं। इन्द्र उन्हें ऐरावत हाथी पर बिठा कर मन्दराचल ले जाते हैं। षष्ठ (भगवज्जन्माभिषेकवर्णन) सर्ग में इन्द्रादि देव विविध तीर्थों और सागरों के जल से पाण्डुकशिला पर निर्मित अभिषेक-मण्डप में उनका अभिषेक करते हैं और लौटकर पुनः माता के पास लिटा देते हैं। देवेन्द्र जातकर्मादि संस्कारों को करके उनका नाम 'मुनिसुव्रत' रखते हैं। सप्तम (भगवत्कौमारयौवनदारकर्मसाम्राज्यवर्णन) सर्ग में मुनिसुव्रत क्रमशः युवक होते हैं। पिता उनका विवाह करके उन्हें राजा बना देते हैं। अष्टम (भगवत्परिनिष्क्रमणवर्णन) सर्ग में मुनिसुव्रत का पट्टगज भोजन करना छोड़ देता है। इसका कारण पूछे जाने पर एक यति बताते हैं कि यह गज पूर्व जन्म में जैन-विद्वेषी राजा नरपति था जो कुपात्र-दान से गज हुआ। प्राग्जन्मस्मृति से यह भोजन नहीं करता। इस घटना से मुनिसुव्रत को वैराग्य हो जाता है। इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर वे अपने पुत्र को राज्य देकर नीलीवन में जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं, फलतः उन्हें मनःपर्याय ज्ञान होता है। नवम (भगवत्तपोवर्णन) सर्ग में मुनिसुव्रत एक वर्ष तक कायक्लेश नामक तप करते हैं। दशम (भगवदुभयमुक्तिवर्णन) सर्ग में तपश्चर्याजनित कर्मक्षय से मुनिसुव्रत को केवलज्ञान उत्पन्न होता है और वे देव-निर्मित समवसरण में देशना करते हैं। इसके बाद वे विहार करते हुए सम्मेदाचल आते हैं जहाँ उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। इन्द्रादि देव उनका मोक्षकल्याणक मनाते हैं। यहीं कथा समाप्त हो जाती है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' के कथानक में सुनियोजित विकासक्रम दीख पड़ता है। उसमें किसी भी घटना को न अधिक विस्तार दिया गया है और न अधिक संक्षेप ही। प्रसंगों की

---

1. [illegible] सर्ग १ श्लोक १३–१४

शृंखलाबद्धता के कारण 'मुनिसुव्रतकाव्य' के कथानक में महाकाव्योचित अन्विति, धारावाहिकता और गतिशीलता पायी जाती है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' में केवल तीन पात्र हैं, सुमित्र, पद्मावती और मुनिसुव्रत। इनके अतिरिक्त इन्द्र आदि देव-पात्रों का समावेश भी प्रस्तुत काव्य में हुआ है।

चरित्र-चित्रण 'मुनिसुव्रतकाव्य' में घटनाओं की कमी होने के कारण पात्रों के चरित्र में विविधता का अभाव दीख पड़ता है।

मुनिसुव्रत प्रस्तुत काव्य के चरितनायक एवं राजगृह के राजा सुमित्र के पुत्र हैं। पूर्वभव में वे हरिवर्मा नृप होते हैं, किन्तु जैनी दीक्षा तथा तपस्या के कारण वे इस भव में बीसवें तीर्थंकर होते हैं। उनके व्यक्तित्व में अलौकिकता का समावेश है। उनका

मुनिसुव्रत जन्म होते ही आकाश से पुष्पों और रत्नों की वर्षा होने लगती है।[1] भवनवासी देवों के घरों में शंख और व्यन्तरवासी देवों के घरों में भेरी अपने-आप बजने लगती हैं। ज्योतिर्लोकवासी देवों के गृहों में स्वतः ही सिंहनाद होने लगता है:—

गृहेषु शंखा भवनामराणां वनामराणां पटहाः पदेषु।
ज्योतिस्सुराणां सदनेषु सिंहा कल्पेषु घण्टा स्वयमेव नेदुः ॥[2]

मुनिसुव्रत के गर्भ में आने पर न तो माता पद्मावती के स्तन ही कृष्ण होते हैं, न नाभि अपना गांभीर्य गुण छोड़ती है, न त्रिवली नष्ट होती है और न उदरवृद्धि ही होती है।[3] मुनिसुव्रत का जन्मोत्सव मनुष्य ही नहीं, इन्द्रादि देव भी मनाते हैं। उनका जन्माभिषेक मन्दराचल पर इन्द्रादि देवताओं द्वारा किया जाता है। उनके अन्य संस्कार भी देवों द्वारा सम्पन्न होते हैं। मुनिसुव्रत माता के स्तनों का पान भी नहीं करते, वे तो अपनी अंगुली के सुधारस का ही पान करते हैं:—

करांगुलिं लिप्तसुधां स लिड्ढ्वा बबन्ध मातु. स्तनयोर्न बुद्धिम्।
सुरेन्द्रवन्द्यः सुरदेहतायां चिरानुभूतामृततृष्णयेव ॥[4]

मुनिसुव्रत अतीव सुन्दर हैं। उनका सौन्दर्य आँखों को तृप्त करने वाला और उनकी वाणी अमृत की वर्षा करने वाली है।[5] वे आदर्श नृप हैं। उनके राज्य में सभी सुखी हैं और ईति-भीति के भय से मुक्त हैं। निम्न पंक्तियों में उनके आदर्श शासन का अच्छा चित्रण हुआ है:—

जिनेऽवनीं रक्षति सागरान्तां नयप्रतापद्वयदीर्घनेत्रे।
कस्यापि नासीदपमृत्युरीतिः पीडा च नाल्पाऽपि बभूव लोके ॥[6]

मुनिसुव्रत में वैराग्य की प्रवृत्ति बचपन से ही है, किन्तु यतिवर के मुख से गज का वृत्तान्त सुनने पर उनकी वैराग्य-भावना और अधिक प्रबल हो जाती है जो उनके इन शब्दों से प्रकट होती है:—

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ४, श्लोक ३८–३९
(२) वही, सर्ग ४, श्लोक ३६
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ४-५
(४) वही, सर्ग ७, श्लोक २
(५) वही, सर्ग ७, श्लोक १४
(६) वही, सर्ग ७, श्लोक २८

हंताशुभाशरणदुःखचले भवेऽस्मिन्
वीभत्सके वपुषि चेतननेययन्त्रे ।
प्रारम्भमिष्टपरिणामकटौ च भोगे
लोलो वसाम्यलमलं स्वहिते यतिष्ये ॥[1]

फलस्वरूप वे अपने पुत्र विजय को राज्य सौंप देते हैं और केशलुंचन कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। मुनिसुव्रत उग्र तपस्वी हैं। वे एक वर्ष तक कायक्लेशाभिधान तप करते हैं और शुक्लध्यान से अपने सभी कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। वे कुशल उपदेशक हैं। समवसरण में वे जीव-अजीवादि तत्त्वों का निरूपण करके धर्म-प्रचार करते हैं। अन्त में वे अपनी तपस्या से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

सुमित्र

सुमित्र मुनिसुव्रत के पिता और राजगृह के राजा हैं। वे अत्यन्त प्रतापी तथा शूरवीर हैं। इन पंक्तियों में उनके क्रोध से आँखें लाल करने पर शत्रुओं के सभी नगरों के साँपों का बसेरा, शृगालों की माँद तथा सेहुड़ का वन हो जाने के वर्णन में उनकी वीरता का भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया हैः—

कोपारुणेऽप्यक्षिणि यस्य चित्रं सकंचुकैः कुण्डलिभिः सनाथम् ।
शिवास्पदं कांचनवज्रपूर्णं बभूव सर्वं नगरं रिपूणाम् ॥[2]

सुमित्र को अपनी पत्नी पद्मावती से अत्यन्त प्रेम है। जब वह नृत्य करती है तो वे वाद्य बजाते हैं और जब वह वीणा बजाती है तो वे अपने सुमधुर कण्ठ से गाते हैंः—

अगायदेषा स ततान तानमनृत्यदेषा स तताड तालम् ।
अवादयद् वल्लकिकामथैषा स वल्लकीवानुजगौ द्वितीया ॥[3]

इन पंक्तियों से सुमित्र के सुमधुर कण्ठ तथा उनकी गायन-वादन-कला में निपुणता का परिचय मिलता है।

सुमित्र वत्सल पिता हैं। पुत्रजन्म का शुभ सम्वाद सुनते ही वे हर्षोन्मत्त होकर अपने शरीर के सभी आभूषण दे डालते हैंः—

कुमारजन्मादिभवार्तिकत्राकृताङ्गभूषो हृषितः क्षितीन्द्रः ।
विधूतपत्रोद्गतकोरकस्य विधामधात्रीपतरोर्मुहूर्तम् ॥[4]

पुत्र के युवक हो जाने पर वे उसे राज्याभिषिक्त कर देते हैं। चतुर्थ सर्ग के बाद सुमित्र के दर्शन फिर नहीं होते। काव्य में वे शूरवीर नृप, एकपत्नीव्रती पति तथा पुत्र-वत्सल पिता के रूप में चित्रित किये गये हैं।

पद्मावती

पद्मावती राजा सुमित्र की पत्नी और 'मुनिसुव्रतकाव्य' के चरितनायक की जन्मदात्री है। वह अतीव सुन्दरी है। उसके सौन्दर्य ने महाराज सुमित्र को इतना वश में कर रखा है कि वे सदैव उसको ही देखते रहते हैंः—

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ४ (२) वही, सर्ग २, श्लोक ३
(३) वही, सर्ग २, श्लोक २७ (४) वही, सर्ग, ४ श्लोक २१

मुक्तागुणच्छायमिषेण तन्व्याः रसेन लावण्यमयेन पूर्णे ।
नाभिह्रदे नाथनिवेशितेन विलोचनेनानिमिषेण जज्ञे ॥[१]

सब प्रकार से सुखी होने पर भी वह पुत्र के अभाव में दुखी रहती है। क्रीडासक्त कलहंसवधू को गर्भवती देख कर उसका यह दुख उभर आता है और वह अपने जन्म को इन शब्दों में निरर्थक मानने लगती है:—

आपुष्पिताऽपि विफलेव रसालयष्टिः, सेनेव नायकगताऽपि जयेन शून्या ।
काले स्थिताऽपि घनराजिरवर्षणेव, मिथ्या दधामि हत कुक्षिमदृष्टतोका ॥[२]

किन्तु, कुछ दिनों बाद उसकी चिन्ता दूर हो जाती है। जब वह अपने पार्श्व में पुत्र को लेटा हुआ देखती है तो उसकी चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। इस अवसर पर उसका वात्सल्य पुत्र के आलिंगनजन्य आनन्दाश्रुओं द्वारा व्यक्त होता है:—

माता स्वयं च परिरम्भमिषेण देवम्
रोमांचनीपकलिकानिकरैः कृतार्घ्या ।
प्रीत्याऽभ्यषिंचदमितप्रमदाश्रुनीरैः
स्वच्छैरतुच्छकुचकुंभपयोद्वितीयैः ॥[३]

इस प्रकार काव्य में पद्मावती स्वानुकूलपतिका नायिका एवं माता के रूप में चित्रित हुई है। अन्य पात्रों में इन्द्रादि देव-पात्र हैं, किन्तु उनके चरित्र का विकास नहीं हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

'मुनिसुव्रतकाव्य' के लघु कलेवर में कवि ने विविध प्राकृतिक दृश्यों को स्थान देकर उसे मनोहर बनाने की चेष्टा की है। प्रथम सर्ग में देशगत विशेषताओं को उभारने के लिए प्रकृति का प्रयोग किया गया है। मगध देश का वर्णन करते समय उस देश की पार्श्वभूमि का वर्णन कलापूर्ण ढंग से इस प्रकार हुआ है:—

नगेषु यस्योन्नतवंशजाताः सुनिर्मला विश्रुतवृत्तरूपाः ।
भव्या भवन्त्याप्तगुणाभिरामा मुक्ताः सदा लोकशिरोविभूषा ॥
विभान्ति सस्यान्तरितानि यस्मिन् हेमारविन्दानि मधूल्वणानि ।
आपाययन्त्या इव शालिपुत्रानात्तानि धात्र्या करसेचनानि ॥[४]

यहाँ मगध देश के उत्तरी भाग में फैले हुए पर्वत और उन पर विद्यमान वंशवृक्ष-समूह तथा मध्यवर्ती भाग में लहलहाते हुए जलपूर्ण खेतों में उत्पन्न रक्तकमलों का वर्णन करके मगधदेश की प्रमुख विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार राजगृह के इस वर्णन में नगर की सीमागत विशेषताएँ निहित हैं जो विविध वृक्षों, लताओं और सरोवरों से परिपूर्ण एक नगर का रेखाचित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं:—

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग २, श्लोक ३१ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक २
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक ४१ (४) वही, सर्ग १, श्लोक २४, ३०

अहिर्वरणे यत्र विधाय वृक्षारोहं परिष्वज्य समर्पितास्याः ।
कृताधिकारा इव कामतन्त्रे कुर्वन्ति सङ्गं विटपैर्व्रतत्यः ॥
कण्डूतिशान्त्यै निजकर्णमूलं संवर्षयन्तः सरसीषु मीनाः ।
अम्भोजदण्डेषु विभान्ति यस्यामालानबन्धेष्विव हस्तिपोताः ॥[1]

ऐसे रेखाचित्रों से प्राकृतिक दृश्य का कोई स्पष्ट रूप-रंग सामने नहीं आता, केवल उसका आभास मिलता है । यहाँ कवि का उद्देश्य स्थलविशेष का परिचय-मात्र देना है । किन्तु, कहीं-कहीं पर कवि का ध्यान चित्र को पूर्ण, प्रत्यक्ष और स्वाभाविक बनाने की ओर भी रहा है । इन पंक्तियों में ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक और संश्लिष्ट चित्र कितना सजीव है:—

हा हन्त तृड्भरविदीर्णगला मृगालिः
पङ्काविलोष्णसलिलं वनपल्वलानाम् ।
अल्पं कथंचिदपिबत्कृपयावगम्य
केनाप्युपाहृतमिवोद्धकषायतोयम् ॥[2]

यहाँ प्यास की अधिकता से सूखते हुए कण्ठ वाले मृग-समूह के द्वारा वन-वापी के तप्त जल को गर्म कड़ुए क्वाथ की तरह पीने के वर्णन में काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ-साथ प्रकृति का सहज-स्वाभाविक रूप भी सुरक्षित दृष्टिगत होता है ।

'मुनिसुव्रतकाव्य' में यत्र-तत्र प्रकृति के आदर्श-रूप की व्यंजना भी हुई है । दशम सर्ग में जिनेन्द्र के सान्निध्य से नीलीवन के अशोक, सप्तच्छद, चम्पक, आम्र आदि वृक्ष क्रमशः सुन्दरी स्त्रियों के चरणाघात, चाटुवाद, छाया, कटाक्ष आदि के बिना ही पुष्पित होकर आदर्श प्रकृति का निर्माण करते हैं:—

कंकेलिसप्तदलचम्पकचूतषण्डाः कामारिसन्निधिवशादिव शान्तकामाः ।
पुष्पाणि वामचरणाहतिचाटुवादच्छायाकटाक्षनिरपेक्षमधुर्वधूनाम् ॥[3]

'मुनिसुव्रतकाव्य' में आलम्बन-रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत किया गया है । वर्षा-काल में मेघों के गरजने, हंस-शावकों और वियोगी-जनों के कम्पित होने, सर्पों के बिल से निकलने, मयूरों के नृत्यमग्न होने एवं चातकों के अधर-पुट के उन्मीलित होने का वर्णन करके कवि ने वर्षाकालीन प्रकृति का भव्य रूप इस प्रकार उपस्थित किया है:—

गम्भीरगर्जितभरादथ कम्पमानचक्राङ्गबालविरहिव्रजमब्दकालः ।
छिद्राविशत्फणिसनृत्यमयूरयूथमुन्मीलदोष्ठपुटचातकमुद्बभूव ॥[4]

इसी प्रकार चतुर्दिक् फैली हुई सरसों, तुषारपात से नष्ट हुए कमलों और ओस-बिन्दुओं के वर्णन के द्वारा हेमन्तकालीन प्रकृति का यथातथ्य रूप इन शब्दों में चित्रित किया गया है:—

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १, श्लोक ३९, ४० (२) वही, सर्ग ९, श्लोक ९
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक १७ (४) वही, सर्ग ९, श्लोक १३

उच्चाटनाय शरदः सितसर्षपौघो निर्दग्धुमब्जनिलयानिलयं तुषाग्निः ।
आलम्भचूर्णमसहायजनस्य कामं प्रालेयसीकरमिषेण कुतोऽप्यपप्तत् ॥[1]

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति को उद्दीपन-रूप में भी अंकित किया है। हेमन्त का मादक प्रभाव पुरुषों को कामविह्वल बना देता है और स्त्रियों की अंगलताओं में अपूर्व मादकता भर देता है जो पुरुषों को अधीर कर देती है:—

सन्तापिता रतिपतेस्त्रिजगज्जयार्थं नाराचिका सुनिशिता इव निर्विचारम् ।
कातर्यमम्बुजदृशो विदिशुर्जनानां काश्मीररेणुकलिताङ्गलता हिमर्तौ ॥[2]

कहीं-कहीं प्रकृति में मानवीय व्यापारों और चेष्टाओं के भी कतिपय सुन्दर उदाहरण 'मुनिसुव्रतकाव्य' में मिलते है। इनमें से कुछ व्यापारों में रतिविलास और मधु-क्रीड़ाओं के संकेत से प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। उदाहरण के लिए हेमन्तवर्णन के इस पद्य में प्रातःकालोन बिखरे हुए ओसबिन्दुओं से सुशोभित, लताओं से लिपटे हुए और उनके गुच्छरूपी सुन्दर कुचों का आलिंगन किये हुए वृक्षों पर सम्भोगान्त में निकले हुए स्वेदकणों से युक्त युवकों का आरोप स्वभावतः उद्दीपक है:—

रेजुः प्रभातसमयेषु लतावनद्धा क्षोणीरुहस्तुहिनवारिकणैर्विकीर्णैः ।
आलिंगितस्तवकचारुकुचा रतान्तप्रादुर्भवद्भिरिव घर्मलवैर्युवानः ॥[3]

इसी प्रकार इन पंक्तियों में वर्षाकाल में नायक और आकाश में नायिका का आरोप करके उनके गाढालिंगन का वर्णन किया गया है जिससे आकाश-नायिका के स्तनप्रदेश पर स्थित माला टूट जाती है जिससे उसके मोती और मूँगे इन्द्रवधू और ओलों के रूप में बिखरे हुए दीख पड़ते हैं:—

गोत्रारिगोपकरका व्यरुचन्धरायां मेघागमेन दयितेन कृताङ्कपाल्या ।
व्योमश्रियः स्तनतटत्रुटितोरुहारस्रस्तावकीर्णनवविद्रुममौक्तिकामाः ॥[4]

इस चित्र में भी शृंगार की भावना परिलक्षित होती है जो रति भावना की उद्दीपक है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' मे कवि ने शृंगार-भावना से दूर रह कर भी प्रकृति पर मानव-जीवन के आरोप किये हैं। इन अवसरों पर प्रकृति मानव के समान ही सप्राण और स्पन्दित हो जाती है। ग्रीष्म के इस वर्णन में तरुवल्लिसमूह अपने मित्र वसन्त के चले जाने पर विरह-ज्वर से दग्ध हो रहा है: —

तद् भाविदुःखमिव वीक्षितुमक्षमत्वात् क्षिप्रं मधौ व्रजति तीव्रनिदाघयोगात् ।
सन्तप्यमानमखिलं तरुवल्लिजातं तापज्वरीव ददृशे मधुविप्रयोगात् ॥[5]

इसी प्रकार निम्नोद्धृत पंक्तियों में वसुधा में वात्सल्यमयी माता का आरोप किया

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ६, श्लोक २७ (२) वही, सर्ग ६, श्लोक ३१
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक २८ (४) वही, सर्ग ६, श्लोक २२
(५) वही, सर्ग ६, श्लोक ३

गया है जो अपने पुत्रों (वृक्षों) की अत्याचारी (सूर्यसन्ताप) से रक्षा करने के लिए उसके (सूर्य के) सामने दाँत निकाल कर गिड़गिड़ा रही है:—

धात्रीदरीमुखगतैर्विपिनस्थलीनां व्यादीर्णवेणुगलितैर्मणिभिर्विरेजे ।
मा लोकमित्र शिखिनो मम पीडयेति दीनं प्रकाशितरदेव दिनाधिपाय ।।[1]

'मुनिसुव्रतकाव्य' में कवि ने अन्य अनेक स्थलों पर प्रकृति का मानवीकरण करके मूक और निर्जीव प्रकृति को चेतना और वाणी प्रदान की है ।

'मुनिसुव्रतकाव्य' में प्रकृति के आलंकारिक वर्णन भी बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं । जहाँ कवि ने प्रकृति की अप्रस्तुत-रूप में योजना की है वहाँ प्रकृति आलंकारिक-रूप में हमारे समक्ष आती है । पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन में प्रकृति का यही रूप चित्रित किया गया है:–

तस्याः शिरोरुहभरे विनियोज्यमानं कृष्णं कयाऽपि चमरीरुहमावभासे ।
तापिच्छकच्छमुपसर्पदिवान्धकारं नीलाब्जकुंजमुपयन्निव भृङ्गराशिः ।।[2]

यहाँ पद्मावती के केशगुच्छ में लगे हुए चमरी के काले बालों के लिए उपमान के रूप में तमालोपवनान्तर्गत अन्धकार तथा नील कमल के कुंज में मँड़राते हुए भ्रमरों की योजना की गई है।

इस प्रकार 'मुनिसुव्रनकाव्य' में कवि को प्रकृति के सहज-रूप को चित्रित करने में तथा उसमें मानवीय भावों की प्रतिष्ठा करके चेतना की अनुभूति उत्पन्न करने में पर्याप्त सफलता मिली है । इसी कारण 'मुनिसुव्रतकाव्य' की प्रकृति में प्रभावोत्पादकता के दर्शन होते हैं ।

अर्हद्दास ने प्रस्तुत काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य के साथ-साथ मानव-सौन्दर्य का चित्रण भी किया है । नारी-सौन्दर्य का उद्घाटन पद्मावती के नखशिखवर्णन के समय तथा पुरुष-सौन्दर्य का वर्णन सुमित्र के वर्णन के समय किया गया है ।

सौन्दर्य-वर्णन

पद्मावती के नखशिखवर्णन में परम्परागत अलंकृत परिपाटी का अनुसरण किया गया है और विविध अंगों के स्वाभाविक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति परम्पराभुक्त उपमानों के द्वारा की गयी है । पद्मावती के चरणों को स्वर्गगा में उत्पन्न रक्त कमलों का सहोदर बता कर चरणों की कोमलता, मसृणता तथा रक्तिमा के साथ-साथ पूजार्हता भी व्यक्त की गयी है:—

स्वर्गापगारक्तसरोरुहाणां सजातमेतद् द्वयमित्यवैमि ।
सुराङ्गनानां कथमन्यथास्तां चिराय सेव्यौ चरणौ मृगाक्ष्याः ।।[3]

निम्न पंक्तियों में पद्मावती के मुख के लिए चन्द्रमा तथा नेत्रों के लिए मीन के परम्परागत उपमान प्रस्तुत किये गये हैं:—

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ६, श्लोक १०
(२) वही, सर्ग ३, श्लोक १६
(३) वही, सर्ग २, श्लोक १६

यदब्जसौन्दर्यसखं मुखं च यदम्बके मीनविडम्बिके च ।
नभःश्रियः साम्यमुपागता या सरःश्रियः साम्यमतो गता सा ॥[1]

पद्मावती के नखशिखवर्णन में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कवि की प्रतिभा मौलिक कल्पनाएँ जुटाने में असमर्थ रही है, तथापि इन वर्णनों में रोचकता और मनोज्ञता है।

पुरुष-सौन्दर्य के चित्रण में कवि ने शारीरिक सौन्दर्य की ओर ध्यान न देकर आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन की ओर ध्यान दिया है। द्वितीय सर्ग में सुमित्र के व्यक्तित्व के चित्रण में उनके शौर्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गयी है:—

प्रयाणभेरीश्रवणेन यस्य पलायमानानरिभूमिपालान् ।
पदाभिघाताक्षमयैव सद्यः प्रकाशयामास समीरकेतुः ॥
येनासिना युद्धशिरस्यरीणां साङ्गच्छिद्रे वर्म्मणि रक्तधारा ।
विनिर्यती तेन यथा व्यराजीदुद्भूतकोपाग्निशिखेव तेषाम् ॥[2]

इस वर्णन में सुमित्र का बाह्य सौन्दर्य पूर्णतया उपेक्षित है, किन्तु जिनेन्द्र के वर्णन में कवि का ध्यान बाह्य सौन्दर्य के चित्रण में ही रमा है। मुनिसुव्रत के चरणनखों को चन्द्रमा के सदृश तथा चरणों में सुशोभित नीलमजटित किंकिणी को चन्द्रकलंक के सदृश बता कर जिनेन्द्र के पैरों की अतिशय रमणीयता व्यक्त की गयी है:—

कलङ्कमुक्त्यै सकुटुम्बमिन्दुर्नखच्छलेनाभजदस्य पादौ ।
सदाश्रयं सोऽपि न मोचयेति छलेन नीलोपलकिङ्किणीनाम् ॥[3]

जिनेन्द्र के सौन्दर्य-वर्णन में भी कवि ने अंगों के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए परम्परारूढ़ उपमानों का प्रयोग किया है। यद्यपि ये उपमान प्राचीन ही हैं, तथापि उनका प्रयोग कलात्मक ढंग से किया गया है जिससे ये विविध सौन्दर्य-चित्र मनोहर और आकर्षक बन गये हैं।

धार्मिक एवं दार्शनिक तत्त्व

'मुनिसुव्रतकाव्य' का कथानक पुराणसम्मत है, अतः उसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसके पौराणिक रूप की रक्षा हुई है। पद्मावती द्वारा १६ स्वप्न देखा जाना, जिनेन्द्र के गर्भ में आने पर देवांगनाओं द्वारा उसकी सेवा किया जाना, कुबेर का १५ मास तक रत्नों की वृष्टि करना, जिन-जन्म पर देवताओं का आना और मन्दराचल पर जिनेन्द्र का जन्माभिषेक करना आदि सभी घटनाएँ पूर्णतः सम्प्रदायसम्मत है, किन्तु अन्य पौराणिक महाकाव्यों की तरह इसमें जिनेन्द्र की देशनाओं और जैन धर्म के सिद्धान्तों के विवेचन को स्थान नहीं मिला है। दशम सर्ग में जिनेन्द्र-कृत जीवाजीवादि तत्त्वों के निरूपण का संकेत-मात्र किया गया है, यथार्थ-रूप में निरूपण नहीं किया गया है। वस्तुतः धार्मिक मान्यताओं की आधार–शिला पर

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग २, श्लोक २२ (२) वही, सर्ग २, श्लोक ४–५
(३) वही, सर्ग ६, श्लोक ३५

स्थित होते हुए भी इसमें धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन नहीं किया गया। धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की तरह समाज और लोक-जीवन की झाँकी भी प्रस्तुत काव्य में उपलब्ध नहीं होती है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' में कोमल रसों का ही चित्रण हुआ है। उसमें परुष रसों—वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों का नितान्त अभाव दृष्टिगोचर होता है। 'मुनिसुव्रतकाव्य' वैराग्यमूलक काव्य है। इसमें शान्त रस के चित्रण की ओर कवि की वृत्ति अधिक रमी है। आठवें सर्ग में पट्टगज का वृत्तान्त सुन कर मुनिसुव्रत का मन विरक्ति से भर उठता है। इस अवसर पर शान्त रस की व्यंजना इन शब्दों में की गयी है:—

रस-परिपाक

आकर्ण्य तद्वचनमाप्तभवस्मृतिस्सन् सद्यः सदृग्विकलसंयममग्रहीत् सः।
श्रुत्वा जगत्त्रयगुरुस्तदिदं सभास्थो निर्वेदमात्महृदये विभरांबभूव ॥
हन्ताशुभाशरणदुःखचले भवेऽस्मिन् वीभत्सके वपुषि चेतननेययन्त्रे।[1]
प्रारम्भमिष्टपरिणामकटौ च भोगे लोलो वसाम्यलमलं स्वहिते यतिष्ये ॥

यहाँ संसार की क्षणभंगुरता और तज्जन्य निर्वेद की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है। द्वितीय सर्ग में सुमित्र और पद्मावती की दाम्पत्य-क्रीडा के इस वर्णन में सम्भोग शृंगार की मृदुल छटा दीख पडती है:—

सखीसभायां चतुरङ्गकेलौ चुचुम्ब संरक्षितुमाहतस्य।
हयस्य याञ्चाकपटेन कामी मुहुर्मुहुः स्मेरमुखीं कपोले ॥
मुक्तागुणच्छायमिषेण तन्व्याः रसेन लावण्यमयेन पूर्णे।
नाभिह्लदे नाथनिवेषितेन विलोचनेनानमिषेण जज्ञे ॥[2]

यहाँ सुमित्र की हृदयस्थ रति का आलम्बन पद्मावती है। उसका अतिशय सौन्दर्य तथा मन्द-मन्द हास्य उद्दीपन विभाव है। राजा का अपने घोड़े (चौसर की गोटी) की रक्षा के लिए प्रार्थना के बहाने पद्मावती का मुख चूमना और उसकी लावण्ययुक्त नाभि की ओर एकटक देखना अनुभाव हैं। हर्ष, औत्सुक्य, अवहित्था आदि संचारी भाव हैं।

निम्नोद्धृत पंक्तियों में रथाग्रवर्ती सूर्य-सारथि को अँगीठी की आग समझ कर एक मुग्धा अप्सरा उन पर धूप-चूर्ण फेंकती है। उसकी यह क्रिया लोगों को हास्य रस की सामग्री प्रदान कर रही है:—

मुग्धाप्सरा कापि चकार सर्वानुत्फुल्लवक्त्रान्किलधूपचूर्णम्।
रथाग्रवासिन्यरुणे क्षिपन्ति हसन्तिकाङ्गारचयस्य बुद्ध्या ॥[3]

'मुनिसुव्रतकाव्य' के छठे और सातवें सर्ग में वात्सल्य रस का वर्णन हुआ है। शिशु मुनिसुव्रत को देख कर माता पद्मावती के पुलकित होने, पुत्र को हृदय से लगाने और उसे

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ८, श्लोक ३-४ (२) वही, सर्ग २, श्लोक ३०-३१
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक ३१

हर्षाश्रुओं से सींचने के इस वर्णन में पद्मावती की पुत्रविषयक रति प्रकट हुई है:—

माता स्वयं च परिरम्भमिषेण देवं
रोमांचनीपकलिकानिकरैः कृतार्घ्या ।
प्रीत्याभ्यषिंचदमितप्रमदाश्रुनीरैः
स्वच्छैरतुच्छकुचकुम्भपयोद्वितीयैः ॥[1]

इसी प्रकार मुनिसुव्रत की बालक्रीडाओं के वर्णन में भी वात्सल्य की अभिव्यक्ति हुई है। शिशु सुव्रत घुटनों के बल मणिमयभूमि पर चल रहे हैं। वे अपनी छाया को आगे दौड़ता हुआ देव-बालक समझ कर उसे अपने हाथों से पीटने लगते हैं। मुनिसुव्रत की इस स्वाभाविक बाल-चपलता का चित्र इस प्रकार उपस्थित किया गया है:—

स जानुचारी मणिमेदिनीषु स्वपाणिभिः स्वप्रतिबिम्बितानि ।
पुरः प्रधावत्सुरसूनुबुद्ध्या प्रताडयन्नाटयति स्म बाल्यम् ॥[2]

इस प्रकार के एक अन्य चित्र में मुनिसुव्रत के सुरांगनाओं की उँगली पकड़ कर चलने और चार-पाँच पग चल कर ही गिर पड़ने का वर्णन किया गया है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' की भाषा प्रौढ़ और सरस है। उसकी भाषा का सबसे बड़ा गुण एकरूपता है। उसमें न कहीं अधिक क्लिष्टता है और न अव्यवस्था। सर्वत्र भाषा का प्रांजल रूप उपलब्ध होता है। टवर्ग, द्वित्वादि कर्ण-कटु वर्णों का प्रयोग काव्य में कहीं नहीं है। इसी कारण 'मुनिसुव्रतकाव्य' की भाषा में अनेकरूपता नही है। शृंगार रस की पदावली इस प्रकार है:—

भाषा

अमर्षणायाः श्रवणावतंसमपाङ्गविद्युद्विनिवर्तनेन ।
स्मरेण कोषादवकृष्यमाणं रथाङ्गमुर्वीपतिराशशङ्के ॥[3]

ऐसी ही भाषा का प्रयोग अन्यत्र किया गया है। पद्मावती की पुत्राभावजन्य वेदना को अभिव्यक्त करने वाली भाषा भी इसी प्रकार की है:—

आपुष्पिताऽपि विफलेव रसालयष्टिः सेनेव नायकगताऽपि जयेन शून्या ।
काले स्थिताऽपि घनराजिरवर्षणेव मिथ्या दधामि हतकुक्षिमदृष्टतोका ॥[4]

इस भाषा में समासबहुला पदावली बहुत-कम दृष्टिगत होती है, फलतः अर्थबोध मे कठिनता नहीं होती।

'मुनिसुव्रतकाव्य' की भाषा की दूसरी विशेषता है उसकी अलंकृति और साजसज्जा। समस्त काव्य में स्यात् ही कोई पद्य अलंकार से रहित हो। उसकी भाषा में अनुप्रास आदि का पर्याप्त प्रयोग है, किन्तु ये अलंकार भाषा पर भार बन कर नहीं आये हैं और न उनके कारण भाषागत सौन्दर्य में कोई न्यूनता आने पाई है। भाषा के स्वाभाविक प्रयोग में जो अलंकार आ गये हैं उन्हीं का प्रयोग 'मुनिसुव्रतकाव्य' में मिलता है। प्रतिश्लोक में शब्दा-

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग ६, श्लोक ३१ (२) वही, सर्ग ७, श्लोक ७
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ३२ (४) वही, सर्ग ३, श्लोक २

लंकारों का पुट देने से भाषा की शोभा कई गुनी बढ़ गयी है और उसमें प्रवाह, गति और चंचलता आ गयी है। उदाहरणार्थः—

सुरापगापूरकृतान्तराणि शृङ्गाणि शालाग्रगतानि यस्याः ।
हैमानि हेमाम्बुरुहाणि बुद्धया मुग्धा जिहीर्षन्ति सुरर्षिकान्ताः ॥[1]

अनन्तरं दक्षिणवामभागयोर्जिनस्य पूर्वाभिमुखस्य सुस्थिते ।
शचीपतीशानपती ससम्भ्रमौ निजासने सम्मुखमध्यरोहताम् ॥[2]

यहाँ अनुप्रास के मंजुल प्रवाह ने भाषा को स्वाभाविक और ललित बना दिया है।

'मुनिसुव्रतकाव्य' की भाषा की अन्तिम विशेषता उसका प्रसादगुण से युक्त होना है। वस्तुतः कोमलता, रसार्द्रता, एवं लालित्य की दृष्टि से 'मुनिसुव्रतकाव्य' की भाषा का स्थान बहुत ऊँचा है और उसमें पाठक को रसमग्न करने की पूर्ण क्षमता है।

अलंकार-योजना

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'मुनिसुव्रतकाव्य' में अलंकारों का प्रयोग बहुत हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का तथा अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान और परिसंख्या का प्रयोग काव्य में बहुत हुआ है। जैसे:—

अरिष्टहर्म्यस्य स वज्रवेदेर्बालाङ्गनीलद्युतिपूरितस्य ।
मध्ये विरेजुर्नवदीपमालाः मालामणीनामिव वारिराशेः ॥[3]

यहाँ प्रसूतिकागृह के मध्य में स्थित दीपपंक्ति को समुद्र की मणिराशि के सदृश कहे जाने से उपमालंकार है।

सा कुङ्कुमेन परया कुचयोर्विलिप्ता कर्पूरकल्प्ततिलकानिटिले चकासे ।
सम्बद्धकुन्तलभरा शिरसि द्विरेफव्याप्तेव पल्लवितपुष्पितकल्पवल्ली ॥[4]

यहाँ प्रस्तुत कुचों पर कुंकुम एवं ललाट पर तिलक लगाये हुए तथा वेणी बाँधे हुए पद्मावती का अप्रस्तुत भ्रमरों से परिवेष्टित और पुष्पित कल्पवल्ली के रूप में सम्भावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मन्दाकिनीसालिसितारविन्दधियान्यया मूर्ध्नि कृतो मृगाङ्कः ।
अमन्यतापूर्णसुधं तमन्या सनीलनीरेरुहदुग्धकुम्भम् ॥[5]

यहाँ देवांगना के पीयूषपूर्ण मृगलांछित चन्द्रमा को भ्रान्ति से भ्रमरयुक्त गंगाजी का कमल समझ कर सिर पर चढ़ाने तथा दूसरी के उसे नीलकमल से आच्छादित दुग्ध-भाण्ड समझने के कारण भ्रान्तिमान अलंकार है।

रतिक्रियायां विपरीतवृत्ती रतावसाने किल पारवश्यम् ।
बभूव मल्लेषु गदाभिघातो भयाकुलत्वं रविचन्द्रयोश्च ॥[6]

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १, श्लोक ४४
(२) वही, सर्ग ६, श्लोक ९
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक २०
(४) वही, सर्ग ३, श्लोक १८
(५) वही, सर्ग ५, श्लोक ३२
(६) वही, सर्ग ७, श्लोक ३०

भुजङ्गमेष्वागमवक्रभावो भुजंगहारेऽप्यजिनानुरागः ।
ध्रुवं प्रदोषानुगमो रजन्यां दिनक्षयस्सोऽपि दिनावसाने ।।[१]

यहाँ सुमित्र के राज्य में विपरीतवृत्ति केवल रतिक्रिया में ही रह गयी थी, लोक में विरुद्धाचरण नहीं था । इसी प्रकार सुरतावसान में ही परवशता शेष थी, लोक में द्रव्य-पारवश्य नहीं था । इसी प्रकार अन्य बातों के भी सब स्थानों से वर्जन करके एक विशेष स्थान पर ठहराये जाने से यहाँ परिसंख्या अलंकार है ।

इन अलंकारों के अतिरिक्त रूपक, अर्थान्तरन्यास, यथासंख्य, अतिशयोक्ति, विरोध, सन्देह, अपह्नुति, सहोक्ति, दीपक आदि अलंकारों के प्रयोग भी 'मुनिसुव्रतकाव्य' में भावोद्रेक में सहायक हुए हैं । इन अलंकारों के उदाहरण पाद-टिप्पणी में दिये जाते हैं ।[२]

---

(१) मुनिसुव्रतकाव्य, सर्ग १, श्लोक ३६

(२) रूपकः—सार्थैस्सुरेन्द्रैस्तरिभिर्विमानैस्सांयात्रिकोऽयं जलधिं विहाय ।
सन्तीर्य चिन्तामणिमीशितारं संचेतुमेयाथ खनिं कुशाग्रम् ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ४६

अर्थान्तरन्यासः— तत्सङ्गमे सर्वसमृद्धिहेतौ निरन्तरं सत्यपि कुक्षिरस्याः ।
समृद्धिमल्पामपि न प्रपेदे भाग्यानुसारीणि फलानि कामम् ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ७

यथासंख्यः—भट्टाकलङ्काद् गुणभद्रसूरेः समन्तभद्रादपि पूज्यपादात् ।
वचोऽकलङ्कं गुणभद्रमस्तु समन्तभद्रं मम पूज्यपादम ।।
—वही,सर्ग १, श्लोक १०

अतिशयोक्तिः—जिनस्य माहात्म्यपदेन हृष्टौ सामीप्यलाभेन कुचौ तदीयौ ।
न बिभ्रतुः श्यामलतां मुखेऽल्पामप्येष नो हर्षयतीह कांस्कान् ।।
—वही, सर्ग ४, श्लोक ४

विरोधः—सन्त्यक्तसर्वविषयोऽप्यवरोधमुक्तोऽप्येकाक्षरक्षणपरोऽप्यनिशं यतीश ।
सम्भक्तसर्वविषयोऽजनि सावरोधः पंचाक्षनिग्रहपरः परमेष चित्रम् ।।
—वही, सर्ग ३, श्लोक ६

सन्देहः—मनोजसम्मोहनमन्त्रचिन्ताफलं नु भूपालतपः फलंनु ।
जनेक्षणादृष्टफलं नु किंचिन्न वेद्मि सृष्टेः कलशाकृतिस्सा ।।
—वही, सर्ग ३, श्लोक १६

अपह्नुतिः—प्रतप्तचामीकरवंकृतानि प्राकारशीर्षाणि पुनर्न यस्याः ।
पत्या दिशां भित्तिषु लिप्तशेषाः प्रतापपिण्डा वियदङ्गणे ते ।।
—वही, सर्ग १, श्लोक ४५

सहोक्तिः— उपायनीकृत्य गजाश्वरत्नान्युपागतानामधिपं नृपाणाम् ।
न केवलं मार्गरुधो नगेन्द्रा निपेतुरेषां दुरितादयश्च ।।
—वही, सर्ग ७, श्लोक ३५

'मुनिसुव्रतकाव्य' में महाकाव्य के छन्द-प्रयोग-सम्बन्धी नियम के अनुसार एक सर्ग में एक छन्द का ही प्रयोग किया गया है और सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। प्रथम सर्ग में उपजाति और सर्गान्त में प्रहर्षिणी का प्रयोग किया गया है। द्वितीय सर्ग में उपजाति और अन्त में द्रुतविलम्बित, तृतीय सर्ग में वसन्ततिलका और अन्त में शार्दूलविक्रीडित, चतुर्थ और पंचम सर्ग में उपजाति और अन्त में वसन्ततिलका, सप्तम सर्ग में उपेन्द्रवज्रा और अन्त में मालिनी, अष्टम सर्ग में वसन्ततिलका और अन्त में हरिणी तथा नवम सर्ग में वसन्ततिलका और अन्त में स्रग्धरा का प्रयोग किया गया है। षष्ठ और दशम सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। षष्ठ सर्ग में वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, रुचिरा, शार्दूलविक्रीडित तथा एक अर्धसम वृत्त (स स ज ग ग, स भ र य) का प्रयोग तथा दशम सर्ग में वसन्ततिलका, मालिनी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित और वसन्ततिलका का प्रयोग किया गया है। ४०८ श्लोकों वाले इस काव्य में कुल बारह छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें उपजाति का प्रयोग १७३ श्लोकों में, वसन्ततिलका का १३९ श्लोकों में, उपेन्द्रवज्रा का ४० में, वंशस्थ का ३० में, मालिनी का १२ में, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा का चार-चार में तथा शेष छन्दों का प्रयोग केवल एक-एक श्लोक में हुआ है।

छन्द

(७) नलायनम् (माणिक्यदेव सूरि)

(रचनाकाल वि० सं० १३२७ से १३७५ के मध्य)

विवेच्य युग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति माणिक्यदेवसूरि-कृत 'नलायनम्' है। यह 'नवमंगल' शब्दांकित महाकाव्य है। इसकी रचना दस स्कन्धों और सौ सर्गों में हुई है। इसमें नल-दमयन्ती के प्राचीन आख्यान को महाकाव्य का स्वरूप दिया गया है। इसके दूसरे नाम 'कुबेरपुराण' और 'शुकपाठ' भी हैं।

'नलायनम्' में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षणों का पालन किया गया है। परम्परागत नियमों के अनुसार 'नलायनम्' का कथानक लोकविश्रुत नल-दमयन्ती के चरित्र से सम्बन्धित है जिसका आधार जैन चरितग्रन्थ हैं। 'नलायनम्' के नायक नल धीरोदात्त

दीपकः— न परमखिललोकः प्रातिकूल्यं विहाय त्रिभुवनतिलकं तं वायुरप्यन्वियाय।
दिविजसरसि मग्नः पुष्पगन्धोपवाही मधुकरकुलशब्दच्छद्मना संस्तुवानः ॥

—वही, सर्ग १०, श्लोक ५

नलायनम् का महाकाव्यत्व

गुणों से विभूषित हैं। 'नलायनम्' में शान्त रस प्रधान है और गौण-रूप में शृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक आदि रस भी विद्यमान हैं। चतुर्वर्ग में से धर्म और मोक्ष की प्राप्ति इसका उद्देश्य है। इसका प्रारम्भ वीतराग, जिनेश्वर, भारती, कुबेर, शारदा आदि के स्तुतिपरक मंगलाचरण से हुआ है। प्रायः जैन कवि अपने चरितनायक के जन्म से लगा कर मृत्यु तक का पूरा विवरण काव्य में देते हैं, फलस्वरूप कथानक बहुत विस्तृत हो जाता है और उसमें पंच-सन्धियों की योजना के लिए बहुत-कम अवकाश रहता है। 'नलायनम्' के कथानक में भी इन सन्धियों का सफल निर्वाह नहीं मिलता। वस्तुतः 'नलायनम्' में कम-से-कम तीन महाकाव्यों के उपयुक्त कथासामग्री वर्तमान है। इस प्रकार 'नलायनम्' की कथा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में नल-परिचय से लेकर नल-दमयन्ती-विवाह तथा दमयन्ती को लेकर नल के निषध देश में आने तक, द्वितीय भाग में नल की द्यूतक्रीडा से लेकर दमयन्ती की पुनःप्राप्ति तक तथा तृतीय भाग में नल के श्राद्ध धर्म स्वीकार करने से लेकर मृत्यु के पश्चात् कुबेर बनने तक के प्रसंगों का समावेश किया जा सकता है। यदि इन तीनों भागों को पृथक्-पृथक् रखा जाए तो उनमें पंच-सन्धियों की भी सफल योजना मिल जाती है। प्रथम भाग में प्रथम स्कन्ध के पहले सर्ग से लेकर आठवें सर्ग तक नल के परिचय, तीर्थयात्री के मुख से किसी भूपाल-बालिका का सौन्दर्य-वर्णन सुनने, उसके विरह में दुखी होने एवं उद्यान में हंस को पकड़ने तक के वर्णन में मुख सन्धि है। नवें सर्ग से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक नल के हंस को छोड़ने, हंस के नल का विवाह दमयन्ती से कराने की प्रतिज्ञा करने और दमयन्ती के पास जाकर उसे नल के प्रति आकर्षित करने तथा दमयन्ती को विरह-व्यथित देख कर भीम द्वारा स्वयंवर की आयोजना किये जाने के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि है। द्वितीय स्कन्ध के प्रथम सर्ग से लेकर सोलहवें सर्ग तक नल के दमयन्ती-स्वयंवर में चलने, मार्ग में इन्द्रादि देवों के मिलने तथा नल के देवदौत्य करने के वर्णन में गर्भ सन्धि है। यहाँ एक ओर दमयन्ती-प्राप्ति-रूप फल की प्राप्ति में नल के सम्मुख अनेक बाधाएँ आती हैं, देवता उसे अपना दूत बना कर भेजते हैं, अतः नल के हृदय में निराशा का संचार होता है, दूसरी ओर दमयन्ती का अपने प्रति दृढ़ अनुराग देख कर आशा का संचार होता है। आशा-निराशा के संघर्ष में यहाँ गर्भ सन्धि की सफल योजना है। तृतीय स्कन्ध के प्रथम सर्ग से सप्तम सर्ग तक दमयन्ती के स्वयंवर-वर्णन-प्रसंग में विमर्श सन्धि की योजना दीख पड़ती है। नल के प्रकट हो जाने पर भैमी-प्राप्ति की आशा बलवती हो जाती है, फिर भी विघ्न-बाधाएँ अभी समाप्त नहीं होती हैं। इन्द्रादि चार देव नल का रूप धारण कर स्वयंवर में आते हैं जिससे एक बार फिर फल-प्राप्ति में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। तृतीय स्कन्ध के शेष स्कन्धों में दमयन्ती के नल के कण्ठ में वरमाला पहना देने, दमयन्ती से परिणय कर नल के घर लौटने के वर्णन में निर्वहण सन्धि की रूप-रेखा व्यक्त होती है।

चतुर्थ स्कन्ध से कथानक का दूसरा भाग प्रारम्भ होता है। इस स्कन्ध के पहले सर्ग

से चौथे सर्ग तक कलि के नल के शरीर में प्रविष्ट होने के वर्णन में मुख सन्धि है। इसके बाद कथानक का द्रुत गति से विकास होता है। पाँचवें सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक नल की द्यूतक्रीड़ा, कूबर से उसके पराजित होने, दमयन्तीसहित उसके वन में जाने तथा दमयन्ती के त्याग के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि की योजना दृष्टिगत होती है। चतुर्थ स्कन्ध के बारहवें सर्ग से पंचम स्कन्ध के अन्तिम (इक्कीसवें) सर्ग तक वन में दमयन्ती की विपत्तियों तथा उसके अपनी मौसी के यहाँ श्रीवर्धनपुर पहुँचने के वर्णन में गर्भ सन्धि की योजना है। यहाँ एक ओर अनेक आपत्तियों का सामना करने के कारण दमयन्ती निराश होती है तो दूसरी ओर चारण मुनि के आश्वासन देने तथा मुनि के मुख से केशिनी का विवरण सुन कर नल-प्राप्ति की आशा होती है। छठे स्कन्ध तथा सातवें स्कन्ध के प्रारम्भिक तीन सर्गों में दमयन्ती के पितृ-गृह में पहुँचने, दूतों द्वारा ऋतुपर्ण के यहाँ कुब्ज-रूप नल के होने का समाचार पाने, तथाकथित स्वयंवर का समाचार ऋतुपर्ण को पहुँचाने तथा कुब्ज-समेत ऋतुपर्ण के आने के वर्णन में विमर्श सन्धि वर्तमान है। यहाँ नल-प्राप्ति की संभावना बढ़ जाती है, फिर भी विघ्न-बाधाएँ समाप्त नहीं होती हैं। कुब्जरूप नल अपने को नल स्वीकार नहीं करता है इससे दमयन्ती की चिन्ताएँ समाप्त नहीं होती हैं। सातवें स्कन्ध के चौथे सर्ग से लेकर आठवें स्कन्ध की समाप्ति तक नल-दमयन्ती के मिलन, नल की दिग्विजय तथा पुनः राज्य-प्राप्ति के वर्णन में निर्वहण सन्धि उपलब्ध होती है।

नवें स्कन्ध से कथानक का तीसरा भाग प्रारम्भ होता है। इस स्कन्ध के प्रारम्भिक दो सर्गों में नल-दमयन्ती के गृहि-धर्म स्वीकार करने के वर्णन में मुख सन्धि तथा तीसरे-चौथे सर्गों में अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को जान कर नल-दमयन्ती की वैराग्यवृत्ति के बढ़ने के वर्णन में प्रतिमुख सन्धि की योजना हुई है। दसवें स्कन्ध के पहले सर्ग में एक ओर राजा की भोगवृत्ति शान्त नहीं होती, भैमी-सौन्दर्य के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ती चली जाती है, दूसरी ओर ग्रामशूकरवाली घटना के अन्तर्गत वीरसेन के प्रतिबोध तथा सुदामा मुनि के उपदेशों से वैराग्य-वृत्ति में वृद्धि होती है। अनुरक्ति-विरक्ति के इस संघर्ष में गर्भ सन्धि की योजना हुई है। इसी स्कन्ध के द्वितीय सर्ग से लेकर तृतीय सर्ग के प्रारम्भिक अर्धांश तक विमर्श सन्धि की योजना दीख पड़ती है, क्योंकि यहाँ नल की उग्र तपस्या लक्ष्य-सिद्धि की संभावना को बढ़ा देती है, किन्तु इन्द्र द्वारा अनेक विघ्न-बाधाओं के डाले जाने से संघर्ष अब भी वर्तमान है। तृतीय सर्ग के उत्तरार्द्ध तथा चतुर्थ सर्ग में मृत्यु के पश्चात् नल के कुवेर बनने और भीमजा के कुबेर-पत्नी बनने में निर्वहण सन्धि दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के तीनों भागों में पंच-सन्धियों की योजना वर्तमान है। ये तीनों भाग परस्पर दृढ़-सूत्र में बद्ध हैं। पंच-सन्धियों की योजना का उद्देश्य कथावस्तु को सुसंगठित रूप देना मात्र होता है, वह 'नलायनम्' के कथानक में भी प्राप्त होता है। 'नलायनम्' के कथानक को सन्धियों से युक्त स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है।

'नलायनम्' में महाकाव्यीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन तथा किसी-किसी सर्ग में विविध छन्दों के

प्रयोग से सम्बन्धित नियम का पालन भी हुआ है। महाकाव्य के विविध वर्ण्य-विषयों, जैसे वन, पर्वत, नगर, उपवन, संयोग, वियोग तथा षड्ऋतु आदि के सुन्दर वर्णन 'नलायनम्' में उपलब्ध होते हैं। 'नलायनम्' का नाम भी चरितनायक नल के नाम पर रखा गया है। नल ही आगामी भव में कुबेर होते हैं, अतः इसका 'कुबेरपुराण' नाम भी तर्कसंगत है। इस प्रकार 'नलायनम्' महाकाव्य के शास्त्रीय नियमों की कसौटी पर सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। इसके साथ-साथ कथावस्तु के सुसंगठित निर्वाह, मानव-जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति, चरित्रचित्रणगत उदात्तता तथा जातीय जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति के कारण 'नलायनम्' महाकाव्यों की पंक्ति में निस्सन्देह शीर्षस्थान पाने का अधिकारी है।

'नलायनम्' पौराणिक शैली का महाकाव्य है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों के अनुसार 'नलायनम्' का कथानक परम्परासम्मत जैन धर्मकथाओं के अनुसार है, कवि ने उसमें अपनी ओर से परिवर्तन-परिवर्धन नहीं किया है। पौराणिक महाकाव्यों की तरह प्रस्तुत महाकाव्य में भी स्वमत-प्रशंसा और परमत-खण्डन किया गया है। चतुर्थ स्कन्ध में इन्द्र के चमूपति नैगमेषी जैन धम की प्रशंसा करते हैं और चार्वाक मत का खण्डन करते हैं। नवें स्कन्ध में चारणमुनि पुनः जैन धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। 'नलायनम्' में जैन धर्म के उपदेश अनेक स्थानों पर दीख पड़ते हैं। पौराणिक महाकाव्य शान्तरसपर्यवसायी होते हैं। यद्यपि 'नलायनम्' में शृंगार रस का आधिक्य है, तथापि वह वैराग्यमूलक और शान्तरसपर्यवसायी है। काव्य के अन्त में नल दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और भीषण तप करते हैं। 'नलायनम्' में पौराणिक महाकाव्यों की प्रबन्ध-रूढ़ियों का पालन हुआ है। रूढ़ि के अनुसार उसका प्रारम्भ वीतराग-स्तुति और नल-स्तुति से हुआ है। उसमें रूप परिवर्तन, मुनि का शाप, दोहद, गुणश्रवणजन्य प्रेम तथा पूर्वभव की स्मृति आदि प्रबन्ध-रूढ़ियाँ यत्र-तत्र दीख पड़ती हैं। नल अदृश्यीकरण सिद्धि से अदृश्य होकर देवताओं के दौत्य कर्म के लिए भीम के अन्तःपुर में जाता है। न्द्रादि चारों देव अपना वास्तविक रूप बदल कर नल का रूप धारण कर लेते है। कर्कोटग सर्प के काटने से नल कुब्ज-रूप हो जाता है। स्त्रियों की दोहदकामना का वर्णन भीमपत्नी के गर्भ में दमयन्ती के अवतरित होने पर किया गया है। भीम-पत्नी को जाह्नवीजल-मिश्रित समुद्रजल में स्नान करने का दोहद होता है। शकुन्तला और कलावती के आख्यानों में मुनिशाप की कई जगह चर्चा है। दुर्वासा ऋषि के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है। कलावती-कथा में मातंग मुनि के शाप से गन्धर्वराज प्रियदर्शन का पुत्र प्रियम्वद गज बन जाता है और बाद में भद्रभूपति के बाण से आहत होने पर उसका शाप मोक्ष हो जाता है। हंस स्वयं शारदावाहन है, किन्तु शारदा के शाप से उसे भूनिवास करना पड़ता है। बाद में शारदा के अनुग्रह के अनुसार ही जब वह एक ऐसा कार्य (नल-दमयन्ती-विवाह) करता है जिसका उल्लंघन देवासुर भी नहीं कर पाते तो वह शाप से छूट कर पुनः शारदावाहन हो जाता है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह 'नलायनम्' में तन्त्र, मन्त्र और विद्याओं के प्रभाव की अभिव्यक्ति की गयी है। गणधर विद्याधर-पीडित कनकावली की रक्षा जांगुली-विद्या से

करते हैं। विद्याधर गणधर को कीलित कर देता है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों में अतिप्राकृत और अलौकिक घटनाओं का वर्णन प्रायः रहता है। 'नलायनम्' में ऐसे अनेक प्रसंग हैं। दमयन्ती के जन्म पर, नल द्वारा हंस के पकड़े जाने पर तथा कुब्ज द्वारा दमयन्ती के समक्ष अपना वृत्तान्त सुनाये जाने पर आकाशवाणी होती है। भैमी के मस्तक पर जन्म-जात प्रदीप्त तिलक सुशोभित है जिससे अन्धकार में भी प्रकाश होता रहता है। प्रस्तुत महाकाव्य में मनुष्य, राक्षस, और देवताओं का सम्पर्क दिखाया गया है। कर्कोटक नाग नल की सहायता करता है और उसे शृंगार-पेटिका देता है। नल और क्रौंच राक्षस में परस्पर युद्ध होता है जिसमें क्रौंच राक्षस की मृत्यु होती है। प्रथम स्कन्ध के तेरहवें सर्ग में नल और विद्याधर के युद्ध का वर्णन है। कर्कोटक नाग और हंस मानव-भाषा में बात करते हैं। गणधर-शिष्य नल को पुण्डरीक गिरि पर जाने के लिए सपक्ष घोड़ा देते हैं। शकुन्तला आख्यान में मरीचि मुनि भरत के कण्ठ में एक ऐसी माला डालते हैं जिसको माता-पिता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के छूने पर उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। कलावती-कथा में चाण्डाली द्वारा काटी गयी भुजाएँ वन-देवताओं की कृपा से पुनः ज्यों-की-त्यों हो जाती हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेक अप्राकृत तत्त्व 'नलायनम्' में पाये जाते हैं।

'नलायनम्' की शैली भी पौराणिक महाकाव्यों की तरह है। उसमें कथा का विभाजन स्कन्धों एवं सर्गों में हुआ है और पौराणिक छन्द अनुष्टुप् की प्रधानता है। जैन पौराणिक काव्यों के आदर्श के अनुसार 'नलायनम्' में भी भवान्तरों का वर्णन किया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि पूर्वजन्म के पुण्यापुण्य के कारण ही इस भव की घटनाएँ घटित होती हैं। कलावती-कथा में कलावती अपने पूर्व भव में पालतू शुक के पंख इस डर से उखाड़ देती है कि कहीं वह उड़ न जाए, अतः इस जन्म में इस पाप के फल-स्वरूप उसकी दोनों भुजाएँ काट ली जाती हैं। पूर्वजन्म में जिनेश्वर के तिलक लगाने के कारण वैदर्भी के मस्तक में नैसर्गिक तिलक लगा रहता है। राजा नल अपने पूर्व भव में (जब वह प्रचण्डचरित था) एक मुनि को सार्थ से अलग कर देता है, अतः इस भव में उसका प्रिया से वियोग होता है। उन्हीं मुनि पर छत्र लगाने के कारण नल को इस भव में एकच्छत्र राज्य मिलता है। पौराणिक महाकाव्यों की भाँति 'नलायनम्' में अवान्तर-कथाओं की योजना भी दृष्टिगत होती है। दमयन्ती को सान्त्वना देने के लिए चारणश्रमण शकु-न्तला-आख्यान, कलावती-कथा तथा तिलकमंजरी-कथा कहते हैं। इन कथाओं के अतिरिक्त पंचम स्कन्ध में पिहितद्वारानगरी की कथा, द्यूतक्रीड़ा पर कद्रू-विनता कथा, विदर्णमुखमुनि कथा तथा केशिनी-महाबल की कथाओं का वर्णन है जो इस काव्य को पौराणिक रंग प्रदान करती हैं। 'नलायनम्' में स्थान-स्थान पर स्तोत्र और माहात्म्यों का वर्णन भी है। प्रथम स्कन्ध के नवें सर्ग में सन्तानोत्पत्ति के लिए भीम चक्रेश्वरी की स्तुति करते हैं। तृतीय स्कन्ध के प्रथम सर्ग में प्रभातकालीन वेला में नल ऋषभदेव की स्तुति करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में पौराणिक महाकाव्यों की भाँति नल-कथा का माहात्म्य इन शब्दों में वर्णित किया गया है :—

श्री शान्तिरिव दु:स्वप्नं महाविषमिवेन्द्रजित् ।
हरत्यहरहः पापं नलः स्मरणमात्रतः ॥
यत्पुण्यं जाह्नवीस्नानाद् यत्पुण्यं गुरुपूजनात् ।
यत्पुण्यं प्राणिनां त्राणात्तत्पुण्यं नलकीर्तनात् ॥
एकतः शकुनाः सर्वे सुप्रशान्ताः फलप्रदाः ।
कार्यकाले नलस्यैकं नामग्रहणमन्यतः ॥[१]

इन पौराणिक तत्त्वों के आधार पर 'नलायनम्' को, यद्यपि उसमें शास्त्रीय महाकाव्य के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं, फिर भी, पौराणिक शैली का महाकाव्य कहना ही अधिक युक्त प्रतीत होता है।

कवि-परिचय, रचनाकाल आदि

'नलायनम्' में कवि ने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने जो प्रशस्ति दी है उसमें उसने अपना और अपने गच्छ का नाम दिया है। द्वितीय स्कन्ध के अन्त में यह श्लोक दिया गया है :—

एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्कं चक्रे यदत्र वटगच्छनभोमृगाङ्कः ।[२]

प्रथम स्कन्ध के अन्त का श्लोक इस प्रकार है :—

एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्कं माणिक्यदेवमुनिना कृतिना कृतं यत् ।
तस्यार्यकर्णनलिनस्य नलायनस्य स्कन्धोऽयमुत्तमतमः प्रथमः समाप्तः ।।[३]

इन दोनों श्लोकों से स्पष्ट है कि 'नलायनम्' की रचना माणिक्यदेवसूरि ने की है और वे वटगच्छीय मुनि थे।

माणिक्यसूरि ने 'नलायनम्' की रचना कब की, यह जानने के लिए विशेष साधन नहीं है। फिर भी, कतिपय विश्वसनीय सूत्रों से कवि-सत्ता-काल पर प्रकाश पड़ता है। कवि ने दूसरा ग्रन्थ 'यशोधरचरित्र' लिखा था जिसकी सूचना 'नलायनम्' के तृतीय स्कन्ध के इस अन्तिम श्लोक से प्राप्त होती है :—

एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्कं श्रीमद्यशोधरचरित्रकृता कृतं यत् ।
तस्यार्यकर्णनलिनस्य नलायनस्य स्कन्धो जगाम रसवीचिमयस्तृतीयः ॥[४]

इससे स्पष्ट है कि 'नलायनम्' तथा 'यशोधरचरित्र' का कर्ता एक ही व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित श्लोक दोनों काव्यों में प्राप्त होते है :—

अराजकमहो विश्वं ही भो निःशरणं जगत् ।
दुर्बलो बलिभिः कस्माद् हन्यते बालिशैः पशुः ॥[५]

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग १, श्लोक १६–२१
(२) वही, स्कन्ध २, सर्ग १६, श्लोक २५
(३) वही, स्कन्ध १, सर्ग १५, श्लोक २४
(४) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ६, श्लोक ५८
(५) वही, स्कन्ध ६, सर्ग २, श्लोक ८

अन्तःपुरं पुरं वापि किं राज्ञां श्वापदैः क्षतम् ।
विनाऽपराधं तत्तेषां वधमाधाय का गतिः ।।[1]

नान्दोलिताः कपिकुलैरपि वृक्षशाखाः
दुःखेन वेणुभिरपि च क्वणितं निरस्तम् ।
मुद्रा मुखे विघटिता न विहङ्गमानां
अङ्गीकृतं न च तृणं हरिणाङ्गनाभिः ।।[2]

इनसे स्पष्ट है कि 'नलायनम्' और यशोधरचरित्र' एक ही कवि की रचनाएँ हैं और 'यशोधरचरित्र' की रचना 'नलायनम् के पूर्व ही हो चुकी थी। 'यशोधरचरित्र' के आरम्भ में मंगलाचरण का यह श्लोक है:—

करामलकवद्विश्वं कलयन् केवलश्रिया ।
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ।।[3]

यह श्लोक आचार्य हेमचन्द्र-कृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' में है। इससे सिद्ध होता है कि 'यशोधरचरित्र' के कर्ता माणिक्यसूरि कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि के बाद हुए, अन्यथा हेमचन्द्र के श्लोक को वे अपने काव्य में कैसे उद्धृत कर सकते थे ? हेमचन्द्र का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी है। अतः माणिक्यसूरि का इस समय के बाद होना निश्चित है।

स्वर्गीय आचार्य बुद्धिसागरसूरि-प्रणीत 'जैनप्रतिमालेखसंग्रह' नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग में छब्बीसवें पत्र पर १३७ वें लेख में यह लिखा है:—

सं० १३१७ फा० शु० ८............ पल्लीवालज्ञातीय.......... कुमरसिंह–भार्या कुमरदेवि-सुतसामन्तभार्यासिंगारदेवि पित्रोः पुण्यार्थं.... ....विक्रमसिंह ठ० लूणा ठ० सांगाकेन श्री महावीरबिम्बं का० प्र० वडगच्छे कूत्रडे ....श्रीपडोचन्द्रसूरिशिष्य श्री माणिक्यसूरिभिः ।।

इसी ग्रन्थ में एक दूसरा लेख इस प्रकार है:—

सं० १३७५ वर्षे माघ शुदि ५ शनौ श्री ओसवाल ज्ञा० श्रे०..........भा० पालू श्रेयसे पु० सिंहेन श्रीपार्श्वनाथबिम्बं प्र० श्रीमाणिक्यसूरिभिः ।

इन दोनों लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माणिक्यसूरि सं० १३२७ से लेकर सं० १३७५ के मध्य जीवित थे। सं० १३२७ में जब उन्होंने महावीर-बिम्ब की प्रतिष्ठा करायी तब वे युवक रहे होंगे। अतः उनका जन्मकाल सं० १३० के आसपास स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार 'नलायनम् की रचना भी सं० १३२७ से सं० १३७५ के मध्य में ही हुई होगी, यह स्वीकार किया जा सकता है।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ६, सर्ग २, श्लोक २६ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग २, श्लोक ३४

(२) वही, स्कन्ध ५, सर्ग १, श्लोक २९ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग १३, श्लोक ७८

(३) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १, श्लोक ११

'यशोधरचरित्र' और 'नलायनम्' के अतिरिक्त माणिक्यसूरि की अन्य रचनाएं (१) अनुभवसारविधि (२) मुनिचरित (३) मनोहरचरित तथा (४) पंच नाटक हैं, किन्तु अभी तक ये ग्रन्थ खोजे नहीं जा सके है। 'नलायनम्' की प्रशस्ति में इन सब कृतियों के नाम आये हैं।[1]

'नलायनम्' के कुल श्लोकों की संख्या ४०५० है।

'नलायनम्' की कथावस्तु दस स्कन्धों तथा सौ सर्गों में विभक्त है। प्रथम स्कन्ध में पन्द्रह सर्ग हैं। इस स्कन्ध में निषध देश का राजा नल मुनियों की तपश्चर्या में विघ्न उपस्थित करने वाले क्रौंच निशाचर को मार कर वापिस लौटता है। मार्ग में एक तीर्थयात्री भीम-पुत्री दमयन्ती के सौन्दर्य की प्रशंसा करके नल के मन में उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है। इसी समय शारदा के शाप से भूलोक पर च्युत हंस नल के उद्यान में आता है जिसे नल पकड़ लेता है। हंसपत्नियों की प्रार्थना पर नल उसे छोड़ देता है। हंस उसके सम्मुख दमयन्ती का पूरा वृत्तान्त कहता है और दमयन्ती का विवाह उससे (नल से) कराने की प्रतिज्ञा करता है। हसीवर्ग को नल के समीप छोड़ कर हंस दमयन्ती के क्रीड़ावन में पहुँचता है। दमयन्ती उसे पकड़ने की चेष्टा करती है। हंस बड़ी निपुणता से आगे बढ़ता है और दमयन्ती को सखियों से दूर एकान्त में ले जाता है। यहाँ वह मानव-भाषा में अपना परिचय देकर उसे नल के प्रति आकृष्ट करता है। अवसर देख कर हंस दमयन्ती के समक्ष नल की विरह-व्यथा निवेदन करता है। दमयन्ती नल को पति-रूप में स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करती है। हंस यहाँ से नल के पास जाता है और अपनी सफलता का सम्पूर्ण वृत्तान्त उसे बता कर तीर्थ-यात्रा पर चला जाता है। नल के विरह में दमयन्ती की अवस्था दयनीय हो जाती है। पुत्री की विरहातुर अवस्था को देख कर भीम स्वयंवर का आयोजन करते हैं।

कथानक

द्वितीय स्कन्ध की कथावस्तु सोलह सर्गों में विभक्त है। इसमें दमयन्ती का सन्देश पाकर नल स्वयंवर में चल पड़ता है। मार्ग मे उसे दमयन्ती से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर जाते हुए इन्द्र, वरुण, अग्नि, तथा यम ये चार देवता मिलते हैं। नल के लोकोत्तर सौन्दर्य को देख कर देवताओं को भैमी-प्राप्ति की आशा नहीं रहती, अतः वे नल से दमयन्ती के प्रति उनका दौत्य-कार्य करने की प्रार्थना करते हैं। पहले तो नल दौत्य-कार्य करने को सहमत नहीं होता, किन्तु देवताओं के बहुत दबाव डालने पर वह यह स्वीकार

---

(१) **एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्कं यन्निर्ममेऽनुभवसारविधेर्विधिज्ञः।**
—नलायनम् स्कन्ध ७, सर्ग ६ श्लोक ५३

एतत् किप्यनवमं नवमंगलाङ्कं यन्निर्ममे मुनिमनोहरयोर्विधाता।
—वही, स्कन्ध ३, सर्ग १६, श्लोक २५

एतत् किमप्यनवमं नवमंगलाङ्कं यत् पंचनाटककविर्वितताननव्यम्।
—वही, स्कन्ध ६, सर्ग ४, श्लोक ३६

कर लेता है और अदृश्यीकरण-महिमा से अदृश्य होकर दमयन्ती के अवरोध में जाता है जहाँ वह अपने यथार्थ रूप में प्रकट होता है। वह अपना परिचय न देकर दमयन्ती से चारों में से किसी एक को वरण करने के लिए आग्रह करता है। दमयन्ती नल को छोड़ कर अन्य किसी भी व्यक्ति से विवाह न करने से सम्बन्धित अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहती है तथा नल के प्राप्त न होने पर अग्नि में जल जाने या जल में डूब जाने का निश्चय प्रकट करती है। इस पर नल उससे कहता है कि यदि वह अग्नि में जलेगी तो अग्नि स्वतः उसका आलिंगन पाकर कृतार्थ हो जाएगा और यदि वह जल में डूबेगी तो वरुण का अभीष्ट अपने-आप ही उसे प्राप्त हो जाएगा। इस प्रकार वह प्रत्येक दशा में देवताओं के पास ही जाएगी। यह सुन कर दमयन्ती नल का नाम लेकर विलाप करने लगती है। उसके विलाप को सुन कर नल आत्म-विस्मृत हो जाता है और 'विरम विरम कान्ते न प्रिये रोदितव्यम्' कह कर अपने को प्रकट कर देता है। दमयन्ती नल को पहिचान लेती है। नल को अपने आत्म-प्रकाश पर बड़ा दुख होता है। इसी समय हंस आता है और नल एवं दमयन्ती दोनों को सान्त्वना देता है। यहाँ से लौट कर नल अपने निवेश में आता है और नैगमेषी द्वारा सम्पूर्ण विवरण देवताओं को बता देता है।

तृतीय स्कन्ध में नौ सर्ग हैं। इसमें नल के साथ-साथ चारों देवता भी 'नल के भ्रम से ही दमयन्ती हमारा वरण कर ले' यह सोच कर नल का रूप धारण कर स्वयंवर-मण्डप में आते हैं। स्वयंवर में उरग, राक्षस, विद्याधर आदि सभी आते हैं। देवताओं की प्रार्थना पर शारदा सभी राजाओं का परिचय दमयन्ती को देती है। वह नल-पंचक का परिचय श्लिष्ट शब्दों में देती है। पाँच नलों को देख कर दमयन्ती एक क्षण के लिए स्तब्ध एवं हताश हो जाती है, किन्तु दूसरे ही क्षण नल-रूपधारी देवताओं को निमेषपात करते न देख तथा नल को निमेषपात करते देख कर वह नलपंचक में से वास्तविक नल को पहचान लेती है और उसके कण्ठ में वरमाला डाल देती है। दमयन्ती से विवाह कर नल निषध लौटता है।

चतुर्थ स्कन्ध में तेरह सर्ग हैं। इस स्कन्ध में दमयन्ती-स्वयंवर से लौटते हुए देवताओं को मार्ग में कलि मिलता है जो उन्हें दमयन्ती-अपहरण के लिए उत्तेजित करने की चेष्टा करता है, किन्तु असफल होने पर वह नल को राज्यच्युत करके भयंकर आपत्तियों में डालने और दमयन्ती का सतीत्व नष्ट करने की प्रतिज्ञा करता है। वह निषध देश में जाकर एक दिन नल को अशुचि देख कर उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। फलस्वरूप नल को द्यूतक्रीड़ा का व्यसन लग जाता है और वह राज-काज को भूल कर अपने भाई कूबर के साथ द्यूतक्रीड़ा में मग्न रहने लगता है। दमयन्ती के समझाने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दमयन्ती भवितव्यता का पूर्वाभास पाकर अपनी दोनों सन्तानों को अपने पिता के यहाँ भेज देती है। नल द्यूतक्रीड़ा में सम्पूर्ण राज्य हार जाता है। कूबर उसे देश से निकाल देता है। वन में नल को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। भील उसे लूट लेते हैं, कलि के कोप से सम्मोहनास्त्र उसे छोड़ कर चले जाते हैं और अक्षपाश स्वर्ण-पक्षी का

रूप धारण करके उसके उत्तरीय को लेकर उड़ जाते हैं। रात्रि में नल यह सोच कर कि 'अकेली रह जाने पर दमयन्ती पितृगृह चली जाएगी, जहाँ वह सुख से रहेगी तथा अकेले रह जाने पर वह (नल) भी किसी की सेवा करके अपनी उदरपूर्ति की व्यवस्था कर सकेगा और उसे कोई पहचान भी न सकेगा' दमयन्ती को सोता हुआ छोड़ कर चल देता है। आगे पहुँचने पर देवताओं की प्रेरणा पर नल का पितृव्य वज्रसेन जो इस समय कर्कोटक नाग भव में था, नल को काट कर उसे इसलिए कुब्ज बना देता है जिससे उसे (नल को) कोई पहिचान न सके। वह नल को एक सन्दूक देता है जिसमें रखे हुए वस्त्रों को पहनने से नल अपने पूर्वरूप में आ सकता था। यहाँ से चल कर कुब्ज-रूप नल अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ जाता है और वहाँ सुखपूर्वक रहता है।

पंचम स्कन्ध इक्कीस सर्गों में विभक्त है। इस स्कन्ध में दमयन्ती जागने पर नल को न देख कर करुण विलाप करती है। अन्त में वह अपने पितृगृह की ओर चल पड़ती है। मार्ग में उसे अजगर निगलने की चेष्टा करता है, किरात उसका सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न करता है तथा इसी प्रकार की अन्य आपत्तियाँ आती हैं, किन्तु पंचपरमेष्ठि मंत्र के प्रभाव से उसकी सभी विघ्न-बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं। आगे चलकर दमयन्ती को चारण-श्रमण मिलते हैं जो उसे विविध उपाख्यान सुना कर सान्त्वना देते हैं और नल-मिलन की भविष्यवाणी करते हैं। यहाँ से कुंडिनपुर जाते समय मार्ग में एक सरोवर के तीर पर दमयन्ती का साक्षात्कार श्रीवर्धनपुर-नरेश की पत्नी (जो दमयन्ती की मौसी है) से होता है। दमयन्ती अपना यथार्थ परिचय छिपा लेती है और अपने को एक क्षत्रियबाला बता कर अपनी विपत्तिगाथा कहती है। रानी दमयन्ती की दुःखभरी कथा सुन कर द्रवित हो जाती है और उसे अपने साथ ले आती है। यहाँ अपने शील की रक्षा करती हुई दमयन्ती दासी-कार्य करती है।

षष्ठ स्कन्ध में सात सर्ग हैं। इन सर्गों में नल-दमयन्ती के वियोग का वृत्तान्त सुन कर राजा भीम दमयन्ती की खोज के लिए चरों को चारों ओर भेज देते हैं। चर दमयन्ती का पता लगाने में सफल होते हैं और दमयन्ती श्रीवर्धनपुर से अपने पितृगृह आ जाती है। पुत्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त जान कर भीम-नृप नल की खोज के लिए चरों को पुनः चारों ओर भेजते हैं। इनमें से सुदेव और शाण्डिल्य नामक दूत अयोध्या जाते हैं जहाँ उनकी भेंट अपने को नल-सारथि बताने वाले कुब्ज से होती है। कुब्ज की बातचीत आदि से चरों को उसके नल होने का पूर्ण विश्वास हो जाता है। वे इसकी सूचना दमयन्ती को देते हैं। दमयन्ती यह सोचकर कि 'यदि यह कुब्ज नल ही है तो अश्वविद्या जानने के कारण स्वयंवर की सूचना पाकर वह तत्क्षण यहाँ आएगा' अपनी माता के परामर्श से अयोध्या-नरेश ऋतुपर्ण के यहाँ दूसरे दिन प्रातः अपने स्वयंवर के होने की सूचना पहुँचाती है।

सप्तम स्कन्ध सात सर्गों में विभक्त है। इस स्कन्ध में दमयन्ती-स्वयंवर की सूचना पाकर ऋतुपर्ण प्रफुल्लित हो जाते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण एक रात में दो सौ योजन की दूरी पार करके कुण्डिनपुर पहुँच कर दूसरे दिन प्रातःकाल सम्पन्न होने वाले स्वयंवर में भाग लेना

असम्भव समझ कर हताश हो जाते हैं। कुब्ज एक रात में ही कुण्डिनपुर पहुँचाने का आश्वासन देकर ऋतुपर्ण की चिन्ता दूर करता है। अश्वविद्या के बल से कुब्ज ऋतुपर्ण को दूसरे दिन प्रातःकाल ही कुण्डिनपुर पहुँचा देता है। एक ही रात्रि में दो सौ योजन आना सुनकर तथा कुब्ज द्वारा निर्मित सूर्यपाका रसवन्ती का स्वाद चख कर दमयन्ती को निश्चय हो जाता है कि कुब्ज ही नल है। वह कुब्ज को अन्तःपुर में बुलाती है, किन्तु कुब्ज के अपने को नल स्वीकार न करने से वह मूर्च्छित हो जाती है। इसी समय आकाशवाणी होती है जिसमें नल को प्रिया-ग्रहण का आदेश दिया जाता है। आकाशवाणी के अनुसार नल कर्कोटक नाग द्वारा प्रदत्त गारुड़ शृंगार से अपने कुब्ज रूप को दूर कर यथार्थ रूप में आ जाता है। अब ऋतुपर्ण की प्रार्थना पर नल दिग्विजय के लिए प्रयाण करता है।

अष्टम स्कन्ध में चार सर्ग हैं। इनमें नल दिग्विजय करता हुआ निषध देश में आता है। यहाँ ऋतुपर्ण नल को अक्षविद्या प्रदान करते हैं जिसके द्वारा नल द्यूतक्रीड़ा में कूबर को पराजित करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करता है। नल अर्धराज्य कूबर को देकर, जिनेन्द्र की भक्ति में तल्लीन रह कर न्यायपूर्वक शासन करता है।

नवम स्कन्ध भी चार सर्गों में विभक्त है। इसमें राजा नल दमयन्ती के साथ तमोपह तीर्थ पर जाता है। यहाँ श्रुतसागर नामक मुनि उसकी जिज्ञासा पर उसके तथा दमयन्ती के पूर्व-भवों का विवरण बताते हैं। दशम स्कन्ध में चार सर्ग हैं। इन सर्गों में नल का पिता वीरसेन सुर नट का रूप धारण कर नल को प्रतिबुद्ध करता है, फलस्वरूप नल दमयन्ती-सहित दीक्षा ग्रहण करके उग्र तपस्या करता है। नल के दुस्तर-तप से इन्द्र को अपने पद के हरण की आशंका हो जाती है। वे रम्भा को नल की तपस्या में विघ्न डालने के लिए भेजते हैं। रम्भा दमयन्ती का रूप धारण कर नल के सम्मुख आती है। इन्द्र की माया से चित्ररथ राक्षस दमयन्ती-रूप-धारिणी रम्भा का अपहरण करता है। छद्म-दमयन्ती रक्षा के लिए पुकारती है। तपस्या-निरत नल अपनी तल्लीनता को भूल कर वैदर्भी—(रूपधारिणी रम्भा) को मुक्त करने के लिए चित्ररथ राक्षस से युद्ध करता है और उसे पराजित करता है। छद्म-वैदर्भी नल का आलिंगन करती है और नल के संयम को नष्ट कर अपना यथार्थ रूप धारण कर अन्तर्धान हो जाती है। अब नल को इन्द्रकृत माया का ज्ञान होता है। वह अपने को धिक्कारने लगता है। नल के तपखण्डन में स्वयं को मूल कारण जान कर दमयन्ती उग्र तपस्या करती है। नल भी तपश्चर्या में पुनः लीन हो जाता है। अपनी दुष्कर तपस्या के फलस्वरूप मृत्यु के उपरान्त नल, कुबेर होता है और दमयन्ती कुबेर-पत्नी होती है। नवीन धनाधिपति (कुबेर) को देख कर इन्द्रादि सुर उनका अभिषेक करते हैं। यहीं कथानक की समाप्ति होती है।

'नलायनम्' का कथानक जैन-चरित-ग्रन्थों में उपलब्ध आख्यानों पर आधारित है, अतः व्यास-कृत 'महाभारत' में उपलब्ध नलोपाख्यान से यदि उसकी तुलना की जाए तो उसमें अनेक स्थलों पर परिवर्तन किया गया दृष्टिगोचर होता है। किन्तु, यह परिवर्तन कवि की मौलिकता नहीं है। उसने तो जैन-परम्परागत नलचरित की मूल कथा को ज्यों-

का-त्यों ग्रहण किया है, फिर भी काव्य के कुछ अंशों में कवि की मौलिकता एवं काव्य-कुशलता झलकती है। हंस-भैमी-संवाद, देवदूतनल-भैमी-संवाद, नल के विरह में दमयन्ती का विलाप आदि प्रसंगों में पर्याप्त मौलिकता है। देवदूत नल और दमयन्ती के बीच हुए वार्तालाप एवं संवाद में श्रीहर्ष-कृत 'नैषधीयचरित' की गहरी छाप पड़ी है। कहीं-कहीं तो भावसाम्य ही नहीं, शब्दसाम्य भी मिल जाता है।

'नलायनम्' में कथावस्तु के निर्वाह में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। 'नलायनम्' की कथावस्तु में अविच्छिन्न धारावाहिकता विद्यमान है। यद्यपि उसमें शकुन्तला एवं कलावती के आख्यानों का समावेश हुआ है, फिर भी इन उपाख्यानों के कारण कथानक में शिथिलता या रुकावट नहीं आने पायी है। यहाँ मुख्य कथा और आनुषंगिक कथाओं में पूरा सामंजस्य दृष्टिगत होता है। 'नलायनम्' की कथावस्तु में सरसता और रोचकता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। कहीं सजीव संवादों की योजना से और कहीं सुन्दर दृश्य-चित्रण से कवि ने 'नलायनम्' की कथावस्तु को सरस, रोचक और सजीव बनाया है।

'नलायनम्' के बृहत् कथानक में अनेक पात्रों की योजना हुई है, किन्तु उनमें नल और दमयन्ती को छोड़ कर अन्य किसी पात्र के चरित्र का विकास नहीं हुआ है। नल 'नलायनम्' का नायक है। वह धीरोदात्त नायक है जिसमें धैर्य, गाम्भीर्य, सत्त्व, स्वाभिमान आदि गुण विद्यमान हैं। धीरप्रशान्त नायक के गुण भी कथा के अन्तिम भाग में उसमें लक्षित होते हैं। नल अति रूपवान् है। कवि ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा स्थान-स्थान पर की है। उसके सौन्दर्य को देख कर देवता भी स्तब्ध हो जाते हैं:—

चरित्र-चित्रण
नल

लावण्यामृतपाथोधौ पार्थिवे पृथुवक्षसि।
अपि मग्नानि प्रौढानां मनांसि त्रिदिवौकसाम्॥
अहो! रूपमहो! रूपमहो! रूपमिति क्षणं।
मूर्ध्नस्तेषां धुनाति स्म स्तुतिझंझानिलो भृशम्॥[1]

सौन्दर्य के साथ-साथ उसके चरित्र में शक्ति और शील का समन्वय है। राज्यच्युत होने पर वह घर बार छोड़ कर निकल पड़ता है। उस समय वह गंगातट पर अवस्थित एक लम्बे-चौड़े स्तम्भ को उखाड़ कर उसे आकाश में उछाल देता है और फिर उसे पूर्ववत् स्थापित कर देता है। उसके इस बल को देख कर लोग चकित हो जाते हैं।[2] क्रौंचकर्ण-युद्ध-प्रसंग में भी नल के असीम बल की अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु नल का यह बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिए नहीं, अपितु जनता की कल्याण-साधना के लिए है। मुनियों की आराधना में विघ्न डालने वाले क्रौंचकर्ण को मार कर वह तपस्वियों को अभय प्रदान करता है। उसका हृदय दया, करुणा, सहानुभूति आदि पूत गुणों से युक्त है। किसी को

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध २, सर्ग ४, श्लोक ४–५
(२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ८, श्लोक ४४–४५

विपत्तिग्रस्त देख कर नल का हृदय करुणा से विगलित हो उठता है। विद्याधर द्वारा कीलित गणधर को देख कर वह करुणा से भर जाता है। गणधर-शिष्य से यह जानकर 'कि यदि एक प्रहर में ही पुण्डरीक गिरि से कोई सत्त्ववान् राजपुत्र संजीवनी औषधि ले आए तो गणधर के प्राण बच सकते हैं, अन्यथा दोपहर तक उनकी मृत्यु हो जाएगी'— नल तत्क्षण गणधर-शिष्य से पठित सिद्धमन्त्र लेकर पुण्डरीक गिरि पर जाता है और औषधि लाकर गणधर के प्राणों की रक्षा करता है। करुणा से प्रेरित होकर ही वह विपत्तिग्रस्त कनकावली को उसके घर सुरक्षित पहुँचा देता है। राज्य नष्ट हो जाने पर भी नल के ये गुण नष्ट नहीं होते। अपनी विपन्नावस्था में भी वह दावाग्नि से त्रस्त गर्तपतित भयंकर सर्प की करुण पुकार से द्रवित होकर, अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उसके प्राणों की रक्षा करता है।

नल धार्मिक व्यक्ति है। अतिथियों की सेवा करना, शरणागत को अभय देना, मुनियों की सेवा करना और उनकी देशना सुनना एवं जिनेश्वर-बिम्बों की आराधना करना उसके धर्म का अंग हैं। मुनियों के आगमन पर वह हर्षोत्फुल्ल हो जाता है और कहता है:—

> **अद्य मे पितरः प्रीताः अद्य मे श्रीः स्वयंवरा।**
> **अद्याहं कृतकृत्योऽस्मि यौष्माकीयसमागमात्॥**
> **तद् ब्रूत मम के यूयं कुतो वा काननान्तरात्।**
> **किमर्थमयमायासः समादेशकरे मयि॥**
> **इयं क्षितिरियं लक्ष्मीरिदं राज्यमिदं गृहम्।**
> **युष्मत्प्राप्तिप्रसादस्य क्रियतां केन निष्क्रयः॥**[1]

नल के इस कथन में गुरुजनों के प्रति कितनी नम्रता छिपी हुई है? अतिथियों की सेवा करना और शरणागत को अभय देना नल के विचार से प्राणियों का प्रथम धर्म है। उसका स्वयं का मत है:—

> **पुराणपातकध्वंसी भविष्यत्फलसूचकः।**
> **संभावयति नाभव्यं सर्वतीर्थमयोऽतिथिः॥**
> **एतदेव मनुष्यत्वं संविभागो यदर्थिनाम्।**
> **स्वोदरम्भरितावर्ज किमन्यत्पशुलक्षणम्॥**
> **यस्य नार्तपरित्राणं यस्य नातिथिपूजनम्।**
> **यस्य नात्मीयसामर्थ्य सत्यं स पुरुषाधमः॥**[2]

जिनेश्वर में नल की अतीव भक्ति है। वह प्रातःकाल उठते ही नैवेद्यपुष्पादि से परमेष्ठि की पूजा और स्तुति करता है।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग २, श्लोक ३७–३९

(२) [illegible] स्कन्ध १, सर्ग २, श्लोक ३०–३१. ३६

नल प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य को अधिक महत्त्व देता है। दमयन्ती के प्रति उसका अनुराग सर्वविदित है, किन्तु जब वह देवताओं के अनुरोध पर उनका दौत्य-कर्म करने को प्रस्तुत हो जाता है तो फिर हम उसे प्राणपण से कर्तव्यपालन में तल्लीन देखते हैं। कर्तव्य-पालन के अनुरोध से ही दमयन्ती द्वारा बार-बार पूछे जाने पर भी वह अपना नाम नहीं बताता, वह तो यही कहता है:—

अयि ! रम्भोरु ! कोऽयं ते सारम्भ निरवग्रहः ।
मम नामान्वयप्रश्नो नितान्तं निःप्रयोजनः ।।
विनिषिद्धं च साधूनां स्वनामग्रहणं स्वयम् ।
न शक्तस्तेन तद् वक्तुं व्यवस्थाभङ्गकातरः ।।[1]

दमयन्ती के विलाप से द्रवित होकर अनजान में ही जब वह 'विरम विरम कान्ते ! न प्रिये रोदितव्यं' कह कर अपना परिचय देता है तो उसे सचेत होने पर इस बात पर बड़ा दुःख और पश्चाताप होता है कि वह अपने कर्तव्य का निर्वाह ठीक तरह से नहीं कर सका। इन पंक्तियों से उसके हृदय के दारुण दुःख और पश्चाताप का अनुमान लगाया जा सकता है:—

अहह ! बत मयात्मा किं प्रकाशीकृतोऽयं
किमिव स मम वक्ता दूषणं देवराजः ।
न कृतममरकृत्यं खेदिता राजपुत्री
द्वयमपि हि विनष्टं वंचितो वंचितोऽस्मि ।।[2]

नल आदर्श राजा है। निम्नोद्धृत पंक्तियों में उसके राजोचित गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

स हि शीलकुलोपेतः पुण्यश्लोकः प्रजापतिः ।
शासिता दुर्विनीतानां गोप्ता विनयवर्तिनाम् ।।
दक्षः स्वपरदोषज्ञो गुणवान् गुणवत्सलः ।
भयंकरश्च सौम्यश्च धीरोऽपि ललितोऽपि च ।।
नित्यं धर्मार्थकामेषु तुल्यभावेन संस्थितः ।
इह लोकफलं भुंक्ते परलोकाद् बिभेति च ।।[3]

उसके आदर्श राजा होने का सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि कलि ६००० वर्ष तक उसके राज्य में छिद्र देखता है, किन्तु उसे कोई भी छिद्र नहीं मिलता है। नल के चरित्र में एक यही दुर्गुण है कि वह जुआ खेलने लगता है, किन्तु कवि ने इसे कलि का प्रभाव बता कर उसके इस दोष का मार्जन करने का प्रयत्न किया है।

नल अतीव साहसी है। राज्यच्युत होने पर उसे अनेक भयंकर विपत्तियों का सामना

---

(१) **नलायनम्, स्कन्ध २, सर्ग १२, श्लोक १४–१५**
(२) **वही, स्कन्ध २, सर्ग १५, श्लोक २७** (३) **वही, स्कन्ध ५, सर्ग २१, श्लोक ६-८**

करना पड़ता है, परन्तु वह कभी विचलित नहीं होता। वह धैर्य और साहस के साथ इन विपत्तियों को सहन करता है। नल स्वाभिमानी है। वन में अनेक दुर्दशाएँ सहने पर भी, दमयन्ती के प्रबल आग्रह करने पर भी, वह श्वसुरगृह में जाने और वहाँ रहने के लिए तैयार नहीं होता।

अन्त में उसे सम्पूर्ण विपत्तियों से छुटकारा मिलता है। वह दीक्षा लेकर उग्र तपस्या करता है, फलस्वरूप मृत्यु के बाद वह कुबेर बनता है।

दमयन्ती 'नलायनम्' की नायिका है। नल की भाँति वह भी अतीव सुन्दरी है। उसके सौन्दर्य का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। उसकी मौसी उसके सौन्दर्य दमयन्ती को देव-सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करने वाला बताती है:—

निमेषेणैव मानुष्यं केवलं तव सूच्यते।
तिरस्करोषि पद्माक्षि! प्रभया तु सुरानपि॥[1]

उसके इस अतुलित सौन्दर्य पर देवता भी मुग्ध हैं। इसी कारण वे भी उसके स्वयंवर में जाते हैं और नल को उसके पास दूत बना कर भेजते हैं।

दमयन्ती अपने प्रेम में एकनिष्ठ है। एक बार जब उसके हृदय में नल के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है तो देवताओं की सम्पूर्ण शक्ति भी उसे विचलित नहीं कर पाती। अन्त में उसके अविचल प्रेम की विजय होती है। सुरेन्द्र का अतुल वैभव भी उसे अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ नहीं होता है। वह दूतरूपधारी नल से स्पष्ट कह देती है:—

स भवतु मनुजो वा यादृशस्तादृशो वा
गुणगणपरिपूर्णः सर्वथा निर्गुणो वा।
तदपि न रमते मे वीरसेनस्य पुत्रं
गगनमिव मृगाङ्कस्तं विनाऽन्यत्रभावः॥
किमिह बहुभिरुक्तैर्निश्चयः श्रूयतां मे यदि न भवति भर्ता नैषधः क्षोणिपालः।
जलगरलहुताशोद्बन्धनाद्यैरुपायैस्तदहमिह समन्तादात्मघातं करोमि॥[2]

वस्तुतः दमयन्ती आदर्श भारतीय गृहिणी है जो सुख और दुःख दोनों में पति की सहचरी है। जब पति दुखी है तो वह भी दुखी होती है। पति के राज्य छोड़ने पर वह भी राज्य-सुख व्यर्थ समझती है और पति के साथ चल देती है। वह विवेकशीला है और उसे सद्-असत् का ज्ञान है। पति को कुमार्ग से निवृत्त कर सुमार्ग पर लाने के लिए वह सदैव प्रयत्नशील रहती है। जब वह अपने पति को द्यूतक्रीड़ा में लिप्त देखती है तो वह उसे उससे विरत करने के लिए समझाती-बुझाती है और द्यूतक्रीड़ा के दोषों पर प्रकाश डालती है।

दमयन्ती बड़ी चतुर और दूरदृष्टा है। जब नल उसके समझाने-बुझाने से भी नहीं

मानता है तो उसे भवितव्यता का आभास पहले से ही मिल जाता है। अतः वह अपनी संतति को अपने पितृगृह भेज देती है। इसी प्रकार नल की खोज करने में भी उसकी चतुरता परिलक्षित होती है।

दमयन्ती में धर्मभावना वर्तमान है। पति से वियुक्त हो जाने पर, चारणश्रमणों को देख कर वह उन्हें भक्ति-भाव से प्रणाम करती है और ऐसी प्रसन्न होती है मानों वह अपने पिता के घर में ही आ गयी हो ![1] वह उनके उपदेशों को श्रद्धापूर्वक सुनती है और उनकी देशना के अनुसार शान्ति-जिनेश्वर की अर्चना करती है। राज्य प्राप्त हो जाने पर भी मुनियों के चरणों में उसकी दृढ़ आस्था रहती है। कल्याणिक-महोत्सव के अवसर पर तमोपह तीर्थ से लौटते समय वह एक मुनि के शरीर पर बैठे भ्रमरों को उड़ाती है और उनके पैर के कण्टकों को दूर करती है।

दमयन्ती पतिव्रता नारी है। उसे अपने शील की रक्षा का सदैव ध्यान रहता है। वन में पति से वियुक्त हो जाने पर अनेक बार उसे कठिन आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, किन्तु वह अपने शील की यत्नपूर्वक रक्षा करती है। अपनी मौसी के यहाँ वह दासी-रूप में कार्य करती है, किन्तु यहाँ भी वह स्पष्ट कर देती है कि:—

न मे भोजनसम्पर्कं व्यापारं पुरुषेषु वा।
कश्चिदर्हति निर्वेष्टुमिति स्थातुं पणो मम ॥[2]

निष्कर्ष-रूप में दमयन्ती पतिपरायणा भारतीय नारी है। पति ही उसका सर्वस्व है। प्रारम्भ से अन्त तक वह पति-सेवा में व्यापृत दीख पड़ती है। वियोग में भी उसे सदैव पति की ही चिन्ता रहती है। घोर आपत्तियों में भी पति उसके नेत्रों से ओझल नहीं होता है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से 'नलायनम्' का बहुत उच्च स्थान है। उसमें प्रकृति का चित्रण विभिन्न रूपों में पाया जाता है, किन्तु मानव-व्यापारों की पृष्ठभूमि के रूप में उसका अंकन अधिक हुआ है। प्रथम स्कन्ध के तृतीय सर्ग में वनस्थली का सुन्दर वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

उत्फुल्लपल्लवितनिम्बकदम्बजम्बूजम्बीरकीरकटुकार्जुनकेतकीकाः।
तस्याददुः श्रमशमं वपुषः समन्तादुत्तालबालकदलीपवना वनान्ताः ॥
तस्मै ददुर्मुदमुदारमयूमयूरहारीतचातकचकोरकपिंजलानि।
आसन्नकिन्नरनिरन्तरगीतगानध्यानैकतानहरिणानि वनस्थलानि ॥[3]

यह वर्णन आगे आने वाली नल-पथिक-मिलन घटना के लिए पृष्ठाधार बन गया है, जहाँ पथिक राजा भीम की पुत्री दमयन्ती का वर्णन करता है और नल उस वृत्तान्त को सुन कर स्मरविह्वल हो जाता है।

---

(१) शुचीन् सुमनसः सौम्यान् महर्षीन् वीक्ष्य हर्षिता।
भैमी पितृगृहप्राप्तमिवात्मानमन्यत ॥ —नलायनम्, स्कन्ध ५, सर्ग ७, श्लोक २

(२) वही, स्कन्ध ५, सर्ग २१, श्लोक ५७ (३) वही, स्कन्ध १, सर्ग ३, श्लोक ३८-३९

'नलायनम्' में कहीं-कहीं परिगणनात्मक शैली के दर्शन भी होते हैं। ऐसे स्थलों पर वृक्षों के नाम-मात्र गिनाये गये हैं, दृश्य का सजीव चित्र उपस्थित करने की चेष्टा नहीं की गयी है। द्वितीय स्कन्ध में रेवातट का वर्णन करते समय कवि में यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। यथा :—

तमालतालहिन्तालशालमालूरमालिताः ।
कदम्बनिम्बजम्बीरजम्बूस्तम्बकरम्बिताः ॥
करीरकीरवानीरकरवीरविराजिताः ।
केतकीकुन्दवासन्तीशतपत्रीपवित्रिताः ॥
चूतचम्पककिंकिल्लिमल्लिकावकुलाकुलाः ।
तस्य प्रविविशुश्चित्तं विचित्रा वनराजयः ॥[1]

यहाँ विविध वृक्षों और पुष्पों की नामावली गिनायी गयी है।

नलायनकार ने पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का वर्णन करते समय अपने पात्र का चरित्र भी व्यक्त किया है। राजा नल के उद्यान में प्रवेश करते समय प्रकृति उनका स्वागत करती है :—

स्फारपुष्पभरनम्रशेखराः स्पन्दमानमकरन्दविन्दवः ।
त्वां नमन्ति नृप ! धर्मशाखिनं शाखिनः प्रमदवाष्पवर्षिणः ॥[2]

यहाँ प्रकृति अपने उल्लास में नल का स्वागत करती हुई उनके महान् चरित्र को व्यक्त करती है।

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति की योजना में भविष्योन्मुखी संकेतों को अन्तर्निहित कर दिया है। भीमजा के स्वयंवर का वृत्तान्त सुन कर जब कुब्जरूप नल कुण्डिनपुर की ओर चलता है उस समय प्रकृति का सुखद वातावरण उसके मनोरथ को सफल होने का संकेत देता है :—

निःशङ्करंकुषु निरंकुशकौशिकेषु निःकूजपक्षिषु निरन्तरपादपेषु ।
निस्तन्द्रचन्द्रकिघनेषु वनेषु तेषां मिष्टा रथोदरजुषामजनिष्ट गोष्ठी ॥
अद्याप्यस्ति प्रथमरजनी यातमेकं मुहूर्तम्
वर्तन्तेऽमी शिरसि वहलाः सान्द्रचन्द्रातपा भूः ।
शीतो वायुः सुरभिरभितो धेनवः पिंगलानाम्
यातुः श्रेष्ठं तदिति जगदुस्ते मिथः स्यन्दनस्थाः ॥[3]

काव्यकार ने प्रकृति को अलौकिक-रूप में भी चित्रित किया है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति स्वाभाविकता के विरुद्ध व्यवहार करती हुई कथानक की घटना का अंग बन गयी है। महत्वपूर्ण मानवीय घटनाओं के अवसर पर प्रकृति अलौकिक हो गयी है। दमयन्ती का

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध २, सर्ग ३, श्लोक २-४ (२) वही, स्कन्ध १, सर्ग ७, श्लोक १२
(३) वही, स्कन्ध ७, सर्ग २, श्लोक ५०–५१

जन्म होते ही आकाशवाणी होती है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है, गगन में दिव्य दुन्दुभियों का गम्भीर घोष होने लगता है तथा पृथ्वीतल स्वर्ग की तरह सुखद हो जाता है :—

त्रिखण्डभरतैश्वर्यं पत्युः कुर्यादसाविति ।
अश्रूयत च लोकेन व्योम्नि वागशरीरिणी ।।
वायवश्चाद्भुतामोदा ववुर्मन्थरशीतलाः ।
विस्मयं जनयन्तश्च ववृषुः पुष्पवारिदाः ।।
नेदुर्नभसि गम्भीरा दिव्यदुन्दुभयो भृशम् ।
अजनि स्वर्गसंकाशं तत्क्षणं क्षोणिमण्डलम् ।।[1]

'नलायनम्' की प्रकृति कहीं-कहीं मानवहृदयों को उद्दीप्त करती हुई भी हमारे सम्मुख आती है । संयोग में जो प्रकृति दम्पति के हर्ष को बढ़ाती हुई दृष्टिगोचर होती है वियोग में वही वियोगी के दुःख को बढ़ाती हुई दीख पड़ती है । निम्नोद्धृत पंक्तियों में प्रकृति विरही नल के विरह को उद्दीप्त करती हुई दृष्टिगत हो रही है :—

प्रहरन्ति हन्त हृदयं विदर्भजाविरहाकुलं भृशमिमा ममाधुना ।
बत कीरकेकिकलविङ्ककोकिलाकिकिदीधिकोककुलसंकुला भुवः ।।[2]

इसी प्रकार वियोग में चन्दन नल के अंगों में दाह उत्पन्न करता है, चन्द्रिका पीड़ा पहुँचाती है, मृणाल व्याल के समान भयंकर हो जाते हैं और जलार्द्र कस्तूरी और मालती आदि विषम हो जाते हैं :—

इत्थं वर्षात्यये तस्मिन् विभूषयति भूतलम् ।
पुनर्नव इवोत्तस्थे नलस्य विरहानलः ।।
ददाह चन्दनं देहं न ददौ कौमुदी मुदम् ।
मृणालं व्यालतां भेजे कर्पूरः पूरतां ययौ ।।
ज्वलतिस्म जलार्द्राऽपि मालती म्लानिमाददे ।
बभार हारः क्षारत्वं कस्तूरी दुस्तराऽभवत् ।।[3]

'नलायनम्' में प्रकृति का मानवीकरण भी किया गया है । यहाँ प्रकृति मानव-जीवन के साथ आत्मीय साहचर्य का रूप धारण कर लेती है । वह भी पात्रों के सुख-दुःख में सुखी और दुखी दीख पड़ती है । कलावती-कथा के अन्तर्गत जब कलावती का पति कलावती को व्यभिचारिणी समझ कर उसे वन में त्याग देता है तो उसके दुःख को देखने में प्रकृति अपने को असमर्थ पाती है :—

न दृष्टुमिव तद्दुःखं तमः कम्बलमालिते ।
देव्यौ द्यावापृथिव्यौ स्वं सद्यः पिदधतुर्मुखम् ।।[4]

यहाँ द्यावा-पृथिवी कलावती के दुःख से द्रवित होकर अपना मुख ढक लेते हैं ।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग १०, श्लोक १२–१४
(२) वही, स्कन्ध ६, सर्ग ४, श्लोक १४ (३) वही, स्कन्ध १, सर्ग ७, श्लोक ४-६
(४) वही, स्कन्ध ५, सर्ग १५ श्लोक ६

पाँचवें स्कन्ध में वेदना-व्यथित प्रकृति नल-त्याग के अनन्तर दमयन्ती के दयनीय विलाप के अनुकूल ही चित्रित हुई है। यहाँ प्रकृति का समवेदनात्मक रूप इन पंक्तियों में दिखाई देता है :—

तां वल्लरीमिव परश्वधलूनमूलां भूमौ विलोक्य पतितां क्षितिपालपुत्रीम् ।
निष्पन्दमन्दवपुषं वनदेवतानाम् बाढं बभूव हृदयेषु दयावकाशः ॥
तस्थुर्निरन्तरतरुस्थगिता दिगन्ता दूरीचकार किरणप्रकरं पतङ्गः ।
आकर्ण्यते स्म घननिर्झरघोरघोषैरेकाननेन विलपन्निव शैलवर्गः ॥
नान्दोलिता कपिकुलैरपि वृक्षशाखा दुःखेन वेणुभिरपि क्वणितं निरस्तम् ।
मुद्रा मुखे विघटिता न विहङ्गमानामङ्गीकृतं न च तृणं हरिणाङ्गनाभिः ॥[1]

यहाँ नल के विरह में दमयन्ती के मूर्च्छित हो जाने पर वनदेवताओं का हृदय करुणा से पूर्ण हो जाता है, पर्वत निर्झर-घोष के व्याज से रुदन करने लगते हैं, वृक्ष-शाखाओं पर कपिकुल उछलकूद मचाना बन्द कर शान्त होकर बैठ जाता है, दुःख से वेणुओं का क्वणन भी शान्त हो जाता है और हरिणांगनाएँ घास चरना बन्द कर देती हैं।

वास्तव में नलायनकार को मानव जीवन और प्रकृति में आत्मीय तादात्म्य स्थापित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। 'नलायनम्' की श्रेष्ठता का बहुत बड़ा श्रेय प्रकृति और जीवन के इस तादात्म्य को मिलना चाहिए। कवि ने दमयन्ती और नल का चरित्र प्रकृति से एकरस कर दिया है। नल दमयन्ती को छोड़ते समय समस्त प्रकृति को परिचित आत्मीय की भाँति संबोधित करके उसे ही दमयन्ती की रक्षा का भार सौंपते हैं। वे आम्र-वृक्ष को भ्राता, कदम्ब को सखा और प्रियाल द्रुम को वत्स के रूप में संबोधित करके उन्हें दमयन्ती की देखभाल का दायित्व इन शब्दों में सौंपते हैं:—

भ्रातश्चूत ! सखे ! कदम्बविटपिन् ! वत्स प्रियालद्रुम !
त्यक्तास्ते फलपुष्पपल्लवजुषां युष्माकमेषान्तिके ।
तद् दुर्वारवियोगवज्रपतनप्रत्यग्रमूर्च्छागमे
चैतन्यं लभते यथा पुनरियं छाया विधेया तथा ॥[2]

'नलायनम्' में यत्र-तत्र आलंकारिक-रूप में भी प्रकृति के प्रयोग मिलते हैं, किन्तु ऐसे प्रयोग अपेक्षाकृत कम हैं। कवि ने मानव-अंगों के सादृश्य के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा आदि के द्वारा प्राकृतिक उपमानों की योजना की है। जैसे—

आमृष्टकोकनदकोरकसौकुमार्यौ सौन्दर्यनिर्जितरसालतरुप्रवालौ ।
दर्भक्षतौ सुतनु ! शोणितवर्षिणौ ते मार्गे कथं नु चरणौ चलितुं क्षमेते ॥[3]

यहाँ चरणों की कोमलता और सुन्दरता के लिए कोकनदकली तथा आम्रकिसलय उपमानों की योजना की गयी है।

---

(१) **नलायनम्**, स्कन्ध ५, सर्ग १, श्लोक २७-२९ (३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ९, श्लोक ४८
(२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ११, श्लोक २९

इस प्रकार 'नलायनम्' के बृहद् कलेवर में कवि ने विविध प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन द्वारा उसे मनोरम बनाने का प्रयत्न किया है। प्रथम स्कन्ध के सप्तम सर्ग में सरोवर के, द्वितीय स्कन्ध के तृतीय सर्ग में रेवातट के और चतुर्थ स्कन्ध में वसन्त, सन्ध्या, प्रभात तथा दावानल के सुन्दर चित्र विद्यमान हैं। 'नलायनम्' का प्रकृति-वर्णन कवि की सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचायक है।

'नलायनम्' में कवि ने यत्र-तत्र अपने पात्रों के सौन्दर्य-चित्र भी उपस्थित किये हैं। दमयन्ती के सौन्दर्य-चित्रण में उसने नख-शिख-पद्धति का अवलम्बन लेकर दमयन्ती के विभिन्न अवयवों का सौन्दर्यांकन किया है। अंगों के सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने के लिए अधिकतर परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है, फिर भी वे कहीं-कहीं बड़े सटीक और व्यंजक बन पड़े हैं। धवल चीनांशुक से आच्छन्न दमयन्ती के जूड़े में ग्रथित पुष्पराशि के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए शरत्कालीन मेघों में छिपे हुए राहुग्रस्त चन्द्रमा का उपमान प्रस्तुत करना कितना सुन्दर बन पड़ा है:—

सौन्दर्य-चित्रण

अच्छचीनांशुकच्छन्नः केशान्तः कुसुमोत्करः ।
शरदभ्रान्तरग्रस्तो राहुणेव निशाकरः ॥[1]

दमयन्ती के भाल पर स्थित तिलक को बालारुण तथा केशपाश को विभावरी के समान कह कर इन पंक्तियों मे कविसमयसिद्ध उपमानों की योजना की गयी है: —

तदेतत् तिलकं भाले बालारुणसमप्रभम् ।
विभावरीव विक्षिप्ता कबरी यस्य सन्निधौ ॥[2]

नल-सौन्दर्य के वर्णन में कवि ने नखशिखपद्धति का आश्रय नहीं लिया है, अपितु समग्र सौन्दर्य का संश्लिष्ट चित्रण किया है। निर्मल कीर्ति एवं तेजस्विता मनुष्य के स्वाभाविक सौन्दर्य को समृद्ध बनाने में सहायक होती हैं, अतः पुरुष-सौन्दर्य के चित्रण में परम्परा से शारीरिक सौन्दर्य के साथ-साथ व्यक्ति के यश और प्रताप की अभिव्यंजना भी कवियों द्वारा होती रही है। नल-सौन्दर्य-निरूपक दमयन्ती के इस कथन में नल के आकर्षक, महनीय और यशस्वी व्यक्तित्व का चित्रण उपमानों की हेयता दिखा कर किया गया है:—

यश्चण्डांशुः स खलु निखिलस्त्वत्प्रतापस्तदुष्णः
कायच्छाया स तव नियतं तेन कामोऽप्यनङ्गः ॥
तारानाथः स तव यशसां राशिरेतेन शुभ्रः
सत्यं कोऽपि त्वमसि भुवने देवता देवतानाम् ॥[3]

सौन्दर्य-चित्रण में प्राकृतिक उपमानों की योजना करते समय कवि की दृष्टि सादृश्य की ओर सदैव रही है, इस कारण 'नलायम्' के सौन्दर्य-चित्रों में सरलता और हृदयग्राहिता विद्यमान है।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध २, सर्ग ६, श्लोक २ (२) वही, स्कन्ध २, सर्ग ६, श्लोक ३
(३) वही, स्कन्ध २, सर्ग १०, श्लोक २३

नल के परम्परागत कथानक में कवि ने अपने समय की रूढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा रीति-रिवाजों का यत्र-तत्र उल्लेख कर सामाजिक अध्ययन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। कवि के समय में पुरुषों को एक से अधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार दीख पड़ता है। नल के अनेक पत्नियाँ हैं, जिनमें कनकावली और वैदर्भी के तो कवि ने नाम भी दिये हैं। पति की मृत्यु हो जाने अथवा उसके अज्ञात हो जाने पर स्त्रियों को दूसरे विवाह का अधिकार है। नल के न मिलने पर वैदर्भी द्वितीय बार स्वयंवर की घोषणा करती है, किन्तु कुलीन स्त्रियों का पुनर्विवाह समाज में आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। दूसरी बार विवाह करने के लिए भैमी को सन्नद्ध सुन कर जनता उसकी आलोचना करती हुई दीख पड़ती है। राजपुत्रियों के विवाह के लिए स्वयंवर की प्रथा है जिसमें देश-विदेश के राजा आते हैं।

समाज-चित्रण

'नलायनम्' में सन्तान-प्राप्ति के लिए लोग व्यग्र दिखायी देते हैं और इसके लिए देवताओं की पूजा भी करते हैं। राजा भीम अपत्य-प्राप्ति के लिए चक्रेश्वरी की आराधना करते हैं, फलस्वरूप उनके एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न होते हैं। यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र में जनता का अगाध विश्वास दीख पड़ता है। गणधर कनकावली को विद्याधर से बचाने के लिए उसे जांगुली-विद्या से रक्षित कर देते हैं, जिससे विद्याधर कनकावली का स्पर्श भी नहीं कर सकता। विद्याधर क्रुद्ध होकर गणधर को कीलित कर देता है। नल मन्त्र-बल से उत्पन्न सपक्ष अश्वों पर आरूढ़ होकर औषधि लाने जाता है। यद्यपि ये घटनाएँ परम्परागत नल-कथा का अंग हैं, फिर भी इनमें जनधारणाएँ और विश्वास अन्तर्निहित हैं।

कवि के समय में लोगों की धारणा है कि शौचाचार में जरा सी भी कमी रह जाने पर दुष्टग्रह शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। शौचाचार में स्वल्प अनवधानता के कारण कलि नल की देह में प्रविष्ट हो जाता है। शकुन-अपशकुनों में भी जनविश्वास दृढ़ दिखायी देता है। पुरुषों का वामचक्षु और स्त्रियों का दक्षिण चक्षु फड़कना अपशकुन माना जाता है। दमयन्ती अपने दक्षिण चक्षु के स्पन्दन को भावी पति-विरह का सूचक मानती है:—

बारम्बारं स्फुरति यदि वा दक्षिणं चक्षुरेतत्।
तन्मे सम्यग् दयितविरहः सर्वथा हा हताऽस्मि ॥[1]

इसी प्रकार भैमी के वामचक्षु का स्पन्द प्रियमिलन का पूर्वसूचक है:—

दूरायातप्रियपरिचयप्रेरणायेव भैम्याः।
स्पन्दं प्रापच्चकितशफरीचंचलं वामचक्षुः ॥[2]

स्वप्नों को भी भावी का पूर्वसूचक माना जाता है। वन में सोती हुई भैमी जो दुःस्वप्न[3] देखती है वे उसके पतिविरह के सूचक हैं। चतुर्थ सर्ग में केशिनी दमयन्ती की

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ४, सर्ग १०, श्लोक ३२ (२) वही, स्कन्ध २, सर्ग ६, श्लोक ८
(३) तदा काले च सा स्वप्ने विवेद यदहं किल। रसालशालमारूढा सरसं फलशालिनम् ॥

हार-मालाओं को विरल होते तथा सीमन्तपंक्ति को परस्पर मिल जाते देख कर उसके भावी पति-विरह की भविष्यवाणी पहले से ही इन शब्दों मे कर देती है:—

हारस्रजश्च तव यद्विरली भवन्ति, सीमन्तपंक्तिरपि यन्मिलति प्रकामम् ।
तद् मन्यते तव निरन्तरदुःखदायी, वैदर्भि ! कान्तविरहोऽपि भविष्यतीति ॥[1]

राज्य नष्ट होने के अपशकुनों का वर्णन तो कवि ने बहुत विस्तार से किया है । नल के राज्य-त्याग से पूर्व आकाश मे दो सूर्य उदय होते है, रात्रि मे इन्द्रधनुष दीख पड़ता है, ग्रह परस्पर एक-दूसरे से टकराते है, उल्कापात, केतु का उदय, दिन में चन्द्रमा का निकलना और रात्रि में अस्त होना, दिग्दाह, रजोवृष्टि, भूमिप्रकम्प आदि अनेक उत्पात होते हैं । वन्य पशु ग्रामों में और ग्राम्य पशु वनों मे रहने लगते हैं । सिंह, वृक आदि हिंस्र पशुओं का मिश्रित चीत्कार सुनायी देता है । दुर्गा (पक्षी-विशेष) नीड़ बना कर रहने लगती है । स्थलचारी जीव जल में और जलचारी स्थल में रहने लगते हैं । गृद्ध, कक आदि पक्षी आकाश में चक्राकार उड़ान भरते हैं, काक जैसे पक्षी हर्म्य-कक्ष में घुस आते है, कौओं का वर्ण श्वेत हो जाता है और वे सुरतनिरत दीख पड़ते हैं । पशु-पक्षियों में विषय-भोग की लालसा बढ़ जाने से वे अन्य योनि में प्रवृत्त दृष्टिगोचर होते हैं ।[2] इसी तरह के अन्य अपशकुनों का विस्तृत विवरण आगे दिया गया है जो नल के भावी राज्यभ्रंश के परिचायक हैं ।[3]

मुहूर्त में भी जनता का अगाध विश्वास परिलक्षित होता है । सभी कार्य शुभ मुहूर्त में किये जाते हैं । नल दिग्विजय के लिए शुभ मुहूर्त में प्रस्थान करता है और शुभ मुहूर्त में ही परिणय कर अपने नगर को लौटता है ।[4]

'नलायनम्' में कतिपय सामाजिक रीति-रिवाजों का भी उल्लेख हुआ है । स्वयंवर में वर के पाण्डित्य की जानकारी के लिए कन्या द्वारा समस्या रखने तथा वर द्वारा उसका उत्तर देने की प्रथा का उल्लेख कलावती-कथा के अन्तर्गत किया गया है । अपने स्वयंवर में कलावती प्रतिहारी द्वारा उद्घोषणा कराती है कि वह उसी व्यक्ति के साथ विवाह करेगी जो उसकी समस्याओं का उत्तर दे सके । वे समस्यायें इस प्रकार हैं:—

अत्रान्तरे समागत्य निषण्णस्तस्य मूर्धनि । कपोतपतगः पापी शुष्कश्च स महातरुः ॥
अहं शिथिलसर्वांगी तस्माच्च पतिता तरोः । इति स्वप्नं समासाद्य सद्यो निद्रां मुमोच सा ।
दुःस्वप्नमिति विज्ञाय तत्प्रतीकारकांक्षया । दृष्टुं प्रियमुखाम्भोजं व्यापारितवती दृशौ ॥
—वही, स्कन्ध ५, सर्ग १, श्लोक २-५

(१) नलायनम्, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक ६५
(२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक ६५-६७
(३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक ७२-७३
(४) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक १०८-१०९

छिद्यमानेऽपि शस्त्रेण द्वेधा भवति न द्रुमः । किमत्र कारणं वाच्यं स्फुटीकुरुत पार्थिवाः ।।
अनाक्षिप्तोऽपि पद्मिन्या निश्वासः विसृजत्यलिः । किमत्र कारणं वाच्यं स्फुटीकुरुत पार्थिवाः ।।
दिवाऽपि चक्रवाकानां मिथुनैर्यद् विभज्यते । किमत्र कारणं वाच्यं स्फुटीकुरुत पार्थिवाः ।।
सलिलेनापि नापैति कुंकुमं यद्वधूमुखात् । किमत्र कारणं वाच्यं स्फुटीकुरुत पार्थिवाः ।।[1]

शंख इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देता है:—

स हि च्छायामयो वृक्षो, निश्वासो विरहोष्मवान् ।
मुखं दर्पणस्थं च राहुग्रस्तश्च भास्करः ।।[2]

फलस्वरूप कलावती का विवाह शंख से हो जाता है ।

नल-दमयन्ती-विवाह-वर्णन में विवाह-सम्बन्धी कतिपय लोकाचारों का वर्णन भी 'नलायनम्' में हुआ है । विवाह-मण्डप स्वजनों से भर जाता है । स्त्रियों की उलू-ध्वनि से वातावरण मुखरित हो उठता है । इसी समय वेणु, वीणा आदि वाद्य बजने लगते हैं जिनके नाद से आकाश गूँजने लगता है । स्त्रियाँ गवाक्षों पर आरूढ़ हो जाती हैं और वर-वधू पर लाजा-वृष्टि करती हैं । इस अवसर पर वर के प्रतोली पार करके गृह के भीतर जाने और वहाँ मधुपर्क का तीन बार आचमन करके श्वसुरदत्त वस्त्राभूषणों को ग्रहण करने का उल्लेख इन पंक्तियों में हुआ है:—

मधुपर्क त्रिराचम्य श्वसुरेणोपकल्पितम् ।
प्रतिजग्राह तत्रार्थं दुकूलाभरणानि च ।।[3]

यहाँ पुरोहित वरवधू के हाथ में कुश देता है । वर उसके आदेश से वधू के कर को अपने कर में लेता है । यहीं तारामेलन होता है जिससे वर-वधू के मुख पर अरुणिमा छा जाती है। इसी समय वे अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करते हैं, स्त्रियाँ उनके ऊपर लाजा-वृष्टि करती हैं । कन्यापक्ष की ओर से वर को दहेज भी दिया जाता है । दहेज की सामग्री में भीम नल को गज, अश्व, शस्त्रास्त्र तथा धन के साथ हजारों वारांगनाएँ भी देते हैं:—

अयुतमिभपतीनामर्बुदं बाडवानां प्रयुतमनुपमानां चारुवाराङ्गनानाम् ।
अगणितमपि कुप्याकुप्यशस्त्रासनादि व्यतरदथ स भीमः पाणिमुक्तो नलाय ।।[4]

दमयन्ती की विदा के समय भीम अपनी पुत्री को कुलवधुओं के कर्तव्य की शिक्षा देता है ।[5] इन शिक्षाओं में गृहपति से निष्कपट व्यवहार करना, सास-श्वसुर आदि गुरुजनों में भक्ति रखना, परिजनों से स्नेह करना, सपत्नियों से मृदुता का व्यवहार करना, पति के शत्रु को शत्रु समझना, पैरों की ओर दृष्टि रख कर पति से बात करना, पति के गृह में आते ही उसे आसन पर बिठाना, रात्रि में पति के सोने के पूर्व कभी न सोना और उसके जागने से पूर्व जाग जाना—ये कुलवधुओं के सिद्धान्त-धर्म बताये गये हैं ।[6] समाज कुलवधू

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ५ सर्ग १४, श्लोक ५-८ (२) वही, स्कन्ध ५, सर्ग १४, श्लोक १०
(३) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ६, श्लोक २२ (४) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ६, श्लोक २७
(५) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ६, श्लोक ३४-३६ (६) वही, स्कन्ध ४, सर्ग १, श्लोक ७, ८, १०

में इन्हीं गुणों की अपेक्षा करता है। इस प्रकार 'नलायनम्' में तत्कालीन समाज में प्रचलित आचार-विचार, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और रूढ़ियों पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है जिससे उस युग की सामाजिक प्रवृत्तियों की यत्किंचित् झलक उभर कर पाठकों के सम्मुख स्पष्ट हो जाती है।

धार्मिक एवं दार्शनिक तत्त्व

'नलायनम्' यद्यपि पौराणिक काव्य है, फिर भी उसमें अन्य अनेक पौराणिक काव्यों की तरह जैन धर्म के नियमों और सिद्धान्तों का बाहुल्य नहीं है। कुछ स्थलों पर ही धार्मिक उपदेशों की योजना की गयी है। चतुर्थ स्कन्ध में कतिपय व्यक्ति चार्वाक मत का प्रतिपादन करते हुए दिखायी देते हैं। वे परलोक की सत्ता को, आवागमन के सिद्धान्त को अस्वीकार करके पाप-पुण्य को केवल मन का विभ्रम बताते हैं और 'खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ' का उपदेश इन शब्दों में देते हैं:—

रे रे त्यजत दुर्बोधं कुरुध्वं कामशासनम्।
अनित्यस्य शरीरस्य फलं नयत बालिशाः॥
नास्त्येव पुनरावृत्तिः प्राणिनां मृत्युतः परम्।
पयोनिधौ निमग्नानां ग्राव्णामुन्मज्जनं कुतः॥
इह पापं च पुण्यं च मनसो विभ्रमावुभौ।
शंका विषसमा नित्यं नहि धीरं विलुम्पति॥

इस मत का खण्डन करके नैगमेषी जैन-दर्शन की प्रतिष्ठा करता है। उसका कथन है कि इस संसार में कुछ व्यक्ति सम्राट बनते हैं और कुछ दास, इसका कारण भवान्तर के पुण्य-पाप-रूप कर्म ही हैं। संसार में सुख-दुःख की जो व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है उससे पुण्य-पाप का प्रपंच पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है:—

प्रत्यक्ष एव विश्वेऽस्मिन् प्रपंचः पापपुण्ययोः।
यद् विभिन्नं जगत् सर्वं सुखदुःखव्यवस्थया॥
एके कुर्वन्ति साम्राज्यं परे दधति दासताम्।
स भवान्तरबद्धानां विपाकः कर्मणामिह॥[2]

आगे नैगमेषी जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा को गतिशील और सर्वव्यापी स्वीकार करके उसकी सत्ता को इन शब्दों में प्रतिष्ठित करता है:—

न दृश्यते हि भगवान् आत्मा सर्वत्र संक्रमन्।
संचरन् पुष्पजातिभ्यो गन्धः पात्रान्तरेष्वपि॥[3]

चतुर्थ स्कन्ध में द्यूतव्यसनी नल को सुमार्ग पर लाने के लिए दमयन्ती द्यूतक्रीड़ा की बुराइयों को इन शब्दों में प्रकट करती है:—

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ४, सर्ग १, श्लोक २-४ (२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग १ श्लोक १६-१७
(३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग १, श्लोक १८

पण्याङ्गनेव निर्व्रीडा द्यूतक्रीडा धनापहा ।
न नग्नङ्करणी कस्य परिणामे नरेश्वर ॥[1]

दमयन्ती की दृष्टि में तो विषभक्षण करके, पर्वत से गिर कर अथवा अग्नि में प्रवेश करके मर जाना अच्छा है, किन्तु द्यूतक्रीड़ा करना उचित नहीं है ।[2]

पंचम स्कन्ध में दमयन्ती परस्त्रीगमन को सम्पूर्ण पापों का मूल कारण बताती हुई कामातुर किरात से कहती है:—

निःशूका कामगृद्धा ये परदारानुरागिणः ।
उच्छिष्टान्नभुजोऽरिष्टाः क्व तेभ्यो हीनवृत्तयः ॥
किमत्र सुकृतैः सर्वैः कृतं चेत् पारदारिकम् ।
अपि निःशेषपापानां मूलमब्रह्मकेवलम् ॥[3]

यहाँ जैन-धर्म के एक प्रमुख नियम 'अब्रह्मविरति' का सम्यक् निरूपण हुआ है ।

दशम स्कन्ध में सुदामा मुनि अपनी देशना में धर्म की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं :—

धर्मादग्निर्ज्वलति जलदो वर्तते वाति वातः
चन्द्रादित्यौ भृशमुदयतः सागरः पाति सीमाम् ।
त्राता दाता शरणमचलो धर्म एकः किमन्यत्
निर्धर्माणां नरककुहरक्रोडवासः सदैव ॥[4]

इस प्रकार 'नलायनम्' में धार्मिक नियमों का क्रमिक विवेचन न होने पर भी उसमें यत्र-तत्र जैन-धर्म-सम्बन्धी तत्त्व वर्तमान हैं, किन्तु ये अंश इतने कम और साथ-ही इतने संक्षिप्त हैं कि उनके कारण कथानक में कोई शिथिलता नहीं आने पायी है ।

रस-परिपाक

'नलायनम्' में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, शान्त आदि सभी रसों की सुन्दर योजना यथास्थान हुई है, किन्तु शान्त रस की प्रधानता होने के कारण अन्य सभी रस उसके अंग बन कर आए हैं । शान्त रस का वर्णन माणिक्यसूरि ने बहुत स्वाभाविक ढंग से किया है । दशम स्कन्ध में नल के तीव्र तपस्या करने पर इन्द्र को अपने राज्यहरण की आशंका हो जाती है । अतः उसकी प्रेरणा पर रम्भा वैदर्भी का रूप धारण करके नल की तपस्या में विघ्न डालने चल देती है । इन्द्र की माया से एक राक्षस उसे (छद्मवेशी वैदर्भी को) पकड़ लेता है, फलस्वरूप वह नल को सम्बोधित करके विलाप करती है । वैदर्भी-रूप-धारिणी रम्भा का विलाप सुन कर नल राक्षस को युद्ध में परास्त करके छद्मवैदर्भी का आलिंगन करता है । अपने उद्देश्य में सफल होकर छद्मवैदर्भी अपना यथार्थ रूप धारण कर भाग जाती है ।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ४, सर्ग ५, श्लोक ५१ (२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ५, श्लोक ५२
[illegible] ५, सर्ग ५, श्लोक १८ (४) वही, स्कन्ध १, सर्ग २, श्लोक ६

वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर नल का हृदय आत्मगर्हणा से भर उठता है। इस अवसर पर उसके इन कथनों में शान्त रस का परिपाक अच्छा हुआ है :—

अहो मम विमूढस्य विषयान्धस्य दुर्धियः।
यदेव कृत्यमात्मीयं तदेव किल विस्मृतम् ॥
अनादिभवसंस्कारः कारणं तत्र मन्यते।
भूयो भूयोऽनुभूतेषु विषयेष्वेव यद् भ्रमः ॥
अहो मोहबलं याता निर्वृत्तिर्यत् प्रवृत्तितः।
अनित्यं जीवितं मत्वा यज्जनाः विषयार्थिनः ॥
कष्टं वैदग्ध्यमप्यत्र मत्तानां मोहवृत्तये।
न तथा पशवो दक्षा मनुष्याः मैथुने यथा ॥[1]

यहाँ नल के हृदयगत विषयपरायणताजन्य निर्वेद की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

द्वितीय स्कन्ध में देवताओं का दौत्य कर्म करता हुआ नल भैमी के विलाप को सुन कर आत्मविस्मृत हो जाता है और 'विरम विरम कान्ते न प्रिये रोदितव्यम्' कह कर अपने को प्रकट कर देता है। नल को अपने सम्मुख पाकर दमयन्ती में सात्त्विक भावों का उदय होता है। इस अवसर पर निम्नोद्धृत पंक्तियों में संयोग शृंगार की व्यंजना अच्छी बन पड़ी है :—

निरुपमरमणीयं व्यक्तसौभाग्यभाजः
सपदि निषधभर्तुः सन्निधौ सा निषण्णा।
किमपि हि वलितुं वा वीक्षितुं जल्पितुं वा
श्वसितुमपि न सेहे ह्रीलतापाशबद्धा ॥[2]

यहाँ दमयन्ती की नल-विषयक रति स्थायी भाव है जिसका आलम्बन विभाव नल तथा उद्दीपन विभाव उसका प्रकट होना एवं उसका अनुपम सौन्दर्य है। दमयन्ती का स्तब्ध होना, कुछ भी देखने, बोलने और श्वास लेने में भी असमर्थ होना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, लज्जा तथा जड़ता संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट होकर दमयन्ती की हृदयगत रति संयोग शृंगार में परिणत हुई है।

'नलायनम्' में विप्रलम्भ शृंगार के भी अनेक सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होते है। दमयन्ती के विरह में विलाप करते हुए नल के इस वर्णन में विप्रलम्भ शृंगार की सुन्दर योजना हुई है :—

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य तिर्यग्वलितलोचनः।
जगाद मदनोन्मादसावितोचितपरिक्रमम् ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमर्थये।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १०, सर्ग १, श्लोक २२-२५
(२) वही, स्कन्ध २, सर्ग १५, श्लोक ३०

न मुंचति हि मां लज्जा प्रतिष्ठाभङ्गलक्षणम् ॥
अहो भ्रमति भूचक्रं पतति व्योममण्डलम् ।
विलीयते दिशः सर्वाः गात्रं प्रज्वलतीव मे ॥
हन्त ! हा तात ! हा मातर्युवयोर्नानृणोऽस्म्यहम् ।
इति जल्पन् समुद्भ्रान्तकण्ठमीलद्विलोचनम् ।
जगाम जगतीपीठे पुण्यश्लोकः प्रजापतिः ॥[1]

यहाँ दमयन्ती-विषयक नल की रति स्थायी भाव है। दमयन्ती आलम्बन और हंस-कृत दमयन्ती का रूप-गुण-वर्णन उद्दीपन विभाव है। नल का दीर्घ निश्वास लेना, विलाप करना, समस्त भूचक्र को घूमते हुए तथा आकाश को गिरते हुए देखना, गात्र का प्रज्वलित होना, मूर्च्छित होना आदि अनुभाव हैं। उद्वेग, विषाद आदि संचारी भाव हैं। पंचम स्कन्ध में शकुन्तला के विरह में व्यथित दुष्यन्त के चित्रण में भी विप्रलम्भ शृंगार की भव्य छटा दीख पड़ती है।[2]

'नलायनम्' में करुण रस की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक हुई है। कहीं-कहीं तो कवि की करुणा भवभूति के निकट तक पहुँच जाती है। चतुर्थ स्कन्ध में दक्षिण चक्षु के स्पन्दन से पति-विरह की आशंका से भयभीत होकर दमयन्ती नल को अपने अंचल में छिपा लेती है। भैमी के सो जाने पर, उसे त्याग कर जाने की इच्छा से नल उसके अंचल-वस्त्र को फाड़ने का उपक्रम करता है। इस अवसर पर उसका हृदय दारुण हाहाकार कर उठता है जो उसके इन शब्दों में व्यक्त हुआ है :—

या दुर्गभङ्गविषये परपार्थिवानां पूर्वं बभूव ननु भूवलयप्रसिद्धा ।
छेत्तुं प्रियानिवसनं तु पलायनार्थमद्यापि सैव महती मम हस्तवत्ता ॥
तुभ्यं हे नलहस्त ! दक्षिण ! सखे ! स्वस्त्यस्तु धैर्यं भज
त्वं मे सम्प्रति बान्धवस्तदिह मे याञ्चां प्रमाणीकुरु ।
द्यूतावेशविसंस्थुलीकृतमहासाम्राज्यलक्ष्मीक ते
केयं भीमसुतानितम्बवसनच्छेदेऽपि लज्जालुता ॥
पापातङ्कज्वरविधुरिता वेपथुः स्रस्तशस्त्रा
प्रौढप्रेमोपचयजडिता गाढलज्जाविजिह्मा ।
कष्टं कान्तानिवसनमिदं छिन्दतः सर्वथाऽमी
बारं बारं कथमपि न मे हस्तघाताः पतन्ति ॥[3]

यहाँ भैमीपरित्यागजन्य नल के हृदयस्थ शोक की परिणति करुण रस में हुई है। इसी प्रसंग में आगे भी करुण रस की धारा प्रवाहित हुई है।[4]

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग ११, श्लोक ९-१२
(२ वही, स्कन्ध ५, सर्ग ११, श्लोक १७-१९
(३ वही, स्कन्ध ४, सर्ग १२, श्लोक २०-२७
(४) वही, स्कन्ध ४, सर्ग १२, श्लोक २, ५-८

शकुन्तला आख्यान में इन्द्र का सारथि मातलि अदृश्य होकर दुष्यन्त के विदूषक को कष्ट पहुँचाता है। विदूषक की आर्तध्वनि सुन कर दुष्यन्त का क्रोध भड़क उठता है। इस प्रसंग में उनकी इन उक्तियों में रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है।

क्रीडापात्रं ब्राह्मणं मे विनिघ्नन् मामुद्यम्य व्याहरत्येष धूर्तः ।
यत्तस्यैव व्योमभागं धुनानः क्ष्वेडानादः श्रूयतेऽसौ तथाहि ॥
रे रे रक्षस्तिष्ठ तिष्ठ क्व यासि छद्मच्छन्नस्त्वं न मे गोचरोऽसि ।
किन्तु द्वेषिस्कन्धरक्तारुणानां प्रत्यक्षस्त्वं पत्रिणां मामकानाम् ॥
सभ्रूभङ्गं स ब्रुवाणस्तदित्थं चक्रे चापं सज्जगुंजद्गुणं च ।[1]

यहाँ अदृश्य मातलि आलम्बन विभाव है, विदूषक की शोचनीय अवस्था तथा उसका आर्त स्वर उद्दीपन विभाव है। भ्रूभङ्ग करना, धनुष-बाण उठाना आदि अनुभाव हैं। गर्व, अमर्ष, आवेग आदि संचारी भाव हैं। दुष्यन्त के हृदय का क्रोध स्थायी भाव है जो विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रौद्र रस में परिणत होता है।

दशम स्कन्ध में छद्मवैदर्भी का अपहर्ता चित्ररथ राक्षस तथा नल के मध्य हुए युद्ध के इस वर्णन में वीर रस की योजना हुई है :—

उत्पाट्य निकटस्थं द्राक् द्रुमं स नरकुंजरः ।
बभाषे भीमदोःस्तम्भस्वाभिमानमिदं वचः ॥
मा भीः भीमोद्भवे ! मा भीः ! रे रे तिष्ठ निशाचर ।
दुरात्मन् मामनिर्जित्य चौरवत् किं पलायसे ।
इति राजर्षिणा क्षिप्तः स मायामयराक्षसः ।
विहाय छद्मवैदर्भीं युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥
द्वयोः प्रवर्तते युद्धं प्रकम्पितधराधरम् ।
क्ष्वेडानादभुजास्फोटबधिरीकृतदिङ्मुखम् ॥
परस्परप्रहाराणां तौ प्रशंसापरौ मिथः ।
युयुधाते चिरं योधावुत्तरोत्तरविक्रमम् ॥[2]

यहाँ नल के हृदयगत उत्साह का आलम्बन चित्ररथ राक्षस और चित्ररथ राक्षस के उत्साह का आलम्बन नल है। भैमी का अपहरण नल के उत्साह का उद्दीपक और नल का युद्ध के लिए ललकारना चित्ररथ के उत्साह का उद्दीपक है। नल का निकटस्थ द्रुम उखाड़ कर राक्षस की ओर दौड़ना, भीमजा को आश्वासन देना, चित्ररथ को ललकारना, चित्ररथ का भैमी को छोड़ कर नल की ओर आना, एक-दूसरे पर प्रहार करना, भुजास्फालन करना आदि अनुभाव हैं। गर्व, अमर्ष, आवेग आदि संचारी भाव है।

कलावती-कथानक के अन्तर्गत कलावती को दुश्चरित्र समझ कर उसका पति उसे

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ५, सर्ग ११, श्लोक २५, २७–२८

(२) वही, स्कन्ध १०, सर्ग ३, श्लोक २५–३०

वन में छोड़ देता है। कलावती के विलाप करने पर वहाँ मातंगीद्वय आती हैं जिनकी भयं-
कर आकृति को देख कर कलावती काँपने लगती है। इस प्रसंग में भयानक रस का सजीव
चित्र इन पंक्तियों में उपस्थित किया गया है :—

चाण्डालीद्वयमागत्य विलपन्तीमतर्जयत् ॥
आः पापे किं वृथारावैः कर्णौ बधिरयिष्यसि ।
तिष्ठ तिष्ठ न जानासि स्वकर्म स्मर बन्धुकि ॥
इति निर्भर्त्सयन्त्यौ तौ दृष्ट्वा नर्तितकर्तिके ।
सद्यः कण्ठगतप्राणा मूर्च्छां प्राप कलावती ॥
तदा दशार्णराजस्य दुहितुः कम्पसम्प्लवात् ।
ससाध्वसरसावेशः शिथिलीकृतवान् वपुः ॥[1]

यहाँ कलावती का हृदयस्थ भय स्थायी भाव है। भयंकराकृति मातंगीद्वय आलम्बन
विभाव हैं। मातंगियों का भर्त्सना करना तथा क्षुरिका दिखाना एवं वन का भयंकर वाता-
वरण उद्दीपन विभाव हैं। प्राणों का कण्ठ में आना, काँपना, शरीर का शिथिल होना तथा
मूर्च्छित होना अनुभाव हैं। उद्वेग, शंका, त्रास आदि संचारी भाव हैं।

शकुन्तलाख्यान में शकुन्तला को मेनका द्वारा आकाश में उड़ा लिये जाने पर
राजपुरोहित इसकी सूचना राजा को देता है। दुष्यन्त तथा अन्य व्यक्ति इस अलौकिक
घटना से आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इस अवसर पर अद्भुत रस का चित्रण इन पंक्तियों
में हुआ है :—

चित्रं चित्रमहो गृहे मम गता सा मुक्तकण्ठं शुचा ।
निन्दन्ती निजकर्मबाष्पसलिलं बालाशु तत्याज च ॥
स्त्रीसंस्थानमुपेत्य तां च निरयज्ज्योतिर्जवाद् यात्यदः ।
प्रेक्ष्यन्ते महसोल्वणा दशदिशस्तेनाखिलाः पश्यत ॥
माया किन्नु किमिन्द्रजालमथवा चित्तभ्रमोऽभूद् ध्रुवम् ।
सा बाला नहि निर्निमित्तमथवा प्राप्तेति चित्ते स्मरन् ।
तेनाश्चर्यरसेन शान्तकरुणाश्रृङ्गारगर्भात्मना ।
किंचित्कालमनन्यकौतुकरसो राजाऽपि तस्थौ भृशम् ॥[2]

'नलायनम्' में हास्य रस को भी यत्र-तत्र स्थान प्राप्त हुआ है। प्रथम स्कन्ध में
हंस को पकड़ने के लिए दमयन्ती आगे बढ़ती है, किन्तु हंस पकड़ में नहीं आता। इस अव-
सर पर सखियाँ ताली बजाकर हँसती हैं और कहती हैं, अरे, इस पक्षीमात्र को भी तुम वश
में नहीं कर सकीं। इस प्रसंग में हास्य रस की अवतारणा अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है :—

पतत्त्रिमात्रमप्येनं स्ववशं कर्तुमक्षमा ।
सहस्ततालमालीभिः सा तत्कालमहस्यत ॥

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ५, सर्ग १५, श्लोक ३४–३५, ३७–३८
(२) वही, स्कन्ध ५, सर्ग १०, श्लोक ५३–५४

किमेषा करतालीभिर्दूरमुत्त्रास्यते खगः ।
मह्यं द्रुह्यति सा नूनं याऽत्र मामनुगच्छति ।।
इति प्रदत्तशापाऽपि हस्यमाना सखीजनैः ।
बाला धृतावहेलं सा च्छायेव खगमन्वगात् ।।[१]

इस प्रकार मार्मिक स्थलों की दृष्टि से 'नलायनम्' एक उत्कृष्ट काव्य है। उसमें विविध रसों का चित्रण अनेक प्रसंगों में हुआ है। विविध रसों के परिपाक में नलायनकार को बहुत सफलता मिली है।

'नलायनम्' की भाषा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर उसमें सरल भाषा का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर उसमें प्रौढ़ एवं पाण्डित्यपूर्ण भाषा वर्तमान है। इस भाषा में सर्वत्र

भाषा

प्रांजलता और परिष्कृति है। 'नलायनम्' में कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। भाषा जैसे उसके संकेत पर नाचती है। जहाँ कवि ने पुराण-शैली का अनुसरण करके अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है वहाँ 'नलायनम्' की भाषा अत्यन्त सरल और प्रसाद गुण से युक्त है। यथा :—

अनेनैव हि तीर्थेन प्रविश्य नलकर्णयोः ।
तदन्तर्यदि तिष्ठामि किं न सिद्धं तदा मम ।।
भवत्वेवं ततस्तावद् वदामीति विचिन्त्य सा ।
जगाद सादर बाला विशालाक्षी शुचिस्मिता ।।
आर्यराज ! सभायोग्य ! सौम्य ! सर्वाङ्गसुन्दर !
राजीविनीवनोत्तंस ! राजहंस ! चिर जय ।।[२]

अन्यत्र भी भाषा में सरलता विद्यमान है, जिससे अर्थबोध में क्लिष्टता नहीं होती है। एक उदाहरण लीजिए :—

पुष्पे पुष्पं फलमपि फले पल्लवे पल्लवं यत्
यच्चात्यन्तं फलसुमनसां कापि चित्रा समृद्धिः ।
कन्दोद्भेदा यदपि विपिने हस्तपादावितुल्यः
सस्यानां वा परिणमति यद् मांसरूपेण पाकः ।।[३]

'नलायनम्' में समासान्त पदावली का प्रयोग कम है। कहीं-कहीं ही उसके दर्शन होते हैं। यथा :—

क्षितिखचितविसर्पद्वज्रवैडूर्यरत्नप्रकरकिरणदूर्वाद्भुविभाव्यस्थलीके ।
दिशि दिशि दमयन्त्यास्तत्र पश्यन् वयस्यास्त्रिदशमपि स मेने नामसौभाग्यसारम् ।।[४]

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग १२, श्लोक ५-७
(२) वही, स्कन्ध १, सर्ग १२, श्लोक ३६–३९ (३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक ६९
(४) वही, स्कन्ध १, सर्ग ११, श्लोक २५

समासबहुला पदावली में भी कवि ने यथासंभव क्लिष्टता नहीं आने दी है। फल-स्वरूप ऐसे स्थलों पर भी प्रसादगुण और वैदर्भी रीति की प्रधानता है।

'नलायनम्' की भाषा का एक अन्य प्रधान गुण उसकी अलंकृति है। उसमें अनुप्रास और यमक का प्रयोग पद-पद पर मिलता है। किन्तु, ये अलंकार भाषा पर भार बन कर बहुत-कम स्थलों पर आये हैं। अधिकतर उनकी योजना स्वाभाविक हुई है। इन अलंकारों ने भाषा-सौन्दर्य में वृद्धि की है। श्रुति-सुखद अनुप्रास और यमक के प्रयोग ने 'नलायनम्' की भाषा को प्रवाहयुक्त, गतिमय, चंचल और ललित बना दिया है। इस प्रकार की भाषा के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

कलाकेलिकल्लोलिनीलब्धपारः कुले वीरसेनस्य धर्मावतारः।
जयश्रीवधूकण्ठशृङ्गारहारः सदा नैषध ! त्वं सदाचारसारः॥
अहो नैषधस्य क्षितीशस्य गीतं क्षणं यैरभिव्यक्तवर्णं निपीतम्।
स्मरन्ति ध्रुवं तेन दत्तं गृहीतं न जानन्ति के केचिदुष्णं न शीतम्॥
अपारिजातस्य सपारिजातं निरंजनस्यापि घनांजनौघम्।
तथापि राजन् ! न तवापि हर्षं वनं विधत्ताभवनप्रियस्य॥[1]

'नलायनम्' में यत्र-तत्र मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है जिनसे भाषा की व्यावहारिकता में निश्चय ही वृद्धि हुई है। कतिपय मुहावरे देखिए :—

अहो दित्सति दुष्टोऽयमेकहस्तेन तालिकाम्।[2]
अस्तु निर्मक्षिकमिति प्रत्युच्चरति भूपतौ।[3]
वालुकाभ्योऽपि तैलं स्यात् क्वचिद् बह्निर्जलादपि।
राजन् जानीहि न क्वाऽपि त्वमक्षेभ्यो धनं पुनः।[4]
दत्वा भट्टस्य कौपीनं नग्नत्वं नूनमात्मनः।[5]

इस प्रकार 'नलायनम्' की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुगठित है। उसमें भावों को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता दीख पड़ती है।

शब्दक्रीडा और पाण्डित्य-प्रदर्शन

'नलायनम्' में कतिपय स्थलों पर कवि स्वाभाविकता को तिलांजलि देकर शब्दों से क्रीड़ा करने लगा है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना से इन स्थलों की भाषा का सहज स्वारस्य नष्ट हो गया है और उसमें कृत्रिमता एवं प्रयत्नसाध्यता उभर आयी है। कहीं-कहीं तो केवल दो अक्षरों से ही सम्पूर्ण श्लोक का निर्माण किया गया है :—

लोलानिलेनाननुनूननुन्ना नानालिलीलोल्ललनं लुलाना।

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ३, सर्ग १, श्लोक ६, ११, २५
(२) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ३, श्लोक ४
(३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक ५१
(४) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ९, श्लोक ४४
(५) वही, स्कन्ध ४, सर्ग १२, श्लोक ४०

नूनेन नूनं नलिनाननेन नलेन लीना ललने ! ललालम् ॥[1]

यहाँ ल और न इन दो अक्षरों का ही प्रयोग हुआ है। निम्नोद्धृत श्लोक में सभी वर्ण लघु हैं और एक स्वर के हैं :—

अमलतम ! सरल ! नवकमलदलसमचरण ! समरभरतरलतर ! सकलभटमदहरण ।
घनसजलजलदरव ! मदनरसमयकरण ! भरतनरवरतनय ! जय सभयजनशरण ॥[2]

शब्दक्रीड़ा की यह प्रवृत्ति 'नलायनम्' में विविध रूपों में पायी जाती है। इस पद्य के चारों चरणों की पदावली पूर्णतया समान है, किन्तु अर्थ अलग-अलग हैः —

न कासरो लम्बतरङ्गतारम्, न कासरोलम्बतरङ्गतारम् ।
न कासरो लम्वतरङ्गतारम्, न कासरो लम्बतरङ्गतारम् ॥[3]

इसी प्रकार निम्न श्लोक के द्वितीय और चतुर्थ चरणों की पदावली समान है :—

राजेन्द्र ! राजति भवद्वनराजिरेषा प्रौढालिरंजनसमानतमालकान्ता ।
यद्वा महीपतिसुता कतमाऽपि भाति प्रौढालिरंजनसमान तमालकान्ता ॥[4]

यमक की ऐसी योजना में भी पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना व्यक्त हुई है :—

किमधुना मधुनाम्नि मनोरमे रसमये समये समुदीर्यते ।
उपवने पवने हृतपल्लवे नवनवा वनवासजुषां रतिः ॥[5]

भाषा पर अपना अधिकार प्रदर्शित करने की धुन में 'नलायनम्' में एक चित्रालंकार 'पट्टबन्ध' का प्रयोग भी कवि ने एक स्थल पर किया है जो इस प्रकार है:—

सहसारिकृतत्रासः सत्रातः त्वं कलारसः ।
सरलांशयताभास सभातारोरुसाहसः ॥[6]

इस प्रकार 'नलायनम्' में यत्र-तत्र कवि ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए क्लिष्ट, कृत्रिम और श्लेषयुक्त पदावली का प्रयोग किया है। इन स्थलों पर कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार मस्तिष्क को चमत्कृत तो करता है, किन्तु यहाँ भाषा में ऐसी शुष्कता और गरिष्ठता आ गयी है कि वह काव्य का सहज आनन्द उपलब्ध कराने में असमर्थ हो गयी है।

'नलायनम्' में शब्दालंकार और अर्थालंकर दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में यमक, अनुप्रास और वीप्सा का प्रयोग बहुत पाया जाता है।

अलंकार-योजना

यमक और अनुप्रास के उदाहरण पहले दिये जा चुके है। 'नलायनम्' में वीप्सा का प्रयोग कई स्थलों पर स्वाभाविक बन पड़ा है। दमयन्ती-गृह में कुब्ज के नल-रूप में प्रकट हो जाने पर परिजनों मे प्रसन्नता की

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग १४, श्लोक ४६ (२) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ११, श्लोक १३
(३) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ४, श्लोक ३३ (४) वही, स्कन्ध १, सर्ग ७, श्लोक ३२
(५) वही स्कन्ध ४, सर्ग ४, श्लोक ३० (६) वही, स्कन्ध १, सर्ग २, श्लोक ३८

लहर दौड़ जाती है। यहाँ आनन्द और हर्ष की अभिव्यक्ति वीप्सा अलंकार के द्वारा क।
गयी है :—

राजा राजा स खलु विजयी नैषधो नैषधोऽयम्
दिष्ट्या दिष्ट्या बत जितमहो मङ्गलं मङ्गलं नः।
इत्यानन्दव्यतिकरजुषां लोककोलाहलेन
व्याप्तं सद्यः सकलमभवद् व्याकुलं राजवेश्म ॥[1]

अर्थालंकारों के प्रयोग में कवि ने स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है, फलस्वरूप ये अलंकार भावोद्रेक में सर्वत्र सहायक हुए हैं। 'नलायनम्' में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। पंचम स्कन्ध में दमयन्ती के अजगर द्वारा ग्रसित होने पर दमयन्ती के लिए व्यंजक उपमाएँ प्रदान की गयी हैं :—

चान्द्रीमिव कलां राहुस्तिमिंगिल इवाब्जिनीम्।
तदा त्वजगरः सुप्तां शीघ्रं जग्राह भीमजाम् ॥
बभौ तन्मुखमध्यस्था वैदर्भी विह्वला भृशम्।
सन्दंशेनैव पांचाली कांचनी वह्नितो हृता ॥[2]

तृतीय स्कन्ध में नल के रथारूढ़ होकर विवाह-मण्डप में जाते समय नगर की स्त्रियाँ ससंभ्रम गवाक्षों के समीप आकर नल को देखने लगती हैं। इस समय का दृश्य अंकित करने के लिए कवि ने इन पद्यों में उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग किया है :—

तासां दृङ्मुखदन्तोष्ठैर्गवाक्षास्तत्क्षणं बभुः।
अम्भोजशशिमाणिक्य प्रवालखचिता इव ॥
सौभाग्यशशिमुत्तुङ्गं मूर्तिमन्तमिवोत्थितम्।
तं विलोक्य तदा लोकाः ममज्जुः प्रेमवारिधौ ॥[3]

निम्नलिखित पंक्तियों में नल में सागर का आरोप किये जाने से रूपक का सफल निर्वाह दीख पड़ता है :—

अत्यगाधोऽप्यपारोऽपि कलशोद्भवमूर्तिना।
जग्रसे कलिना शीघ्रं लीलया नलसागरः ॥[4]

देवताओं की मैत्री-दौत्य-सम्बन्धी प्रार्थना को सुन कर नल चिन्तित हो जाता है। उसकी चिन्ता के चित्रण में कवि की कल्पना अर्थान्तरन्यास के रूप में अभिव्यक्त हुई है :—

स्त्रीदूत्यं तु कथं कुर्यां पामरैरपि गर्हितम्।
स भजेत् शाल्मलीपुष्पं ग्राम्योऽपि किमु नागरः ॥[5]

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध ७, सर्ग ५, श्लोक ४२ (२) वही, स्कन्ध ५, सर्ग ४, श्लोक ३-
(३) वही, स्कन्ध ३, सर्ग ६, श्लोक १६, १४ (४) वही, स्कन्ध ४, सर्ग ६, श्लोक १६
(५) वही, स्कन्ध २, सर्ग ५, श्लोक ३३

द्वितीय स्कन्ध में दमयन्ती-स्वयंवर-प्रसंग के अन्तर्गत शारदा दमयन्ती के सौन्दर्य-वर्णन में व्याजस्तुति का एक सुन्दर प्रयोग इस प्रकार करती हैं :—

इत्यस्याः सकले गात्रे महान् दोषोऽयमेव हि ।
अपि वर्षशतैस्तृप्तिः पश्यतः कस्यचिद् नहि ।।[1]

यहाँ ऊपर से देखने में तो दमयन्ती की निन्दा सी जान पड़ती है, किन्तु ध्यान देने पर दमयन्ती के अतुल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है । इसी प्रसंग में शारदा नल के बहु-मुखी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उल्लेख अलंकार द्वारा करती हैं :—

गुरुरिति कविसार्थैरर्थिभिः कल्पवृक्षः स्मर इति रमणीभिर्वैरिभिर्वज्रपातः ।
जनक इति जनौघैर्योगिभिश्चापि नित्यं नरपतिरयमेकः स्मर्यतेऽनेकरूपः ।।[2]

यहाँ एक ही नल को गुरु, कल्पवृक्ष, स्मर आदि अनेकों रूपों में चित्रित किया गया है । काव्य के प्रारम्भ में नल के आदर्श राज्य के वर्णन में कवि ने परिसंख्या का प्रयोग इन पंक्तियों में किया है :—

आसीद्बन्धस्तडागानां वाद्यानां तलताडनम् ।
छेदस्तु कनकस्यैव दण्डश्छत्रस्य केवलम् ।।
कौटिल्यं केशपाशेषु काठिन्यं कुचमण्डले ।
चंचलत्वं च नेत्रेषु स्त्रीणामेव व्यवस्थितम् ।।[3]

यहाँ राज्य भर में बन्ध, ताड़न, छेद, दण्ड, कुटिलता, कठिनता तथा चंचलता का निषेध करके उन्हें एक विशेष स्थान में स्थापित किये जाने से परिसंख्या अलंकार है ।

नल के गुणों के वर्णन में यत्र-तत्र कवि की कल्पना विरोधाभास के रूप में व्यक्त हुई है । यथा :—

सर्वस्वं ददताऽपि येन समरे दत्तं न पृष्ठं द्विषाम्
कौलीनाद् विभयांबभूव भुवने धीरेषु धुर्योऽपि यः ।
यः प्राज्ञोऽपि परापवादविषये मूर्खेषु मुख्योऽभवत्
येनोच्चैः शिरसाऽपि कीर्तिसमये चक्रे विनम्रं शिरः ।।[4]

हंस-कृत नल-प्रशंसा में व्यतिरेक अलंकार का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है :—

क्षारो वारिनिधिः क्षयी शशिधरो भिक्षाचरः शंकरः
शक्रो दुश्च्यवनः स्मरश्च वितनुः श्यामश्च दामोदरः ।
नागेन्द्रो विषभृत् विधिश्च जरठः काष्ठं च कल्पद्रुमो
निर्दोषः पुनरेक एव जयति श्रीवीरसेनात्मजः ।।[5]

यहाँ समुद्र, चन्द्र, शंकर, शक्र, स्मर, श्रीकृष्ण आदि उपमानों में हीनता

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध २, सर्ग ६, श्लोक ५ (२) वही, स्कन्ध २, सर्ग १०, श्लोक ६
(३) वही, स्कन्ध १, सर्ग १, श्लोक ३९-४० (४) वही, स्कन्ध १, सर्ग १, श्लोक ४९
(५) वही, स्कन्ध १, सर्ग १२, श्लोक ३१

प्रदर्शित करके उपमेय नल की उत्कृष्टता एवं निर्दोषता व्यक्त की गयी है।

दमयन्ती-स्वयंवर में ससैन्य नल के प्रयाण करते समय सेना की अतिशय विशालता को व्यक्त करने के लिए सम्बन्धातिशयोक्ति का प्रयोग किया गया है :—

शेषः सीदति कूर्मराट् विलिखति क्षोणीतलं मज्जति
क्षुभ्यन्त्यम्बुधयः पतन्ति गिरयः क्रन्दन्ति दिग्दन्तिनः।
लुप्तं व्योमतलं दिशः कवलिता रुद्धो रविः पांसुना
चक्रे तस्य बलैश्चलद्भिरभितस्त्रैलोक्यमप्याकुलम् ॥
चूर्णीबभूवुरभितः पथि शैलसंघाः पङ्कत्वमापुरपरं सरितः समग्राः।
सद्यस्तडागतुलनां ययुरूषराणि प्राकाश्यमाशु गहनान्यगमन् तदानीम् ॥[1]

सप्तम स्कन्ध में कुब्जरूपधारी नल दमयन्ती के भ्रम (?) को दूर करने के लिए इन पंक्तियों में विषम अलंकार का प्रयोग करता है :—

क्व सूर्यः क्व च खद्योतः क्व मेरुः क्व च सर्षपः।
क्व शृगालः क्व शार्दूलः क्व पयोधिः क्व गोष्पदम् ॥

× × × × ×

क्व मे दृष्टिविषं रूपं क्व च मूर्तः स्मरो नलः।
मम तस्य च राजर्षेर्वैदर्भि महदन्तरम् ॥[2]

इन अलंकारों के अतिरिक्त सहोक्ति, सार, भ्रान्तिमान्, विभावना, विशेषक आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग 'नलायनम्' में मिलता है।[3] वस्तुतः 'नलायनम्' सहज मनोहारी अलंकारों का अक्षय कोष है। स्यात् ही ऐसा कोई अलंकार होगा जिसका रम-

---

(१) नलायनम्, स्कन्ध १, सर्ग १४, श्लोक ३१ (२) वही, स्कन्ध २, सर्ग १, श्लोक २४-२५

(३) सहोक्ति :—**समं मखभुजां रुषा वपुषि मे विनाशं गते**
समं मम मनोरथैर्विदलितेषु मे बन्धुषु।
भवन्तु जगतीजुषः सकलसौख्यभाजः प्रजाः
सतां हृदयदाहिना किमिह जीवितव्येन मे ॥
—वही, स्कन्ध २, सर्ग १४, श्लोक ३२

सार :—**लोकानामुत्तमः स्वर्गः स्वर्गिणां त्रिदिवौकसः।**
तेषामपि हि स श्रीमान् महेन्द्रः परमावधिः ॥
—वही, स्कन्ध २, सर्ग १४, श्लोक ७

भ्रान्तिमान् :—**इभकुम्भभ्रमं बिभ्रत् कुचकुम्भावलोकनात्।**
पपात पुरतस्तस्या सहसा पथि केसरी ॥
तद्भालतिलकज्वालातडित्ताडनडम्बरैः।
स प्रत्युत भयार्तः सन् व्यावर्तत हरिद्रुतम् ॥
—वही, स्कन्ध ५, सर्ग ३, श्लोक ६

णीय प्रयोग 'नलायनम्' में न हुआ हो ।

'नलायनम्' के अधिकांश सर्गो में ' हाकाव्यीय परिभाषा के अनुसार एक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का पालन हुआ-है । कति-पय सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है । इनमें छन्द वहुत जल्दी-जल्दी बदले

छन्द

गये हैं । प्रायः प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग अधिक हुआ है । अन्य छन्दों में मालिनी, आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, द्रुतविलम्वित, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, हरिणी, रथोद्धता, स्वागता, पुष्पिताग्रा, मंजुभाषिणी, स्रग्धरा भृंग, तोटक, भुजंगप्रयात, वंशस्थ, स्रग्विणी, हरिणप्लुता तथा कई प्रकार के अर्धसम वर्णिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है । सवैया और षटपदी (छप्पय) का प्रयोग संस्कृत साहित्य में कम मिलता है, किन्तु 'नलायनम्' में इनका प्रयोग भी हुआ है ।

(८) शान्तिनाथचरित्र (मुनिभद्रसूरि)
(रचनाकाल सं० १४१० विक्रम)

तेरहवीं-चौदहवी शताब्दी के जैन-संस्कृत-महाकाव्यों में मुनिभद्रसूरि द्वारा रचित 'शान्तिनाथचरित्र' का भी उल्लेखनीय स्थान है । इसकी रचना उन्नीस सर्गो में हुई है । इसमें सोलहवें तीर्थकर श्रीशान्तिनाथ के जीवनचरित का वर्णन किया गया है ।

महाकाव्य की दृष्टि से 'शान्तिनाथचरित्र' एक सफल रचना है । शास्त्रीय नियमों के अनुसार 'शान्तिनाथचरित्र' का कथानक लोकविश्रुत तीर्थंकर शान्तिनाथ के चरित्र से सम्बन्धित है जिसका आधार परम्परागत चरित-ग्रन्थ हैं । धीरप्रशान्त गुणों से

विभावना:—हन्त कुप्यति हितैरुपदेशैर्दुर्जनः किमपि चित्रममुत्र ।
जायते हि सविषः सविशेषं क्षीरभोजनवशेन भुजङ्गः ।
—वही, स्कन्ध ४, सर्ग २, श्लोक ७

विशेषकः—न त्वं लक्ष्मीर्न सावित्री न पौलोमी न पार्वती ।
सनिमेषा भवद्दृष्टिर्निनिमेषदृशो हि ताः ।।
तत्त्वामायुष्मतीं विद्मश्चक्षुष्याकृतिमीदृशीम् ।
ऐश्वर्यरहितत्वेऽपि क्ष्मापालगृहिणीमिव ।
—वही, स्कन्ध ५, सर्ग ७, श्लोक १२-१३

शान्तिनाथचरित्र का महाकाव्यत्व

युक्त तीर्थंकर शान्तिनाथ इसके नायक हैं। इसमें शान्त रस अंगी है और अन्य रस सहायक बन कर आये हैं। चतुर्वर्ग में से धर्म और मोक्ष की प्राप्ति इसका मुख्य उद्देश्य है। इसका प्रारम्भ जिनेश्वर-स्तुति-रूप मंगलाचरण से हुआ है। एक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग किया गया है और प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन तथा कहीं-कहीं विविध छन्दों के प्रयोग-सम्बन्धी नियम का निर्वाह हुआ है। नगर, वन, षड्ऋतु, संयोग, वियोग, विवाह, युद्ध आदि विविध विषयों के सजीव वर्णन इसमें उपलब्ध हैं। प्रस्तुत महाकाव्य का नाम भी चरितनायक के नाम पर रखा गया है। शान्तिनाथ के परम्परागत विस्तृत चरित्र को ज्यों-का-त्यों अपरिवर्तित रूप में ग्रहण करने के कारण 'शान्तिनाथचरित्र' में कवि को पंच-सन्धियों की योजना करने में सफलता नहीं मिल सकी है। सन्धि-योजना-सम्बन्धी इस नियम को छोड़ कर महाकाव्य के अन्य सभी शास्त्रीय नियमों का पालन 'शान्तिनाथचरित्र' में हुआ है। इसके साथ ही उसमें जातीय जीवन की विशद अभिव्यक्ति और भारतीय (जैन) संस्कृति की सशक्त उद्घोषणा हुई है, उसमें प्रौढ़ भाषा-शैली एवं चरित्रचित्रणगत शालीनता विद्यमान है और उसका सन्देश सार्वकालिक एवं सार्वजनीन है। इन विशेषताओं के कारण 'शान्तिनाथचरित्र' को आलोच्य युग के प्रमुख महाकाव्यों में स्थान देना उचित ही है। कवि ने स्वयं इसे प्रत्येक सर्ग के अन्त में पुष्पिका में महाकाव्य कहा है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में भी इसे महाकाव्य स्वीकार किया गया है। निम्नोद्धृत श्लोक साधारण परिवर्तन के साथ प्रत्येक सर्ग के अन्त में उपलब्ध होता है:—

आसीत् श्रीगुणगच्छमौलिमुकुटश्रीमान्भद्रप्रभोः
पट्टे श्रीगुणभद्रसूरिसुगुरुर्विद्यावतां सदगुरुः।
तच्छिष्येण कृतेऽत्र षोडशजिनाधीशस्य वृत्ते महा–
काव्ये श्रीमुनिभद्रसूरिकविना सर्गोऽगमद् द्वादशः॥

'शान्तिनाथचरित्र' पौराणिक शैली का महाकाव्य है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह इसमें अनेक पात्रों के भवान्तरों का वर्णन है। अकेले शान्तिनाथ के ही बारह भवान्तरों का वर्णन है। शान्तिनाथ के अतिरिक्त चक्रायुध, अशनिघोष, सुतारा, ज्योतिःप्रभा, कनकश्री, इन्दुषेण, विन्दुषेण आदि के भवान्तरों का वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य में हुआ है। 'शान्तिनाथचरित्र' में इस जन्म की घटनाओं का सम्बन्ध पूर्व-भव की घटनाओं या पाप-पुण्यों से जोड़ा गया है। वारांगना के लिए इन्दुषेण-विन्दुषेण को परस्पर लड़ते देख कर विद्याधर प्राग्जन्म के स्नेह से उसे समझाने आता है। प्राग्भव में जैन धर्म में नाम-मात्र की शंका उत्पन्न होने के पाप से कनकश्री को इस भव में पितृ-वियोग सहन करना पड़ता है। प्राग्भवीय वैर के कारण ही वेश्या तथा मनोरमा के कुर्कुट परस्पर लड़ते हैं। दोनों कुर्कुट समान शक्ति वाले हैं, इसमें भी प्राग्भव के संस्कार हेतु हैं।

पौराणिक शैली के महाकाव्यों में स्तोत्रों और माहात्म्यों का समावेश रहता है। काव्य में शान्तिनाथ की स्तुति अनेक देवताओं और राजाओं के द्वारा करायी गयी है।

'शान्तिनाथचरित्र' में उपलब्ध स्तोत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में कवि द्वारा किये गये शान्तिनाथ के स्तवन।
(२) जिनेन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर देवताओं द्वारा किये गये स्तवन
(३) कथानक के पात्रों द्वारा विभिन्न अवसरों पर की गयी जिनेन्द्र की स्तुति।
(४) अन्य सदात्मा व्यक्तियों (जैसे मेघरथ आदि) की देवताओं द्वारा की गयी प्रशस्ति।

स्तोत्रों के अतिरिक्त 'शान्तिनाथचरित्र' में एक-दो माहात्म्य भी हैं। महाकाव्य के अन्त में जिनेन्द्र इन्द्र की प्रार्थना पर शत्रुंजय-माहात्म्य-वर्णन करते हैं।

पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह 'शान्तिनाथचरित्र' में अपने धर्म की प्रशंसा तथा अन्य धर्म के खण्डन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इसमें कपिल के चरित्र के द्वारा ब्राह्मण धर्म के कतिपय सिद्धान्तों के प्रति अवज्ञा और हीनता का भाव प्रकट किया गया है। इन सिद्धान्तों का पालन करने से कपिल नाना योनियों में भटकता है। महाकाव्य में कपिल-जीव धम्मिल, जो वैदिक धर्म का पालन करता है, की चर्या को पापों में गिनाया गया है। ग्रीष्म में पंचाग्नितप तथा वर्षा में अविरल स्नान करना, शीतऋतु में शीत सहना, वापीकूपतड़ागादि का निर्माण कराना, ग्रीष्म में पक्षियों की प्यास बुझाने के लिए वृक्ष की शाखाओं पर रज्जु से बाँधकर जलपूर्ण शराव (मृत्तिकापात्र) लटकाना, काकबलि देकर भिक्षान्न ग्रहण करना, इंगुदी-तेल से धर्मदीप प्रज्वलित करना, बिना छना पानी पीना आदि पापों के कारण धम्मिल-जटी असुरी के गर्भ से जन्म लेता है।[1] परमतखण्डन के साथ-साथ 'शान्तिनाथचरित्र' में स्वमत की प्रशंसा अनेक स्थलों पर की गयी है। अर्हद्-धर्म को सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाला कह कर बताया गया है कि जो अर्हद्-धर्म का खण्डन करता है उसे श्रेष्ठिपुत्र धनद की तरह दारुण दुःख मिलता है:—

सम्पूर्णं फलमादधाति विहितः सम्पूर्ण एवार्हतो—
धर्मः स्वार्थचिकीरहो ! बत नृणां स व्यत्यये व्यत्ययम्।
प्राप श्रेष्ठिसुतो यथा स धनदो मत्स्योदरान्याह्वयः
कल्याणं जिनधर्मखण्डनवशाद्दुःखेन संभावितम्॥[2]

इसके बाद जिनधर्म की प्रशंसा में पूरे छठे सर्ग में धनद-कथा का वर्णन किया गया है।

पौराणिक शैली के महाकाव्यों में अलौकिक और अतिप्राकृत कार्यों का वर्णन अधिक रहता है। 'शान्तिनाथचरित्र' के नायक स्वयं अलौकिक व्यक्ति हैं, अतः उनके चरित्र में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अलौकिकता दीख पड़ती है। ईशानेन्द्र के मुख से मेघरथ की प्रशंसा सुन कर एक देव उनकी परीक्षा लेने आता है। कपोत और बाज मानव-वाणी बोलते हैं। बारहवें सर्ग में कपोत का मानव से भी अधिक भारी हो जाना तथा मेघरथ का अपने

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ५, श्लोक १९४–२०६ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक २१९

शरीर का मांस काट-काट कर तौलना आश्चर्यजनक कार्य हैं। ग्यारहवें सर्ग में उद्यान में बैठे मेघरथ के समक्ष भूत (व्यन्तर) ताण्डव-नृत्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। नवें सर्ग में अनन्तवीर्य और अपराजित विद्यावल से वर्वरी और किराती नर्तकी का रूप धारण कर लेते हैं और दमितारि को धोखा देने में सफल हो जाते हैं। दमितारि उन्हें स्त्री समझ कर अपनी पुत्री को शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर देता है। अकेले अनन्तवीर्य और अपराजित दमितारि और उसकी समस्त सेना को नष्ट कर देते हैं। दमितारि का छोड़ा चक्र अनन्तवीर्य के पास आते ही शान्त हो जाता है।

घनरथ, मेघरथ तथा अन्य मुनियों को भूत-भविष्य का ज्ञान है। वे प्रत्येक को उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त वता देते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य की वात है प्राग्भव का वृत्तान्त सुनते ही श्रोताओं को जाति-स्मृति हो जाना। विद्याधर द्वारा प्राग्भव का हाल वताए जाने पर इन्दुषेण-विन्दुषेण को यह जाति-स्मृति हो जाती है कि जिस गणिका के लिए वे परस्पर लड़ रहे हैं वह उनकी पूर्वभव की वहिन है। पाँचवें सर्ग में अर्ककीर्ति आदि मुनि अशनिघोष के प्राग्जन्म का वृत्तान्त वता देते हैं और उसके सुतारा के प्रति आकृष्ट होने का कारण भी वताते हैं। सप्तम सर्ग में महामति और विमलमति महर्षि विजय और अमिततेज को वताते हैं कि अव तुम दोनों की आयु के केवल छव्वीस दिन रह गये हैं। नवें सर्ग में कीर्तिधर साधु दमितारि-पुत्री कनकश्री के पूर्वभव का वृत्तान्त वता कर उसके पितृ-वियोग के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। ग्यारहवें सर्ग में वज्रायुध शान्तिमती और विद्याधर के पूर्व-भव का वृत्तान्त वता कर उन दोनों के प्राग्भवीय वैर का उल्लेख करते हैं। वज्रायुध यह भी भविष्यवाणी करते हैं कि क्षेमंकर मुनि के पास दीक्षा लेने के पश्चात् शान्तिमती रत्नावली-तप के प्रभाव से ईशानेन्द्र तथा शान्तिमती के पिता पवनवेग तथा दूसरा विद्याधर केवली वनेंगे। इसी सर्ग में ज्ञानत्रयधर घनरथ मुनि मनोरमा तथा वेश्या के लड़ने वाले ताम्रचूड़ों का प्राग्भव-चरित्र वताते हैं। इस प्रकार समस्त 'शान्तिनाथ-चरित्र' अलौकिक एवं अतिप्राकृत घटनाओं से भरा हुआ है।

पौराणिक शैली के महाकाव्यों के कथानक में कसावट नहीं होती, क्योंकि उनमें कथा के भीतर कथा कहने की प्रवृत्ति होती है। 'शान्तिनाथचरित्र' में अवान्तर-कथाओं की भरमार है। इन अवान्तर-कथाओं में मृगलकुंभ कथानक, धनदपुत्र-कथा, अमरदत्तनृप-कथा, वणिग्द्वय-कथा, परिव्राट्-कथा, अमृताभ्रभूपति-कथा, स्कन्दिलपुत्रकथा, गुणवर्मकथा, अग्निशर्मा-द्विज-कथा, भानुदत्त-कथा, माधव-कथा आदि कथाएँ हैं। इनमें से कुछ अवान्तर-कथाएँ वहुत लम्बी हैं। धनद-कथा ने काव्य के पूरे तीन सर्गों—पाँचवें, छठे और सातवें सर्गों—को घेर रखा है। इन अवान्तर-कथाओं के कारण एक ओर कथानक में जटिलता का समावेश हो गया है तो दूसरी ओर उसमें शिथिलता आ गई है। इन प्रसंगों की योजना कवि ने इसलिए की है कि वह 'शान्तिनाथचरित्र' को महाकाव्य के साथ-साथ धर्मग्रन्थ भी वनाना चाहता था, जैसा कि उसने स्वयं कहा भी है :—

मिथ्यात्वोचितकाव्यसंचकमिदं त्याचक्षते सूरयो
यद्वत् प्राथमकल्पिकाय सततं व्युत्पत्तिसम्प्राप्तये।

तद्वच्छान्तिजिनाधिनाथचरितं सम्यक्त्वसंवासना
वासावासितमानसा यदि ततः किं स्यान्न वा वांच्छितम् ।[1]

इस प्रकार 'शान्तिनाथचरित्र' में पौराणिक रंग बहुत गहरा दिखाई देता है। इसमें धर्मकथा और महाकाव्य दोनों के तत्वों का सामावेश हुआ है, अतः इसे पौराणिक महाकाव्य मानना ही उचित प्रतीत होता है।

कवि-परिचय रचनाकाल आदि

'शान्तिनाथचरित्र' के अन्त में उपलब्ध प्रशस्ति में कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का और अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। प्रशस्ति के अनुसार मुनिभद्रसूरि बृहद्गच्छीय थे। बृहद्गच्छ में मुनिचन्द्रसूरि नामक प्रसिद्ध विद्वान् गच्छपति हुए जिनके पट्ट पर कालक्रम से से देवसूरि, भद्रेश्वरसूरि, विजयेन्दुसूरि, मानभद्रसूरि तथा गुणभद्रसूरि हुए। गुणभद्रसूरि व्याकरण, छन्द, नाटक, तर्क, साहित्य, अलंकार आदि सभी शास्त्रों में निपुण थे। दिल्ली का बादशाह मुहम्मदशाह (मुहम्मद तुगलक) उनका बहुत आदर करता था। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर एक बार मुहम्मदशाह ने उन्हें दस सहस्र सुवर्ण टंकाएँ भेंट की, किन्तु उन्होंने 'तपस्वियों को भेंट लेना निषिद्ध है' कह कर उस भेंट को अस्वीकार करके अपने चरित्र की रक्षा की। इन्हीं गुणभद्रसूरि के शिष्य प्रस्तुत 'शान्तिनाथ चरित्र' के रचयिता मुनिभद्रसूरि थे। तत्कालीन भारत का बादशाह फीरोजशाह (तुगलक) मुनिभद्रसूरि की अत्यन्त प्रतिष्ठा करता था। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं इन पंक्तियों में किया है :—

तच्छिष्यो मुनिभद्रसूरिरजनि स्याद्वादसम्माननः
श्रीपेरोजमहीमहेन्द्रसदसि प्राप्तप्रतिष्ठोदयः ।
तेनेदं निरमायि मन्दमतिना श्रीशान्तवृत्तं नवम्
तत्तज्जन्मसहस्रसंचितमहादुष्कर्मविच्छित्तये ॥[2]

मुनिभद्रसूरि ने 'शान्तिनाथचरित्र' की रचना भक्तिभावना और विशेषकर पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना से प्रेरित होकर की। जैन-विद्वान् संस्कृत के काव्यपंचक—रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधचरित—को मिथ्यात्वांचित समझ कर उनके पठन-पाठन को धर्मविरुद्ध मानते रहे हैं, किन्तु इन काव्यों की टक्कर का कोई ग्रन्थ जैन-संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध नहीं था। इस अभाव को दूर करने के लिए, साहित्याभ्यासियों के अभ्यास के लिए सम्यक्त्वसंवासना से युक्त इस काव्य का निर्माण कवि ने किया। कवि ने बड़े गर्व से कहा है कि जिन्हें कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों में दोष दीख पड़ते हैं उन्हें इस काव्य (शान्तिनाथचरित्र) में गुण-ही-गुण दिखाई देंगे :—

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, प्रशस्ति, श्लोक १४ (२) वही, प्रशस्ति, श्लोक ६

ये दोषान् प्रतिपादयन्ति सुधियः श्रीकालिदासोक्तिषु
श्रीमद्भारविमाघपण्डितमहाकाव्यद्वयेऽप्यन्वहम् ।
श्रीहर्षामृतसूक्तिनैषधमहाकाव्येऽपि ते केवलम् ।
यावद्वृत्तविवर्णनेन भगवच्छान्तेश्चरित्रे गुणान् ॥
मिथ्यात्वांचितकाव्यपंचकमिदं व्याचक्षते सूरयो
यद्वत् प्राथमकल्पिकाय सततं व्युत्पत्तिसम्प्राप्तये ।
तद्वच्छान्तिजिनाधिनाथचरितं सम्यक्त्वसंवासना
वासावासितमानसा यदि ततः किं स्यान्न वा वांच्छितम् ॥[1]

प्रस्तुत काव्य का आधार मुनिदेवसूरि-कृत 'शान्तिनाथचरित्र' है जैसा कि कवि ने इन पंक्तियों में स्वीकार किया है :—

पूज्यश्रीमुनिदेवसूरिरचितश्रीशान्तितीर्थेश्वर-
प्रख्याताद्भुतकाव्यदर्शनतया काव्यं मयेदं कृतम् ।
उत्सूत्रं यदि भावि किंचिदपि तद् नाऽऽदेयमेतत्सतां
स्यान्नूनं न च निर्वृतिं रचयतीत्यालोच्य बुद्धयाधिकम् ॥[2]

'शान्तिनाथचरित्र' का संशोधन राजशेखरसूरि ने किया है। कवि ने उनका आभार स्वीकार करते हुए लिखा है :—

श्रीमान् हर्षपुरीयगच्छजलधिप्रोल्लासशीतद्युति-
र्वाणीभूषणराजशेखरगुरुः सौजन्यसंवासभूः ।
श्रीशान्तेश्चरितं व्यशोधयदिदं दुष्कर्ममर्मापहम्
प्राज्ञैस्त्वैरपि शोध्यमेतदसमं कृत्वा प्रसादं मयि ॥[3]

कवि ने अपने पाठक पर एक विशेष प्रकार की योग्यता का प्रतिबन्ध लगा दिया है। उसकी कृति के पठन-पाठन का अधिकारी वही है जिसमें ये तीन गुण हों—जिनेन्द्र का सेवक हो, गुरु-भक्त हो और धर्म-अधर्म का विवेक हो :—

अर्हत्पादपयोजसेवनविधौ यो वर्तते हंसवत्
नित्यं सद्गुरुभक्त्यगाधसरसीक्रीडोऽच्छपक्षद्वयः ।
नीरक्षीरविवेकवत् प्रमनुते योऽधर्मधर्मान्तरम्
स श्रीशान्तिजिनेन्द्रकाव्यभणने संरम्भमुद्भावयेत् ॥[4]

'शान्तिनाथचरित्र' की रचना सं० १४१० में हुई, जैसा कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है:—

अन्तरिक्षरजनीहृदीश्वरब्रह्मवक्त्रशशिसंख्यवत्सरे ।
वैक्रमे शुचि तपौ जयातिथौ शान्तिनाथचरितं व्यरच्यत ॥[5]

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, प्रशस्ति, श्लोक १३-१४
(२) वही, प्रशस्ति, श्लोक १०
(३) वही, प्रशस्ति, श्लोक ११
(४) वही, प्रशस्ति, श्लोक १२
(५) वही, प्रशस्ति, श्लोक १७

अनुष्टुप्-मान से 'शान्तिनाथचरित्र' का रचना-परिमाण ६२७२ श्लोक है :—

अनुष्टुम्मानेन प्रविरचितवर्णांकगणनं
प्रवित्तग्रन्थाग्रं सकलमपि काव्ये जिनपतेः ।
शतानि द्वाषष्टिं बुधसमुदया ! सम्मदभृतः
परं द्वासप्तत्या समधिकतमानि स्वयमिदम् ।।[1]

'शान्तिनाथचरित्र' का कथानक १९ सर्गों में विभक्त है। पहले सर्ग में रत्नपुर-नरेश श्रीषेण, उनकी अभिनन्दिता-शिखिनन्दिता नामक दो पत्नी तथा उनके दो पुत्रों—इन्दुषेण-विन्दुषेण का परिचय दिया गया है। श्रीषेण के राज्य में अचलग्रामवासी धरणिजड ब्राह्मण के कपिला दासी के गर्भ से कपिल नामक पुत्र उत्पन्न होता है। एक बार कपिल रत्नपुर आता है और सत्यकि की पाठशाला में ठहरता है। उसकी असाधारण विद्वत्ता से प्रभावित होकर उसे विप्र समझ कर सत्यकि अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह उससे कर देते हैं। एक बार नगर के बाहर होने वाले प्रेक्षणक को देख कर कपिल रात्रि में घर लौटता है। मार्ग में ही वर्षा होने लगती है। वह अपने वस्त्र उतार कर कक्षान्त में छिपा लेता है और नग्न होकर घर आता है। सत्यभामा उसे दूसरे वस्त्र देती है, किन्तु वह यह कहकर कि विद्याबल से मेरे वस्त्र भीगे नहीं है, उन्हें नहीं लेता। सत्यभामा मन-ही-मन उसके नग्न होकर आने का रहस्य जान जाती है और उसे नीच कुल में उत्पन्न समझ कर उसमें तुच्छरति हो जाती है।

कथानक

दूसरे सर्ग में धरणिजड ब्राह्मण अपने पुत्र कपिल के यहाँ आता है। यहाँ सत्यभामा के अत्यन्त आग्रह पर वह कपिल के दासीपुत्र होने के रहस्य का उद्घाटन करता है। पति को अकुलीन जान कर सत्यभामा राजा श्रीषेण की सहायता से पति से मोक्ष प्राप्त करती है और श्रीषेण के अन्तःपुर में रह कर ही धर्माचरण करती है। इसी समय अनन्तमति वारांगना के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजपुत्र इन्दुषेण और विन्दुषेण परस्पर युद्ध करने लगते हैं। राजा उन्हें समझाने की चेष्टा करता है, किन्तु उनके युद्ध से विरत न होने पर वह अपनी पत्नियों-सहित आत्महत्या कर लेता है। कपिल के भय से सत्यभामा भी आत्महत्या कर लेती है। द्वितीय भव में वे श्रीषेण-अभिनन्दित तथा शिखिनन्दित-सत्यभामा युग्मी बनते हैं जो मृत्यु के पश्चात् तीसरे भव में सुर बनते हैं।

तीसरे सर्ग में एक विद्याधर आकाश से उतरता है और अनन्तमति गणिका को इन्दुषेण-विन्दुषेण की प्राग्भव की बहिन बताता है। चौथे सर्ग में यह सुन कर इन्दुषेण-विन्दुषेण युद्धविरत होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं और कैवल्य प्राप्त करते है। पाँचवें सर्ग में स्वर्ग से च्युत होकर श्रीषेण का जीव चक्रवालपुराधीश अर्ककीर्ति का पुत्र अमिततेज, सत्यभामा का जीव अर्ककीर्ति-पुत्री सुतारा, अभिनन्दिता का जीव पोतनपुराधीश त्रिपृष्ठ का पुत्र विजय और शिखिनन्दिता का जीव त्रिपृष्ठ-पुत्री ज्योतिःप्रभा होते है। सुतारा का

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, प्रशस्ति, श्लोक १५

विवाह विजय से और ज्योतिःप्रभा का विवाह अमिततेज से होता है। कपिल-जीव विद्या-
धरेश अशनिघोष होता है। एक बार विजय सुतारा के साथ ज्योतिर्वन में जाते हैं, वहाँ
प्राग्जन्मस्नेह से अशनिघोष सुवर्ण-हरिण बन कर विजय को धोखा देता है और सुतारा
का अपहरण कर लेता है। विजय अमिततेज की सहायता से अशनिघोष को पराजित
करके सुतारा को पुनः प्राप्त करते हैं और राजभवन लौटते हैं। छठे सर्ग में उपाश्रय में
चारण-मुनियों के आने और उनकी देशनाओं का वर्णन है। सातवें सर्ग में चारण-मुनियों से
अपनी आयु के केवल छब्बीस दिन शेष जान कर विजय और अमिततेज दीक्षा ग्रहण कर
लेते हैं और मृत्यु के पश्चात् सुर बनते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर अमिततेज और विजय के
जीव क्रमशः शुभा नगरी के राजा स्तिमितसागर के पुत्र अपराजित और अनन्तवीर्य के रूप
में उत्पन्न होते हैं।

आठवें सर्ग में स्वयंप्रभाचार्य की देशना से प्रभावित होकर स्तिमितसागर अपने
पुत्र अनन्तवीर्य को राज्य प्रदान कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। नवें सर्ग में अनन्तवीर्य की
सुन्दरी नर्तकी बर्वरी और किराती के नृत्यगान की प्रशंसा सुन कर विद्याधरेश दमितारि
अनन्तवीर्य के यहाँ दूत-प्रेषण कर उनकी माँग करता है। अनन्तवीर्य उसकी माँग को स्वी-
कार कर लेते हैं और स्वयं तथा अपराजित विद्याबल से किराती और बर्वरी का रूप
धारण कर दमितारि के यहाँ जाते हैं। दमितारि उन्हें अपनी पुत्री कनकश्री की नृत्य-संगीत-
शिक्षा के लिए नियुक्त करता है। कनकश्री अनन्तवीर्य पर मुग्ध हो जाती है और अनन्त-
वीर्य उसका अपहरण करते हैं। फलस्वरूप दमितारि और अनन्तवीर्य में युद्ध होता है जिसमें
दमितारि मारा जाता है। अनन्तवीर्य अर्धचक्री बनते हैं। जीवन में दीक्षा ग्रहण न करने
से वे नरकावनी में जाते हैं। अपराजित दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं, फलस्वरूप वे मृत्यु के बाद
अच्युतेन्द्र बनते हैं। अनन्तवीर्य का जीव नरक से च्युत होकर गगनवल्लभपुरनरेश मेघनाद
होता है। इस भव में मेघनाद दीक्षा ग्रहण करते हैं, अतः तपस्या के प्रभाव से अच्युत-कल्प
में सुर होते हैं।

दसवें सर्ग में स्वर्ग से च्युत होकर अपराजित का जीव रत्नसंचयपुरी के राजा
क्षेमंकर के पुत्र वज्रायुध के रूप में तथा अनन्तवीर्य का जीव वज्रायुध-पुत्र सहस्रायुध के रूप
में अवतरित होता है। क्षेमंकर के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर वज्रायुध राजा बनते हैं।
ग्यारहवें सर्ग में वज्रायुध चक्री बनते हैं और दिग्विजय करते हैं। इस सर्ग में उनके अति-
मानवीय ज्ञान एवं बल को व्यक्त करने वाली अनेक घटनाओं का वर्णन है। अन्त में वज्रा-
युध अपने पुत्र सहस्रायुध को राज्य प्रदान कर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं। बहुत दिनों तक
राज्य-सुख का उपभोग कर सहस्रायुध भी दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। मृत्यु के बाद वज्रायुध
और सहस्रायुध दोनों सुर बनते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर वज्रायुध और सहस्रायुध के जीव
पुण्डरीकिणीपुर के नरेश घनरथ के पुत्र क्रमशः मेघरथ और दृढ़रथ होते हैं। घनरथ के
दीक्षा ग्रहण कर लेने पर मेघरथ राजा बनते हैं। इस सर्ग में अनेक घटनाओं के द्वारा
घनरथ और मेघरथ का अलौकिक व्यक्तित्व तथा उनका ज्ञानवैभव प्रकट किया
गया है।

बारहवें सर्ग में ईशानेन्द्र के मुख से मेघरथ की प्रशंसा सुन कर एक देव उनकी परीक्षा लेने आता है। उसकी माया से प्रेरित होकर एक श्येनत्रस्त कपोत आकर मेघरथ की गोद में गिरता है और मनुष्य की भाषा में अभय माँगता है। मेघरथ कपोत को अभय प्रदान करते हैं और उसके भार के बराबर अपना मांस श्येन को देने के लिए अपना मांस काट-काट कर तुला पर रखते हैं। कपोत के भारी निकलने पर वे स्वयं तुला पर बैठ जाते हैं और श्येन से कपोत के बदले उन्हें (मेघरथ को) खाने के लिए प्रार्थना करते हैं। मेघरथ का उत्कट धर्म-प्रेम देख कर देवता आकाश में जयजयकार करने लगते हैं और वह सुर प्रकट होकर मेघरथ से क्षमा माँगता है। इस घटना से मेघरथ को वैराग्य हो जाता है और वे अष्टम तप करके ध्यानस्थ हो जाते हैं। ईशानेन्द्र की सुन्दरी पत्नियों—अतिरूपा और सुरूपा की कामचेष्टाएँ भी उन्हें उनके ध्यान से विचलित करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं। इसी समय उद्यान में घनरथमुनि का आगमन सुन कर मेघरथ उनके दर्शनों के लिए जाते हैं।

तेरहवें सर्ग में घनरथमुनि की देशना सुन कर मेघरथ और दृढ़रथ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और तपस्या के प्रभाव से सर्वार्थसिद्ध विमान मे गीर्वाण बनते हैं। चौदहवें सर्ग में मेघरथ का जीव हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन की पत्नी अचिरा के गर्भ से शान्तिनाथ जिनेश्वर के रूप में उत्पन्न होता है। शान्तिनाथ के युवक होने पर विश्वसेन दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और शान्तिनाथ राजा बनते हैं। दृढ़रथ का जीव शान्तिनाथ के पुत्र चक्रायुध के रूप में अवतीर्ण होता है। इसी सर्ग में शान्तिनाथ-प्रभु के चक्री बनने, दिग्विजय करने तथा देवताओं की प्रार्थना पर चक्रायुध को राज्य सौंप कर व्रत ग्रहण करने का वर्णन है। पन्द्रहवें सर्ग में सुमित्र भूपति के यहाँ शान्तिनाथ प्रभु के पारणा करने, षष्ठ तप के प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त करने, समवसरण में देशना देने तथा चक्रायुध के दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है। सोलहवें से अठारहवें सर्ग तक शान्तिनाथ के हस्तिनापुर आने, समवसरण में देशना देने और हस्तिनापुर-नरेश को बोध देने का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में शत्रुंजय पर शान्तिनाथ के निर्वाण और देवताओं द्वारा उनके अन्तिम संस्कार के सम्पन्न होने के वर्णन के साथ कथानक की समाप्ति होती है।

मुनिभद्रसूरि-कृत 'शान्तिनाथचरित्र' की कथावस्तु का आधार मुनिदेवसूरि-कृत 'शान्तिनाथचरित्र' है। कवि ने अपने काव्य में मुनिदेवसूरि का अनुकरण किया है, फलस्वरूप कथानक में कवि की मौलिक देन कुछ भी नहीं है। मूलकथा के साथ-साथ अवान्तर-कथाओं के चयन में भी मुनिभद्रसूरि ने मुनिदेवसूरि का अनुकरण किया है। जो अवान्तर-कथाएँ मुनिदेवसूरि के 'शान्तिनाथचरित्र' में उपलब्ध हैं, ठीक वे ही अवान्तरकथाएँ उसी क्रम से प्रस्तुत काव्य में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त जैन धर्म के जिन तत्त्वों का विवेचन मुनिदेवसूरि ने किया है उन्हीं का विवेचन प्रस्तुत काव्य में हुआ है। इस प्रकार मुनिभद्रसूरि के काव्य की कथावस्तु पूर्णतया मुनिदेवसूरि के चरणचिह्नों पर चली है, उसमें कहीं भी उलटफेर या कमी-वेशी कर कवि ने अपनी मौलिक सृजनशक्ति की छाप नहीं लगायी है,

फिर भी प्रस्तुत 'शान्तिनाथचरित्र' में जो प्रौढ़ भाषाशैली और उदात्त अभिव्यंजना-शक्ति पायी जाती है उसके दर्शन मुनिदेवसूरि के काव्य में नहीं होते। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य निःसन्देह मौलिक है और उसमें नवीनता और ताजगी है।

जहाँ तक 'शान्तिनाथचरित्र' की कथावस्तु के निर्वाह का प्रश्न है, मुनिभद्रसूरि को उसमें सफलता नहीं मिल सकी है। प्रस्तुत महाकाव्य की कथावस्तु में अविच्छिन्न धारावाहिकता का नितान्त अभाव है। 'शान्तिनाथचरित्र' का कथानक इतना अधिक विस्तृत है कि कवि उसके जाल में फँस गया है। कथानक में इतने अप्रत्याशित और रस को क्षति पहुँचाने वाले मोड़ हैं जिनसे उसमें पद-पद पर शिथिलता और रुकावट आ गयी है। कथानक की जटिलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि समग्र काव्य का अध्ययन कर लेने के बाद सतर्क और सावधान पाठक के लिए भी कथानक को स्मरण रखना कठिन है। घटनाओं की भूलभुलैया में पाठक का मन भी उलझ जाता है। इन त्रुटियों के होते हुए भी 'शान्तिनाथचरित्र' के कथानक में जीवन की विविधता और व्यापकता का चित्र उपस्थित करने की क्षमता है।

चरित्र-चित्रण

'शान्तिनाथचरित्र' के विस्तृत कथानक में इन्दुषेण, विन्दुषेण, धरणिजड, विद्याधर, अर्ककीर्ति, त्रिपृष्ठ, वह्निजटी, स्तिमितसागर, दमितारि, विद्युद्दंष्ट्र, कीर्तिधर साधु, शतबलि, चित्रचूलसुर, सुरेन्द्रदत्त, नन्दिषेण, मेघसेन, अशनिघोष, शान्तिनाथ आदि अनेक पुरुष-पात्र तथा शिखिनन्दिता, श्रीकान्ता, अनन्तमति, स्वयंप्रभा, ज्योतिर्माला, कनकश्री, प्रियमती, मनोरमा, प्रियमित्रा, अचिरा, सुतारा आदि अनेक स्त्री-पात्र हैं, किन्तु चरित्रचित्रण की दृष्टि से इनमें शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिघोष एवं सुतारा ये चार पात्र ही प्रमुख हैं, शेष पात्रों का चरित्र विकसित नहीं हुआ है।

शान्तिनाथ

शान्तिनाथ-प्रभु जैनों के सोलहवें तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर-रूप में अवतरित होने के पूर्व वे १२ भव व्यतीत कर चुके हैं। जिनमें ५ भवों में वे विभिन्न स्वर्गों में सुर बनते हैं और एक भव में युग्मी बनते हैं। इन भवों में उनका चरित्र-चित्रण नहीं किया गया है। शेष भवों में वे क्रमशः श्रीषेण, अमिततेज, अपराजित, चक्रायुध, मेघरथ और अन्त में शान्तिनाथ जिन होते हैं। इन भवों में उनके चरित्र-चित्रण का प्रयास किया गया है। इन सबका व्यक्तित्व यद्यपि पृथक्-पृथक् है, फिर भी वह एक शिथिल सूत्र में सम्बद्ध है और उसमें क्रमिक विकास दृष्टिगत होता है।

श्रीषेण रत्नपुर के नरेश हैं। वे बड़े प्रतापी हैं। उनके भय से शत्रु आतंकित रहते हैं। कवि के इस कथन से उनके शौर्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

सुदुःसहं धाम न सोढुमीश्वरा विरोधिनो यस्य दरीषु भूभृताम् ।
अवात्सुरुत्सृष्टनिवासभूमयो निलीय घूका इव भानुमालिनः ॥[1]

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १, श्लोक ५६

श्रीषेण न्यायी और प्रजावत्सल राजा हैं। जब सत्यभामा अपने अकुलीन पति से मोक्ष पाकर धर्माचरण करने की सुविधा पाने की उनसे प्रार्थना करती है तो वे उसकी प्रार्थना पर ध्यान देते हैं और कपिल को बुला कर उसे समझाते हैं तथा उससे यह कह कर:—

पदादितो नेष्यसि चेदिमां त्वं प्राणानियं त्यक्ष्यति तत्प्रसह्य।
तस्मादियं तिष्ठतु मे निशान्ते सुतेव धर्मं सितमाचरन्ती॥[1]

सत्यभामा को अपने यहाँ पुत्री की तरह रख कर उसके धर्माचरण में सहायक बनते हैं। ये ही श्रीषेण जब अपने पुत्रों को एक वारांगना के लिए परस्पर लड़ते देखते हैं तो उन्हें युद्ध से विरत करने के लिए समझाते हैं, किन्तु असफल होने पर विषयुक्त कमल सूँघ कर मर जाते हैं और दूसरे भव में युग्मी, तीसरे भव में सुर तथा चौथे भव में अमिततेज के रूप में प्रकट होते हैं।

अमिततेज विद्याधरेश ज्वलनजटी के पुत्र अर्ककीर्ति के पुत्र हैं। अमिततेज को अपनी बहिन सुतारा और उसके पति विजय से बहुत स्नेह है। अशनिघोष द्वारा सुतारा के अपहृत किये जाने पर जब विजय सहायतार्थ उनके पास आता है तो पूरा वृत्तान्त सुन कर उनके क्रोध की सीमा नहीं रहती। उनकी इस क्रोधोक्ति में उनके वीरत्व तथा भगिनी-प्रेम की अच्छी व्यंजना हुई है:—

संग्रह्य जीवाभ्यधिकप्रियां ते जामिं मदीयां मदविह्वलः सन्।
स क्व प्रयाता मयि पृष्ठलग्ने दुर्वारवैरिक्षयकालदण्डे॥[2]

अमिततेज विजय को अपनी युद्धविद्या प्रदान कर देते हैं और अपने पाँचसौ पुत्रों को विजय के साथ कर उसे अशनिघोष पर आक्रमण करने के लिए भेजते हैं।

अमिततेज को सिद्धि-साधनाओं में पूर्ण विश्वास है। अशनिघोष को पराजित करने के लिए वे ज्वालाविद्या की साधना के लिए हिमाचल पर जाते हैं और वहाँ कठिन साधना करके सिद्धविद्य हो जाते हैं। सिद्धविद्या 'महाज्वाला' के प्रयोग से वे अशनिघोष को आतंकित करने तथा सुतारा को पुनः प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

अमिततेज धर्मप्राण व्यक्ति है। वे अर्हच्चैत्य के समीपवर्ती पौषधगृह में विद्याधरों में जिनेन्द्र-भक्ति उत्पन्न करने के लिए धर्मोपदेश भी देते हैं। अर्हत्, मुनियों और साधुओं में उनकी अतीव भक्ति है। मुनियों के आगमन पर वे उनकी देशना ध्यानपूर्वक सुनते हैं। विमलमति एवं महामति चारणर्षि से यह जान कर कि उनकी (अमिततेज की) मृत्यु के केवल छब्बीस दिन शेष हैं, वे दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और अपनी तपस्या के प्रभाव से सुस्थितावर्त में विबुध होते हैं जहाँ से च्युत होकर वे अपराजित के रूप में प्रकट होते हैं।

अपराजित शुभानगरी के राजा स्तिमितसागर के पुत्र हैं। 'शान्तिनाथचरित्र' में अपराजित के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का चित्रण नहीं हुआ है। उनका चरित्र अनन्तवीर्य की

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग २, श्लोक ६६ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक ११६

छाया-मात्र है। वे अनन्तवीर्य की शासन में सहायता करते हैं। दमितारि द्वारा किराती तथा बर्बरी नर्तकियों की माँग किये जाने पर वे भी अनन्तवीर्य के साथ नर्तकी का रूप धारण करके दमितारि के यहाँ पहुँचते हैं। अपराजित में भी धर्मभावना विद्यमान है। दमितारि के यहाँ से लौटते समय वे श्रद्धापूर्वक जिनबिम्ब की अर्चना करते हैं। अपराजित को अपने कनिष्ठ भ्राता अनन्तवीर्य से बहुत प्रेम है। उनके स्वर्ग-प्रयाण पर वे अत्यन्त दुखी होते हैं और दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। अब वे कष्टसाध्य तप करते हैं, फलस्वरूप मृत्यु के बाद वे अच्युत में इन्द्र होते हैं जहाँ से च्युत होकर क्षेमंकर नृप के पुत्र वज्रायुध के रूप में जन्म लेते हैं।

वज्रायुध के चरित्र का प्रथम गुण उनमें अतुल शक्ति का होना है। जल-क्रीड़ा करते समय जब विद्युद्दंष्ट्र उनके ऊपर पर्वत फेंकता है और उनके पैरों को नागपाश से बाँध देता है तो वे पर्वत और नागपाश दोनों को अपनी अपरिमेय शक्ति से नष्ट कर देते हैं। उनकी यह शक्ति कवि के इन शब्दों में प्रकट हुई है:—

संचूर्णयामास पतन्तमद्रिं स मुष्टिना मोदकवत् कुमारः।
आशीविषास्तानपि वैरिराज्ञीवेणीरिव स्मेष रयाच्छिनत्ति ॥[1]

इसी बल के प्रभाव से वे दिग्विजय करते हैं। चक्रादि चतुर्दश रत्न स्वयमेव उनके यहाँ आ जाते हैं और वे चक्री बन जाते हैं।

वज्रायुध को धर्म के मर्म का ज्ञान है। प्रतिपक्षी को वे अपने अकाट्य तर्कों से पराजित कर देते हैं। चार्वाकरूपधारी चित्रचूलसुर को उनके अकाट्य तर्कों के सामने नतमस्तक होना पड़ता है। वह उनकी विद्वत्ता एवं धर्म में अविचल निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। वज्रायुध भविष्यवक्ता हैं। काव्य में वे पवनवेग, उसकी पुत्री शान्तिमती तथा विद्याधर के विषय में भविष्यवाणी करते दिखाई देते हैं। वृद्धावस्था में वज्रायुध दीक्षा ग्रहण कर तीव्र तपस्या करते हैं, फलस्वरूप मृत्यु के उपरान्त वे तृतीय ग्रैवेयक में इन्द्र बनते हैं। यहाँ से च्युत होकर वे राजा घनरथ के पुत्र मेघरथ के रूप में उत्पन्न होते हैं।

मेघरथ भी अतीव बलशाली हैं। उनमें क्षत्रियोचित दर्प और गौरव वर्तमान है। पिता की आज्ञा से जब वे राजा निहितशत्रु की कन्याओं से विवाह करने सुमन्दिरपुर जाते हैं उस समय मार्ग में राजा सुरेन्द्रदत्त उन्हें अपने राज्य में होकर जाने की आज्ञा नहीं देता। इस पर मेघरथ का क्षत्रियोचित गौरव जाग उठता है। वे सुरेन्द्रदत्त के दूत से कहते हैं:—

न क्षत्रियाणां तनयाः परेऽपि पन्थानमूरीकृतमुत्सृजन्ति।
राजाधिराजस्य वयं तु पुत्रास्त्यक्तुं किमुत्साहमपि प्रकुर्मः ॥[1]

इन पंक्तियों में वज्रायुध के क्षत्रियोचित दर्प की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

मेघरथ ज्ञानत्रयधर हैं। वे अपने पिता को वेश्या और मनोरमा के कुर्कुटों का पूर्वभव बताते हैं। इसी प्रकार उद्यान में व्यन्तरों का ताण्डवनृत्य होने पर एक विमानस्थ

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १०, श्लोक ७१

देव उन्हें प्रणाम कर और उनसे क्षमा माँग कर चला जाता है, प्रियमित्रा द्वारा इस रहस्य का कारण पूछे जाने पर वे तत्सम्बन्धी विस्तृत विवरण बताते हैं ।

मेघरथ शरणागतवत्सल हैं । कपोत की रक्षा के लिए वे बाज को कपोत के बराबर अपना माँस देने को प्रस्तुत हो जाते हैं । जब पर्याप्त माँस काटने पर भी वह कपोत के बराबर नहीं होता तो वे स्वयं तुला में बैठ जाते हैं और स्वयं को बाज के अर्पण कर देते हैं । उनका यह कृत्य शिवि का स्मरण कराता है । मेघरथ धार्मिक व्यक्ति हैं । मुनियों की देशना में उन्हें बड़ी अनुरक्ति है । घनरथ मुनि की देशना सुन कर वे स्वयं दीक्षा ग्रहण करके तप करते हैं । मृत्यु के पश्चात् वे सर्वार्थसिद्ध विमान में गीर्वाण होते हैं जहाँ से च्युत होकर वे शान्तिनाथ जिनेश्वर के रूप में अवतीर्ण होते हैं ।

शान्तिनाथ हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन के अचिरा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र हैं । वे जैनों के सोलहवें तीर्थंकर हैं । उनके जातकर्म आदि संस्कार देवताओं द्वारा सम्पन्न होते हैं । पिता के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर वे राजा बनते हैं । शान्तिनाथ श्रेष्ठ वीर हैं । दिग्विजय में सर्वत्र उनकी जय होती है । उनमें वैराग्य की भावना शैशव से ही दृष्टिगत होती है जिससे प्रेरित होकर वे बाद में दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं । केवलज्ञान प्राप्त कर लेने पर वे देशना देते हैं । इन अवसरों पर उनके उपदेशक-रूप का सुन्दर चित्रण हुआ है । अन्त में वे अपनी उग्र तपस्या के कारण निर्वाण प्राप्त करते हैं ।

चक्रायुध

चक्रायुध शान्ति-जिनेश्वर के पुत्र हैं । वे अपने पूर्वभवों में शान्तिनाथ के पूर्वभवों के साथ उत्पन्न होते रहते हैं । प्रथम भव में वे श्रीषेण की पत्नी अभिनन्दिता होते हैं जो अपने पुत्र इन्दुषेण-विन्दुषेण को वारांगना के लिए परस्पर युद्ध करते देख कर श्रीषेण के साथ विषमय पद्म सूँघ कर मर जाती है । द्वितीय भव में वे श्रीषेण-अभिनन्दिता युग्मी और तृतीय भव में सुर होते हैं । चतुर्थ भव में अभिनन्दिता का जीव त्रिपृष्ठ-पुत्र विजय के रूप में अवतीर्ण होता है । पिता के प्रव्रज्या ग्रहण करने पर विजय राजा बनते हैं । उन्हें अपनी पत्नी सुतारा से अति प्रेम है । सुतारा-रूप-धारिणी मायाविनी जब अपने को कुर्कुटाहि से दष्ट बता कर मर जाती है तो उसके शव के साथ विजय भी चिता पर बैठ जाते हैं ।

विजय को धर्म में रुचि है । वे मुनियों की धर्मदेशना को भक्तिपुरःसर सुनते हैं । नन्दनवन में अर्हद् को प्रणाम करते समय वे वहाँ विमलमति और महामति चारण-मुनियों को देखते हैं तो वे उन्हें भी श्रद्धाभक्ति से प्रणाम कर उनकी देशना सुनते हैं । उनसे अपनी आयु के केवल छब्बीस दिन शेष रह जाने की बात सुन कर वे उस पर विश्वास कर लेते हैं और दीक्षा ग्रहण कर तपश्चर्या करते हैं । मृत्यु के पश्चात् वे पंचम भव में सुस्थितावर्त में मणिचूल विबुध होते हैं । यहाँ से च्युत होकर षष्ठ भव में वे राजा स्तिमितसागर के पुत्र अनन्तवीर्य के रूप में उत्पन्न होते हैं ।

अनन्तवीर्य वेश बदलने की विद्या में सिद्धहस्त हैं । किराती नर्तकी का रूप वे इतनी कुशलता से धारण करते हैं कि दमितारि उन्हें स्त्री समझ कर अपनी पुत्री को नृत्य-शिक्षा

देने के लिए अन्तःपुर में रख देता है। अनन्तवीर्य शूरवीर और पराक्रमी योद्धा हैं। दमितारि जैसे प्रतापी राजा को हराना उनकी वीरता का सच्चा निदर्शन है।

सप्तम भव में वे प्राग्भव दुष्कर्म से आद्या नरकावनी में जाते हैं और अष्टम भव में मेघवाहन विद्याधरेश के पुत्र मेघनाद होते हैं। इस भव में मेघनाद अच्युतेन्द्र के प्रबोध पर दीक्षा ग्रहण करते हैं, फलस्वरूप मृत्यु के पश्चात् नवम भव में अच्युत कल्प में सामानिक सुर होते हैं। यहाँ से च्युत होकर दशम भव में वे वज्रायुध के पुत्र सहस्रायुध के रूप में अवतीर्ण होते हैं। इस भव में भी वे वज्रायुध मुनि की देशना से दीक्षा ग्रहण करके, पादपोपगम अनशन करके प्राणत्याग करते हैं, फलस्वरूप एकादश भव में वे तृतीय ग्रैवेयक में इन्द्र बनते हैं। यहाँ से च्युत होकर द्वादश भव में वे घनरथ के पुत्र दृढ़रथ के रूप में उत्पन्न होते हैं। दृढ़रथ अपने ज्येष्ठ भ्राता मेघरथ के चरणचिह्नों पर चलते हैं। देशना-श्रवण में उनकी भी रुचि है। घनरथ मुनि की देशना सुन कर दृढ़रथ दीक्षा लेते हैं और मृत्यु के पश्चात् त्रयोदश भव में सर्वार्थसिद्ध में गीर्वाण बनते हैं। यहाँ से च्युत होकर चतुर्दश भव में वे चक्रायुध-रूप में उत्पन्न होते हैं। चक्रायुध शान्तिनाथ-जिनेश्वर के पुत्र हैं। शान्तिनाथ के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर वे हस्तिनापुर के शासक बनते हैं। काव्य में वे इन्द्र के साथ शान्तिनाथ-जिनेश्वर की देशनाएँ सुनते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

अशनिघोष

अशनिघोष 'शान्तिनाथचरित्र' का खलनायक है। प्रथम भव में वह धरणिजड ब्राह्मण का कपिला दासी के गर्भ से उत्पन्न कपिल नामक पुत्र होता है। दासेरक होने पर भी उसे ईश्वरदत्त प्रतिभा प्राप्त है जिसके कारण वह विधिवत् अध्ययन के बिना ही, केवल कर्णश्रुति से ही चतुर्दश विद्याओं का ज्ञाता हो जाता है। उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उसे विप्र जान कर सत्यकि अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह उससे कर देते हैं।

कपिल दासेरक होने पर भी अपने को महाविप्र कहता है और दूसरों को धोखा देता है, किन्तु उसकी अकुलीनता उसके ही कार्यों से सत्यभामा पर प्रकट हो जाती है। फलतः वह राजा की सहायता से उससे मोक्ष पा लेती है। कपिल को सत्यभामा से अतीव प्रेम है। राजा से कहे गये उसके ये शब्द उसके अतिशय पत्नी-प्रेम के द्योतक हैं।

प्रभाविना चेदवतिष्ठतेऽर्कश्चन्द्रः स चेच्चन्द्रिकया विनाऽपि।
पृथ्वीश! चेच्चेतनया विनाऽत्मा विनैतया स्थातुमलं तदाऽस्मि ॥[1]

किन्तु, राजा के भय से कपिल सत्यभामा के बिना ही घर लौट आता है। द्वितीय भव में कपिल-जीव प्राग्भव के दुष्कर्मों के फलस्वरूप धम्मिल जटी बनता है। इस भव में ग्रीष्म में पंचाग्नि तप, वर्षा में सतत् पयोदधारास्नान, शीत में सतत नग्न रह कर शीत सहन करने एवं कूप, वापी, तड़ाग आदि के निर्माण कराने के कारण कपिल-जीव को नाना योनियों में भटकना होता है। अन्त में वह अशनिघोष विद्याधरेश के रूप में उत्पन्न होता

---

(१) **शान्तिनाथचरित्र, सर्ग, २ श्लोक ६५**

है। प्राग्जन्म के स्नेह के कारण वह सत्यभामा-जीव सुतारा की प्राप्ति के लिए सुवर्ण-हरिण बन कर विजय को आकृष्ट करता है और अपनी माया फैला कर विजय को भ्रान्त करके सुतारा का अपहरण करता है, फलस्वरूप विजय के साथ उसका युद्ध होता है। युद्ध में पराजित होने पर वह दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

प्रथम भव में सुतारा, सात्यकि-पुत्री सत्यभामा है। वह बड़ी चतुर है। जब उसका पति वर्षा में प्रेक्षणक से सूखे वस्त्रों को पहने हुए ही लौटता है और कहता है कि विद्या के प्रभाव से उसके वस्त्र नहीं भीगे, तो वह मन-ही-मन जान जाती है कि

सुतारा उसका पति नग्न होकर आया है, अन्यथा विद्याबल से शरीर भी न भीगता। निश्चय ही उसके पति का कुल उज्ज्वल नहीं है, यह विचार कर वह कपिल में तुच्छरति हो जाती है, क्योंकि वह स्वाभिमानिनी स्त्री है जिसकी यह मान्यता है कि:—

कुलाङ्गनानां विषयोपसेवनं कुलीनभर्त्रा हि सह प्रशस्यते।[1]

सुतारा प्रगतिशील नारी है। वह उन स्त्रियों में नहीं जो किसी से वार्तालाप करने में संकोच का अनुभव करें या गृहप्रांगण की परिधि के बाहर पैर रखने में झिझकें। वह अपने श्वसुर से वार्तालाप करके कपिल की अकुलीनता का सारा विवरण जान लेती है और राजसभा में जाकर राजा से अकुलीन पति से मोक्ष पाने में सहायता की याचना करती है। उसकी अभिलाषा पूर्ण होती है। पति से मोक्ष पाकर वह राजभवन में रह कर ही धर्माचरण करती है। किन्तु, राजा-रानी के मरने के बाद, कहीं कपिल उसे न ले जाए, इस डर से वह विषपद्म सूँघ कर मर जाती है। सत्यभामा एक ऐसी नारी है जिसे प्राणों की अपेक्षा धर्म प्रिय है। अकुलीन पति के साथ रहने की अपेक्षा वह प्राण-त्याग करना ही ठीक समझती है।

मृत्यु के बाद सत्यभामा-जीव द्वितीय भव में शिखिनन्दिता-सत्यभामा युग्मी तथा तृतीय भव में सुरलोक में गीर्वाण बनता है। चतुर्थ भव में सत्यभामा-जीव अर्ककीर्ति की पुत्री सुतारा होती है। उसका विवाह विजय से होता है। प्राग्जन्म-स्नेह से कपिल-जीव अशनिघोष छल-प्रयोग से उसका अपहरण करता है, किन्तु अशनिघोष की पराजय के अनन्तर वह अपने पति विजय के पास पुनः आ जाती है। सुतारा को अपने पति विजय का असीम प्रेम प्राप्त है।

'शान्तिनाथचरित्र' के पात्रों में उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ मनोवैज्ञानिक आधार पर आधारित न होकर प्राग्जन्म के पाप-पुण्यों अथवा घटनाओं पर आधारित हैं जिनके कारण उनके चरित्रों में वैविध्य का अभाव है। उनकी चरित्रगत विशेषताएँ पर्यवसान में उन्हें दीक्षा ग्रहण करने की ओर ही प्रेरित करती हैं।

मुनिभद्रसूरि की प्रवृत्ति प्रकृति-चित्रण में कम रमी है। प्रकृति के लम्बे-लम्बे वर्णन जैसे 'धर्मशर्माभ्युदय', नरनारायणानन्द' अथवा 'सनत्कुमारचरित्र' में पाये जाते हैं, उनके

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १, श्लोक १५४

काव्य 'शान्तिनाथचरित्र' में नहीं पाये जाते । फिर भी महाकाव्य के अनेक वर्ण्यविषयों— प्रातः, सन्ध्या, सर, उपवन, एवं विभिन्न ऋतुओं—का उसमें समावेश हुआ है । इनका वर्णन बहुत संक्षेप में है और परम्परा-निर्वाह के लिए ही उनको स्थान दिया गया प्रतीत होता है ।

प्रकृति-चित्रण

कथानक के प्रवाह में प्रसंगवश जब कवि प्रदेश-विशेष का वर्णन करता है तब प्रकृति में उसकी तन्मयता दृष्टिगोचर नहीं होती । कुरुक्षेत्र का वर्णन करते समय वह प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण की उपेक्षा कर उस देश की एक विशेषता—उर्वरता—पर इस प्रकार प्रकाश डालता है जिससे दृश्य का यथार्थ चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित नहीं होता:—

भवन्ति धान्यान्यपि यत्र सन्ततं स्पृहां प्रकुर्वन्ति सुपर्वणामपि ।
प्रवर्तमानं त्वपरोपवर्तने क्षमाणि दुर्भिक्षमपासितुं परम् ।।[1]

कथावस्तु की घटनाओं के अनुकूल कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण भी किया है, किन्तु ऐसे स्थल बहुत-कम हैं । मंगलकुंभ कथानक के अन्तर्गत अपने पिता के साथ उद्यान में जाता हुआ बालक मगलकुंभ मार्ग में जो दृश्य देखता है उसमें प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य सुरक्षित है । मंगलकुंभ पिता से वृक्षों और लताओं के नाम पूछता जाता है, आश्चर्य से पल्लवों का स्पर्श करता जाता है और पके फलों को तोड़ता जाता है । मार्ग में कहीं वह सिर पर दधि-दुग्ध का घट धारण किये हुए गोपांगनाओं को देखता है, कहीं पशुओं को हरी-भरी दूर्वा चरते देखता है तो कहीं ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को देखता है । प्रकृति का यह दृश्य इन शब्दों में अत्यन्त सजीव बन पड़ा है:—

पृच्छन् क्वचिद्विटपिनां विटपानतानां नामानि लोकविदितान्यपि न श्रुतानि ।
वल्लीदलानि विपुलानि स विस्मयःसन् गृह्णन् क्वचिच्छिशुतयाऽतिचलाचलत्वात् ।।
उद्यद्दिनाधिपतिमण्डलसन्निभानि कुत्रापि पाककलकोलफलानि चिन्वन् ।
गोपांगनाः क्वचन लोचनगोचरेऽपि कुर्वन् पयोदधिघटीः शिरसा दधानाः ।।
दूर्वाप्रवालशकलानि सुकोमलानि भास्वत्तुरङ्गमतनूरुहसोदराणि ।
मत्तं पुरीपरिसरे परितश्चरन्तं कुत्रापि तर्णककुलं समवेक्षमाणः ।।
छायां भजन् क्वचिदपि श्रमघर्मतोयैराप्लावितः समुदयत्सुकुमारभावः ।
अभ्रंलिहावनिरुहावलिलक्ष्यमाणां दूरादवैक्षत वनीमवनः श्रियां सः ।।[2]

प्रकृति और कथावस्तु के सामंजस्य में कवि ने सर्वत्र अपनी कुशलता का परिचय दिया है । कालसम्बन्धी ऋतुवर्णनों को भी कथा में स्वाभाविक-रूप से उपस्थित किया गया है । उदाहरण के लिए शान्तिनाथ के गर्भ में आने से लेकर उनके उत्पन्न होने तक के बीच वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त का वर्णन किया गया है जो एक सीमा तक अवसर के अनुकूल है । इन वर्णनों में एक ओर ऋतु-सम्बन्धी वातावरण का प्रभाव परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर कवि का धार्मिक आग्रह दीख पड़ता है । वर्षा में मयूरों का

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १४, श्लोक ३ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक १३५—१३८

सर्प-भक्षण देख कर इसके कारण की खोज में कवि की धार्मिकता इन शब्दों में सचेष्ट हो उठती है:—

द्विजिह्वभावं न सहिष्यते प्रभुः पुराऽपि तन्नाशमतो विदध्महे ।
इति द्विजिह्वक्षयबद्धविभ्रमाः कलापिनः प्रावृषि नेदुरुन्मदाः ॥[1]

शरद् ऋतु में जल के निर्मल हो जाने के इस वर्णन में भी कवि की यही भावना दृष्टिगत हो रही है:—

जडाशयानां कलुषत्वशालिनां न दर्शनं तस्य विभोर्भविष्यति ।
इतीव तन्निर्मलतां प्रकुर्वती समाययौ हंसकनादिनी शरत् ॥[2]

वर्षा और शरद् की भाँति हेमन्त और शिशिर ऋतु के चित्रण में भी वातावरण का प्रभाव लक्षित होता है। हेमन्त में जिनेश्वर का जन्म न होने के कारण हेमन्त के दिवस अपने प्रकाश को निरर्थक समझते हैं। इसी कारण वे दुःख से दिन-पर-दिन सिकुड़ते (छोटे होते) जाते हैं। ग्रीष्म में सूर्य का तेज प्रखर होने लगता है इसका कारण भी जिनजन्म-सम्बन्धी वातावरण का प्रभाव ही अंकित किया गया है:—

मयि प्रभो वत्सलता विलोक्यते जनुर्यदन्यत्र ऋतौ बभूव न ।
इतीव मल्ली सुमदम्भसद्यशा बभार तेजः प्रसरः तपागमः ॥[3]

प्रकृति के इन वर्णनों में यद्यपि मानवीय आरोप पाये जाते हैं, किन्तु प्रमुखतः इन सब वर्णनों में अचिरा के गर्भ में स्थित जिनेश्वर कवि के मन और मस्तिष्क पर छाये रहे हैं, फलस्वरूप उसकी प्रकृति में भी भावी जिनजन्मसम्बन्धी पूत वातावरण का सघन प्रभाव अंकित हुआ है। अतः ये वर्णन जिनेन्द्र-जन्म-सम्बन्धी घटना के लिए पृष्ठाधार बन गये हैं।

देश-काल-सम्बन्धी वर्णनों में कथावस्तु के अनुरूप घटना-स्थितियाँ कहीं-कहीं आदर्श और अलौकिक प्रकृति का निर्माण भी करती दिखायी देती हैं। शान्तिनाथ के जन्म के अवसर पर त्रिलोकी में एक अपूर्व प्रकाश व्याप्त हो जाता है जिससे नरकवासियों को भी अतीव सुख प्राप्त होता है, आकाश में दुन्दुभि बजने लगती है और अनुकूल पवन प्रवाहित होने लगता है:—

तदा सुखं दुर्गतिवासिनामपि क्षणं महानन्दविवर्णिकाऽभवत् ।
समुल्ललास त्रिजगत्प्रकाशकस्तदा प्रकाशः समभानुभूरिव ॥
दिवि स्वयं दुन्दुभयोऽनदंस्तमां तदा प्रणुन्ना इव पुण्यकर्मणा ।
तथाऽनुकूलाः पवनाः ववुः परं निजां ब्रुवाणा इव कामरूपताम् ॥[4]

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति को उद्दीपन-रूप में भी चित्रित किया है। वसन्त ऋतु की

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १४, श्लोक ६२　(२) वही, सर्ग १४, श्लोक ६३
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक ८१　(४) वही, सर्ग १४, श्लोक ८७, ८६

प्रकृति विलासीजनों के मन को उद्वेलित करती है, मानिनी स्त्रियों को मान-त्याग करने पर बाध्य करती है और भृंग-समूह को उन्मत्त बना देती है:—

प्रोल्लासयन् कामिमनांसि कामं मानं निरस्यन्नपि मानिनीनाम् ।
उन्मादयन् भृङ्गकुलानि पुष्पैरन्येद्युरागात् स ऋतुर्वसन्तः ॥

'शान्तिनाथचरित्र' में प्रकृति का मानवीकरण भी यत्र-तत्र किया गया है । निम्नोद्धृत पंक्तियों में प्रावृट् को वधू के रूप में चित्रित किया गया है:—

समुन्नमत्पीनपयोधरा रसं प्रपुष्णती केतकपत्ररोचना ।
प्रवर्तयन्ती सुमनोविकाशनं वधूरिव प्रावृडुपागमत्तदा ॥[2]

'शान्तिनाथचरित्र' की प्रकृति मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित भी चित्रित की गयी है । उसमें आत्मीय सहानुभूति के दर्शन भी यत्र-तत्र होते हैं । यद्यपि उत्प्रेक्षा के कारण प्रकृतिगत सहानुभूति का यह रूप अधिक शक्तिशाली नहीं बन सका है, फिर भी उसे प्रकृति का मानवीकरण ही कहा जाएगा । बसन्त ऋतु में सपत्नीक वज्रायुध के उपवन में जाते समय प्रकृति वज्रायुध का स्वागत करती हुई प्रतीत होती है । अभ्यागत के श्रमापनोद के लिए पुष्प पाद्य दे रहे हैं:—

पुष्पाणि यस्मिन्मकरन्दजातं श्च्योतन्ति वातापहतानि शीतम् ।
श्रमापनोदाय नृपात्मजस्य समागतस्येव दिशन्ति पाद्यम् ॥[3]

ऐसे स्थलों पर प्रकृति के संवेदनात्मक-रूप के चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है ।

चौदहवें सर्ग में जिनेश्वर तथा अचिरा के सौन्दर्य-वर्णन में प्रकृति का आलंकारिक रूप हमारे सम्मुख आता है । इन स्थलों पर मानवीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के द्वारा प्रकृति के पदार्थों का चित्रण किया है । इस प्रकार यद्यपि 'शान्तिनाथचरित्र' में प्रकृति को प्रमुख स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी उसमें प्रकृति का चित्रण विविध रूपों में हुआ है और कहीं-कहीं उसमें सहज स्वाभाविकता भी विद्यमान है ।

सौन्दर्य-वर्णन

'शान्तिनाथचरित्र' में यत्र-तत्र जो सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत किये गये हैं उनमें जिनेश्वर शान्तिनाथ और अचिरा के सौन्दर्य-चित्र प्रमुख हैं । अधिकतर कवि ने परम्परागत उपमानों की योजना करके अंगों के स्वाभाविक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है । चौदहवें सर्ग में शान्तिनाथ का नखशिखवर्णन किया गया है, जिसमें शान्तिनाथ के शरीर के समस्त अंगों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है । भुजाओं के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए मृणाल परम्परागत उपमान है । निम्न

---

(१) **शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १०, श्लोक ४२**
(२) **वही, सर्ग १, श्लोक १३१**
(३) **वही, सर्ग १०, श्लोक ५४**

पंक्तियों में शान्तिनाथ की भुजाओं के सम्मुख मृणाल की कान्ति को नगण्य चित्रित करके भुजाओं की सौन्दर्यातिशयता व्यक्त की गयी है:—

प्रभोर्भुजाभ्यां विजितानि लीलया ध्रुवं मृणालानि न तानि चान्यथा ।
निलीय मन्दाक्षभरादिवानिशं जलाशयान्तः स्थितिमेव चक्रिरे ।।[1]

इसी प्रकार केशों की सुन्दरता के लिए चमरी के केशपाश कविसमयसिद्ध उपमान हैं । शान्तिनाथ के केशों के लावण्य को देख कर चमरी के लज्जित होकर हिमगिरि-प्रदेश में चले जाने का वर्णन करके केशों के असीम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की गई है:—

दृष्ट्वा शान्तेर्निरुपममिदं केशपाशं चमर्यः
सम्भाव्यैतद् व्यपगतफलं स्वस्य बालप्रियत्वम् ।
लज्जाक्रान्ता हिमगिरिभुवं संश्रयन्ते स्म नूनम्
युक्तं स्त्रीत्वे व्यवसितमिदं मानिनी सा हि जातिः ।।[2]

अचिरा के सौन्दर्य-वर्णन में भी उपमेय अंगों के समक्ष उपमानों की हेयता दिखा कर अंगों की सौन्दर्योत्कृष्टता की अभिव्यक्ति की गयी है । निम्नलिखित पंक्तियों में अचिरा के मुख को पूर्ण चन्द्र से भी अधिक रमणीय चित्रित किया गया है:—

आस्यं यस्या हसति सुतरां पौर्णमास्याः सुधांशुं
तेनैवायं प्रतिपदमितः प्रेक्ष्यते क्षीयमाणः ।
आलोकाय प्रकृतिमहसा सर्वथा व्यावृतानां
युक्तं चैतज्जगति महतां निर्जितानां परेण ।।[3]

इस प्रकार मुनिभद्रसूरि ने विविध सौन्दर्य-चित्र उपस्थित करने में परम्परागत प्राकृतिक उपमानों का ही प्रयोग किया है, किन्तु इन प्रयोगों में कवि की कल्पनाएँ अधिकांशतः मौलिक और सुन्दर हैं जिनके कारण उसके सौन्दर्य-चित्रों में रमणीयता का समावेश हो गया है ।

'शान्तिनाथचरित्र' में समसामयिक सामाजिक अवस्था का सुन्दर वर्णन हुआ है ।

समाज-चित्रण

विशेषकर उस युग में जन्म, विवाह आदि अवसरों पर सम्पन्न होने वाले सामाजिक-धार्मिक कृत्यों के विस्तृत विवरण उसमें उपलब्ध होते हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

समाज में पुत्र-प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुष अधिक व्यग्र दीख पड़ते हैं । वे पुत्रोत्पत्ति के लिए धर्माचरण करते हैं । उनका विश्वास है कि धर्माचरण से पुत्र-लाभ अवश्य होगा । तृतीय सर्ग में श्रेष्ठी धनदत्त पुत्र-प्राप्ति के लिए जिनालयों का निर्माण करा कर उनमें बिम्ब-प्रतिष्ठा कराता है, लेखकों को बहुत सा धन देकर धर्मग्रन्थ लिखाता है, जैन साधर्मिकों को

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १४, श्लोक १९० (२) वही, सर्ग १४, श्लोक १९५
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक २४

सदैव विविध भोज्य पदार्थों का भोजन कराता है, व्रतधारी साधु-साध्वियों को वस्त्रान्नपान देता है और पुष्पों से प्रतिदिन अर्हदर्चा करता है। उसकी धर्मसेवा सफल होती है और उस के घर पुत्र—मंगलकुम्भ—की उत्पत्ति होती है।

स्वप्न में लोगों का अगाध विश्वास है। उनकी दृढ़ मान्यता है कि शुभ स्वप्न शुभ फल और अशुभ स्वप्न अशुभ फल का दाता है। अभिनन्दिता स्वप्न में अपने मुख में सूर्य और इन्दु को प्रविष्ट हुआ देखती है और अपने पति श्रीषेण से इस स्वप्न का फल पूछती है। श्रीषेण स्वप्न के आधार पर उसके दो पुत्र उत्पन्न होने की भविष्यवाणी करते हैं। स्वप्न के आधार पर ही उत्पन्न पुत्रों के नाम बिन्दुषेण और इन्दुषेण रखे जाते हैं। इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग में रत्नध्वज की पत्नी कनकश्री स्वप्न में लतायुग्म—सुवर्णलता और पद्मलता—देखती है, फलस्वरूप उसके दो कन्या उत्पन्न होती हैं। उनके नाम भी स्वप्नानुसार सुवर्णलता और पद्मलता रखे जाते हैं। धनदत्त-भार्या आम्रच्छदपिहित जलपूर्ण कुंभ स्वप्न में देखती है। जब वह इस स्वप्न का वृत्तान्त अपने पति से कहती है तो वह प्रसन्न होकर इस स्वप्न को पुत्रोत्पत्ति का सूचक बताता है:—

जानेऽस्मि पूर्णकलसप्रविलोकनेन सूनुस्तवेन्दुमुखि ! सम्भविताऽचिरेण ।[1]

स्वप्न में मंगलकलश को देखने के कारण उत्पन्न पुत्र का नाम भी 'मंगलकुंभ' और 'मंगलकलश' रखा जाता है।

स्वप्नों के सम्बन्ध में कतिपय अन्य विश्वास भी प्रचलित हैं। जनसाधारण का विश्वास है कि स्वप्नचतुष्टय से बल, सप्तस्वप्न से विष्णु और चतुर्दश स्वप्न के देखने से जिनेश्वर की उत्पत्ति होती है।

पुत्र के उत्पन्न होने पर चतुर्दिक् हर्ष का वातावरण छा जाता है। मंगलकुम्भ के जन्म के अवसर पर उसका पिता धनदत्त कारागार से बन्दीजन को ससम्मान मुक्त कर देता है:—

कारागृहस्थितिमतः पुरुषान्समस्तान् ।
सत्कृत्य कृत्यविदरं व्यमुचन्महेच्छः ॥[2]

पुत्रजन्म की सूचना पाकर उच्च-स्वर से मंगलपाठ करते हुए छात्रों के साथ अध्यापक धनदत्त के द्वार पर आते हैं। धनदत्त के परिवार की स्त्रियाँ उनके मस्तक पर कुंकुम, विशेषक आदि का तिलक करती हैं। तत्पश्चात् धनदत्त उन्हें प्रचुर द्रव्य देकर ताम्बूलदान द्वारा सम्मानित करके विदा करता है। इस अवसर पर पौरस्त्रियाँ कांचनथाल में अक्षत, चन्दन आदि सामग्री लेकर बधाई देने धनदत्त के घर आती हैं और नवजात शिशु के पिता को चौक पर बिठा कर उसके भाल में तिलक लगाती हैं, उसके ऊपर अक्षत फेंकती हैं और उसे चिरायु होने तथा पुत्रपौत्रों से फलने-फूलने का आशीर्वाद देती हैं। धनदत्त प्रसन्न होकर उन्हें बहुमूल्य शुभ्र वसन प्रदान करता है। जन्म के छठे दिन धनदत्त अतुल धन व्यय करके

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ३, श्लोक ११३ (२) वही, सर्ग ३, श्लोक ११९

षष्ठीजागरण-समारोह मनाता है। इस अवसर पर वह सभी स्त्रियों को बहुमूल्य चीनांशुक प्रदान करता है। धनदत्त दसवें दिन पुत्र का नामकरण संस्कार करता है। इस अवसर पर ज्योतिर्विद् तथा नैमित्तिक बुलाये जाते हैं। वे शिशु का नाम 'मंगलकुंभ' रखते हैं। धनदत्त अपने पुत्र के लालन-पालन के लिए कई धात्रियाँ भी रखता है।[1]

समाज में समान धन वाले व्यक्तियों में ही मैत्री और विवाह उचित माने जाते हैं।[2] विवाह के अवसर पर भी मौहूर्तिकों और ज्योतिर्विदों को बुलाया जाता है। मंगलकुंभ के विवाह का मुहूर्त मौहूर्तिक ही बताते हैं और धनदत्त उन्हें धन-वसन से सम्मानित करके विदा करता है।[3] विवाह के अवसर पर मधुर ध्वनि वाले विविध वाद्य बजाये जाते हैं, सुन्दर स्त्रियाँ गीत गाती हैं[4] तथा वर-वधू के शरीर पर हरिद्रा-चूर्ण-युक्त सुगंधित तेल से उबटन करती हैं।[5] स्त्रियाँ स्वयं भी इस अवसर पर अपने अंगों को विविध आभूषणों, वस्त्रों, तथा शृंगार के अन्य उपकरणों से सज्जित करती हैं। वर गजारूढ़ होकर मण्डप-द्वार को जाता है। गज के पीछे-पीछे नारियों का समूह मधुर गीत गाता हुआ चलता है, वीणा, भेरी आदि वाद्य बजाये जाते हैं और भट्ट स्तुतिकाव्यों का पाठ करते हैं। मण्डपद्वार पर वर के गज से उतरने पर वधूपक्ष की स्त्रियाँ उसे अर्घ्य देती हैं और उसे गृह के भीतर ले जाती हैं। यहाँ वर मण्डप के नीचे एक सिंहासन पर आसीन हो जाता है।[6]

विवाह के समय वधू को भी सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया जाता है। परिवार की वृद्धा स्त्रियों के आदेश के अनुसार वह अपने मुख पर अवगुण्ठन डाल कर मातृकासद्म में मातृकाओं की पूजा करके मण्डप में आती है और वर के समीप भद्रासन पर आसीन हो जाती है। यहाँ शुभ मुहूर्त में पुरोहित द्वारा वर-वधू का हस्तमेलन कराया जाता है। इस समय वर अपनी मनचाही वस्तु श्वसुर से माँगता है और उसे पाकर ही वधू का हाथ छोड़ता है। मंगलकुंभ मण्डप में अपनी पत्नी का हाथ तभी छोड़ता है जब उसके श्वसुर उसे उसकी मनचाही वस्तु (पाँच अश्व) प्रदान करते हैं।

समाज में गान्धर्व-विवाह का भी प्रचलन है, विशेषकर राजा लोग स्वयं में अनुरक्त कन्या का अपहरण कर लेते हैं। अनन्तवीर्य कनकश्री का अपहरण करते हैं, यद्यपि इसके लिए उन्हें कनकश्री के पिता दमितारि से युद्ध करना पड़ता है। राजाओं द्वारा दूसरे नरेश की कन्या का अपहरण कदाचित् क्षत्रियों में अनुचित नहीं समझा जाता था।

कभी-कभी स्वयं कन्याएँ ही अपने योग्य पति को ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ती थीं। द्वितीय सर्ग में कौशाम्बी के राजा बल अपनी पुत्री श्रीकान्ता को अनन्तमति वेश्या के साथ

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ३, श्लोक १२०-१२८

(२) वित्तं ययोरेव समं जगत्यां कुलं ययोरेव समं प्रतीतम्।
मैत्री तयोरेव तयोर्विवाहस्तयोर्विवादश्च निरूपितोऽस्ति। —वही, सर्ग ४, श्लोक २६

(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ५९-६० (४) वही, सर्ग ४, श्लोक २६

(५) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ४, श्लोक १०८-११० (६) वही, सर्ग ४, श्लोक ११५-११८

वर ढूँढ़ने के लिए अनुमति प्रदान करते हैं और वह स्वयं वर की खोज में देश-देशान्तरों में जाती है।

विवाह में वर की कुलीनता और विद्या ये दो वस्तुएँ प्रधान-रूप से देखी जाती हैं। यही देख कर सत्यकि पण्डित अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कपिल से कर देते हैं। उपर्युक्त दोनों वस्तुओं - कुलीनता का विशेष महत्त्व है। जब सत्यभामा को कपिल की अकुलीनता का पता चलता है तो वह राज-साहाय्य से कपिल को छोड़ देती है, क्योंकि तत्कालीन समाज की मान्यता है:—

कुलाङ्गनानां विषयोपसेवनं कुलीनभर्त्रा हि सह प्रशस्यते।[1]

राजदरबारों में नर्तकियों की, विशेषकर सुन्दर नर्तकियों की माँग अधिक थी। अनन्तवीर्य की किराती और बर्बरी नामक नर्तकियों की कला की प्रसिद्धि सुन कर दमितारि उनकी माँग अनन्तवीर्य से करता है। राजपुत्रियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा भी दी जाती है। दमितारि नर्तकियों को अपनी पुत्री कनकश्री की संगीत-शिक्षा के लिए नियुक्त करता है।

जैन समाज में साधुओं और मुनियों की अत्यधिक मान्यता है। काव्य में जिनेन्द्र के समवसरण-वर्णन से जनता द्वारा मुनियों के प्रति प्रदर्शित किये जाने वाले सम्मान की झलक मिलती है। जैन लोग ब्राह्मणधर्म और उसके आचारों को हेय दृष्टि से देखते हैं जैसा कि कपिल के उदाहरण से स्पष्ट है।

इस प्रकार 'शान्तिनाथचरित्र' में तत्कालीन समाज से सम्बन्धित बहुमूल्य तथ्यों का समावेश है। काव्य का कथानक यद्यपि प्राचीन है, किन्तु उसकी उपकथाओं में तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन करके कवि ने अपने व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया है।

धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व

'शान्तिनाथचरित्र' मूलतः धार्मिक काव्य है, अतः उसमें अनेक स्थलों पर कवि ने धार्मिक विचारों को व्यक्त किया है। पुण्डरीकिणी नगरी में देशना करते हुए जिनेश्वर धर्म का माहात्म्य-प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार धर्माचरण से जीव वैभवशाली महान् कुल में जन्म लेता है।[2] इसके अनन्तर दान, शील, तप और धर्म के भेद से धर्म का चतुर्विधत्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया गया है:—

दानं सुपात्रविषये प्रतिपादनीयम्, शीलं विशिष्य विशदं परिपालनीयम्।
तप्यं तपश्च शुचिभावनया समेतं, धर्मं चतुर्विधमुदाहृतवाञ्जिनेशः॥[3]

इसी स्थल पर दानादि चारों धर्म-भेदों की विस्तृत व्याख्या की गयी है में बताया गया है कि जिन-धर्म का खण्डन करने से अमित दुःख प्राप्त होता

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १, श्लोक ५४ (२) वही, सर्ग ४
(३) वही, सर्ग ३, श्लोक

दशम सर्ग में क्षेमंकर मुनि अपनी देशना में धर्म को दयामूलक बताते हैं :—

धर्मं दयामूलमुशन्ति सन्त ऋते दयां नैव यतोऽस्ति धर्मः ।
धर्मार्थिना तेन दया विधेया स्वर्मोक्षसौख्याद्भुतरत्नखानिः ॥[1]

तेरहवें सर्ग में घनरथ मुनि पुनः धर्माचरण पर बल देते है और बताते है कि जो प्रमाद त्याग कर धर्म की आराधना करता है उसकी विपत्तियाँ भी सम्पत्ति में परिवर्तित हो जाती हैं। अपने कथन के समर्थन में वे शूरनृप का दृष्टान्त देते हैं। पन्द्रहवें सर्ग में तीर्थंकर शान्तिनाथ अपनी देशना में धर्म के बाधक पाँच विषयों — प्रमाद, क्रोध, मान, माया, लोभ—पर प्रकाश डाल कर उन्हें त्यागने और कैवल्य को अपनाने का उपदेश देते है। सोलहवें सर्ग में प्रमाद की भयंकरता का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

न द्वेषिहालाहलनाहलानां भयं प्रकुर्वन्ति बुधास्तथाऽत्र ।
लोकद्वयस्वार्थविनाशकस्य यथा प्रमादस्य दुरन्तकस्य ॥[2]

इसके बाद मदिरापान, विषयासक्ति कषायभोग, शयनाभिषंग और विकथानुरंग के भेद से प्रमाद का पंचविधत्व निरूपित किया गया है और प्रत्येक की हानियों पर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है।

दसवें सर्ग में चार्वाक मत का खण्डन करके जीवसिद्धि की गयी है। वज्रायुध के सम्यक्त्व की परीक्षा लेने के लिए चित्रचूलसुर चार्वाक का रूप धारण कर क्षेमंकर की सभा में आता है और धर्म, अधर्म, आत्मा और परलोक की सत्ता का खण्डन इन शब्दों में करता है :—

नैवाऽस्ति धर्मः स च नाप्यधर्मस्तदाश्रयो नास्ति तथैव चात्मा ।
गमी ततः कः परलोकमङ्ग ! तद्गामुकं कः प्रतिपद्यतां वा ॥
अभ्येतु को वा परलोकसत्त्वं प्रामाणिकोऽप्यत्र विना प्रमाणम् ।
बलीयसी हि स्फुटचक्षुराद्यप्रवृत्तिरेषा तदभावमाह ॥
तस्याप्यभावात्किमयं वृथात्मा तपोविधानैः परिखिद्यतेऽत्र ।
तत्साधनं नो सुखदुःखमुख्यभावैर्विधातुं सुधियाऽपि शक्यम् ॥[3]

अपने इन तर्कों के आधार पर चार्वाकरूपधारी चित्रचूलसुर पुण्य-पाप-सम्बन्धजन्य सुख-दुःख की सत्ता को अस्वीकार कर देता है। वज्रायुध चित्रचूलसुर को उसके प्राग्भवीय मनुष्य-जन्म की स्मृति दिलाते हुए कहते है कि वह (सुर) पूर्वभव में मनुष्य था और इस भव में वैभवशाली देव हुआ है। यदि आत्मा न होती तो फिर उसे यह सिद्धि कैसे मिलती ? अपने इन तर्कों के द्वारा वज्रायुध चार्वाकरूपधारी सुर के मत का खण्डन करके आत्मा और परलोक की सिद्धि करते हैं :—

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १०, श्लोक ८१ (२) वही, सर्ग १६, श्लोक ७
(३) वही, सर्ग १०, श्लोक २४

बभूविथ प्राच्यभवे पुमांस्त्वं देवोऽधुना दिव्यमहर्द्धिधाम ।
आत्मा न चेदस्ति कथं तदेतत्सिद्धि समाक्रामति निर्निमित्तम् ॥
नरामरप्राच्यभवोपलब्धा स्फुरत्स्वसंवित्ति कृतानुभूत्या ।
प्रत्यक्ष एवास्ति परोऽपि लोकस्तथापि किं मन्यस एतकं न ॥[1]

इस प्रकार 'शान्तिनाथचरित्र' में कवि ने जैन धर्म के नियमों और सिद्धान्तों का समावेश करके उसके धार्मिक मूल्य में वृद्धि की है। उसमें जैन धर्म के सामान्य नियमों के साथ-साथ कहीं-कहीं दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति भी की गयी है।

रस-परिपाक

'शान्तिनाथचरित्र' शान्तरसप्रधान काव्य है। इसमें यत्र-तत्र शान्त रस की योजना अच्छी बन पड़ी है। सप्तम सर्ग में विमलमति-महामति चारणर्षि के मुख से अपनी आयु के केवल २६ दिन अवशिष्ट जान कर विजय और अमिततेज का मन निर्वेद से परिपूर्ण हो जाता है। इस अवसर पर उनकी इन उक्तियों एवं कार्यों में शान्त रस की भव्य योजना हुई है :—

दुर्लभं मनुजजन्म हारितं हा प्रमाददसङ्गमेन नौ ।
ईदृशं कथमहो ! निरर्थकं सर्वशस्यपुरुषार्थसाधनम् ॥
अन्तरेण परमायुरर्जना श्रेयसो वितनुते न योग्यताम् ।
वेश्मनि ज्वलति जातवेदसा कस्य हास्यमपि नान्धुर्निमितः ॥

× × × × ×

न्यस्य राज्यमपि पुत्रयोः स्वयोस्तौ व्रतं जगृहतुर्महीपती ।
विश्वनन्दनगुणाभिनन्दनस्यान्तिके मुनिपतेः पितुर्गुरौ ॥[2]

यहाँ विजय और अमिततेज का हृदयस्थ 'निर्वेद' स्थायी-भाव है। आयु के केवल २६ दिन शेष रह जाने से सम्बन्धित मुनि की उक्ति आलम्बन-विभाव है। मुनियों का सान्निध्य, विगत जीवन को प्रमाद में नष्ट करने के विचार आदि उद्दीपन विभाव हैं। पश्चाताप करना और राज्य-त्याग कर व्रत ग्रहण करना अनुभाव हैं। उद्वेग, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

नवम सर्ग में दमितारि-पुत्री कनकश्री और अनन्तवीर्य के मिलन में संयोग-शृंगार की अभिव्यंजना इन पंक्तियों में हुई है :—

अनन्तवीर्योत्तमराजदर्शनाद्बभूव तद् दृक्कमलं विकस्वरम् ।
अनन्तवीर्यं निजघान वल्लभं कटाक्षबाणैर्निशितैर्यदेषिका ।
अनन्तवीर्यस्य तदाशये पुरा स्थितस्य कामस्य न किं तदीहितम् ॥

× × × × ×

शिशुत्वमारभ्य मयैव पालिता समेधितप्रौढिरियं निषेधति ।
मनैव पत्न्या सह भाषणं मियो निरस्य लज्जामिति सेति तं जगौ ॥[3]

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १०, श्लोक ३०, ३१ (२) वही, सर्ग ७, श्लोक ११३-११६

(३) वही, सर्ग ९, श्लोक ९४, ९६-९७

यहाँ कनकश्री का रति का आलम्बन अनन्तवीर्य है। राजभवन का एकान्त वातावरण और अनन्तवीर्य की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव है। कनकश्री के नेत्रों का चमकना, कटाक्षपात करना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, व्रीड़ा आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से कनकश्री की हृदयगत रति संयोग-शृंगार के रूप में परिणत होती है।

पंचम सर्ग में अशनिघोष विजय को छल कर सुतारा का अपहरण करने के लिए अपनी माया का विस्तार करता है। फलस्वरूप सुतारारूपधारिणी मायाविनी को सर्प डँस लेता है और वह मरने का नाट्य करती है। सुतारा को मरा हुआ देख कर विजय शोक-विह्वल होकर प्रलाप करने लगता है। इस प्रसंग में निम्नोद्धृत पंक्तियों में करुण रस की योजना दीख पड़ती है :—

> हंसेन युक्तां नलिनीमिवासौ तां प्रेयसीं प्रेक्ष्य पपात भूमौ।
> आस्वादितोन्मत्तकवन्मुमूर्च्छ पद्मोपलम्भे प्रथमं निदानम् ॥
> पद्माकरास्फालननित्यशैत्यगन्धोद्धरारामसमीरणेन।
> स प्राप्तचैतन्यभरो धरेन्द्रश्चक्रे विलापानिति मुक्तधैर्यः ॥[1]

यहाँ शोक स्थायी-भाव है। मृत सुतारा (-रूपधारिणी मायाविनी) आलम्बन विभाव है। उसके शरीर को प्राणरहित पृथ्वी पर पड़ा देखना उद्दीपन विभाव है। मूर्च्छित होना, अधीर होकर विलाप करना आदि अनुभाव हैं। उद्वेग, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

इसी सर्ग में विजय के मुख से सुतारापहरण का वृत्तान्त सुन कर क्रोधान्ध अमिततेज के इस चित्रण में रौद्र-रस साकार हो उठा है :—

> कुर्वल्ललाटे भ्रुकुटिं प्रकोपात्ताम्रीकृतापाङ्गविलोचनास्यः।
> ऊचेऽर्ककीर्तिप्रभवक्षितीशः संरम्भवान् श्रीविजयं प्रतीदम् ॥
> आदाय कस्तक्षकमौलिरत्नं कोटीरकोटे. कुरुतां विभूषाम्।
> सौवर्णपक्षान् परिगृह्य तूणबाणान् सपक्षांश्च जिजीविषुः कः ॥[2]

अनन्तवीर्य-दमितारि तथा विजय-अशनिघोष के युद्ध से सम्बन्धित घटनाओं के वर्णन में अनेक स्थलों पर वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। वीर रस का एक उदाहरण लीजिए :—

> आदेशतः श्रीविजयस्य राज्ञस्तूर्याण्यवाद्यन्त रणोन्मुखानि।
> यन्नादमाकर्ण्य भटाः समग्राः सन्नह्य सन्नह्य समागमंश्च ॥
> संग्रामतूर्येषु नदत्सु हर्षाद्वीरा दधुः कण्टकपेटकानि।
> तैरेव तत्कङ्कटबन्धनानि त्रुट्यन्ति भूयस्समयोजयंश्च ॥[3]

यहाँ सैनिकों के हृदय का उत्साह स्थायी-भाव है। शत्रु अशनिघोष आलम्बन

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ५, श्लोक ९७–९८ (२) वही, सर्ग ५, श्लोक ११६–११७
(३) वही, सर्ग ५, श्लोक १४६–१४७

विभाव है। सुतारा का अपहरण, विजय द्वारा रणप्रयाण की आज्ञा देना तथा संग्रामतूर्य का बजना उद्दीपन-विभाव हैं। शूरवीरों का एकत्रित होना, कवच धारण करना आदि अनुभाव हैं। गर्व, आवेग, औत्सुक्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। वीरों के युद्धप्रयाण-जनित उत्साह की वीर रस में परिणति का यहाँ सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

'शान्तिनाथचरित्र' में भयानक रस की छटा भी यत्र-तत्र दीख पड़ती है। सोलहवें सर्ग में एक भयंकराकृति पुरुष के चित्रण में भयानक रस का परिपाक अच्छा हुआ है।[1] वात्सल्य रस की छटा भी काव्य में यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है। मंगलकुम्भ कथानक के अन्तर्गत मंगलकुंभ की बाल-चेष्टाएँ माता-पिता के हृदय में वात्सल्य-रति का संचार करती हैं। जैसे :—

समागतं तं पितरौ समीक्ष्य प्रमोदमासेदतुरंजसाऽपि।
गाढं समालिङ्ग्य चुचुम्बतुस्तच्छिरोऽम्बुजं षट्पददम्पतीव ॥[2]

यहाँ शिशु मंगलकुंभ आलम्बन-विभाव है और उसकी शिशु-क्रीड़ाएँ उद्दीपन-विभाव हैं। उसका सिर चूमना, उसे छाती से लगाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग आदि संचारी-भाव हैं। मंगलकुंभ के माता-पिता की हृदयस्थ पुत्रविषयक रति स्थायी-भाव है, जिसकी परिणति वात्सल्य रस में होती है।

इस प्रकार 'शान्तिनाथचरित्र' में विविध रसों का परिपाक दीख पड़ता है। उसमें कवि मानव-हृदय की विभिन्न मनोदशाओं की अभिव्यक्ति में सफल हुआ है।

'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा में प्रौढ़ता, लालित्य और अनेकरूपता विद्यमान है। कतिपय अपवादों को छोड़ कर उसमें प्रायः सर्वत्र प्रसादगुणयुक्त भाषा का प्रयोग किया गया है। 'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा की प्रथम विशेषता उसकी अलकृति और

भाषा

साजसज्जा है। कवि ने अपनी भाषा को सजाने के लिए शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत किया है। यमक का प्रयोग तो स्थल-स्थल पर मिलता है, किन्तु उससे भाषा की सरलता को कोई व्याघात नहीं पहुँचा है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

तवोत्तमाङ्ग ! क्रमवन्दनात् प्रभो ! ममोत्तमाङ्गस्य सदोत्तमाङ्गता।
अजायतैवेति विमृश्य राट् तदा निजोत्तमाङ्गं नमयाम्बभूव सः ॥[3]
न वलयापहृतौ तव केवलं न वलयाक्षि हृतौ मनसोऽस्म्यलम्।
कुवलयाक्षि ! च सक्थनि दक्षिणे विहितवानहमस्मि तवाङ्कनम् ॥[4]

यमक के समान ही 'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा में अनुप्रास का भी बहुत प्रयोग हुआ है जिसके कारण भाषा में नादसौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। ललित अन्त्यानुप्रासों की योजना काव्य में अनेक स्थलों पर मिलती है। यथा :—

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १६, श्लोक ११७-१२० (२) वही, सर्ग ४, श्लोक १४१
(३) वही, सर्ग १४, श्लोक २०३ (४) वही, सर्ग ८, श्लोक १५१

जायाऽपि तस्य समजायत सोमचन्द्रा
स्वाङ्गोत्थगौरिमपराजितसोमचन्द्रा ।
आस्यप्रभाहसितशारदसोमचन्द्रा
सौजन्यवासपरिवर्द्धितसौम्यचन्द्रा ।।
भार्याऽपि तस्य समजायत सत्यभामा
चन्द्रावदातघनसातगुणाभिरामा ।
पुण्यानुभावपरिपूरितचित्तकामा
शीलश्रियाभवनविश्वविवर्तिवामा ।।[1]

'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा की तीसरी विशेषता है उसमें सूक्तियों का यथास्थान प्रयोग। यद्यपि काव्य में सूक्तियों की बहुलता तो नहीं है, फिर भी वे यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं। जैसे :—

संबद्धः स विसर्जनेन सह चेत् स्वर्णस्य तत् सौरभम् ।[2]
कुलानुमानेन विचेष्टते जनः ।[3]
कुलाङ्गनानां विषयोपसेवनं कुलीनभर्त्रा हि सह प्रशस्यते ।[4]
एतां यदि नात्मकान्तां करोमि तन्नाम न तातजातः ।[5]

'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा में सरलता और बोधगम्यता है। सामान्यतया दीर्घ-समासबहुला पदावली का प्रयोग उसमें कम किया गया है। प्रसादगुणमयी भाषा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :—

पुत्रं विना न भवनं सुषमां दधाति
चन्द्रं विनेव गगनं समुदग्रतारम् ।
सिंहं विनेव विपिनं विलसत्प्रतापम्
क्षेत्रस्वरूपकलितं पुरुषं विनेव ।।[6]

जहाँ कवि ने लम्बे समास से युक्त पदावली का प्रयोग किया है वहाँ भाषा में क्लिष्टता आ गयी है। जैसे :—

प्रदीपरत्नाभरणप्रभाभरप्रणाशितध्वान्तविविक्तशक्तयः ।
अवादिषुस्ताः रचितांजलिक्रमास्ततु श्रिताः कल्पलता इवाथ तौ ।।[7]

समष्टि-रूप में 'शान्तिनाथचरित्र' की भाषा सुसंस्कृत, प्रौढ़ और साहित्यिक है। अधिकांश स्थलों पर उसमें बोधगम्यता और सरलता हैं। इस प्रकार सामान्यतया कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार है। उसकी शब्द-योजना संघटित और भावानुकूल है।

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ३, श्लोक ५५, ६०
(२) वही, सर्ग १४, श्लोक २०
(३) वही, सर्ग १, श्लोक १५२
(४) वही, सर्ग १, श्लोक १५४
(५) वही, सर्ग २, श्लोक ६६
(६) वही, सर्ग ३, श्लोक ७१
(७) वही, सर्ग ६, श्लोक ४४

अलंकार-योजना

'शान्तिनाथचरित्र' में कवि ने अपने काव्य के कला-पक्ष को समृद्ध बनाने के लिए विविध अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक की ओर कवि की रुचि अधिक रमी है। इनके उदाहरण भाषा की विवेचना के समय पहले दिये जा चुके हैं। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। इनमें से प्रत्येक का उदाहरण यहाँ दिया जाता है:—

उपमा:—लक्ष्मीः पण्यवधूरिव प्रकुरुते प्रीतिं न कुत्राऽप्यसौ
देहोऽयं मधुरै रसैरपि भृशं नाम्भोधिवत् तृप्यति ।
ओजो यौवनबन्धुमुख्यनिचयः सर्वोऽपि सिन्धूर्मिव—
च्चांचल्यं वितनोति तन्मतिवतां क्लेशस्तदर्थं हि कः ॥[1]

उत्प्रेक्षा:— **माकन्दमंजर्युपभोगहृष्टः पुंस्कोकिलः कूजति यत्र तारम् ।**
वज्रायुधस्य क्षितिपालसूनोरभ्यागमस्वागतपृच्छयेव ॥[2]

अर्थान्तरन्यासः–स कोऽपि नैवाऽस्ति गुणाद्भुतः क्वचिद् यः कोऽपि विश्वस्य भवेत् प्रियङ्करः ।
सुधाकरोऽप्यभ्युदितः प्रमोदयेत् चकोरचक्रं न च चक्रमण्डलम् ॥[3]

अन्य अलंकारों में अपह्नुति, एकावली, व्यतिरेक, विरोध, मुद्रा, रत्नावली, हेतु, सन्देह, विषम, विशेषोक्ति, विभावना, परिसंख्या आदि के सुन्दर प्रयोग 'शान्तिनाथचरित्र' में पाये जाते हैं। जैसे:—

बन्धूकबन्धूनि विकस्वराणि भवन्ति चैतानि न किंशुकानि ।
वनस्थली मूर्धनि किन्तु धत्ते सिन्दूरपूरं मधुकान्तदत्तम् ॥[4]

यहाँ उपमेय किंशुक को असत्य बता कर उसमें उपमान वनस्थली के भाल के सिन्दूर-तिलक की स्थापना किये जाने से शुद्धापह्नुति अलंकार है।

न ते द्रुमा यत्र सुमानि येषु नो, सुमानि नो तानि फलानि येषु न ।
फलानि नो तानि न येषु सन् रसो, रसः स न न्यक्कुरुते मधूनि ॥[5]

यहाँ पदों के ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढंग से द्रुमाः, सुमानि, फलानि और रसः—ये सभी पद शृंखला की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हुए हैं, अतः एकावली अलंकार है।

प्रायोऽमी अमरावती पुरममूं यद्वर्णयन्ते बुधाः
किं तेषां स कदाग्रहो व्यसनिता यद्वा विवेकात्मता ।
यस्मिन् सत्यपि धर्मशर्मजनके सत्कर्मनित्योत्सवे
किंचिन्नश्वरमेयसौख्यललितां पुण्यक्रियावर्जिताम् ॥[6]

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १४, श्लोक ४४१
(२) वही, सर्ग १०, श्लोक ५३
(३) वही, सर्ग १, श्लोक ३२
(४) वही, सर्ग १०, श्लोक ४३
(५) वही, सर्ग १, श्लोक ४२
(६) वही, सर्ग १४, श्लोक १३

यहाँ उपमान अमरावती की हीनता तथा उपमेय हस्तिनापुर की श्रेष्ठता प्रदर्शित किये जाने से व्यतिरेक अलंकार है।

गृहे गृहे यत्र महेश्वरः जनाः शिवाश्रयाः भूतगणाधिनायकाः।
न भीमरूपा न कदापि शूलिनो न ये पशुस्वामितया प्रकीर्तिताः ॥[1]

यहाँ विरोधी पदार्थों के वर्णन का आभास होने से विरोधाभास अलंकार है।

समुद्य तच्छात्रसमुच्चयं बुधस्तथा कथंचित्कपिलोऽध्यजीगपत्।
यथा स दुर्बोधपदार्थबोधनात् पुरातनस्य स्मरति स्म नो कवेः ॥[2]

यहाँ प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त बुध और कवि (शुक्र) ग्रहों के नाम भी सूचित होते अतः मुद्रा अलंकार है।

त्वमेव सूरः परतापनत्वाद् दुर्गाश्रयत्वात्किमु नासि सोमः।
त्वं मङ्गलो भूतनयस्त्वमेव बुधः प्रतीतव्यवहारसौम्यः॥
गुरुस्त्वमालम्बनभूतजीव ! प्रभो ! कविस्त्वं श्रुतकाव्यनामा।
शनैश्चरस्त्वं श्रितमन्दभावस्तमोहिषन्पार्थिवसैंहिकेयः।
चन्द्रावदाताद्भुतवंशकेतुस्त्वन्निग्रहात्मा किमनुग्रहात्मा।
यत्रानुकूलः प्रतिकूलको वा करोषि तं देव विभूतिभाजम् ॥[3]

यहाँ श्रीषेण नृप की प्रशंसा प्रस्तुत अर्थ है, किन्तु इसके साथ ही इसमें नव ग्रहों के नाम भी क्रम से आये हैं, अतः यहाँ रत्नावली अलंकार है।

पिता यया क्षार इति प्रसिद्धः पतिर्यया कृष्ण इति स्वतोऽपि।
भ्राता कलङ्कीति यया व्रजन्त्या विगाहतां स स्थिरतां क्व लक्ष्मीः ॥[4]

यहाँ लक्ष्मी की अस्थिरता के उत्पादक हेतुओं में उसके पिता (समुद्र), पति (कृष्ण) तथा भ्राता (चन्द्रमा) के दोषों का उल्लेख किये जाने से हेतु अलंकार है।

संजातकोपेन सुराधिपेन प्रदत्तशापेन निपातिता किम्।
कटाक्षविक्षेपलवेन देवान् व्यामोहयन्ती सहसोर्वशीयम् ॥
उपेक्ष्य मां चन्द्रभृताऽपि भर्त्रा गङ्गा धृता मूर्ध्नि विचिन्त्य चेति।
अजाततोषा विहिताधिरोषा गौरी किमेषा समुपागताऽत्र ॥
भागीरथीं यां शिरसा गिरीशो धत्ताच्युतस्तामयमात्तगर्वः।
पदाऽपि नैव स्पृशतीति रुष्टा लक्ष्मीरियं लक्ष्मविवर्जिता किम् ॥[5]

अनन्तमति वारांगना के अद्भुत सौन्दर्य को देख कर उसे कभी उर्वशी, कभी गौरी तो कभी लक्ष्मी समझा जा रहा है। इसमें निश्चय का अभाव होने से यहाँ सन्देह अलंकार है।

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग १, श्लोक ४३
(२) वही, सर्ग १, श्लोक ११८
(३) वही, सर्ग २, श्लोक ४९-५१
(४) वही, सर्ग २, श्लोक ५
(५) वही, सर्ग २, श्लोक ९३, ९५, ९६

क्व स्वर्णकायः क्व च राजिलोऽयं क्वैरावणः क्वैडकडिम्भ एव ।
राजेन्द्रसंसेव्यपदः क्व देवस्त्वत्पादपद्मप्रणयी क्व चाऽहम् ॥[1]

यहाँ बेमेल वस्तुओं का वर्णन एक साथ होने से विषमालंकार है ।

निमित्तमात्रं पतने गुरुत्वं प्रोक्तं कणादेन मुनीश्वरेण ।
गृहेषु सर्वेष्वपि भास्करस्य व्यक्तं न तत्किं पतनं विधत्ताम् ॥[2]

यहाँ सूर्य में पतन के कारण गुरुत्व के विद्यमान होने पर भी उसका पतन-रूप कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार है ।

न बन्धनं यस्य न कर्मपाशः किंचिन्नवा पंजरमस्ति यस्य ।
तनूपभोगत्यजनापरस्यं स्थिरः सः हंसः प्रतिपद्यते किम् ॥[3]

यहाँ बन्धन, पाश, पंजर आदि के न रहने पर भी हंस के स्थिर रहने में विरुद्ध हेतुओं से कार्य की उत्पत्ति हो रही है, अतः विभावना अलंकार है ।

यत्रान्धकोऽसौ धृतराष्ट्र एव पंगुः प्रतीतोऽरुण एव कामम् ।
मनुष्यधर्मा स परं कुबेरः काणः पुनर्भार्गव एक एव ॥[4]

यहाँ वीतशोकानगरी के वर्णन में अन्धत्व, पंगुत्व, मनुष्यधर्मत्व और काणत्व को अन्य सब स्थानों से वर्जित करके उन्हें क्रमशः धृतराष्ट्र, अरुण, कुबेर और शुक्र में ही स्था-ˆत किया गया है, अतः यहाँ परिसंख्या अलंकार है ।

इस प्रकार 'शान्तिनाथचरित्र' में कवि को विविध अलंकारों के प्रयोग में सफलता मिली है । अधिकतर ये अलंकार प्रयत्नसाध्य हैं, फिर भी वे काव्य की शोभा बढ़ाने में समर्थ हैं । अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी यत्र-तत्र दीख पड़ती है । इन स्थलों पर अलंकार भावोद्रेक में सफल हुए हैं ।

'शान्तिनाथचरित्र' के प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन कर दिया गया है । चौदहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है । पहले और नवें सर्ग में वंशस्थ, दूसरे, चौथे, पाँचवें, दसवें, ग्यारहवें, तेरहवें, पन्द्रहवें, तथा सोलहवें सर्ग में उपजाति, तीसरे में वसन्ततिलका, छठे में स्वागता, सातवें में रथोद्धता, आठवें और बारहवें सर्ग में द्रुतविलम्बित, सत्रहवें में अनुष्टुप्, अठारहवें में मालव छन्द तथा उन्नीसवें सर्ग में शालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है । सर्गों के अन्त में पृथ्वी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, मालिनी, हरिणी, शिखरिणी, शालिनी उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता, इन्द्रवंशा तथा उपजाति का प्रयोग हुआ है । कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में विविध छन्दों का प्रयोग किया है । चौदहवें सर्ग में वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित मन्दाक्रान्ता, हरिणी, स्रग्धरा, शिखरिणी पृथ्वी, उपजाति तथा इन्द्रवज्रा का प्रयोग हुआ है । इस सर्ग में छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं । प्रशस्ति में मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्री-

---

(१) शान्तिनाथचरित्र, सर्ग ४, श्लोक २५
(२) वही, सर्ग ४, श्लोक ८४
(३) वही, सर्ग ४, श्लोक ८३
(४) वही, सर्ग ४, श्लोक १४०

डित, शिखरिणी तथा रथोद्धता का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार समस्त काव्य में उप-जाति, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, स्वागता, रथोद्धता, माधव, शालिनी पृथ्वी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, हरिणी, शिखरिणी, उपेन्द्रवज्रा इन्द्रवज्रा और इन्द्रवंशा इन उन्नीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें उपजाति का प्रयोग काव्य में सर्वाधिक है। उसके बाद वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, अनुष्टुप्, स्वागता, वसन्ततिलका रथोद्धता, माधव और शालिनी का प्रयोग उत्तरोत्तर कम है। शेष छन्दों का प्रयोग काव्य में बहुत-कम हुआ है, केवल सर्गान्त में ही उनका प्रयोग हुआ है।
